

मध्यकालीन
हिन्दी काव्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि

मध्यकालीन
हिन्दी काव्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि

डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
एम० ए० (हिन्दी : सस्कृत) पीएच० डी०
हिन्दी, विभाग,
गवर्नमेंट कालेज, नैनीताल

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इताहाबाद

प्रथम संस्करण : १९६३ ईसवी

दस रुपया मात्र

मुद्रक—शु. पी. विजिठिंग प्रेस, ४२, एडमन्सटन रोड, बंगलुरु ४

समर्पण

संत साहित्य के सिद्धाचार्य
सम्मान्य श्री परशुराम चतुर्वेदी
को
सादर



अनुक्रम

भूमिका	..		
१. तांत्रिक बौद्धमत		१
२. पाचरात्रमत	४५
३. शाक्तमत	१५१
४. वरमौर शैवमत	१८७
५. परिशिष्ट : तांत्रिक जैनमत	२३७
			३२६



भूमिका

हिन्दी के मध्यकालीन सन एवम् वैष्णव काव्य को समझने के लिए हम देश के नाना-मनमानान्तरों और साधनाओं का ज्ञान परमावश्यक है क्योंकि काव्य में अभिव्यक्त किसी युग का 'बुद्धितत्त्व', पूर्ववर्ती चिन्तनधारा को धिना हृदयगत नित्ये हुए अस्पष्ट ही रहता है। काव्य एक अश्लिष्ट मानसिक-क्रिया है, जमें कवि की चिन्तनधारा इनकी सुबुल-पद्धति पर व्यक्त होती है कि उनके विरंनपण के समय हमें आश्चर्य होता है; जब हम देखते हैं, कि कवि विरोध की 'अपने' वर्तमान के प्रति प्रतिक्रिया में भूतकाल या पर्याप्तमात्रा में सन्निवेश होता है। भूतकाल का यह प्रयोग, भूतकाल की पुनर्प्राप्ति के रूप में भी हो सकता है और परंपरा के कुछ अंश को यथावत् स्वीकार करके भी हो सकता है। अल्पिप्य सम्मुख न रहने से वर्तमान के समाधान के लिए प्रायः कवि और विचारण भूतकाल की ओर मुड़ते हैं। विरोधक कवि में 'पूर्णता' की प्यास सबसे अति होती है। भूतकाल की अपूर्णता कवि के सम्मुख न होने से और वर्तमान में बुद्धि को चराने वाले प्रश्नों के समाधान में भूतकाल के एक सीमा तक समर्थ होने से कविगण भूतकाल को केवल रोमानी दृष्टि से देखकर उमरा गौरवगायन ही नहीं करते अपितु उनकी बौद्धिक-प्रतिक्रिया भूतकालात्मक हो जाती है। यह प्रवृत्ति हिन्दी के गनों और भक्तों के काव्य में सबसे अधिक दिखामी पढ़नी है।

गूर-नुस्ती, कवीर, नानक, दादू आदि कवियों का काव्य मुख्यतः गाधनात्मक है। ये भक्त और गाधक पहले थे, कवि बाद में। अतः सर्वप्रथम इन काव्य का उद्घाटन इनके काव्य को समझने के लिए अनिवार्य होगा कि इन गनों और कवियों की साधना का स्वरूप क्या है और पूर्ण साधना और भक्ति के लिए 'सम्प्रदाय' आवश्यक थे; सम्प्रदाय अर्थात् साधना की प्रयोगशालाएँ; अतएव इन सम्प्रदायों अथवा प्रयोगशालाओं का विनाश समझना आवश्यक हो जाता है। यही कारण है कि मध्यकालीन काव्य का समोद्घाटन यही आशय रखना-पूर्वक कर गते हैं किन्हे साहायिक तथा पूर्ववर्ती सम्प्रदायों का सम्पूर्ण ज्ञान था। मध्य-

कालीन काव्य में अभिव्यक्त चिन्तनधारा में शैवमत, शाक्तमत, पांचरात्रमत और तान्त्रिक बौद्धमत ताने-बाने की तरह बुना हुआ है। कारण यह है कि पुराणों के प्रचलन में परस्पर-विरोधी मतों, साधनाओं, देवी-देवताओं और आचार-विचारों में हिन्दी-काव्य के श्रृंगार-के पूर्व ही अंतर्भूति स्थापित की जा चुकी थी। एक विराट् राष्ट्र में नाना कबीरों, जातियों और वर्गों की संस्कृति पौराणिकों की दूर-दृष्टि के कारण मित्त-भुक्तकर शतरंगी सहरों की तरह एक ही प्रवाह के रूप में बहने लगी थी। द्वायोनिए मध्यकालीन हिन्दी काव्य में जो कुछ पुराना है, उसमें अंतर्विरोध टूटने के स्थान पर, उनके प्रति अदृष्ट श्रद्धा ही नहीं, उसका अनुसरण ही जीवन का उद्देश्य माना गया है। जो आलोचना है, वह किसी नवीन जीवन-दर्शन अथवा समाज-दर्शन की प्रतिष्ठा करने के लिए नहीं है अपितु दुर्वसताओं को दूर करने के लिए है। परिणामतः मध्यकालीन काव्य में व्यक्त चिन्तनधारा और साधना का निर्माण दिन मूर्तों से हुआ है, उनकी पहचान के लिए इन पुष्पक में पाँच मतों का विधि-विस्तार में वर्णन हुआ है। मेरा विश्वास यह है कि गर्तुओं की पहचान के बिना वरन की पहचान नहीं हो सकती। मध्यकालीन हिन्दी-काव्य के परिधान में समकालीन मध्यक से स्थित नाना साधना-मूर्तों और चिन्तन-मूर्तों के स्वल्प को समझने के लिए इन काव्य की 'तान्त्रिक मृच्छमूर्ति' अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

मध्यकालीन हिन्दी-काव्य के चिन्तन और साधना को समझने के लिए ही, प्रस्तुत पुस्तक नहीं किसी नई अति-उत्तम काव्य की 'वस्तुना' और 'भाव' की दिशा, कल्पना के द्वारा पाये गए उपकरण, रूपों की सृष्टि, भाषा के आधार तथा भाषा और अभिव्यक्ति के प्रकारों को समझने के लिए भी शैव-मत, शाक्तमत, पांचरात्रमत तथा तान्त्रिक बौद्धमत का अनुनीमन आवश्यक है। इन सम्प्रदायों की कृतियों सामग्री विविध रूपों में तारतम्यिक समकालीन संस्कृति और काव्य में स्वीकृत हुई है। कल्पना, सृष्टिकला और बिना कला भी इन्हीं सम्प्रदायों में प्रेरित है। तन्मयी मन में स्थित-अति अथवा कल्पना-उत्पत्ति के प्रारंभ पर साधना-मूर्त का चित्रण हुआ; कला और काव्य दोनों में यह प्रवृत्ति दिशाओं परती है अतः मनु-केन्द्रित काव्य का 'अभिव्यक्त' चित्रण भी बना था, उनमें उक्त सम्प्रदायों की कृतियों सामग्री भी दिशाहीन है। इन सामग्री में परिवर्तन दिशा है, कहीं-कहीं यह इतने परिवर्तित रूप में है कि उनकी पहचान कठिन है, कहीं-कहीं सामकालिक अथवा इन सामग्री का रूप भी परिवर्तित करने का प्रारंभ और कहीं-कहीं यह स्पष्ट

देखी जा सकती है अतः केवल काव्य के बुद्धितत्त्व की दृष्टि से ही नहीं अपितु उपमान, प्रतीक, भाव और कथन-पद्धति की दृष्टि से भी उक्त सम्प्रदायों का अध्ययन आवश्यक है।

किन्तु इन सम्प्रदायों को प्रकाशित करते समय यह कह देना आवश्यक है कि इनका धर्म-दर्शन ('Theology') की दृष्टि से भी महत्व है और जो सम्प्रदाय केवल इन्हीं सम्प्रदायों के अध्ययन में रुचि रखते हैं, उनके लिए भी इन में रोचक सामग्री मिल सकती है।

मुझमें इन निबन्धों को लिखते समय यह प्रश्न बार-बार पूछा गया कि अतः काव्य के अध्ययन में यदि प्राचीन मन-मनान्तरों के इनके गंभीर अध्ययन की आवश्यकता है तब काव्य-अनुशीलन और धर्म-दर्शन में क्या अन्तर रह जाना है? मेरा उत्तर है कि सीमाएँ आपसी बनायी हुई हैं। ज्ञान एक और अखण्ड है। यदि आपसी कबीर को समझने के लिए धर्म-दर्शन पढ़ना ही पड़ता है तब काव्य का अनुशीलन यदि कबीर के काव्य को ध्यान में रखकर उन प्राचीन धार्मिक और दार्शनिक तत्वों की ध्यान-धीन करे तो इसमें आपत्ति की बात क्या है? हिन्दी में अगमबद्ध ज्ञान का अभाव नहीं है किन्तु इसपर 'टू द प्वाइंट' के चक्कर में इनका उपनापन आया है कि भारी पदों में भी कोई नवीन मूल्या नहीं मिलती। 'नवो ध्यात्या' और 'वैज्ञानिक ध्यात्या' की आशा तो दुराशा में परिणत ही हो रही है।

इसके विषय मेरा दृष्टिकोण भी काव्य के अध्ययन के प्रति भिन्न है। मैं काव्य को किसी देश या जाति की समष्टि-संगठित का पुण्य मानता हूँ। वैज्ञानिक की तरह इस 'पुण्य' को पहिचान के लिए पुण्य के रस, उनके प्रभाव आदि का वर्णन होना चाहिए। मैं भूमि की परीक्षा भी पुण्य-ज्ञान के लिए आवश्यक मानता हूँ अतः भूमि और भूमि में विरहित पुण्य, अथवा दूररे शब्दों में समाज और समाज में विरहित काव्य—ये दोनों विषय मेरी दृष्टि में सम्बद्ध रूप में—एक माप—आनाया के रूप में हैं।

इन दृष्टि से अध्ययन करने पर मध्यकालीन काव्य में केवल सुन्दर शब्द, चक्र और रस ही नहीं मिलेंगे अपितु इस काव्य के प्रयोजन के रूप में बुद्धि भी धारण मिलेगी जो तात्कालिक समाज की रीति भी करती है और उनके अन्तः-दिशाक्ति का भी तैयारोया प्रस्तुत करती है। आरक्षण रूप होगा है जब,

ऐसी धाराएँ प्रागैतिहासिक काल से मध्यकाल तक एक अविच्छिन्न शृंखला के रूप में दिखायी पड़ती हैं और कालक्रमानुसार सुरुती क्षिपती, मार्ग बदलतीं और जल के गुण में परिवर्तन सातीं हुईं, मध्यकालीन वायव्य-प्रवाह में अपनी विविष्टता की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए हमें प्रेरित करती हैं अतः यह भी आवश्यक हो जाता है कि शाक्तमत, शैवमत, पांचरात्रमत और तांत्रिक बौद्धमत के आदिम रूप को भी हम स्मरण रखें तभी हम इस प्रबल धारा का ऐतिहासिक योगदान निश्चित कर सकते हैं और इन धारा की सहायता से भारतीय समाज के विकास को भी हम समझ सकते हैं ।

जिम प्रकार किसी एक कवि की कविता के अनुशीलन के लिए उसको मानसिक-स्तिष्ठियों अथवा उसके अवचेतन की ध्यान-बौध आवश्यक होती है, उसी प्रकार गुण-विशेष का भी एक अपना अवचेतन होता है । मेरा निवेदन यह है कि मध्यकालीन हिन्दी-वाक्य में प्रतिबिम्बित 'सामूहिक अवचेतन' के समझने के लिए जहाँ अन्य मतों और गायनाओं को विस्तार पूर्वक समझना आवश्यक है, वहीं इन धारों के लिए आगम या तंत्र-धारा को समझना भी आवश्यक है । इसलिए इस पुस्तक के लिए मैं विगी शमा-याचना की आवश्यकता नहीं समझता ।

शैवमत, शाक्तमत, पांचरात्रमत और तांत्रिक बौद्धमत अनाई, अग्नेदिक, आगम, ब्राह्मणवादविरोधी, धाममार्गी, आदि नामों से अभिहित किया गया है । यह धारा उक्त सम्प्रदायों के रूप में संगठित होने के पूर्व त्रिगुण रूप में प्रचलित थी, इन मध्य पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है । इनके प्राचीन और मध्य-कालीन युग शृंखलित और सम्बद्ध रूप में प्रतीत होने लगता ।

पादभाष्य दृष्टिगतार और पुराणत्ववेत्ता बहूमत्र से वैदिक धारों के भारत आगमन को १५०० ई० पूर्व में मानते हैं अर्थात् यह अंतिम गोमा है । धारों का आगमन धाराओं में माना जाता है । बुद्ध पचोत्ते २००० ई० पूर्व में भी आ गए होंगे, शायद और भी पहले धारों के बुद्ध बन आए हों लेकिन १५०० ई० पूर्व के बाद में आने आगमन मानने पर भाषा और गार्ह्य के विभाग को नहीं समझाया जा सकता ।

इसके बुद्ध विज्ञानों में आर्य-आगमन की कथा की सर्वथा अग्रगणित और कल्पित सिद्ध किया है । बर्तक भाषाओं के अध्ययन के आधार पर यह भी सिद्ध हो जाता है कि आर्य भारत में पहिली पहिली अथवा मध्य पहिली गए । अतः

ऐसे विद्वान यह मानकर चलते हैं कि आर्यों का आगमन प्रमाणित नहीं होना नव वैज्ञानिक दृष्टि यह है कि आर्य भारत में रहते थे और पश्चिमोत्तर प्रदेशों से उनका विस्तार पूर्व और दक्षिण की ओर हुआ। हिन्दु अभी तक बहुमत से आर्यों का आगमन एवं तथ्य माना जाता है।

बुद्ध विद्वान मिय, मैसोपोटामिया तथा एशिया के ध्रुवपश्चिमवर्ती देशों और द्वीपों में होने वाली खुदाई में प्राप्त सामग्री से आर्य-आगमन को सिद्ध करते हैं। हिन्दु उनका समय ई० पूर्व० पश्चि सहाय्य वर्ष अथवा उससे भी पूर्व निर्धारित करते हैं। डॉ० हर्षे का कथन है कि मैसोपोटामिया के राज्य-निर्माता आर्य ही थे और अशोरिया के अगुरो द्वारा आक्रमणों से श्रान्त हो कर आर्य भारत आये।¹

डॉ० हर्षे के अनुसार वेद-वर्णित मरीचि, भृगु, अग्नि, अगिरा, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुत्रह, मनु, प्रचेतस-दक्ष, तथा स्वयंभुव मनु—इन दस प्रजापतियों तथा आदित्य, अप्सरस, नाग आदि के उल्लेख पश्चिमी एशिया में मिलते हैं। उदाहरणतः मिय की प्राचीन जातियों के नाम सर्प, पाग, गिद्ध, गरुड, बाज जैसे जीवों और पौधों के नाम पर हैं। यह भी कहा गया है कि ३५६० ई० पूर्व में ये जातियाँ 'फैरो-राज्य' के रूप में सृष्टि हो गईं। ऊपर पुराणों में भी कबी-ने या जातियों के नाम पशु-पक्षियों आदि पर आधारित हैं यथा वृष अश्व, उग्र वार्ष्णेय, वसि, अत्र, पाग आदि। सूक्ति मिय की उक्त प्रागैतिहासिक जातियों का समय ५००० ई० पूर्व है अतः वेदों का समय भी यही मानना होगा, यह डॉ० हर्षे का कथन है।

इनके निवाय डॉ० हर्षे एशिया माइनर के फीजिया (Phrygia) से 'भृगु' का, ईराक के वारुक या उरु (Warak or Uruk) से 'वृत्रयोम' का, ईराक के पेंजवान (Penjwan) से मुदुथ और वसिष्ठ का, सिरिलीन का पुत्रह से, मीसोपोटामिया से 'मरीचि' का, जोर मध्य एशिया में स्वयंभुव मनु का सम्बंध जोत्ते हैं। इसी प्रकार माइनर की 'रेशैत' (RESHEI) मूगि से ऋषभदेव का, दक्षिण-पश्चिम में 'गाम्गरी' का, ईराक के बायस प्रदेश में 'बायस रिदुप' का, मैसोपोटामिया प्रदेश से अन्त्य धीर विरगा'मन का, 'उर' (Ur) प्रदेश से उर्वशी का, यहूदा में ऋषभ के महु, यहूदा तथा यहूदा का, तथा मिय देश में धन्वतरि का

1 The Trails of the Vedic Civilization in the Middle-East
R. G. Harshe—K. P. Bhatnagar Commemoration
Volume. KANPUR, Page 165

सम्बंध स्थापित किया गया है। चाल्डियन स्रोत से जो मूर्धन्य-मूर्त मिलता है, वह बेर के मूर्धन्य-मूर्त से यथावत् मिलता है, यह भी कहा गया है।

इस प्रकार डॉ० हर्से ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारत में आने के पूर्व आर्य कबीले सुमेरिया में रहते थे और असीरिया के अशुरों से परास्त होकर भारत आये। पुराणों में जिस देवामुर-संग्राम का वर्णन मिलता है वही परन्तुः सुमेर-देश के अरामों और असीरिया के अशुरों के युद्ध की यादगार है।

उनका शोध मुख्यतः शब्द-सादृश्य पर आधारित है, किन्तु केवल शब्दों के साम्य से इतिहास-निर्माण का प्रयत्न संदेहास्पद ही रहता है।

किन्तु एक तथ्य उनका शोध से भी पुष्ट होता है कि आर्य विभिन्न कबीलों में से संगठित थे क्योंकि भारत में आने पर भी उनके नाम टटिमपरक रहे। इस तथ्य से हमारे विषय का पनिष्ठ सम्बंध है।

डॉ० हर्से का अध्ययन अधिकतर शब्दसादृश्य पर आधारित है अतः सम्भावना कुछ भी हो, केवल सम्भावना ही प्रमाण नहीं माना जा सकता। इन सम्बंध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रो० वेदरिच हज़ार्नी ने किया है। उनका दावा है कि उन्होंने मोहनजोदड़ो की लिपि को पढ़ लिया है और इस लिपि के आधार पर उन्होंने परिचयी एशिया तथा त्रिपु-पाटी के सम्राज और धर्म के विषय में कुछ सर्वथा नवीन सूचनाएँ दी हैं।

प्रो० हज़ार्नी के अनुसार सुमेर-असिरियन सम्मता आर्य-सम्मता नहीं थी। ई० पूर्व ३००० से १६०० तक विद्यमान इस सम्मता के विषय में उक्त लेखक ने बताया है कि सुमेर-देश में राज्य-निर्माण हो चुका था परन्तु कबीलों में जनता विभाजित थी। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। मंदिरों में देवताओं और देवियों की पूजा होती थी। देवताओं में शत्रु, पृथिवी, सूर्य, युद्धदेव आदि का उल्लेख मिलता है। डॉ० हर्से यह नहीं देख सके कि प्रागैतिहासिक काल में कबीला-व्यवस्था में देवताओं में भी सादृश्य मिलता है और कबीलों के नामों में भी किन्तु इनसे यह सिद्ध नहीं होता कि मिश्र और सुमेर के कबीले आर्य कबीले थे। जिस प्रकार बेर में श्रेष्ठ देवताओं में शर्पा है, उसी प्रकार सुमेर देश में भी 'माहुन' को श्रेष्ठ संपद के बाद श्रेष्ठ देवता माना गया।

यही नही, निष्ठ में ब्रह्माण्ड की कल्पना भारत से पूर्व सुमेर देश में मिलती है। उपनिषदों में जो यह कहा गया है कि देवताओं के अन्त, शरीर का जाने पर विभिन्न अणुओं में प्रकट होते हैं, यह विचार सुमेर प्रदेश में मिलता है। इग्या तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के विषयों समान व्यवस्था में सर्वत्र मिलते हैं क्योंकि विश्वास व्यवस्था के अनुरूप ही कल्पित होते हैं।

परवर्ती त्रिदेव की तरह सुमेर ऋषादियन सम्प्रदाय में आनासदेव 'अन' या 'अनम' था। उसकी पत्नी थी 'अनम'। पृथिवी का देवता था इन्लिन या इन्लिल, उग्रा देवी थी, निनलिल। जल का देवता था इम या इन्की और उमकी पत्नी थी 'दमलिन'। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, रवि आदि की पूजा भी होती थी। भारतीय पुरोहित की तरह यहाँ भी पुरोहित का स्थान महत्त्वपूर्ण था। यहाँ के विद्वान पौराणिक साहित्य को देखकर यह कहना कि ये आर्य थे, अप्रमाणा तथ्य है। प्रो० हार्जर्नो भी सुमेर-सम्प्रदाय की स्वतंत्र सम्प्रदाय मानते हैं।

हमारे लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि सुमेर की 'इन्नर' नामक देवी जल-पितृ प्रदत्त थी। भारतीय शक्ति-पूजा से 'इन्नर पूजा' का अद्भुत सादृश्य मिलता है किन्तु प्रागैतिहासिक युग में शक्ति-पूजा सर्वत्र मिलती है। देवी को प्रेम और उपासना का देवता माना जाता था और इसीलिए शक्ति-सम्प्रदाय की तरह इन्नर-सम्प्रदाय में 'भोग' के गुणगान और वेश्यावृत्ति प्रचलित रही। जादू का सम्बन्ध धर्म के प्रारम्भिक रूप में सर्वत्र मिलता है। तंत्रों के रूप, यंत्र की तरह सुमेर में भी मन्त्रों और यंत्रों का प्रचार था। रोगनाश के लिए मूत्रविद्या का प्रचार अथर्ववेद की तरह यहाँ भी मिलता है। तान्त्रिक सम्प्रदायों की तरह रक्षकममता का सम्बन्ध भी उक्त आचारों के साथ था।

हार्जर्नो हिट्टायट या हती जा के साथ आर्यों का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, सुमेर-निवासियों के साथ नहीं, यह स्मरणीय है। हतीभाषा भी अब भारतीय परिवार की माती जाती है। दा भाषा में पाँचों के सम्बन्ध में है जिसमें पारसी, धार्यता, जादू के मन्त्र तथा गीत मिलते हैं। यंत्रों का यंत्र भी मिलता है। एक देवता दा पश्चिम देशों का सम्बन्ध है। पूर्ण १६०० वर्ष मानते हैं। हतीभाषा भाषियों के विषय 'हृदियन' भी समझ आने में है। दा पश्चिम देश के उन्नेत मिलते हैं। हार्जर्नो के अनुसार १६०० ईसा पूर्व के आसन्न एशिया का पश्चिम-भाग आर्यों का शत्रु था। इस काल में आर्य उत्तरी मैसोपोटामिया का पश्चिम-भाग थे। अथर्ववेद और रव-शौच के उन्नेत हतीभाषा में मिलते हैं। हार्जर्नो के

सम्बन्ध स्थापित किया गया है। चाल्डियन स्रोत से जो सूत्र-सूक्त मिला है, वह वेद के सूर्य-सूक्त से यथावत् मिलता है, यह भी कहा गया है।

इस प्रकार डॉ० हर्षे ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारत में आने के पूर्व आर्य कबीले सुमेरिया में रहते थे और असीरिया के असुरों से परास्त होकर भारत आये। पुराणों में जिस देवासुर-संग्राम का वर्णन मिलता है वहाँ वस्तुतः सुमेरु-देश के आर्यों और असीरिया के असुरों के युद्ध की यादगार है।

उक्त शोध मुख्यतः शब्द-सादृश्य पर आधारित है, किन्तु केवल शब्दों के साम्य से इतिहास-निर्माण का प्रयत्न संदेहास्पद ही रहता है।

किन्तु एक तथ्य उक्त शोध से भी पुष्ट होता है कि आर्य विभिन्न कबीलों में संगठित थे क्योंकि भारत में आने पर भी उनके नाम टटिमपरक रहे। इस तथ्य से हमारे विषय का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

डॉ० हर्षे का अध्ययन अधिकतर शब्दसादृश्य पर आधारित है अतः सम्भावना कुछ भी हो, केवल सम्भावना को प्रमाण नहीं माना जा सकता। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य प्रो० बेडरिक ह्राज़नी ने किया है। उनका दावा है कि उन्होंने मोहनजोदड़ो की लिपि को पढ़ लिया है और इस लिपि के आधार पर उन्होंने परिचामी एशिया तथा सिंधु-घाटी के समाज और धर्म के विषय में कुछ सर्वथा नवीन सूचनाएँ दी हैं।

प्रो० ह्राज़नी के अनुसार सुमेर-अक्कादियन सभ्यता आर्य-सभ्यता नहीं थी।^१ ई० पूर्व ३००० से १६०० तक विकसित इस सभ्यता के विषय में उक्त लेखक ने बताया है कि सुमेर-प्रदेश में राज्य-निर्माण हो चुका था परन्तु कबीलों में जनता विभाजित थी। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। मंदिरों में देवताओं और देवियों की पूजा होती थी। देवताओं में चन्द्र, पृथिवी, सूर्य, युद्धदेव आदि का उल्लेख मिलता है। डॉ० हर्षे यह नहीं देख सके कि प्रागैतिहासिक काल में कबीला-व्यवस्था में देवताओं में भी सादृश्य मिलता है और कबीलों के नामों में भी किन्तु इगसे यह सिद्ध नहीं होता कि मित्र और सुमेर के कबीले आर्य कबीले थे। जिस प्रकार वेद में श्रेष्ठ देवताओं में स्पर्धा है, उसी प्रकार सुमेर देश में भी 'मार्दुक' को बहुतेक संघर्ष के बाद श्रेष्ठ देवता माना गया।

1 Ancient History of Western Asia, India and Crete, Bedrich Hrozný. New York

यही नदी, पिण्ड में ब्रह्माण्ड की कल्पना भारत से पूर्व सुमेर देश में मिनती है। उपनिषदों में जो यह कहा गया है कि देवताओं के अर्थ, परंपर बत जाने पर विभिन्न अंग में प्रकट होते हैं, यह विचार सुमेर प्रदेश में मिलता है। इनका तात्पर्य यह है कि हम प्रार के विद्यमान समान व्यवस्था में सर्वत्र मिलते हैं क्योंकि विद्यमान व्यवस्था के अनुरूप ही कल्पित होते हैं।

परबर्ती त्रिदेव की तरह सुमेर अकारादियन सम्प्रदाय में आताएदेव 'अन' या 'अनम' था। उसकी पत्नी थी 'अनम'। पृथिवी या देवता या इतनित या इन्तिल, ऊर्ध्व देवी थी, नितनिल। जन या देवता या इय या इन्वी और उमवी पत्नी थी 'दमनित'। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, रवि आदि की पूजा भी होती थी। भारतीय पुरोहित की तरह यहाँ भी पुरोहित का स्थान महत्त्वपूर्ण था। यहाँ व विज्ञान पौराणिक माहित्य को देखकर यह कहना कि वे आर्य थे, अप्रमाणित नव्य है। प्रो० हाजनी भी सुमेर-सम्प्रदाय को स्वतंत्र सम्प्रदाय मानते हैं।

हमारे लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि सुमेर की 'इदर' नामक देवी अत्य-पिण्ड प्रथम थी। भारतीय शक्ति-पूजा से 'इदर पूजा' का अद्भुत सादृश्य मिलता है किन्तु प्रागैतिहासिक युग में शक्ति-पूजा सर्वत्र मिलती है। देवी को प्रेम और उपज या देवता माता जाना या और इसीलिए शक्ति-सम्प्रदाय की तरह इदर-सम्प्रदाय में 'भोग' के गुणजापन और वेद्यावृत्ति प्रचलित रही। जादू का सम्बन्ध घर्षण के प्रारम्भिक रूप में सर्वत्र मिलता है। तन्त्रों के मन्त्र, यज्ञ की तरह सुमेर में भी तन्त्रों और मन्त्रों का प्रचार था। रोगनाश के लिए भूतविद्या का प्रचार अथर्ववेद की तरह यहाँ भी मिलता है। तान्त्रिक सम्प्रदायों की तरह सम्प्रदायों का सम्बन्ध भी उक्त आचारों के साथ था।

हाजनी रिट्टाइट या हली जा के साथ आर्यों का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, सुमेर-निवासियों के साथ नहीं, यह स्मरणीय है। हलीनामा भी अथ भारतीय परिवार की माता जानी है। हा अन्ना में पाए गये पत्थर मिलते हैं त्रिभुज पारली, चापलाए, जादू के मन्त्र तथा गीत मिलते हैं। वनों का पत्तन भी मिलता है। एक मेगाथ हा पामित पत्तनों का सम्बन्ध ईसा पूर्व १६०० वर्ष माना है। हलीनामा भाषिका के शब्द 'हृत्विज' भी साम्य आर्य थे। इनके यहाँ वेदिक देवों के उल्लेख मिलते हैं। हाजनी के अनुसार १६०० ईसा पूर्व के अन्तर्गत तमिया का परिष्कृत-भण आर्यों का क्षेत्र था। इस बात में आर्य जननी मैजोपोटामिया तक फैल गए थे। ब्रह्मण्य और रघु-गीतों के उल्लेख हलीनामा में मिलते हैं। हाजनी के

प्रस्तुत करने की बलवती इच्छा के परिणामस्वरूप संस्कृत में 'रामकथा' पर आधारित महाकाव्यों का प्रचुर निर्माण हुआ। इनमें से अधिकतर ऐसे हैं जिनमें आदि से अन्त तक 'रामचरित' का ही चित्रण किया गया है। किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिनमें अन्य चरित्रों के वर्णन के साथ कुछ अध्यायों में 'रामचरित' का भी समावेश हो गया है।

प्रथम प्रकार के महाकाव्यों के अन्तर्गत रामायण मंजरी, 'रामचरित' 'बालकी हरण' 'उत्तर रामच' 'रघुबीर चरित' 'राम विजय' तथा 'रावणाय' आदि ग्रंथों की गणना है। द्वितीय प्रकार के काव्यों में 'रघुवंश' और 'व्यावहार चरित' आदि प्रमुख हैं।

(१) रामायण मंजरी—शेनेत्र के इस महाकाव्य में सात काण्ड हैं। प्रत्येक काण्ड के अन्त में 'इति शेनेन्द्रविरचिते रामायण कथासारे समाप्तोऽर्थ' ... काण्ड लिख कर महाकवि ने इसे 'बाल्मीकि रामायण' का 'कथासार स्वीकृत किया है। इसमें 'युद्धकाण्ड' को छोड़ कर शेष काण्डों के नाम तो 'मानस' में समान हैं किन्तु उनका बस्तु-विभाजन, समान नहीं है। इस महाकाव्य में 'बाल्मीकि-नारद-संवाद' से लेकर 'राम स्वर्गारोहण' तक के समस्त कथानक का वर्णन किया गया है।

कथावस्तु की दृष्टि से तुलना करने पर इस काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं— इसमें वृषारण के द्वारा 'पुत्र-काम-यज्ञ' से पूर्व 'अश्वमेध-यज्ञ' का भी उल्लेख किया गया है जो 'मानस' में नहीं है।

'पृथ्वी का गो-रूप में देवलोक जाना' इसमें वर्णित नहीं है किन्तु 'मानस' में है। यहाँ देवगण ही ब्रह्मा के नेतृत्व में विष्णु के समीप जाकर उनसे चतुर्धा रूप में विभक्त होने वृषारण-पुत्र बनकर अवतार लेने तथा रावण-वध करने की प्राथना करते हैं।^१

इसमें 'बहू वितरण' मानस के समान ही है किन्तु यहाँ सुमित्रा अपने 'बहू' के स्वयं ही गो भोग कर लेती है किन्तु 'मानस' में कौसल्या और कौशली अपने हाथों से उसके गो भोग करके सुमित्रा को दे देती हैं।^२ इस प्रश्न में वाटका के बहू में उसके स्त्रीत्व के कारण राम की द्विचक्रिचाहट की सम्भावना करके विरहामित्र उन्हें स्त्री-वध के अनेक उपाहरण देते हैं।^३ मानस में इसका कोई उल्लेख नहीं है। इसके

१ रा मंजरी। बाल। ४३

२ तस्माद्दत्तस्यैव भयवन्मय पुत्रायाम् ॥ ६८ ॥

चतुर्धा भोगमास्वाप विभग्यारभानमात्मना ।

अवतीर्य बतं विष्णो वहि शैलोत्पकष्टकम् ॥ ६९ ॥ —रा० मंजरी ।

३ तत्रोऽर्थं प्राप कौसल्या चतुर्भागं च कृश्वी ।

चतुर्भागं सुमित्रा च स्वयं तेन द्विधा कृतम् ॥ ७४ ॥—रा० मंजरी ।

४ बर्षं भाग कौसल्यहि वीग्हा । उग्रम भाग भागे कर कीग्हा ॥

कैकेई कहै नृप सो बपक । रह्यो सो समय भाग पुनि भवक ॥

कौसल्या कैकेई हाव परि । वीग्हा सुमित्रहि मन प्रवन्न करि ॥—मानस १।१९०

५ रा० मंजरी। बाल। १३६-१३९

अतिरिक्त यहाँ (मानस में) ठाटका-बन्ध करने के पश्चात् राम की विस्वामित्र के द्वारा 'विद्याएँ' देने का वर्णन मिलता है,^१ जबकि इस ग्रंथ में यह उसके पूर्व ही है।^२

इसने 'बहुस्या धाप' में उसके निराकम्ब मस्मसाधिनी और अदृश्य होने का वर्णन किया गया है^३ जबकि 'मानस' में यह 'दिला' हो जाती है।^४

'बनुर्मङ्ग' के पूर्व इसमें न तो पुष्पवाटिक-मिसन का वर्णन मिलता है और न 'स्वर्धर-समारोह' का ही। मानस में ये दोनों वर्णन बड़े ही सरस और रोचक हैं।^५

'परसुराम प्रसंग' भी इसमें राम आदि के विवाह के पश्चात् बाराठ के सीटते समय अयोध्या के मार्ग में बर्णित किया गया है^६ और उसमें परसुराम के साथ विवाह में सम्मेलन कोई भाव नहीं लेते, किन्तु 'मानस' में यह 'प्रसंग' राम-विवाह के पूर्व मिथिला में ही घटित हो जाता है।^७

इस काव्य में राम के किसी पूर्व पयापात के प्रतिकार के लिए ही मन्बरा उनके निर्वासन का पदव्यंज रचती है।^८ 'मानस' में इसके स्थान पर 'धारदा-पदव्यंज' है।^९ यहाँ 'राम-निर्वासन के बखतर पर सम्मेलन के कोप और राम से बसपूवक राज्य ग्रहण करने के लिए उनकी प्रार्थना का विस्तृत वर्णन किया गया है।^{१०} 'मानस' में इस कोप आदि का कोई संकेत भी नहीं है।

इसमें बनु वामन के लिये प्रस्तुत राम को दण्डरथ बन, रत्न और सेना आदि सर्वस्व देने की इच्छा व्यक्त करते हैं ताकि भरत उन्हें राज्य पर राज करें और राम बन में भी पूर्ण सम्पन्न रहें।^{११} किन्तु कैंकेई उन्हें ऐसा करने से रोकती है। 'मानस' में इस प्रसंग का कोई उल्लेख नहीं है।

इस ग्रंथ में 'अयत्त प्रसंग' भरत के विभक्त आगमन से पूर्व मिलता है, किन्तु 'मानस' में यह उसके पश्चात् बर्णित हुआ है। इसके अतिरिक्त उसके विस्तार में भी निम्नता है। 'मानस' के समान अयत्त यहाँ राम की बस परीक्षा^{१२} के लिए सीता

१ मानस १।२०६

२ रा० मंजरी । बास । ११९

३ विरमस्मिन्निरामम्बा कामने मस्मसाधिनी ।

बहुस्या प्राप्स्यसि मुञ्च रामसद्वर्धनावधि ॥ — रा० मंजरी । बास । ३०७

४ मानस २।२१०

५ मानस १।२२७-२६१

६ रा० मंजरी । बास । ३६६ ३२५

७ मानस १।२६८-२८३ ।

८ सौचद्वै दित्त रामेय पुरा प्रणयकोपत ।

चरनेताहता तत्र विरं कोपमुवाह सा ॥ रा० मंजरी । अयोध्या । ६९७

९ मानस २।१२

१० अस्थिनी स्वधितो राजा यदि स्त्रीवधवता गत ।

तदस्माकं किमायातं ये त्यजाम स्वकं पदम् ॥ ८३८ ॥

भरतेन प्रयुक्तो यं यदि बन्धो नवकम् ।

तनेदं युक्ता याति मम बन्धनं यत् ॥ ८४० ॥ रा० मंजरी । अयोध्या

११ यत्र रत्नानि सैव च रामनेत्रामुपकृत्य ।

अवापिवातमुमुदा प्राप्नोतु भरतं त्रियम् ॥ ८८६ ॥ रा० मंजरी

१२ मानस ३।१

पर प्रहार नहीं करता है किन्तु 'मृग मांस' की सुरक्षा करती हुई सीता जब उसे बारम्बार रोकती है तब वह अपने पंखों, पोंच और नखों से उसे बाह्य कर देता है।^१

इस काव्य की बिजकूट समा में निराश भरत राम की कटी के सामने कुछ क्षमा बिछा कर निराशम्ब निराहार निष्क्रिय और मोन घटी होकर तप करने की घोषणा करते हैं।^२ 'मानस' में ऐसे सत्याग्रह का कोई वर्णन नहीं है।

इस काव्य में विराय के बच का कारण उसके हाथ क्रिया गया 'सीता-हरण' कथनाया गया है।^३ 'मानस' के राम उसका अकारण-ही बच करते हैं —

'मिसा असुर विराय मग जाठा । भावतही रघुबीर निपाठा' ॥३१७

राम-मिसम के अक्षर पर इस प्रश्न के अन्तरण उन्हें 'वेपथव धनुष' सर्वदेव्य मारक ब्रह्म बाण 'अथाय तुभीर-इय' 'उत्त हेमप्रभ यद्यप्य और इन्द्रप्रिय अमेघ-कवच' यादि भी देते हैं।^४ 'मानस' में इस अस्त्रदान का कोई वर्णन नहीं है। वहाँ अगस्त्य राम की केशव स्तुति करते हैं।^५

ब्रह्मा की आज्ञा से इस काव्य के इन्द्र मछोक बाटिका में स्थित सीता को ऐसी 'दिव्य हवि' दे जाते हैं कि उन्हें भूक व्याघ्र अथवा मकाबट आदि की किसी बाधा का अनुभव न हो।^६ 'मानस' में ऐसा कोई प्रसंग नहीं है।

इस काव्य में बाह्य यद्यपु को रोक कर राम उसे भ्रमबध राक्षस समझ लेते हैं और जब वे उसे मारने के सिधे, रीढ़ते हैं, तब वह उन्हें अपना परिचय देकर सीता हरण का वृत्तान्त भी बतसाता है और यह कह कर उन्हें आस्वस्त भी करता है कि

१ कविसेवेण बँदेही पत्पुर्वाग्म्यमकल्पयत् ॥१४१॥ रा० मंजरी । अरभ्य मांसोपेत्य एतायै समाविष्टा प्रियेव सा ।

पद्यतुष्टनजावार्त काकैनोदेजिता मृघम् ॥१४३॥

२ उठो जवार भरत मुमात्रं व्यचिते-त्रिय ॥२५१॥

कूर्त्त कल्पय मे प्रप्यां उपहार्यं प्रसीदति ।

निपाहारो निपातम्बरपथकर्मा निराशय ॥२१०॥

अभ्यान्वेष बने मीनी यावत्कार्यं प्रसीदति ॥२११॥ रा० मंजरी । अरभ्य

३ राजसोत्रिय मुदा कृत्वा पश्येनापूरवग्विद्य ।

दोर्गामाहाय बँदेही उपवाभिमुषो वदत् ॥३६७॥

४ रा० मंजरी । अरभ्य । ४६३-४६६ ५ मानस ३।१३

६ अशान्तरे ब्रह्मवाणपास्तव्यं देव सुरेरवत् ।

विषाय निद्रया मीहं पद्यसीनामसतिवत् ॥१४२॥

अभ्येत्य सीतां प्रोवाच मुचिवाचित्तमूपगाम् ।

पुत्रि रामेण न विरास्तंनमरते मविव्यति ॥१४३॥

इत्यारवास्तव धनं सीतां तस्यै विप्रह्वारणम् ।

दिव्यं दशो हविस्तुप्यात्पुत्रममापहर् परम् ॥१४४॥

'बृम्ह मुहूर्त' में सीता-हरण होने से रावण का निदधम ही बच होगा और उनको सीता की पुनः प्राप्ति होमी ।^१ 'मानस' का बटायु राम का पूर्व परिचित है और मरते समग बहु चतुर्भुज रूप धारण करके राम के ईश्वरत्व का दर्शन करता हुआ उनको स्तुति करता है । वही राम उसका पितृवत् भास्वि-संस्कार भी करते हैं ।^२

राम के द्वारा घाप मुक्ति होने पर इस प्रश्न में कवय्य उनसे सीता प्राप्ति के लिये सुधीय मैत्री की प्रार्थना करता है ।^३ 'मानस' में यह प्रार्थना सबरी करती है ।

'पंपा सरहि बाहु रघुराई । तहं होइहि सुधीय मिताई ॥' १।१६

'बास्वि-वध' के प्रसंग में इस काव्य की तारा राम को घाप देती है कि वे सीता को प्राप्त करके भी उसका उपभोग न कर सकेंगे ।^४ 'मानस' में ऐसा कोई संकेत नहीं है ।

सीता-शोक के लिये जानरों को चतुर्भुज भेजता हुआ सुधीय यहाँ सभी विद्याओं की नदियों, पर्वतों और नगरों का विस्तृत वर्णन करता है । राम के प्राप्त पर यह अपने इस धीयोक्तिक ज्ञान का कारण 'बास्विनास' बतलाता है जिसके फलस्वरूप उसे सर्वत्र भटकना पड़ा था ।^५ 'मानस' में यह विवक्षित नहीं है ।

'सम्प्राप्ति प्रसंग' में 'मानस' के 'अत्रमा मुनि' के स्थान पर इस प्रश्न में 'गिष्ठा कर मुनि' का उल्लेख है । यहाँ सम्प्राप्ति अपने पुत्र सपार्ष्व द्वारा जानरों से सीता हरण का विवरण भी प्रस्तुत करता है । उसके संकेत से सपार्ष्व समुद्र-संघर्ष के लिए जानरों को अपनी सेबायें अर्पित करना चाहता है किन्तु अंत्य अहिमानवस, उसे धरती कार कर देता है ।^६ 'मानस' में सपार्ष्व और उसके उद्योग का कोई उल्लेख नहीं किया गया है ।

रावण के अन्त-पुर में अर्धरात्रि में सीता की शोध करते हुये इस काव्य के हनुमान् गुप्त और विवसन् अनेक राक्षसियों के दर्शन से पड़े दुखी होते हैं किन्तु अपने मन की फिर भी सर्वथा शूद्र पाकर उन्हें बड़ा सम्योय होता है ।^७ 'मानस' में इस प्रकार का कोई दर्शन नहीं है ।

इस प्रश्न के हनुमान्-सीता-संवाद में, सीता 'विश्व्य मामक एक राक्षस का उल्लेख हनुमान् से करती हैं जो उन्हें राम-सुधीय-मैत्री का समाचार बहुत पहले ही बता देता है ।^८ 'मानस' में विश्व्य राक्षस या किसी अन्य राक्षस के ऐसे उद्योग का कोई

१ रा० मंजरी । अरण्य । १०४१-१०६२ २ मानस ३।१२

३ ऋष्यमूकविरं शृंगे सुधीयो जानरेववर
निरस्तो बास्विना भात्रा मतगस्यायमे स्थित ॥ १०९१ ॥ मंजरी अरण्य
तेन सकयं विधाय त्वं सीतामभियमिष्यसि ।

एव ते बास्विन पन्था यत्र पम्पासरो महान् ॥ १०६२ ॥ मंजरी अरण्य

४ वहीविरहे घापं बितरामि न ते सती ।
किं तु प्राप्तामपि चिरं न सीतामुपभोदयसे ॥ १६० ॥ रा० मंजरी । किष्किण्ण्य ॥

५ रा० मंजरी । किष्किण्ण्य २।४-२६४ ६ रा० मंजरी । किष्किण्ण्य ४२०-४४०

७ , सुन्दर ६४ १०१ ८ , सुन्दर १४०

संकेत नहीं मिलता है ।

'लंका बाह' के साथ-साथ सीता के बाह की भी बारांका करके इस काव्य के हनुमान को बड़ी आत्मासामि होती है, किन्तु अन्त में सीता को स्वस्व पाकर वे प्रसन्न भित हो जाते हैं ।^१ 'मानस' में उनकी ऐसी किसी भी बरांका का उल्लेख नहीं है ।

अपनी माता के यरयज्ञिक बाह पर ही 'रामायण मंत्ररी' का विनीयण रावण को सीता-स्वाय का परामर्श देता है ।^२ 'मानस' में वह 'राम-अक्षि' से प्रेरित होकर ऐसा करता है ।^३ इस वंश में रावण क्रुद्ध होकर विनीयण पर चरण प्रहार तो करता ही है, खड्ग लेकर भी दौड़ता है किन्तु प्रहस्त हाथ रोक लिया जाने पर वह विनीयण को तुरन्त समा से बाहर निकलवा देता है ।^४ 'मानस' में केवल 'चरण प्रहार' का वर्णन है और उसके बाद भी विनीयण रावण को इस प्रकार समझाता है—

मत्त कश्चि कीर्णैश्चि चरण प्रहात् । अनुज पण्डे पद्द बार्द्धह बारा ॥

मुद्द पिणु छरिष मनेहि मोहि पात् । राम भजे हित नाच तुम्हात् ॥ ३४१

इस काव्य में 'सेतुबन्ध' के पूर्व समुद्र प्रपट होकर राम से अपनी बरारण विवता और एक मास के अयोध्या प्रवास का भी उल्लेख करता है ।^५ 'मानस' में समुद्र की मित्रता अथवा प्रवास का कोई संकेत नहीं है ।

इसमें रावण राम के कटे हुए 'माया-खिर के प्रदर्शन से सीता को बंधित करने का प्रयत्न करता है,^६ जो 'मानस' में नहीं है ।

'मानस' में बाम्बवान्^७ राम को 'अंबवदीय का परामर्श देता है, किन्तु इस वंश में यह कार्य विनीयण करता है ।^८ इसमें रावण के लिये राम एक सोम र्व निमित्त विद्वत् संदेश भी अंबव को देते हैं, जिसे सुनकर क्रुद्ध रावण अंबव-अथ के लिए क्रुद्ध राक्षसों को संकेत करता है । अंबव उन सबको लेकर बाकास में उड़ जाता है और उन्हें अंबव से पटक कर राम के समीप सकृद्यत्न लीट जाता है ।^९

१. बहो प्रपादिना मीहारत्तमीक्षितकारिणा ।

क्रुद्धैव बहता लंका मया लम्बेव जानकी ॥३७३॥ रा० मंत्ररी किष्किन्वा

२. रा० मंत्ररी । लंका । १४-३७ ३. मानस । ३।३८-३९

४. रामायणवराहम्य अङ्गं व्याख्यानमुद्दलः ।

रामचरितकथावीकस्वदित्तिव्य इवाम्बुदः ॥ १५४ ॥

५. निरुद्धः प्रहस्तत बाहुम्या प्रियवादिना ।

तुर्णं निष्कास्यतामेव निलवाधिरपवः ॥ १५६ ॥ रा० मंत्ररी लंका

६. एतो अस्तनियिः प्रीरया काकुरत्त्वमबवत्पुनः ।

राजा रघरचो नाम मनानूरयित सुहृत् ॥२४४ ॥

अयोध्यायां मूढे तस्य मातमप्युपित सुवम् ।

सीहार्श्रीति सर्वास्वैस्वचारेरहृदिने ॥२४७ ॥

७. रा० मंत्ररी । लंका । ३४३-३६३

८. मानस १।१७ ९. रा० मंत्ररी । लंका । ३०९

९. रा० मंत्ररी लंका ३९०-४०३

'मानस' में न तो 'राम-सदस्य' है और न अंगद के इस पराक्रम का ही कोई संकेत है।

'मेघनाद-नागपास' के प्रसंग में इस ग्रन्थ में राम और सद्यम्य दोनों पाशवद होते हैं,^१ किन्तु 'मानस' में केवल राम ही प्रभावित होते हैं।^२ सीता को भासकित करने के लिए इस काव्य का रावण उन्हें यह वृक्ष दिखाने की व्यवस्था भी करता है। वहाँ मानर सेना के निरास होकर भागने पर सुग्रीव उसे रोकता है और पाशवद राम-लक्ष्मण को किष्किन्धा तक सुरक्षित ले जाने के लिए अंगद को आदेश भी देता है। उसी समय सुपेग, राम से उनके ईश्वरत्व का उल्लेख करके उनसे 'बसु स्मरन' की प्रार्थना करता है जिसके पश्चात् पक्षु तुरन्त आकर राम को अपने कट-स्पर्श माघ में स्वस्थ कर देता है।^३ 'मानस' में यह विस्तार बिस्मृत नहीं है, वहाँ राम को माघपाशवद देखकर मारव के संकेत से गरुड़ स्वर्ग जा जाता है और माया-नागों को आकर राम को पूर्ववत् स्वस्थ कर देता है—

इही देवर्षिपि गरुड़ पठामो । राम समीप उपवि सो धामो ॥

दो० अगपति सब परि छाबे माया माग बरुप ।

माया विगत भए सब हरये मानर पूम ॥ १।७४ क

'मानस' में मेघनाद के ब्रह्मास्त्र प्रयोग से 'सद्यम्य मूर्छा क बधसर पर ही हनुमान के द्वारा 'सजीवनी औपच' साने का वर्दन है।^४ इस ग्रंथ में उस ब्रह्मास्त्र से हनुमान विभीषण और आम्बवान् को छोड़कर जब समयत मानर-सेना और राम सद्यम्य तक मूर्छित हो जाते हैं तब आम्बवान् की प्रेरणा से हनुमान, विद्यसा जीवनी बर्ष्या और सन्धिनी नाम की चार औपधियों को भाकर सबको स्वस्थ करते हैं।^५ रावण की राक्ति से एक अन्य बधसर पर केवल सद्यम्य के मूर्छित हो जाने के समय हनुमान उन्हीं औपधियों को दुबारा छाते हैं और सद्यम्य को पुन सजैत करते हैं।^६

इस ग्रंथ में मेघनाद हनुमान् के समस्त माया-सीता का बध करके, उनको बन्धित करना चाहता है।^७ यह प्रसंग 'मानस' में नहीं है।

'मानस' के राम 'रावण-बध' के लिए विभीषण के परामर्श से ११ भाषों का प्रयोग करते हैं^८ जबकि इस काव्य में वे मातसि की सम्मति से केवल एक ही 'ब्रह्मास्त्र' से रावण को समाप्त कर देते हैं।^९

सीता वृद्धि के प्रसंग में, इस ग्रंथ के राम सीता को रबीकार न करते हुए उनको अनेक्य आचरण की आज्ञा देते हैं और उन्हें अपने देवर्षी (मरुट, सद्यम्य एवं

१ राम मंजरी । संका । ४७३ ४७४

२ मानस । १।७३ ३ राम मंजरी । संका । ४२१ ४१४

४ मानस १।२४ १२ ५ राम मंजरी । संका । ६७१-१००४

६ राम मंजरी । संका । १२२६ १२२७ ७ " " १०२९ ११०२

८ मानस १।१०२ ९ " " १२८५ १२८६

समुष्ण) सुग्रीव तथा विभोजन में ही किसी एक के साथ (पत्नीवत्) रहने वचनवा
 वेद्यांतर में कहीं भी जस जाने की स्वतन्त्रता भी देते हैं।^१ 'मानस' में राम के
 दुर्वाद^२ का संकेत तो है किन्तु वचन कोई विवरण नहीं दिया गया है। इसी प्रसंग
 में सीता के अग्नि में प्रवेष्ट^३ करते समय ब्रह्मा शिव इन्द्र अनेक लोकपाल और वररूप
 आदि प्रगट हो जाते हैं। राम को विष्णु और सीता को सखी कहकर ब्रह्मा उगधी
 स्तुति करते हैं और वहीं के संकेत से अग्निदेव सीता को निर्वोष बतला कर राम
 को समर्पण कर देते हैं।^४ 'मानस' में यह समर्पण पहले है, तत्परवात् ब्रह्मा आदि
 प्रगट होकर राम की केवल स्तुति करते हैं।^५

इस काव्य में राम लदमय को 'सुवराज' बनाने का भरतक प्रयत्न करते हैं
 और उतही अस्वीकृति पर ही वे भरत को सुवराज-गण दे देते हैं।^६ 'मानस' में इस
 व्यवस्थाम का कोई संकेत नहीं है।

(२) रामचरित- अजितमूक के इस महाकाव्य में ३६ अध्याय हैं। अन्त में ४ ४
 अध्यायों के ही पूरक परिशिष्ट भी है, जिनमें अपूर्ण कथानक को पूर्ण करने का प्रयास
 किया गया है। मूल ग्रंथ का आरम्भ 'प्रसन्न' पर्वत पर राम और लदमय के
 'वर्षाप्रवास' से किया गया है और इसका अन्त कृम-भिक्षुज यथ के साथ होगा है।
 'प्रथम परिशिष्ट' में मेघनाद-यथ से 'सीताबुद्धि' तक का कथानक है और द्वितीय
 परिशिष्ट में बहू 'मङ्गराज यथ' से लेकर 'रामाभिवेक' तक निबद्ध किया गया है।
 वर्षा प्रवास से पूर्व की कथा का संकेत राम के उग्र सन्देश में निहित है, जो सीता
 को हनुमान से मिलता है।

वर्षा-वस्तु और कथा के आकार दोनों को पाद-साध देखकर इस कवि की
 वर्धन उमगा का अनुमान बड़ी सरलता से किया जा सकता है।

कथानक की तुलनात्मक दृष्टि से इस काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -
 इसमें वर्षा प्रवास के पश्चात् सीता-शोक के भिन्न बानरों की सेना लेकर
 मग्रीव स्वयमेव राम के समीप पहुँच जाता है।^७ 'मानस' में बहू लदमय के बुलाने
 पर जाता है।^८ इस काव्य में सुग्रीव की सहायता को अस्वीकार करते हुये राम उससे

१ अमुना यद्य भीदहि स्वाचोनास्ते दिसो दस ॥ ८७ ॥

देवरायां गृहे वा त्वं सुग्रीवस्य गृहेऽथवा ।

पुरे वा रासमेग्रस्य बस वैद्यान्तरेषु वा ॥ १ ॥ रा० मं०री । संकोत्तर

२ मानस ६।१०८

३ रा० मं०री । संकोत्तर । १ ५ १२७ ४ मानस ६।१०९-११२

५ शोभिन्निरन्ध्यातितपीवराज्यं प्राप्य ग अघाद् यत्निर्वोषीति ॥ १८७ ॥

तदा निपुण प्रथमेन राज्ञा निषेधकारी भरतः प्रोदे ॥ १८८ ॥

— रा० मं०री । संकोत्तर ।

६ रामचरित ३।३

७ मानस ४।१८-२०

स्पष्ट कहते हैं कि यदि वह सहायता के लिये मन से दृष्ट्युक्त नहीं है तो वह किष्किन्धा सीट जावे ।^१ 'मानस' में ऐसी कोई बात नहीं है ।

इस काव्य के राम सीता के अभिज्ञान के लिए हनुमान् को 'मुद्रिका' के अति रिक्त 'मन्दिनूपुर' और 'स्तनोत्तरीय' भी देते हैं ।^२ साथ ही वे द्वितीय से लेकर रघु ब्रह्म और दशरथ तक अपना बध—वर्णन करते हुये 'भवणघात', 'पूर्वदृष्टि यज्ञ' आदि आरम्भ करके 'सीता-हरण' तक की समस्त घटना भी उनको बतलाते हैं ।^३ इसके अतिरिक्त हनुमान् की मुद्रिका के लिये वे सीता के रूप और गुणों का भी विस्तृत वर्णन करते हैं ।^४ 'मानस' में केवल मुद्रिका-दान का ही उल्लेख है^५ तथा अन्य बातों का कोई वर्णन नहीं किया गया है ।

इस ग्रन्थ के 'स्वयंप्रभा प्रसंग' में पर्वत-गुफा में प्रवेश करते ही अंगद सर्वप्रथम दुर्लभ नामक एक वानर का बध करता है ।^६ वहीं पर एक वानरी हनुमान् से दो बार प्रेम प्रस्ताव करती है और तिरस्कृत होती है ।^७ वहाँ स्वयंप्रभा-वृत्तान्त भी अति विस्तृत और परम्परा से भिन्न है ।^८ 'मानस' में 'दुर्लभ' और 'वानरी' का कोई उल्लेख नहीं मिलता है तथा 'स्वयंप्रभा-रूपा' भी अति संक्षिप्त है ।^९

इस ग्रन्थ का सम्पाति अंगद आदि के समग्र 'सीता-हरण' का प्रत्यक्ष वर्णन करता हुआ यह बतलाता है कि उसने सीता की रक्षा के लिए राजम पर शौच से प्रहार किया था किन्तु वह भाग्यवश बध कर भाग गया ।^{१०} इस सम्बन्ध में वह अपने पुत्र सुपासर्ब के उद्योग का भी उल्लेख करता है कि उसने आहार की इच्छा से उस समय राजम को पकड़ भी लिया था परन्तु वह प्राण निष्ठा माँग कर भाग गया ।^{११} वहाँ वानरों को अपनी सेवायें अर्पित करता हुआ सम्पाति उनसे यह कहता है कि वह इन सबको शौच में पकड़ कर लंका में सीता से मिला सकता है अथवा सीता को ही इस पार सा सकता है ।^{१२} किन्तु अंगद इन दोनों विकल्पों को अनुचित समझ कर

१ रामचरित १।४२-४४

२ विश्वकर्मा विभूषण च हैम निजनामारु कर्मनामिकानिषिष्टम् ॥११॥

मन्दिनूपुरमुद्रातिमुक्तवसितम्सापितनायकांभुजलम ॥२०॥

अधिकामगुणग्नि साम्रसार्द्रस्तनविच्छितिकर्त्तकमूर्तरीयम ॥२१॥

—रामचरित । आठ । १६-२१

३ रामचरित ८।४०-९१

४ रामचरित ८।७-१४

५ मानस ४।२३

६ रामचरित ११।४-११४

७ रामचरित १२।४३-८३

८ रामचरित १३।२३-३३

९ मानस ४।२४-२५

१० रामचरित १।४।८३-८४

११ रामचरित १।४।६०

१२ आद्येह्यत मामिदं कृमारास्तत्रार्थं नयामि च क्षणेन ॥१०३॥

आर्भ्यं सुखमत्र बाण्डुमेक पर्यस्य क्षाणशाचरान् क्षणेन ।

आदाय बभूवुपमि युष्मात्बानुष्यं यदि मे भवत्यमेन ॥१०३॥

—रामचरित १।४।१०३-१०५

अस्वीकार कर देते हैं।^१ 'मानस' में सम्पाति या सुबाधर्व के ऐसे उद्योगों का कोई वर्णन नहीं है प्रस्तुत वही सम्पाति हीता का पता चलाने के अतिरिक्त अन्य सहायता कार्यों में स्वयं को सर्वथा असमर्थ बतलाता है।^२

'मानस' की मान्यता 'सुरसा' के स्थान पर इस ग्रन्थ में वैद्यनाथ 'सरसा'^३ का उल्लेख है। शेष विस्तार समान है।

इस काव्य में हीता के बिरह (?) में संलुप्त राजन के सम्पाद, पान केलि, तथा प्रलाप का बड़ा विस्तृत वर्णन किया गया है जो अनेक स्थलों पर अस्वीस हो गया है।^४ 'मानस' में राजन के ऐसे क्रियाकलाप का कोई उल्लेख नहीं है।

राजन के पास से दूखी होकर इस काव्य की हीता जब ललापात्र से फाँटी लगाना चाहती है, तब हनुमान् उस बाध को खोल कर उन्हें अपना परिचय देते हैं।^५ 'मानस' में हीता के द्वारा अशोक वृक्ष से अपने शोक-मात्र के लिए अनिकल की माचना करने पर उस पर स्थित हनुमान् 'राम-मुद्रिका' को नीचे दिया देते हैं^६ और वे राम का यद्योग्य करते हुये हीता के समल प्रपट होकर अपना समस्त वृत्तान्त बतलाते हैं।^७

इस संघ का राजन अशोक-वाटिका में स्थित हीता को अनेक प्रयोग देता हुआ जब उसके पिता जनक को समस्त भारतवर्ष का राज्य तक दिला देने की प्रतिज्ञा करता है^८ तब हीता उसे फटकारती हुई लंका-बहुन और उपरिचार-मरण का ज्ञाप उसको देती है।^९ वही राजन के कोचवर्क सङ्घ लेकर जाने बड़ने पर हनुमान् भी हीता की रथा के लिये छिपे छिपे जाने बड़ते हैं किन्तु उसके रथ जाने पर वे तुरन्त रुक जाते हैं।^{१०} 'मानस' में राजन की ऐसी प्रतिज्ञा मन्था हीता के किसी शप का वर्णन नहीं है और हनुमान् अन्त तक शान्त बने रहते हैं।^{११}

इस ग्रन्थ के 'संका-दाह' प्रसंग में राजन हनुमान के उपदेश से शून्य होकर

१ रामचरित १४।१०४-११६

२ मानस ४।२८

३ मानस ३।२

४ रामचरित १६।४१

५ रामचरित १८।४३-६२

६ सतिकाभिप्रायविटपाभिरन्विकाठ करमोचरे विरथि विद्यपाठरो ।

बटयोबकार बसपातमारमनस्तरली यमो हनुमत प्रकुर्वती ॥२॥

सबमस्तुतिर्बुधमोचपररूपिरसमुपेतव वाचमवृत्तातिरोहित ॥३॥

—रामचरित २०।२-३

७ मानस ३।१२

८ मानस ३।११-१६

९ कि ठक धीविधि करिप्यति तापतेन मायेकशोरमरुचिम्बमुयि मायेवा ।

बारमाभि बर्षमभित्तिव नृपालनेपान् पुण्याय भारतमर्ह जनकेश्वराय ॥

—रामचरित १६।८३

१० रामचरित १६।११

११ रामचरित १६।१३-६७

१२ मानस ३।६-१०

सहै जा जाने अपना जसा कर मार बाधने के लिये जब राक्षसों को आरेख देता है^१, तब कुछ राक्षस उसकी पूँछ में आम समा देते हैं। 'मानस' का रावण विभीषण के परामर्श से वृत्-जन्म को अनुचित मान कर हनुमान् के केवल अंग मंग के लिये ही उसकी पूँछ में आम समावाता है।

'रूपि के ममता पूँछ पर सबहि कहूँ समुझाइ ।

तेस कोरि पट बाधि पुनि पावक देहु सगाइ ॥ १२४

शंका के मस्य हो जाने के पश्चात् इस काव्य का रावण, मय और बिल्वकर्मा की सहायता से अपनी शंका को पुनः अधिक बलवत्पूर्ण बना लेता है।^२ 'मानस' में शंका के 'बीजोद्धार' की कोई खर्षा नहीं है।

इस ग्रन्थ में रावण की समा में राम-विरोधी तर्कों की अधिकता देख कर विभीषण के द्वारा समा-त्याग करने पर रावण उसे 'बभ्रुवैपी' कह कर, बल सतकारता है^३, तब वह राम के ईश्वरत्व का वर्णन करके उसे उनके विरोध से आरम्भार रोकता है।^४ 'मानस' का विभीषण स्वयं अपनी इच्छा से ही उपयुक्त अवसर देख कर रावण के पास इसी कार्य के लिये जाता है।^५ इसमें रावण से शरणाहृत और निष्क्रान्त होकर विभीषण आरम्भानि के कारण मीप्य तप या आरम्भहत्या करने का विचार पट मर करता है और प्रातः कास बुड़ निश्चय होकर वह राम की शरण में जाता है।^६ 'मानस' के विभीषण के मन में ऐसा कोई अन्तर्बन्ध नहीं है।^७ इस ग्रन्थ के हनुमान् विभीषण से सर्वथा अपरिचित होने पर भी उसके राम के पास पहुँचाने पर उसका बड़ा स्वागत करते हैं ^८ क्योंकि उन्होंने सीता से, उसकी प्रशंसा सुन रखी थी^९ किन्तु मानस के हनुमान् विभीषण से पूर्व परिचित होने पर भी इस अवसर पर सर्वथा मीन रहते हैं।^{१०}

'मानस' में 'सेतुबन्ध' के पूर्व राम के समूह पर क्रोध और उसकी शरणागति का विस्तृत वर्णन मिलता है फिर समूह के संकेत से ही वे मल और नीस से सेतुबन्ध कार्य सम्पन्न कराते हैं।^{११} किन्तु इस ग्रन्थ में इन बातों का कोई संकेत नहीं है, बहो तो समुद्रतट पर पहुँचते ही सुग्रीव की आज्ञा से मल सेतुनिर्माण करने में लग जाता है।^{१२}

इस काव्य में राम स्वयं अंगद को वृत् बनाकर रावण के पास भेजते

१ रामचरित २२।१०—११

२ संस्मार पूज्यं मयमेति शंका यस्याद्भुते कर्मणि बिल्वकर्मा ।

आमातुत्पिच्छानुप इन्द्रजामी शंका स पूर्वान्यपिडा खडार ॥

—रामचरित २३।७

३ रामचरित २३।४६—४४

४ मानस ५।३८

५ मानस ५।४२

६ रामचरित २०।२१

७ मानस ५।३८—३९

४ रामचरित २३।६९—७९

९ २४।१११—१४२

८ , २६।३८—४०

१० मानस ५।४२

१२ रामचरित २६।१०—११

है।^१ 'मानस' में इसके लिए उन्हें आम्बवान परामर्श देता है।^२ इस ग्रंथ में 'अंबव-रावण-संवाद' बलि विस्तृत दिया गया है, जिसमें अंबव रावण को समझाते हुए जब उससे सीता को वापस करने, विभीषण को राज्य देने, बानरों को प्रणाम करने तथा राम की करण जाने के सिद्धे व्यापक करता है^३ जब इसके उत्तर में रावण भी राम से सन्धि के लिए अपनी शर्तों में सीता के समर्पण करने, विभीषण एवं सुग्रीव का वध करने, बानर-सेना का विघटन करने और सब राज्यों को प्रणाम करने के लिए उनकी तत्परता की माँग करता है।^४ इसमें अंबव के द्वारा रावण के मुकूट फेंकने और समा में 'पदारोपण' करने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु 'मानस' में उसका विस्तृत वर्णन किया गया है।^५

इस ग्रंथ में भी हनुमान दो बार संजीवनी शोचनि साते हैं पहले मेघनाद की बाण-वर्षा से राम लक्ष्मण और समस्त बानर सेना के मूर्च्छित होने पर ^७ और फिर रावण की शक्ति से केवल लक्ष्मण के ही अक्षैत हो जाने पर।^८ 'मानस' में मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर ही केवल एक बार 'संजीवनी' साने का वर्णन है।^९

इस काव्य में भी मेघनाद के द्वारा माया-सीता के वध का उल्लेख है। राम इस माया को न समझ कर बड़ा विताप करते हैं और लक्ष्मण उन्हें सम्बन्धना देते हैं। बाद में विभीषण से वास्तविकता जानकर वे दोनों स्वस्थ हो जाते हैं।^{१०} 'मानस' में यह बटना नहीं है।

मेघनाद के वध से दुःखी होकर इस ग्रंथ का रावण सीता को सब अनर्थों की पड़ मानकर जब उस पर आडम से प्रहार करना चाहता है तब मन्थोदरी उसे रोक लेती है।^{११} 'मानस' में इस बटना का उल्लेख नहीं है।

इस काव्य के राम-रावण-युद्ध के प्रसंग में राम रावण के 'धीरमास्त्र' को 'यस्त्रास्त्र' से 'अग्निबाण' को 'बाहण-बाण' से 'शक्ति' को 'धुरमुख बाण' से और 'विभूम' को 'ब्रह्मास्त्र' से काट कर अन्त में उसका वध कर देते हैं।^{१२} 'मानस' के राम एक बाण से पहले उसके नाभिकुंड का अमृत खोल सेते हैं और फिर इस बाणों से उसके इस धिर तथा शीघ्र बाणों के उसकी शीघ्र मुखार्थ एक घाव काट डालते हैं।^{१३}

१ रामचरित २७।६४

२ रामचरित २७। १-११३

३ रामचरित २८।१०१-१०३

४ रामचरित ३३। ३०-११२

५ मानस ६।६१

६ रामचरित ३८। ३-६

७ मानस ६। १०३

८ मानस ६।१७

९ रामचरित २७। ४३-४६

१० मानस ६।३२-३४

११ रामचरित ४४। २०-३४

१२ " ३७। ४१-४८

१३ " ४४। ८६-९७

‘सायक एक नामि सर सीता । अपर सगे मुझ सिर करि रोपा ॥

सै सिर बाहु जैसे नाराचा । सिर भुज हीन छन्द महि नाचा ॥ ६।१०३

‘रावण-वध’ के पश्चात् इस प्रप में राम, लक्ष्मण और उनके सभी मित्रमण बघोरुवाटिका में सीता के दर्शन के लिय जाते हैं।^१ वहाँ राम को ‘पंडितम्पय’ कही हुई सीता उनकी बुःसंका के अनुमान मात्र से सज्जा प्रगट करके स्वतः अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं।^२ इस घटना पर राम अक्रिंत होते हैं, बानरगण विज्ञाप करते हैं, देवता सीता की क्षुद्रि की धोपना करते हैं तथा विभीषण आदि पूर्वज, राम को ऋतु वचन सुनाते हैं। तब वे सबके आग्रह पर सीता को स्वीकार कर लेते हैं।^३ ‘मानस’ में केवल हनुमान और विभीषण सीता को मित्राने के लिए अघोरुवाटिका जाते हैं फिर राम के ‘दुर्बाव’ कहने से छिन्न होकर सीता कस्मण से पिता बनना कर जब उसमें प्रवेश करती है तब अग्निदेव उन्हें क्षुद्र भोषित करते हुए राम को धर्मति कर देते हैं।^४ इसके बाद ही दशरथ के साथ सब देव सोम आकर राम की स्तुति करते हैं।^५

इस प्रप के अनुसार राम के साथ समस्त वानर-सेना भी पुष्पक द्वारा बघोरुवा आकर उनके अग्निपेक में सम्मिलित होती है।^६ ‘मानस’ में केवल सुग्रीव विभीषण, बर्गव हनुमान, नील मल्ल आम्बवान, कुष्ठ अम्य सेनापति आदि ही उनके सहायी होते हैं और शेष वानर-सेना लंका में ही विपटित हो जाती है।^७

(३) जानकी हरण—महाकवि कुमारदास के इस महाकाव्य में २५ सर्गों के होने का उल्लेख मिलता है,^८ किन्तु उनमें से केवल १० सर्ग ही उपलब्ध हैं। इस काव्य में अयोध्या-वर्णन से लेकर ‘जानकी-हरण’ तक का ही कथानक है जो इसके नाम की सार्थकता को स्पष्ट करता है। काशी संस्कृत-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में प्राप्त एक प्रति में पत्रह सर्ग मिलते हैं और उसके इन अतिरिक्त पाँच सर्गों में ‘वासिबध’ से लेकर ‘रामाभियेक’ तक की कथा भी मिलती है।^९

रस की दृष्टि से इस काव्य में शृङ्गार रस को प्रधानता है। कौसल्या-सर्वास-वर्णन,^{१०} अभिसारिका-वर्णन,^{११} राम द्वारा सीता स्व-वर्णन,^{१२} सीता-विरह वर्णन,^{१३} राम-सीता-संभाषण वर्णन,^{१४} अयोध्यापुर स्त्री-वर्णन,^{१५} और रावण-दम्भ

१ रामचरित ४०।२६	२ रामचरित ४०।३३-४२
३ रामचरित ४०।४३-६६	४ मानस ३।१०७-१०८
५ मानस ६।१११-११५	६ रामचरित ४४।१०२-१०३
७ मानस ६।११८	८ जानकी हरण । भूमिका, पृ० ४
९ अरस्वती मदन, काशी, पुस्तक संख्या १४ बी।४०	
१० जानकीहरण । १।२७-४१	११ जानकीहरण ३।१४-७६
१२ " ७।३-१८	१३ " ७।२३-३३
१४ " ७।६०-६२	१५ " ६।५२-६२
१५ " ८।१-१०१	

वर्षन^१ आदि में बलिष्ठ शृंगार अनेक स्थलों पर अवतीकृता की सीमा का अति क्रमण कर गया है।

अथावस्तु की तुलना करने पर इसकी कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

इसमें अथवा तुल्य आदि शब्दों पर अक्षरय की विनय के उल्लेख के साथ साथ उनके शौर्य का विस्तृत वर्णन मिलता है^२ जो 'मानस' में नहीं है। अक्षरय की मृगया और उनके द्वारा भूमि-पुत्र-वच^३ के प्रसंग का इसमें बड़े विस्तार से विषय किया गया है।^४ 'मानस' में उसका संकेत अक्षरय के मरण-काल में केवल उनके स्मरण में मिलता है।^५

इसमें राजन से अस्त देवयण शोषसायी विष्णु से पास आते हैं और जब वे प्रत्येक देवता से उसके दुःख का कारण पूछते हैं^६ तब देवमुक्त बृहस्पति राजन के उप, अरवाम शक्ति और अत्याचार आदि का विस्तृत वर्णन करते हुए उसके परिवार में सभी देवताओं के द्वारा की जाने वाली विषय सेवाओं (बेगार) का बड़ा करुण निरूपण करते हैं।^७ 'मानस' के देवगण शिव के परामर्श से अथवा शूलोच में ही विष्णु की स्तुति करने लगते हैं तब वे वहीं पर प्रगट होकर आकाश-बाणी से उन सभी देवताओं को आश्वासन देते हैं।^८ राजन के उप आदि का वर्णन तो नहीं है किन्तु उसके अतिरिक्त शोष विस्तार विस्तृत नहीं है।^९

'मानस' में केवल एक ही और सफल 'पूषेष्टि-यज्ञ का उल्लेख है^{१०} किन्तु इस अर्थ में उसके पूर्व अनेक असफल यज्ञों के भी किये जाने का वर्णन मिलता है।^{११}

इसमें अक्षरय विश्वामित्र के साथ आते हुए राम को नीति का विस्तृत उपदेश देते हैं,^{१२} जबकि 'मानस' में उनके केवल आशीर्वाद का ही उल्लेख है।^{१३} इसमें राम की विवाह के समय जनता खिन्न होकर अशुभवाणी भी करती है।^{१४} जिसका वर्णन 'मानस' में नहीं है।

इस अर्थ में परशुराम-मिलन अयोध्या के मार्ग में ही होता है और वहाँ राम ही सबसे पहले उन्हें फटकारते हैं।^{१५} 'मानस' में यह मिलन विविता के स्वयंवर स्थल में होता है और राम वहाँ अत तक नष्ट बने रहते हैं।^{१६}

'मानस' में अरव और शकुन्त के 'मातृसंग्रह' जाने का वर्णन नहीं भी नहीं किया गया है किन्तु इसमें उनके मामा मुवाविष् द्वारा उन्हें अपने साथ 'कैकयवैष'

१	जानकी हरण	१०।८२-८६	२	जानकी हरण	१।१२-१५
३	"	१।१६-१०	४	मानस	२।१३३
५	"	२।१-३२	६	जानकी हरण	२।३३-३०
७	मानस	१।१८४-१८७	८	मानस	१।१७७-१८३
९	"	१।१८६	१०	जानकी हरण	४।२
११	जानकी हरण	४।२६-४८	१२	मानस	१।२०८
१३	"	४।३०	१४	जानकी हरण	६।३१

से जाने का स्पष्ट उल्लेख है ।^१

इस काव्य में दशरथ अपने 'पतित-दर्शन' से क्षुब्ध होकर राम को बुलाते हैं^२ और 'योधराज्य' के लिए उन्हें आवश्यक नीति का सविस्तार उपदेश देते भी हैं ।^३ 'मानस' में यह 'पतित-दर्शन' तो है—

यवन समीप भये सित केसा । मनहुँ जखननु अस उदेसा ॥

नृप बुधराजु राम कहुँ देह । — — ॥२१२

किन्तु वही दशरथ राम को न बुझाकर, उनके समीप गुरु बसिष्ठ को ही उपदेश देने के लिये भेज देते हैं ।^४

इसमें मग्यरा-यज्ञयात्र राम-निर्वासन और दशरथ-मरण के प्रसंग कुछ २ अनुप्युष्ट श्लोकों में हैं^५, जबकि मानस में उनका अत्यधिक विस्तार है ।^६

इसमें 'अपन्त प्रसंग' भी अति संक्षिप्त है जिसमें राम अपन्त को सीता के मूढ-कर्मस पर भ्रमरबल बधकर समाने के कारण एकाका कर देते हैं ।^७ 'मानस' में यह प्रसंग अधिक सरस तथा विस्तृत है ।^८

इस प्रसंग में राम और भरत के 'बिभ्रकट मिलन' का वर्णन अपन्त प्रसंग के परभाव है और यह भी अत्यन्त संक्षेप में दिया गया है ।^९ 'मानस' में यह मिलन बड़े पूर्व सम्पन्न हो जाता है और बड़े सरस बिस्तारों के साथ वही बलिष्ठ हुआ है ।^{१०}

इसमें विराध के द्वारा सीता का हरण करने पर राम उसका वध करते हैं ।^{११} किन्तु 'मानस' में असुरत्व के सिवाय विराध के वध का कोई कारण नहीं प्राप्त होता है फिर भी राम उसे वध के परभाव निजबाम भेज देते हैं ।^{१२}

इस प्रसंग का रावण सीता-हरण के लिए 'पुण्यक-विमान'^{१३} का उपयोग करता है, जबकि मानस में केवल एक रथ का उल्लेख है—

श्रेयवन्त तत्र रावन भीमिहिसि रथ बैठाइ ।

बला यगतपथ आसुर भय रथ हाकि न जाइ ॥३१२८

(४) उद्धार राघव—शाबस्स मस्ताभाय के इस महाकाव्य के १८ सर्गों में से केवल ६ सर्ग ही प्रकाशित रूप में प्राप्त होते हैं जिनमें 'राम-जन्म' से लेकर 'पूर्वजन्ता विक्रम' तक की कथा है । कथानक की दृष्टि से अनेक लकीनतायें हैं ।

१ जानकी हरण ६।६७—६८

२ ब्रह्मात्मवत तद् हे काठिन्यरहितत्वचि ।

पतितं विप्रसाहस्ती पुण्यहास इव ववचि ॥ जानकी हरण ११०।२

३ जानकी हरण १।३—४२

४ मानस २।६

५ " १।४४—४८

६ " २।१२—८२ १४२—१४३

७ " १०।२६

८ १।१—२

८ " १०।२७—६७

१० २।१८३—३२६

११ " १०।६६—७०

१२ ३।७

१३ " १०।६०

इसमें प्रजा से इहवाहु, फिर कद्रुस्व से लेकर दशरथ तक का बंध-बर्नन मिळता है। वहाँ दशरथ के पराक्रम, मृगया तापस-गुण-अथ एवं आप प्राप्ति आदि का भी सविस्तार निरूपण किया गया है^१ जो 'मानस' में नहीं मिलता है।

इसमें राम 'विष्णु के पूर्व अवतार हैं। उनके अतिरिक्त भरत 'सुवर्चन' के भवमल शेष' के तथा रामुष्ण 'संख' के अवतार हैं।^२ मानस में भरत आदि विष्णु राम के अंध-भाव बतलाये गये हैं।^३ इसमें राम को इतना 'अध्यात्म-प्रिय और 'विरापी' बतलाया गया है कि वे अपने सिये राज्य प्रयाग विवाह आदि कुछ भी नहीं चाहते हैं।^४

इस ग्रन्थ में विश्वामित्र के द्वारा राम-भक्त्यम को जे जाते समय बनता के द्वारा उनकी (विश्वामित्र की) और दशरथ की कद्रु निर्या किये जाने का बर्नन है^५, जो मानस में नहीं है।

इस काव्य के 'अहृत्योद्धार' प्रसंग में राम के 'वरण-स्पर्श से पत्नर को स्त्री बनते देख कर राम के साथ ही कृष्णम और विश्वामित्र को भी जब विस्मय होता है^६ जब अहृत्या अपनी पूर्व-कथा सुना कर सबका समायात करती है^७ और राम के साथ 'सीता के विवाह' की भविष्यवाणी भी करती है।^८ वह विश्वामित्र से राम और भरमय को मिथिला से जाने के क्रिय आग्रह करती है। वहाँ उसे आप-मुक्त देख कर बसके पति गीतम उसे प्रहस कर लेते हैं। तदुपरान्त वे भी सबके साथ मिथिला चले जाते हैं।^९ 'मानस' के राम विश्वामित्र से 'सिंहा' की घोष-कथा सुन कर उन्हीं के आदेश से उसका उद्धार करते हैं और वह (अहृत्या) उनकी स्तुति करती हुई बड़े जानम्व के साथ अपने पतिभोक्त को बली जाती है।^{१०} यहाँ राम आदि के विस्मय, अहृत्या की भविष्यवाणी और आग्रह का कोई उल्लेख नहीं है।

इस काव्य में 'मानस' के समान न तो 'पुण्य-आटिका निरम' है और न 'स्वयंवर-योजना ही। इसमें विश्वामित्र के आग्रह पर प्रकट सिद्ध-बन्धुप मया लेते हैं और राम उसे प्रंग करके सीता को प्राप्त करते हैं।^{११}

इसमें दशरथ द्वारा साईं गई बाघत म गुरु-पत्नी रानिया बेरवामों और बेटियों के भी सम्मिलित होने का बर्नन है।^{१२} 'मानस' में केवल पुरुष बरातियों का ही उल्लेख है।^{१३}

- १ उदार रायब १११-२७ २८१०२ २ उदार रायब २१०-३१
- ३ मानस ११८७ ४ २१४३
- ५ विरमयोजन महात्मनिबुद्धे नागरैरन्यतिश्च निनिन्दे ॥ उदार रायब २१७०-७१
- ६ तो बनी जनपति ब बगई कर्मणि प्रयत्नमानमते ॥ उदार रायब ३१०-३३
- ७ उदार रायब ३१२८-३० ७ उदार रायब ३१०-३३
- ८ अतिरेण मैविमसुती परिलेता सुबिरं मुद्राग्यनुभविष्यति राम ॥३१४४
- ९ उदार रायब ३१३८-४१ १० मानस ११२१०-२११
- ११ ३१६०-६७ १२ मानस ३१२६८-३०४
- १२ उदार रायब ३१०४-१०७

इस काव्य में 'परशुराम-मिस्रण' का वर्णन अयोध्या के मार्ग में किया गया है। वहाँ परशुराम को देख कर दशरथ बहुत पबड़ा जाते हैं किन्तु राम निर्भय रह कर सबको आस्वस्त करते हैं।^१ 'मानस' का वर्णन इससे मिस्र है।

इस ग्रन्थ की मर्यादा दशरथ को बुझा कर केकयी के सामने से जाती है और वही उनसे स्वयमेव दोनों बर माँग लेती है।^२ 'मानस' की केकयी इस विद्या में स्वयं सक्रिय है।

इसमें राम-बन-ममन की आशाका से दुखी होकर दशरथ, सक्षम से आपह करते हैं कि वे उन्हें निगूहीत करके राम को सिंहासन दे दें।^३ वे इस पद्यग्रन्थ में भरत की सहमति 'हनि' की आशाका में उनसे निवाप न लेने का निषेध भी व्यक्त करते हैं।^४ 'मानस' के दशरथ अधिक मन्मीर हैं अतः वे इतने उन्माद-ग्रस्त नहीं होते हैं।^५

इस ग्रन्थ के सक्षम दशरथ से क्रुद्ध होकर उनको मूढ मूढ़ और स्त्री-विप्रसम्भ' आदि कहते हुये सटमण राम से बाहुबल के द्वारा राज्य-ग्रहण की प्रार्थना करते हैं।^६ 'मानस' में सटमण के क्रोध का कुछ संकेत 'सुमन्व-सम्बेध' में मिलता है, किन्तु वहाँ उसका कोई विवरण नहीं दिया गया है—

'लखन कहे कछ बचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ।

बार-बार निज सपय देवाई । कहबि न ताठ सखन सरिकाई ॥२॥१२२

इस ग्रन्थ के राम जब सीता को अपने साथ बन में ले जाकर उन्हें वहीं अयोध्या में ही रहने का परामर्श देते हैं तब वे कपित होकर उनसे कहती हैं कि उन्हें इतनी रामायणें सुनी हैं किन्तु किसी में भी राम के अकेले बन जाने का उल्लेख नहीं है।^७ इसके अतिरिक्त वे विप, अनघन या रज्जुपाथ से आत्महरया कर लेने की बमकी भी राम को बेती है।^८ 'मानस' में सीता के इस 'रामायण-मन्व' और 'बमकी का कोई संकेत नहीं है।

इस काव्य की कौसल्या दशरथ को 'कामासुर' कहती हुई अपने मविष्य को असुरघित बतलाती है तथा राम के साथ स्वयं बन जाने का विचार भी व्यक्त करती है।^९ 'मानस' की कौसल्या इस सीमा तक उद्विग्न नहीं है प्रत्युत वह अपने 'सहबमन' में महान् अनर्घ की आशाका भी करती है —

'कहते जान बन ती बड़ि हानी । संकट सोच विबस मह रानी ॥२॥१२३

१ उदार रामव १॥११७-१२१

२ उदार रामव ४॥४१-५२

३ उदार रामव ४॥१०३

४ उदार रामव ४॥१०६

५ मानस २॥१७ ७६-७८

६ उदार रामव ३॥२१-३३

७ रामायणातीह पुरातनानि पुरातनेभ्यो बहूष ष्टुतानि ॥

८ नवापि बीदेहसूतं विहाय रामो बर्न माठ इति ष्टुतं मे ॥ उदार० ३॥४८

९ मां मानुजाजाति बनाय दग्नु त्वां नायमम्बेव्यति जीव एव ॥

विषेय पद्मानघनेन पद्मा-रज्जुवापया रामव बर्नं ब्रह्माम् ॥ उदार० ३॥५१

१ उदार रामव ३॥७२-७४

बन जाते समय इस काव्य के राम और सीता, बसिष्ठ के पुत्र और पुत्रवधु को ऋषयः अपना सर्वस्व दान कर जाते हैं।^१ 'मानस' में वे ब्राह्मणों को बुलाकर 'वर्षासन' (वर्ष भर का भोजन) एवं आवश्यक दान देते हैं तथा अपने दास-दासियों को केवल बसिष्ठ की देखरेख में छोड़ जाते हैं।^२

इस ग्रंथ में गृह भी वधरथ को बूढ़ एवं कामाग्र्य कहता है और अपनी विद्यालक्षणा की सहायता से बलपूर्वक ज्योत्स्ना का राज्य ग्रहण करने के लिये राम से प्रार्थना करता है।^३ 'मानस' का गृह इतना विद्वत् नहीं है चाप ही नहीं लक्ष्मण के उपदेश से राम को ईश्वर जानकर उसका रहा सहा खेद भी धाम्त हो जाता है।^४

राम के विरह में मूर्च्छित होकर इस काव्य के वधरथ रात्रि के किसी अज्ञात क्षण में मर जाते हैं। प्रातःकाल ही उनकी मृत्यु का किसी प्रकार पता चलता है।^५ 'मानस' में ऐसा वर्णन नहीं मिलता है।^६

इस ग्रंथ में बन-भार्य की स्त्रियों के द्वारा सीता से राम के परिचय के पूछे जाने का उल्लेख है जिसका संकेत मानस में भी मिलता है।^७ किन्तु 'मानस' की सीता नहीं अव्यक्तिक सतक्या है।^८ वहीं इस काव्य की सीता अपनी मुखर हँसी के द्वारा सप्त प्रश्न का उत्तर देती है।

इस काव्य की सुप्रसिद्धता राम से पूर्ण परिचित है इसीलिए वह इनसे मिलते ही उनके नाम और बंस का उल्लेख करके 'ठाटका-बध', 'बहुस्पोडार', 'बनुर्मन' और सीता-विवाह' आदि में उनके पराक्रम का विस्तृत वर्णन करती है और तदुप-रान्त वह अपना भी सच्चा परिचय देकर उनसे 'गाम्बर्न-विवाह' की प्रार्थना करती है,^९ जो 'मानस' में वर्णित नहीं है। इसमें लक्ष्मण उसे राम के शपथ पढ़े जाने के कारण 'पूज्य बतलाकर अस्वीकार कर देते हैं और अधिक आग्रह करने पर वे बनबास की अवधि के परचाद् जमिना की संहमति की भी अपेक्षा बतलाते हैं।^{१०}

'मानस' में इस प्रकार का निरूपण नहीं है।^{११}

१ उदार राघव ३।८३-८३

२ मानस २।८०

३ " ६।२३-३२

४ " २।४८-४४

५ " ७।४४

६ " २।१३३

७ नीलमेघ इव भाति पुरस्तादिव कस्तव धनस्तनि धम्बी ।

पृच्छतीषु तबरीन्विधि तन्वी व्यक्तमुत्तरमवत् हसन्ती ॥ —उदार राघव ५।२९

८ मानस २।११७

९ उदार राघव ३।७९-८१

१० प्रथमं यदमुष बित्तमाया परिहार्यासि तथा मनेवमाया । ९८ ।

अथवा यदि सर्वथा मनस्ये विगमे त्व शरदां चतुर्दशानाम् ।

उपयास्यसि चैत्पुत्रीमर्याप्यामनुबोध्म स्वजनं तथा विवश्ये ॥३३॥ उदार० नवम् सर्व

११ मानस ३।१७

(२) रघुवीर चरित—इस महाकाव्य^१ में १७ सर्ग हैं जिनमें 'राम-जनबाध' से लेकर 'रामाभियेक' तक का कथामक है। 'राम-जनबाध' से पूर्व की कथा-वस्तु का वर्णन छीन स्थानों पर किया गया है (१) बण्डकारण्य में ऋषियों के परस्पर संवाद में, (२) 'सुधीन प्रसाद' के अक्षर पर लक्ष्मण प्रबोध में और (३) छीटा की विद्वत्त्व करने के लिये हनुमान् द्वारा उन्हें दिये गये उनके 'सान्त्वनीपदेश' में।

कथा-वस्तु के विचार से इस काव्य में अनेक बिरोधताएँ प्राप्त होती हैं— इसमें 'अपत्य-प्रसंग' का उल्लेख करते हुए ऋषि लोग राम से उसे एक बचकून और भाषी विपत्ति का सूचक भी बतलाते हैं,^२ जिसका संकेत मानस में नहीं है।

इस काव्य के राम मुनियों के सामने समस्त राजसों को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं^३ जिसका उल्लेख 'मानस' में भी मिलता है—

'निशिचर हीम करत महि मुज उठाइ पन कीगह ।

सकस मुनिन्ह के आसमगिह जाइ जाइ सुख बीगह ॥३१६

इसमें अगस्त्य मुनि राम से मिलते समय उन्हें एक 'द्वैज्वद धनुष' और शङ्ख देते हैं^४ जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं है।^५

इसमें बटायु के प्रथम दर्शन पर ही राम जब उसे राजस समझ कर मार दासना चाहते हैं तब वह उनको अपना पूर्व परिचय देकर अपनी दशरथ मित्रता का भी उनसे उल्लेख करता है तथा उनकी जन में सहायता करने के लिये स्वयं को अपने बड़े भाई सम्पाति के द्वारा निमूक बतलाता है।^६ 'मानस' में राम और बटायु के पूर्व परिचय का विस्तृत वर्णन मिलता है।^७

इसमें सूर्यजन्मा तिराज होकर लक्ष्मण को पकड़ कर ऊ आकाश में उड़ जातो है, तब वे वही उसका बिरूपण करते हैं।^८ 'मानस' में उसके भयंकर रूप के दर्शन मान से छीटा के अपधीत हो जाने पर राम के संकेत से लक्ष्मण उसे बिरूपित करते हैं।^९

'स्वर्णमूष' को माया बतला कर लक्ष्मण के द्वारा रोक जाने पर भी इस काव्य के राम, छीटा के आग्रह से उस मूष के पीछे चले जाते हैं।^{१०} 'मानस' के राम सर्वत्र ईश्वर हैं और वे सुर-कार्य-सिद्धि के लिए ही ऐसा करते हैं।

१ इस महाकाव्य का सैकड़ अक्षर हैं डा० भाटे के अनुसार प्रसिद्ध टीकाकार 'मल्लिनाथ' ही इसके लेखक हैं। देखिये उसकी भूमिका, पृ० १
 २ रघुवीर चरित १।४४
 ३ रघुवीर चरित १।२९
 ४ " १।६१
 ५ मानस १।१२-१३
 ६ रघुवीर चरित १।६६-७०
 ७ मानस १।११
 ८ " ४।६०
 ९ " १।१७
 १० " ६।२०

‘सर्व रघुपति आगत सर्व कारण । उठे हरवि सुर बाबु संशयन ॥

सुप बिलोकि कटि करिकर बाँध । कण्ठस बाध इधिर सर सीमा ॥ ३१२७

मारीच-वच के पत्रवाद् झोटते समय इस काव्य के राम को कुछ मजकुर होते हैं जिनके फलस्वरूप वे अयोध्या में मातामों की दुर्बला या भरत के कष्ट या अयोध्या पर राजसों के मानस्य या वहाँ प्राकृतिक उपद्रव या फिर आशय में सीता की उत्पत्ति की आलंकार करते हैं । ‘मानस’ में इसका संकेत नहीं मिलता है । वहाँ तो राम सरमन को भी पीछे बन में बाँधे देखकर आशय में सीता के अकेलेपन से और बन में राजसों के अति प्रचार से उनके हरण की संभावना व्यक्त करते हैं।^१

इस काव्य के राम राजस को सीता का हरण-कर्ता जानकर उस पर कुपित होकर कहते हैं कि वह बड़ा अपवा विष की सरम जाने पर या प्रह्लाद से बाहर चले जाने पर भी सुरक्षित नहीं रह सकता है क्योंकि उनके बाण वैसे सभी स्वानों पर खोज सैने में समर्थ हैं, किन्तु वहाँ यह भी भय है कि इस प्रकार उनके बाणों के प्रयोग से बिलोक में अद्यम ही प्रसय हो जायगा।^२ ‘मानस’ में राम के इस कोप मजबूत रूप का वर्णन नहीं है ।

राम के साथ बन में सीता की खोज करते हुए इस काव्य के लक्षण को एक राजसी उमरकर उड़ जाती है, तब वे उसे सुरक्षता की तरफ निरूपित कर देते हैं।^३ ‘मानस’ में यह बटना नहीं है ।

इसमें राम सुरीव से कहते हैं कि सीता-हरण की बटना से उनकी शक्ति में अनसाधारण का विपदाय चले ही कम हो गया है फिर भी वे उसे निष्कण्ठ रूप दिखाने में समर्थ हैं । उन्हें आशा है कि बन दोनों समस्तु शिबों की मिष्टता से दोनों का ही कार्य शीघ्र सिद्ध होगा।^४ ‘मानस’ के राम सुरीव से न तो अपनी दुर्बला ही व्यक्त करते हैं और न उससे किसी सहायता की अपेक्षा ही रखते हैं।^५

सुरीव के वचन से विभ्र होकर इस काव्य के राम उसकी सहायता की अपेक्षा इतिभवे करते हैं कि कहीं वह अपमृति न प्रसिद्ध हो जाये कि राजस को सीतने के लिये उसकी सहायता अनिवार्य की और इसीलिये ही अनिलिखत काव्य तक उसकी प्रतीक्षा करते रहे।^६ ‘मानस’ में राम की किसी ऐसी आलंकार का उल्लेख नहीं है ।

बंका-रहन में भी अयोध्या-वाटिका के सुरक्षित रह जाने का कारण इस संघ

१ रघुवीर चरित ७। ३-७

२ मानस ३।३०

३ रघुवीर चरित ७।१४-१७

४ अपमृति निघाञ्जलि परितुल्योत्पत्तिव्य लक्षणम् ।

अविधानि रमणदुर्मयं सर्व तां सुरक्षता निवाकरोत् ॥७।१२

५ रघुवीर चरित ८।१०७-१०८

६ मानस ४।३-७

७ रघुवीर चरित १०-२१

यें हनुमान् का प्रभाव घटताया गया है जिसका संकेत 'मानस' में नहीं है।

इस काव्य के राम-रावण-मुठ' के प्रसंग में जब रावण राम पर अपने भीषण मारक-मन्त्र का प्रयोग करता है, तब अथस्त्य मुनि तुरन्त आकर के अपने 'सावित्र' प्रभाव से राम की रक्षा करते हैं।^१ 'मानस' में इस घटना का वर्णन नहीं है।

इस काव्य के अनुसार सँका से पुण्यक विमान द्वारा अयोध्या के लिए प्रस्थान करते समय वहाँ पर ही सब क्रोध राम के राज्य-विन्हीं को धारण कर लेते हैं तथा क्रमशः धृतर, सुग्रीव शासकस्तु हनुमान्, रवर्ण-वृष्य अंगद जामर विभीषण सहमराज, बाम्बवान् मणिपाहुकार्ये भील तूषीर, नम संल और सुवेग जर्म ग्रहण करते हैं।^२ 'मानस' में राम के विविधत् अधिपेक के पश्चात् ही इस चिन्ह-धारण' का वर्णन मिलता है, किन्तु वहाँ 'किसने क्या किया' इसका विस्तरेषण नहीं है।^३

इसमें पुण्यक विमान राम से विधा लेते समय उनके चरणों में प्रणाम करता है।^४ 'मानस' में अयोध्या पहुँच कर राम जब उसे कुबेर के पास जाने की आज्ञा देते हैं तब वहाँ उसके हृत् और विरह दोनों से अनुभव करने का उल्लेख मिलता है।^५

(६) श्री राम विजय—श्री रूपनाभ उपाध्याय' द्वारा लिखित और श्री कृष्णविलास झा द्वारा संपादित इस महाकाव्य के २ सर्गों में 'दशरथ राज्य-वर्णन' से लेकर 'रामाभिषेक' तक का कथानक है। इसके संपादक इसे मैथिली की किसी मूल पाण्डुलिपि पर आधारित मानते हैं जिसके हिन्दी रूपान्तर से इसे संशोधित किया गया है।^६

यह एक आधुनिक महाकाव्य है। इसकी कथावस्तु 'मानस' से भिन्न है, किन्तु कई स्थलों पर बहुत साम्य है।

इसमें भी दशरथ-मृतया वर्णन और दशरथ प्रसंग' का बड़े विस्तार से वर्णन है जो 'मानस' में नहीं मिलता है।

'वाटिका-भिसग' और स्वयंवर-योजना' के प्रसंग इसमें नहीं हैं किन्तु 'मानस' के समान ही परधुराम विवाद' मिथिला में ही ठीक अनुर्मन के पश्चात् दिखताया गया है, जिसमें क्रमशः भी भाग लेते हैं। उनके व्यंग कथन' 'मानस' की उक्तियों से कहीं कहीं अपूर्व साम्य रखते हैं—

१	रघुबीर चरित १३।८६	२	रघुबीर चरित १९।३६
३	" १९।८७-९१	४	मानस ७।१२
५	" १७।७७	६	" ७।४

^७ यह संस्करण देवनागरी लिपि के एक अच्छे से हस्तलेख पर आधारित है। मैथिलि लिपि में इसका मूल-लेख सम्पादक के पास अब प्राप्य नहीं है। देखिये इसी ग्रंथ की भूमिका पृष्ठ १—नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय काशी ग्रंथ संख्या २७२।

^८ राम विजय १।१-१०

९ राम विजय ३।१६

बहु बनुहीं तोरी भरिकाई । कबहुं ग बसि रिच कीगु नोछाई ।
 एहि बनु पर ममता केहि देव ।

— 11।२७।

इसमें बधरथ की बारात में बेरवाओं के भी सम्मिलित होने का उल्लेख और
 विस्तृत वर्णन किया गया है जो 'मानस' में नहीं मिलता है ।
 इसमें पंचवटी में सीता के बाबह स राम की सहायता के लिए जाते हुए
 लक्ष्मण 'हुटी' के चारों ओर अपने धनुष से एक रेखा खींच जाते हैं।^१ 'मानस' में
 इसका संकेत 'रावण-अम्बोदरी-संवाद' में मिलता है।^२
 बानर-सैना प्रस्थान के समय इसमें राम हनुमान् पर और लक्ष्मण अंगर पर
 आरुढ़ होकर चक्के हैं,^३ जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं है ।
 रावण की सभा में अंगर के 'पराचोपन' की बटना इसमें 'मानस' के समान
 ही वर्णित है।^४

(७) राघवीयम्—महाकवि पालिवाह ने २० तर्कों के इस महाकाव्य का
 निर्माण 'बाल श्रुत्यादि' के लिए किया था। इसमें 'बधरथ राज्य-वर्णन' से लेकर
 'रामान्तिके' तक का सम्पूर्ण कथानक है जिसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं —
 इसमें बधरथ की 'घाटा', नाम की एक पुत्री का उल्लेख है जिसे वे एक
 वर्ष के पारपात राजा रोमपाद को मोद लेने के लिये दे देते हैं। वहाँ रोमपाद के देस
 में अद्वैत से विकास पढ़ने श्रद्धयशुद्ध भूमि के वहाँ जाते ही अद्वैत से सुकाम होने
 और उनके साथ घाटा के विवाह का भी विस्तृत वर्णन मिलता है।^५ 'मानस' में
 घाटा का कोई संकेत नहीं है ।
 'पुत्र-काम-यज्ञ' के पूर्व इस प्रणय में बधरथ 'अश्वमेध-यज्ञ' का भी संविस्तार
 उल्लेख है।^६ 'मानस' में केवल पूर्वोक्त यज्ञ का ही वर्णन है।^७

इसमें रावण से अस्त देवताओं को और सारय पहुँचने पर विष्णु बनते स्वयं
 कहते हैं कि उन्हें सब बात है और वे बधरथ-पुत्र राम बन कर रावण-वध करने हैं।^८
 'मानस' में वे देवताओं की स्तुति पर आकाशवाणी से ही इनको सांगतता देते हैं।^९
 इस प्रणय के विस्वामित्र बधरथ से रावण के जायाचार्ते का विस्तृत वर्णन
 करते हैं और अपने आशय में विजय करने वाले माटीय जाति को उन्हीं के द्वारा

१ राम विजय ३।३६
 २ मानस ६।३६
 ३ तर्कोपरो मूमितले निर्गोपर्व निबाय संकेधनराक्षिओऽवधीत ।
 ४ नई समुत्पापय वेद्वही नचेतु प्रयः २ रामाय नृषिध जानकीम् 11।११८
 ५ मानस ६।३४
 ६ राघवीय बन्धिम हनोक ।
 ७ ' १।३६-४०
 ८ ' १।४१-४२
 ९ राम विजय ७।३४
 १० ' १।१८
 ११ " १।४८१-१८७

निवृत्त बतसा कर सुरमा के लिये जब राम-सङ्गम की याचना करते हैं तब बहुरम वात्सल्य-वश स्वयं जाने को प्रस्तुत हो जाते हैं।^{१२} उस समय विश्वामित्र के कृपित होने पर बसिष्ठ उन्हें शाप्य करते हैं और राम-सङ्गम को उन्हें छोड़ दे देने के लिए वे बहुरम को आदेश भी देते हैं।^{१३} 'मानस' के इस प्रसंग में राजव्य के बसाधार माटीय की नियुक्ति और विश्वामित्र के कोप भावि का वर्णन नहीं है।^{१४}

मिथिला के दो आक्षेपों^{१५} (शिव वनूप और यज्ञोत्पन्न सीता) का सस्नेह करके इस काव्य के विश्वामित्र राम और सङ्गम से पूछते हैं कि वे मिथिला जाने के लिए बल्लुक हैं अथवा अपने पिता के पास अयोध्या लौट जाना चाहते हैं।^{१६} उत्तर में मिथिला के प्रति राम की प्राथमिकता^{१७} जान कर विश्वामित्र अपनी पत्नी, शिष्यों तथा अन्य तापस-तापसियों के साथ वहाँ के लिये प्रस्थान करते हैं।^{१८} 'मानस' में यह विस्तार नहीं है। वहाँ विश्वामित्र से 'बन्धु-यज्ञ' का नाम सुन कर उनके कहने पर ही राम और सङ्गम उनके साथ मिथिला चल देते हैं —

बन्धुवज्य मुनि रघुकुल माभा । हरपि जसे मुनिवर के साभा ॥१२१०

इसमें 'वाटिका-मिलन' अथवा 'स्वयंवर-योजना' का कोई वर्णन नहीं है। वहाँ राम को देख कर और उनको सीता के योग्य हर जान कर जनक को अपने 'प्रभ' पर परथाठाप होता है। उसी समय विश्वामित्र उन्हें शाप्यना देते हुये तिय वन्धु यज्ञोपास का आग्रह करते हैं। जिसे सुरत भग करके राम सीता को प्राप्त कर लेते हैं।^{१९}

इस प्रश्न में भी 'परशुराम मित्रम' अयोध्या के मार्ग में होता है। वहाँ वरुण के प्रभाम की अपेक्षा करके परशुराम सीधे राम से बातकलह करने लगते हैं किन्तु अंत में उनके द्वारा दिए गए वैष्णव वन्धु को बड़ा कर राम उनकी ऊर्ध्व पति रोक देते हैं।^{२०} 'मानस' में परशुराम का यह विवाद मिथिला में ही होता है।^{२१} वहाँ भी राम उनका यह वन्धु बड़ा देते हैं किन्तु उनकी 'पति नहीं रोकते।'^{२२}

७ , २१२२-३९

८ किन्तु प्रतिबन्धितमिर्बहुंणार्ण सप्तद्व एयोऽस्मि मुने न राम ॥४६

सुरारिनिर्मुक्तवृष्टिघारं वन्धुर्ममेदं बुद्धिशिष्यनीकम् ।

निपसितास्त्रीस्तत्र वैरिबुधं ता मिसमुल रिब भासुबिम्बम् ॥४७॥

—राजवीय द्वितीय सर्ग—

१ राजवीय २१२३

४ मानस १२०६-२०८

२ समयं किन्तु यस्य बन्दिरे महदादवर्षमिदं प्रचयते ।

महिषं वन्दुरेमुनोत्तरं मद्यन्मेरुहिता च कव्यका ॥१४॥ १२वीय तृतीय सर्ग

६ राजवीय ३ २३-२६

७ राजवीय ३१४७

८ , ३१६२

९ , ४१६, १७, ३२-३८

१० , ४१६४, ६७ ७७-७९

११ मानस १२७१-२८०

१२ मानस १२७४-२८३

५०

मन्वरा की मूर्तियों से प्रभावित होकर इस काव्य की किकयी दृश्य को पुरस्त हुआ माने के लिए उसे ही भेजती है^१ उनके जाने पर वह उनसे बर याचना करती है। उसी समय दशरथ पर-बन्धुमार्ग राम भी वहीं आजाते हैं।^२ 'मानस' की किकयी को बर-याचना के क्रिये कोप मन्वरा की दृश्य जैनी पकटी है।^३ और सूर्मज के द्वारा बुलाये जाने पर ही राम वहीं पहुँचते हैं।^४

इसमें भी 'राम-निर्वासन' से कृपित होकर सज्जन बन्धु-भाज सेकर बिज्न कारियों के 'कण्ठश्लेष' का निश्चय व्यक्त करते हैं। दशरथ को 'स्त्रीवित' 'मूक' बादि कहकर वे उनकी कटु अपेक्षा करते हुए उनको पिता' तक नहीं मानना चाहते हैं।^५ 'मानस' में सज्जन के इस कोप का बजन नहीं है।

इस प्रबंध में भरत को बिभ्रकूट जाने से रोकती हुई मन्वरा उनसे वहीं पर 'असफल' राज्य करने की प्रार्थना करती है^६ जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं है। 'मानस' के भरत-बिभ्रकूट-यमन प्रसंग में गृह^७ एवं सज्जन की प्रका और उसके निवारण तथा मच्छात्र के उत्कार^८ का बड़ा ही रोषक और विस्तृत बयन दिया गया है जो इस प्रबंध में नहीं है।

इस काव्य में सीता की वीर में राम के छो जाने पर बयस्त कौतुक्य सीता के स्वर्गों में लक्ष्यत करता है तब उनके द्वारा बगाए जाने पर राम इपीका से ऐसे 'एकाय कर देते हैं।^९ 'मानस' में राम के द्वारा सीता का पुण्य-शु. करने के परचात् जब बयस्त उनकी बस-परीक्षा के लिए सीता के चरणों में " प्रहार' करता है तब राम उस पर सीकबास से प्रहार करते हैं—

'सुरपति सुत धरि बायस बेपा । सठ बाहुत रुपति बस देसा ॥
सीता चरन चौच हति माया । मूक मंथपति करन कामा ॥
पला हरि रघुनायक जाता । सीक बन्धु सायक संभामा ॥ ३११
जब उसको जिनोक में भी कोई रक्षक नहीं मिलता है तब वह मारक के उपदेश से

- १ रामबीय ३।२७-३७
- २ मानस २।२३
- ३ रामबीय ३।७१-७५
- ७ मानस २।१८६-१६२
- ६ मानस २।२११-२१३

- २ रामबीय ३।७७
- ४ मानस २।३९
- ६ रामबीय ६।३६-४०
- ८ मानस २।२२७-२३०

१०. मूले बरसते' शिखे सीतनि जातु रायब ॥७॥
ततो बायसक्येय जयन्त प्राप्य कौतुकात् ।
बिदधार नयी किञ्चिज्जानवदा' स्वतमण्डसम ॥८॥
नित्रारदासतो रामस्तथाय प्रतिबोधित' ।
इपीकास्त्रेण दुर्दान्तमहाया कानीचकार तम् ॥६॥ रामबीय सज्जन सर्व

राम की ही धरम में जा जाता है और राम उसे 'एकनयन' करके छोड़ देते हैं ।^१

इस ग्रंथ का विरास राम-भक्तन के बीच से सीता को जब अकस्मात् छीन लेता है और उन दोनों पर आक्रमण करता है तब राम उसका नश करतो हैं । मुक्त होने पर वह नव धरीर धारण करके 'सुम्बर यम्बर' के नाम से अपना परिचय देता है तथा राम से धरमय-मिसन की प्रायना भी करता है ।^२ 'मानस' के राम विरास को देखते ही भार डालते हैं और फिर उसे बुझी जानकर 'मिज नाम' भेज देते हैं ।^३ यहाँ उसके द्वारा 'सीता-हरण' अथवा 'धरमय-मिसन' की प्रायना का कोई वर्णन नहीं है ।

इस ग्रंथ के अथस्य मुनि राम से मिसने पर उनको अनुय, बाण, गुणोर और खड्ग प्रदान करते हैं^४ जिसका वर्णन मानस में नहीं है ।

इस काम्य के राम सूर्यनसा को देखकर उसके सोम्बर्य का विस्तृत वर्णन कये हुए उसका परिचय पूछते हैं^५ और फिर अपना परिचय देकर 'मोम्य सेवा' का प्रयन भी करते हैं ।^६ वे उसकी काम प्रायना^७ को अस्वीकार करके सकम्प का बड़ा धरस और शू पारिक वर्णन करते हैं और उसे उनके पास भेज देते हैं ।^८ इसमें सूर्यनसा के प्रसोभन भी बड़े मोहक और कामोद्दीपक हो गये हैं ।^९ 'मानस' में यह प्रसंग बड़ा संयत और समीक्षित है ।^{१०}

इसमें सूर्यनसा रावण से सीता के सर्वांग सोम्बर्य का विस्तृत वर्णन करती हैं उसके काम को उद्दीप्त करती है और यह कहती है कि उसी के लिये 'सीता हरण' करने के प्रयत्न में उसका विकल्प हुआ है । इस प्रकार वह रावण पर अपना बड़धान भी पोपना चाहती है ।^{११} 'मानस की सूर्यनसा इस अवसर पर शू मार के स्थान पर राजनतिक कार्यों को ही प्रमूखता देती है—

बोमी बचन श्रेय करि भारी । देस कोस की सुरति बिसारी ॥

करसि पान सोबति दिनु राती । सुनि नहि तब धिर पर बापती ॥

राजनीति बिनु बन दिनु बर्षा । ॥ ॥

संय तें जती कुर्मज से राजा । मान से ग्यान पान से साजा ॥

१ मानस ३।१-२ २ रापवीय ७ ४२-४७

३ ३।७ ४ " ७।६६

५ रापवीय, ८।१० १४

६ बहुमस्ति राम इति दाशरुचि पनकारयज्येयमपि मे नृहिणी ।

क्रिमितोऽप्रिभवाऽसि बिसासिनि यम तपोविरोधि मपि तत् क्रिमते ॥

रापवीय ८।१३

७ रापवीय ८।१६ २१ ८ रापवीय ८।२६-२८

९ " ८।३२-३८ १० मानस ३।१७

११ तबवर्षमेनामपहनुं कामा रामानुजेनायु बिरुपिठाहम । रापवीय ७।२६

प्रीति प्रणय बिनु मय ते बुनी । नासिहिं बेयि नीति अस सुनी ॥ १।२१

इस काव्य में हनुमान् राम को भगवान् पहिचान कर उनके चरित्रों में गिर पड़ते हैं और भक्ति का वरदान मांग लेते हैं ।^१ यह वर्चन 'मानस' के वर्चन से बहुत साम्य रखता है—

प्रभु पहिचान परेठ महि चरना । ~ ~ ॥ ४।२

इसमें राम सुधीय को सूर्यपुत्र जानकर अपने सूर्यवंशी होने के नाते उसे भाई के समान ही मान लेते हैं ।^२ 'मानस' में इस भ्रातृता के स्वान पर मित्रता के ही सम्बन्ध का वर्चन है ।^३

इस ग्रंथ के 'वासिबच' प्रसंग में वासि अपने हृदय में लये हुए बाण में राम का नाम पढ़कर उन्हें पहिचान लेता है और जब वह उनसे इस क्रूरता का कारण पूछता है^४ तब राम अनुब-बधु-हरणको उसका बपराब कहकर बण्डय को पण्ड देना भी अपना धर्म बतसाते हैं ।^५ 'मानस' के राम-बाण में कोई ऐसा नामांकन नहीं है और वहाँ राम उसके अभिमान को भी उसकी मृत्यु का एक अल्प कारण बतसाते हैं ।^६

संका से सीता की शोष करते हुए इस काव्य के हनुमान् रामण, कुंभकर्ण आदि के भयनों की तरह विभीषण के भयन को भी तलाशी लेते हैं ।^७ फिर मिष्टान्न होकर वे यों ही 'असोकवाटिका' में प्रवेश करते हैं, वहाँ उन्हें सीता के वर्चन सहसा हो जाते हैं ।^८ 'मानस' में वे विभीषण के संकेत से सीता-वर्चन के लिये ही असोक-वाटिका पहुँचते हैं—

जनुति विभीषण सकस सुनाई । बखेठ पचनमुठ बिदा कराई ॥

बिरि छोड़ कम बयठ पुनि तहवा । बन असोक सीता रह बहवा ॥ १।५

इस ग्रंथ की 'सीता' रावण से बातलाप करते समय 'मानस' की सीता के समान^९ ही अपने मुख में वृष का प्रयोग करती है ।^{१०} इसमें रावण के दुर्बलता से क्रोध होकर हनुमान् उसे बराबर सतर्कता से देखते रहते हैं ।^{११} 'मानस' में हनुमान् की

१ रामवीय १०।४८-४९

२ " १०।११

३ मानस ४।४-७

४ " १०।५३-८४

५ रामवीय १०।८३

६ मानस ४।१

७ " १९।११

८ यदुच्छ्वास्य विद्यबधोककाननं सपस्तबस्तमकं विक्रासपाटलम ॥६१॥

९ वचनं स निरुद्वेद्येद्यथायास्तरोरव निवत्तरजोबुसर्दमद्य तिम ॥

१० बिरहदुःखतनुं जानकीं दुष्टबीजतदमसिनितां चण्डालेनामिव ॥ रामवीय १।६९

११ मानस ३।१

१० दशानने सा तुलबभिरास्या जगाह कृत्वा तुलमग्नरासे ॥ रामवीय १३।३३

११ रामवीय १३।३३

इस प्रतिक्रिया का कोई संकेत नहीं है।

इस काव्य में हनुमान् को अपना 'रत्न' देती हुई सीता स्पष्ट कहती है कि वह केवल सुरक्षा के लिए नहीं है^१, जब कि 'मानस' में वह केवल प्रत्यभिज्ञान के लिए ही रिया बाटा है—

मानु मोहि वीजे कछु बीगहा । जैसे रघुनायक मोहि बीगहा ॥

बूझामनि उतारि ठब वपळ । हरप समेत पवनसुत सयळ ॥१।२७

'मानस' की तरह^२ इसमें भी सीता की प्रार्थना पर हनुमान् अपने विराट् रूप का प्रदर्शन करते हैं।^३

इसमें रावण की मन्थना-परिपक्व में कुम्भकर्ण सीताहरण को अनुचित बतला कर राम के साथ सन्धि करने का उससे आग्रह करता है और फिर सो बाटा है।^४

'मानस' का कुम्भकर्ण जानने के बाद रावण से 'सीता-हरण' को अहिंसकर बतसाटा है और उसको क्षमिमान श्राग करके 'राम भजन' करने का उपदेश भी देता है।

फिर वह राम के दर्शनार्थ जकेला ही रघुमूर्ति की ओर बस देता है।^५

इस ग्रन्थ में राम के प्रति पक्षपात दिखाजाने के कारण विभीषण से अप्रसन्न होकर रावण उससे मुँह फेर देता है।^६ 'मानस' में इस अवसर पर उसके द्वारा विभीषण पर अरुण प्रहार करने का उल्लेख है।^७

'सैतुवर्ण्य' प्रसंग में राम के बाण से आहत होकर इस काव्य का समूह उनके ईश्वरत्व का संकेत करके उनसे पूछता है कि यदि वे उसे अपने बाणों से जमा देंगे तो फिर प्रथम काल में उनके लिये सोने की ब्यबस्था कैसे हो सकेगी।^८ मानस में भी इस अवसर पर राम के ईश्वरत्व का वर्णन है वहाँ समूह पंच शत्नों को ईश्वर द्वारा निर्मित और मर्यादित बतसा कर अपनी मर्यादा की सुरक्षा भी चाहता है।^९

इस काव्य का सुधीव रावण के प्रथम वर्णन पर ही उल्लस कर मुष्टि प्रहार करता है और उससे मुकूट छीन कर राम को मँट करता है।^{१०} 'मानस' में सुधीव के इस साहस का वर्णन नहीं है।

इसमें भी मेघनाद की बाण-वर्षा से राम आदि सबके निश्चेष्ट हो जाने

१ सत्वीथ । न प्रत्ययवाङ्मयेर्हं परम भयानुग्रहितं हनुमान् ।

मावामु तद्भयंजकमन्तरेण मा स्म प्रमाद्यत् स कवाचनेति ॥ रामबीय १३।६८

२ मानस १।२७

३ रामबीय १३।७१

४ रामबीय १३।११-१६

५ मानस ६।६२-६३

६ कपटस्मितकरमतां मुखं ते न त्वमु ब्रह्मति रक्षसामधीय ॥ रामबीय १३।७१

७ मानस १।४१

८ यदि जते अहनुभवता क्षयिष्यते पुपववाविरमपि विस्तृतं कपम् ॥ ३३ ॥

रामबीय पौष्प सर्ग ।

९ मानस १।१३

१० रामबीय १७।२४-२६

पर^१ और दुबारा राजस की शक्ति से केवल लक्ष्मण के सुखिष्ठ होने पर^२ हनुमान् 'शोक-वर्षत' साकर सबको स्वस्व कर देते हैं। मानस^३ में केवल लक्ष्मण-मूर्च्छा के प्रसंग पर ही शिवोपवश जाने का वर्णन है।^४

'राजस-वप' के पूर्व इस प्रश्न में मन्स्य मुनि के बुधबाप जाने और राम को कुछ मन्स्य लेकर जाने का उल्लेख है^५, जिसका 'मानस' में उल्लेख भी नहीं है।

'सीता-मुक्ति प्रसंग' में इसमें ब्रह्मा, इन्द्र, शिव सूर्य चन्द्र एकरस आदि सभी प्रमट हो जाते हैं^६ फिर राम के ईश्वरत्व का वर्णन करते हुए ब्रह्मा उनके 'सीता-ग्रहण' की सफल प्रार्थना करते हैं।^७ वधरथ उस समय राम, लक्ष्मण और सीता आश्रयण करते हैं और उन्हें आशीर्वाद भी देते हैं।^८ 'मानस' में 'अग्नि' की प्रार्थना पर ही 'सीता-ग्रहण' ही जाने के पश्चात् ब्रह्मादि देवता प्रमट होकर राम की स्तुति करते हैं। वहाँ वधरथ केवल आशीर्वाद देते हैं और राम की प्रशाम भी करते हैं —

अनुज लहित प्रमु बन्धन कीन्हा । आतिरबाद पिता ठब बीन्हा ॥

बार बार करि प्रमूहि प्रनामा । वधरथ हरपि दए सुरनामा ॥६॥११२

'मानस' के समान ही^९ इसमें भी इन्द्र के प्रभाव से सब मृत जानरों के पुनरुज्जीवित हो जाते^{१०} विभीषण द्वारा पुष्पक से रत्न मुटाने^{११} और सुग्रीवादि के ज्योत्स्ना में मनुष्य रूप धारण करने^{१२} का वर्णन किया गया है।

(८) रघुवंश—महाकवि कालिदास के इस विशाल महाकाव्य में 'दिगीप' से लेकर 'अग्निवर्ष' तक २९ रघुवंशी राजाओं का वर्णन है। १६ सर्गों के इसके विस्तार में १०वें सर्ग से लेकर १२वें सर्ग तक 'वधरथ-मुनेष्टि-ग्रह' से लेकर 'राम

१ राघवीय १५।१४-१७

२ राघवीय १६।२२-३०

३ मानस ६।६१

४ लक्ष्मण गूढमयस्त्वमहामुनि कमपि मन्स्यमुपादिशुत्तमम् ।

ममविषम्य विमु मुतरां बनी दिनविरामनिबामुत्तरीविति

राघवीय १६।४४

५ राघवीय २०।१-११

६ राघवीय २०।१२-२६

७ तथास्तु बरसेति सप्तदशमं तं सवारमासिन्धु सपविताशी ।

विस्तेषवाप्पान्मुक्तिरो नरेन्द्र समं विमानेन तिरौबभुव ॥२०।४६

८ मानस ६।११४

९ राघवीय २०।४७

१० मानस ६।११७ विनाइए राघवीय २०।४४

११ , ७।८ " " २०।७९

अलम्बितातिरन्वीयमनुष्यवैशेऽराक्षनापतुरी कपिरासकौपी ।

तिस्रबमुष्टमिहृदृष्टशामिरामा रामानुगी सरसवैरपथ राघवाणी ॥२०।७९

स्वर्गारोहण तक का समस्त कथानक है। इसके पूर्व एवं सर्ग में दशरथ के पराक्रम, भुवना, मुनि पुत्र-वध और धाप प्राप्ति आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

कथानक की तुलनात्मक दृष्टि से इस काव्य में अनेक विघटताएँ हैं—

इसमें रावण से प्रसन्न देवगण सीर-सागर में विष्णु के समीप जाकर जब उनकी बड़ी स्तुति करते हैं तब वे उन सबके कर्णों से अपना परिचय बतसा कर उनकी छान्ति के लिए 'रावण-वध' करने का निश्चय व्यक्त करते हैं।^१ 'मानस' में देवताओं को 'सीर-सागर' नहीं जाना पड़ता है, वे वहाँ स्तुति करते हैं वहीं पर सर्वभार्या भयवान् आकाश-बाणी से उन्हें धाग्वना देते हैं।^२

इसके 'अरु-वितरण' प्रसंग में कौसल्या और केकयी को आधा-आधा मिल जाता है, फिर वे दोनों अपने-अपने भाग का आधा-आधा सुमित्रा को दे देती हैं।^३ इस प्रकार कौसल्या को ११४ भाग केकयी को ११४ भाग और सुमित्रा को ११२ भाग मिल जाता है।^४ 'मानस' का वर्णन इससे भिन्न है।^५

इसमें राम और सठमण तथा भरत और समुद्र के बचपन में ही सी 'युगल' बन जाने का वर्णन है,^६ जिसका उल्लेख 'मानस' में भी मिलता है—

बारेहि ते निज हित पति जानी । सखिमन राम जरन रति मानी ।

भरत समुह नूनउ भाई । प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई ॥१११९८

विदवामिष के द्वारा राम-सठमण के लिए याचना किए जाने पर इस काव्य के दशरथ अपने क्रुस-वर्म के कारण उनकी इच्छा-पूर्ति तुरन्त करते हैं।^७ 'मानस' में ऐसा वर्णन नहीं मिलता है।^८

'मानस' के राम के इमान ही^९ इस काव्य के राम 'ताटका-वध' में उसके शरीर से हिचकिचाते नहीं हैं प्रभुत एक भाग से उसको समाप्त कर देते हैं।^{१०} तुलाह और मारीच के लिये 'मानस' के राम क्रमशः अग्निबाण और फलहीन बाण का प्रयोग करते हैं,^{११} जबकि 'रघुवंश' में शुरप्र और 'बाणम्यात्म' से काम लेते हैं।^{१२}

इसमें 'मानस' की तरह सीता के 'पूर्व मिमन' और 'स्वयंवर' आदि का उल्लेख नहीं है, किन्तु विदवामिष के आग्रह पर जतक बहु शिव-मनुष्य मंत्राते हैं जो

१ रघुवंश १०१२-४८

२ मानस ११८९-१८७

३-४ " १०१४४-४६

५ " १११६०

६ समानेऽपि हि सोभ्रामे षषोभी रामसठमणौ ।

षषा भरतघण्टुधनी प्रीत्या इण्ड बभूवतु ॥रघुवंश १०१८१

७ कृच्छनख्यमपि सख्यवर्णभाषतं विदेध मुक्तये सतरममम् ॥

अप्यमुप्रजयिनी रषो कृत न व्यहृयत कदाचिद्विठा ॥१११२

८ यावत् ११२०८

९ मानस ११२०६

१० रघुवंश १११७

११ " ११२१०

१२ " ११२८-२६

राम के द्वारा बहिरु सीते जाने पर दूट जाता है।^१ राम के इस चरित्र-प्रदर्शन से प्रसन्न होकर ही जनक उन्हें सीता का समर्पण कर देते हैं।^२

इस पंच मे 'परसुराम-मिलन' बयोध्या के मार्ग में बर्णित हुआ है। वहाँ राम के प्राण बँध्याब घनूप चढ़ा देने पर परसुराम उनके ईश्वरत्व के सम्बन्ध में अपना पूर्व ज्ञान व्यक्त करते हैं एवं अपने इस विवाह का कारण उनके बर्बन की इच्छा मान बतलाते हैं।^३ 'मानस' में यह विस्तार नहीं मिलता है।

'अयम् प्रसंग' में इसमें सीता के अंक में राम के छोटे समय अयम् के द्वारा उन (सीता) के स्तनों में लक्ष्मण करने का वर्णन किया गया है^४ जो 'मानस' से भिन्न है।^५

इसमें भी विराह के द्वारा 'सीता-हृत्प' का उल्लेख है जो 'मानस' में नहीं है।^६

इस काव्य के अनुसार 'अर-युद्ध' के समय अर की सेना में जितने राक्षस सम्मिलित होते हैं, राम भी संख्या में उतने ही रूप बाल्य कर लेते हैं।^७ किन्तु 'मानस' के अनुसार सभी राक्षस एक दूसरे को राम समझकर आपस में ही सड़कर मर जाते हैं—

गुर मुनि सभम प्रभु देखि मायागय अति कौतुक करयो ।
 देखहि परस्पर राम करि संशय रिपुबल करि मरयो ॥ ३२०
 'मानस' के अटायु मरने समय 'हरि रूप' बाल्य करके राम की स्तुति करता है। राम उसे 'मित्रबाम' भेज देते हैं और उसकी पयोषित 'क्रिया' भी अपने हाथों से ही करते हैं।^८ किन्तु इस पंच में अटायु को बाह्य देखकर राम का 'पितृ शोक' गया हो जाता है और वे उसे पिता के तुल्य मानकर ही उसकी 'अग्नि क्रिया' करते हैं।^९

इसमें काव्य के उपरोक्त से राम मुचीब-मित्रता सम्पन्न होती है।^{१०} 'मानस'

- १ अयममानमतिमानवर्षमासेन ब्रह्मपश्यन्वर्त्तन् वन ॥ ४६
- २ वृष्टसारमव वक्रकामुके शीर्षशुक्कमभिलग्य मीबल ॥
- ३ रामबाव तनयामयौनिनी कपिलि धिबामिव म्बवेदयत् ॥ ११४७
- ४ रपुर्बध ११६४-५३
- ५ कदाचिदके सीताया धिये किचिरिब्रमात् ॥ १२११
- ६ ऐमिन् किन्त नद्येस्त्वस्या विदहार स्वमो द्विज ॥ १२१२
- ७ मानस ३१-२
- ८ रपुर्बध १२१८-३०
- ९ एको बासराधि कामं यातुवाना बहसत ॥
- १० ते तु यावन्त एवाजी तावोरथ ददुरो स र्ष ॥ १२४३
- ११ मानस ३१३२
- १२ रपुर्बध १२१६

७ मानस ३१७

१३ मानस ३१३२

में इसके लिए सबरी की प्रेरणा का उल्लेख है ।^१

'मानस' के समान ही^२ इस काव्य के राम की भवङ्ग की कृपा से ही राम पाप से मुक्ति प्राप्त होती है, किन्तु इसमें लक्ष्मण के भी पापबद्ध होने का उल्लेख है,^३ जो 'मानस' में नहीं है ।

इस ग्रंथ में रावण-वध के लिये राम 'ब्रह्मास्त्र' का ही संभाल करते हैं^४ जबकि 'मानस' में वे इस अवसर पर इकतीस बाणों का प्रयोग करके उसके शक्ति बँध, शिरों और भुजाओं को लक्ष्य बनाते हैं । कार्यसिद्धि के बाद वे सभी बाण उनके तृणीर में वापस भी जाते हैं ।^५

संका से ज्योत्स्ना तक 'राम-यात्रा' का वर्णन 'मानस' में अति संक्षिप्त है^६ किन्तु इसमें उसे बहुत विस्तार दिया गया है ।^७

इसमें ज्योत्स्ना पहुँचने पर सभी बानर-सेनापतियों के द्वारा मनुष्य-रूप धारण करके हाथियों पर सवार होकर जूमने का वर्णन किया गया है ।^८ 'मानस' में विभीषण और बाल्मेकानु के भी 'रूप-परिवर्तन' का उल्लेख मिलता है ।

संकापति कपीस नर गीता । जामवंत अंगर सुमसीता ॥

हनुमदादि सब बानर बीरा । धरे मनोहर मनुज सरीरा ॥ ७।८

इस काव्य के राम अपने अभियेक के १३ दिन के पश्चात् ही सीता के द्वारा स्वयं सार्व हर्ष 'पूजा-सामग्री से विभीषण और सुग्रीव का उत्कार करके उनको बिदा कर देते हैं ।^९ 'मानस' में १३ दिव के स्थान पर ९ मास का उल्लेख है और वहाँ राम भय के द्वारा स्वयं बनाए गए बस्त्रों को सर्वप्रथम सुग्रीव को पहनाते हैं फिर उनकी आज्ञा से लक्ष्मण विभीषण को बसे ही बस्त्र पहनाते हैं । तत्पश्चात् राम अन्य साथियों को भी इसी तरह बस्त्र पहना कर ही बिदा करते हैं ।^{१०}

इस ग्रंथ में १४वें सर्ग के २३वें श्लोक से लेकर १३वें सर्ग के अन्तिम श्लोक तक 'सीतापवाद' से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक की कथा का विस्तृत वर्णन किया गया है, जो 'मानस' में नहीं है ।

मुमुक्षुर्लक्ष्मणं रामस्य समानव्यसने हरि ॥ १२।३७

१ मानस १।३६

२ मानस १।७४

३ रघुवंश १२।७६

४ रघुवंश १२।६७

५ मानस १।१०३

६ मानस १।११६-१२१

७ रघुवंश १३।१-७०

८ रामायण्य हरिश्चभूपतपस्तदानीं कृत्वा मनुष्यरूपरावहर्गजैश्चान् ॥ ११।७४

९ प्रतिप्रयातेषु तपोबनेषु मुखाद्विज्ञातयतार्थमासान् ॥

१० सीतास्वहस्तोपहृताभ्य पूजानत कपीन्द्राभिससर्ज राम ॥ १४।१६

१० मानस ७।१३-१७

(६) दशावतार चरित—सेमेन्ट के इस महाकाम्य में विष्णु क दस अवतारों का बड़ा सरल और रोचक वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ के 'रामावतार' नामक सप्तम सर्ग में लगभग ३०० श्लोकों में 'उपवन-वग्म' से लेकर 'राम-स्वर्ग-पोहन' तक समस्त राम-कथा को समाहित करने का प्रयत्न किया गया है। राम के जन्म और पराक्रम के वर्णन के ठीक परभाव ही सूर्यवक्त्रा राम संवार है, जिसमें राम भादि के पंचवटी प्रकाश, सूर्यवक्त्रा के विक्रम और 'सर-भूपन-वच' भादि का संकेत है। वहाँ 'राम-वग्म' से लेकर सूर्यवक्त्रा-मितन' तक की कथा का उत्तेज 'राम-मारीच संवार' के अन्तर्गत किया गया है।

इस ग्रंथ में क्याटक की दृष्टि के विप्यनितित विरीपठारों मिलती हैं—

इसमें पुण्योत्कटा राक्षसी और विषया मुनि के संयाम से राम के जन्म का उल्लेख है जो 'मानस' नहीं है।

इस काम्य का नसकूबर अपनी पत्नी रमा पर किये गये राम के बलात्कार से धुम्य होकर उसे शाप देता है कि भविष्य में बरि बहु 'मकाना' स्त्री से कभी संभोग करेगा तो उसकी तुल्य मृग्य हो जायेगी। 'मानस' में नसकूबर शाप का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इसी ग्रंथ में राम के द्वारा कच की पुत्री बेंदवती पर भी बलात्कार करने का वर्णन किया गया है। विससे क्रुद्ध होकर वह रामों के नाम का निस्वय भ्यक्त करती है^१ और वही जयसे जन्म में एक दिव्य पद्म कथा के रूप में एक छरोबर के पाठ प्रकट होती है। राम उठे अनाम समझ कर मन्दीर की ओर जाता है जो उसे पुत्रीरत पालती है किन्तु बार-बार के बचन से उठे भविष्य में राम की काम्या' जानकर मन्दीर ही उठे एक स्वर्ग-भूषा में रत कर छपुद्र में बहा देती है। अन्त में बगल उसे प्राण्य करते हैं और बहु सीता के नाम से प्रतिष्ठ होती है।^२ मानस में न तो सीता के जन्म का ही वर्णन है और न उसके किसी पूर्व जन्म का ही संकेत है।

इस ग्रंथ का मारीच रावण के समग्र राम के पराक्रमों का वर्णन करता हुआ उनके जन्म से लेकर वन प्रयाण तक की कथा करता है। वह राम शब्द से स्वर्ण की इनता व्यपनीत बतसाता है कि सयाम ध्वनि वाले 'उका रामा' भादि शर्मा से भी उसे कोई गुण नहीं मिलता है।^३ वह राम से स्पष्ट कह देता है कि उसकी बात मानने या न मानने की शीर्षो अवरथाओं में उसकी (मारीच की) मृत्यु निश्चित है।^४ 'मानस' में इस स्पष्टीक के स्थान पर वह केवल अनुमान करता है कि दोनों प्रकार के अर्थों में राम के द्वारों से 'मरम' बण्डा है।^५

१ दशावतार चरित ७।१-२

२ दशावतार चरित ७।२१-२३

३ " ७।४६-६७

४ " ७।१६-१०४

५ बुधोप्यपि प्रासासनचक्रिमिया रावनामारिचवर्ष

उकातावादि शब्देप्यतिवसपमात्र वचविश्वि तिनै ॥ ७।१२४

६ दशावतार चरित ७।१३०

७ मानस ३।२२

इस काव्य में राम का एक दूत 'सुक्रेतु' उसको 'सीता-हरण' के पश्चात् बटामु-भरण से लेकर 'मंकावाह' तक का समस्त वृत्तान्त संक्षेप में सुनाता है ।^१ 'मानस' में यह सुक्रेतु-वर्णन नहीं है, यद्यपि सारी भटनाएँ समान पड़ती हैं ।

इसमें 'हनुमान्-समुद्र-संपन्न प्रसंग' में पहले 'सिंहिका-वध' है फिर 'मैनाक-मिशन' है^२ और 'सूरसा-वृत्त बिल्कुल नहीं है । 'मानस' के इस प्रसंग में मैनाक, सूरसा और 'सिंहिका' का फल है ।^३

'हनुमान्-सीता-मिशन' में इस प्रसंग में न तो राम की 'मुद्रिका' का उल्लेख है और न सीता के चूड़ामणि का ही संकेत है ।^४

'बिभीषण-निष्कासन-प्रसंग' में इस प्रसंग के बिभीषण के सद्युपदेश से कृत्र होकर राम उसे सह्य से बमकाता है भरण से प्रहार करता है और बेनिषों से बाहर निकलवा देता है ।^५ 'मानस' में केवल भरण प्रहार का ही वर्णन है ।^६

इसमें राम का एक अन्य दूत उसको बिभीषण-धरणागति से लेकर 'मंका-मुद्र' के बारम्ब होने तक का वृत्तान्त बतलाता है और फिर 'विद्युत्सुत' नाम का एक प्रतीहारपति उससे 'मिथ्याप नाप-वास' एवं 'प्रहस्त-भूभाष-महोदरादि-वध' की कथा का वर्णन करता है ।^७ 'मानस' में इन दूतों की योजना का कोई संकेत नहीं है ।

इस काव्य का कुम्भकर्ण राम का समझाता हुआ राम की अपारसक्ति का वर्णन करता है और बिभीषण निष्कासन को सर्वथा अनुचित बतलाता है ।^८ 'भाग्य' में वह राम के ईश्वरत्व और नारद के उपदेश का भी संकेत करता है—

कीन्हेहु प्रमु विरोध तेहि देखक । सिव विरंजि सुर बाके सेवक ॥

नारद मुनि मोहि म्यान जो कहा । कहतेउ तोहि समय निरवहा ॥ १।१३

यहाँ राम उसके उपदेश के लिये उसको फटकारता है जब वह 'मक्तिम्यतावध' बुद्ध के लिये प्रस्थान करता है ।^९ 'मानस' में वह स्वेष्या से ही राम के दर्शनार्थ बुद्ध भूमि में जाता है और फिर कासपघ होकर युद्ध करने लगता है ।^{१०}

मेघनाद की बाल-वर्षा से इसमें बाम्बवान् और हनुमान् को छोड़कर सब घोष बाह्य एवं अचेत हो जाते हैं । फिर बाम्बवान् के आदेश से हनुमान ३००

१ दशावतार चरित ७।१५२-१६१ २ दशावतार चरित ७।१८६ १९०
 ३ मानस ५।१-३ ४ ' ७।१६१
 ५ भाद्रप्य ऋतुग्न चरणाचमेन न्यपातमभिर्बिह्वति बशास्य ॥ २०४
 ६ स बेनिमित्त्या सितसर्वसोकैनिष्कासित सज्जनसर्ववर्षी ॥ ७।२०५
 ७ मानस ५।४१ ७ दशावतार चरित ७।२०६-२२२
 ८ स कीर्पदधीं हितकृमनीपी बिभीषण कि मवता निरस्त
 ९ मन्नायमसं प्रसंगे निहृत्य पश्चाद्विषं भवितमप्रमेयम् ॥ ७।२२७
 १० दशावतार चरित ७।२१०-२११ १० मानस ६।६३-६४

योजन से 'औपच-वर्ष' जाते हैं जिसकी सुमन्वि-भाष से सब लोग स्वस्व हो जाते हैं ।^१
'मानस' में केवल लक्ष्मण-भूषणों के प्रसंग में 'औपच-वर्ष' जाने का वर्णन है ।^२

इसमें मेघनाद-वध से शून्य रावण आत्महत्या का विचार करता है ।^३
किन्तु 'मानस' में वह अपने ज्ञानोपदेश से बूझने को भी स्वस्व करता है ।

श्लो०—तब बसकष्ट विविध विधि समुदाई सब नारि ।

नस्वर कव जगत सब देखहु हृदयं विचारि ॥६॥७७

इसमें 'सीता युधि से लेकर राम के अमोघ्या-आत्मन और अभिवेक तक का केवल दो श्लोकों में ही बड़ा संक्षिप्त वर्णन है ।^४ 'मानस' में इस प्रसंग को पर्याप्त विस्तार और रोचकता मिली है ।^५

इस संघ में 'रामाभिवेक' के पश्चात् 'सीतापवाद' से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक का भी विस्तृत वर्णन किया गया है^६ जो 'मानस' में नहीं मिलता है ।

(१०) मारापखीय—इस काव्य के लेखक मारापख मद्दत हैं । इसके नवम स्कन्ध के द्वितीय और तृतीय दशक में कुल २० श्लोकों में 'राम-जन्म' से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक की समस्त कथा का अति संक्षेप में वर्णन मिलता है ।^७ प्रथम दशक में 'राम-जन्म' से लेकर 'सीता-हरण' तक का बृहन्त है और दूसरे में सुधीव-नीची से लेकर राम मृत्यु तक का वर्णन है । कथानस्तु की दृष्टि से इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

२—नाटक

यह तो धर्मग्रन्थ कहा ही था बुका है कि राम-कथा ने साहित्य की अनेक विधाओं की आकृष्ट किया । वह जिस प्रकार 'अभ्य काव्य' का आधार बनी उसी प्रकार 'दृश्य काव्य' में भी साबर प्रहीत हुई । भारतीय नाटक-कारों ने इस कथा का उपयोज्य अपने-अपने ढंग और सत्य के अनुरूप किया । तत्कालीन वृत्त-धरणा और नाटकीयता के समन्वय के बावजूद के कारण इसमें अनेक परिवर्तन और परिवर्धन भी हुए ।

राम-कथा से सम्बन्ध संस्कृत के नाटकों की एक सुशीर्ष परम्परा है, जिसमें प्रतिमा, अभिवेक महावीर चरित, सत्तर-राम चरित, कुन्दमाता, अर्ध रावण,

१ दशरथार चरित ७।१३५-२३९ २ मानस ६।१४-१५ ३५-६२

४ ७।१४७

५ पतिव्रता का स्वमेव शोभाभाष्य रामाय बरी हुतात् ।

६ लोकपालस्तुतधीनसत्ता का प्राप्य तर्पी अयथायथीय्याम् ॥

७ प्रथमैर्नरतेन हर्षाभाष्याभिवेकावितपावत्तम् ।

सुधीवकापतिसेय्यामानः स प्राय राम्यं विवद्याभिरिक्तः ॥७॥२३६-२६०।

८ यत्नस ६।१०८-१२१ ७।१-१३ ९ दशरथार चरित ७।२६१-२९३

१० मारापखीय ६।११-१०

समय पूर्वोक्त 'प्रतिमापूह' में दशरथ की प्रतिमा देख कर भीर वैशकुण्ठ से सारा तुलान्त जानकर जब भरत मूर्च्छित हो जाते हैं^१ तब सुमन्त्र के साथ कौसल्या, केकयी और सुमित्रा भी अकस्मात् वहीं पहुँच जाती हैं। वहाँ सचेत होने पर भरत केकयी को बहुत विस्कारते हैं।^२ 'मानस' में यह योजना नहीं है।

इस नाटक में चित्रकूट में राम से सिधने के लिए भरत के साथ केकस सुमन्त्र और सुत जाते हैं^३ किन्तु मानस में पूरा परिवार और बधिकीश प्रजा भी उनके साथ जाती है।

इसमें भरत सक्मण से छोटे हैं इसलिए वे उनका यथोचित अभिवादन करते हैं और सक्मण उन्हें आशीर्वाद भी देते हैं^४ जो 'मानस' तथा 'राम-कथा' की समस्त परम्परा से भिन्न है।

इसमें राम और भरत में इतना क्य-सादृश्य बजित किया गया है कि स्वयं सक्मण भरत को पहचानने में भ्रम कर जाते हैं और सुमन्त्र से उनका परिचय पूछते हैं।^५ वहाँ सीता भी राम के साथ भरत के स्व-सादृश्य का बस्नेस करती हैं।^६

इस नाटक में दशरथ के वायिक-भाद के एक दिन पूर्व राम और सीता जब सती के सम्बन्ध में विचार करते हैं, तब रावण परिव्राजक के भेष में आकर राम से निम्न-निम्न शारदों का बस्नेस करता है और 'अथैतस भाद-कर्म' के आचार पर वह हिमाक्षय के काचनपार्ष्वी मृग से भाद करने के लिए उनको परामर्श देता है।^७ जही समय मापीच बीसा ही मृग बन कर राम के सामने आ जाता है और रावण पसही और संकेत करता है। वहाँ राम उस मृग के बच के लिये सक्मण को भेजना चाहते हैं।^८ किन्तु कुलपति के बर्बन के लिए उनके पहुँच ही चले जाने के कारण वे स्वयं जाते हैं और सीता को रावणक घत्कार के लिए नियुक्त कर जाते हैं।^९ 'मानस' में न तो यह भाद-बर्बा है और न रावण को ही ऐसा शास्त्रज्ञ बतसाया गया है।

इस नाटक के सुमन्त्र 'अनस्पान' से लौटकर सीता-हरण का तुलान्त जब भरत को बतलाते हैं^{१०} तब वे दुःख होकर केकयी को यह समाचार देते हैं और

१ प्रतिमा ३।८—११

२ प्रतिमा ३।१६—२२

३ ,, ४।१

४ ,, ४।५ के बाद, ४।१०

५ सक्मण—(बिसोषय) अये अयमार्यो राम । न न । कनसादृश्यम् ।

(सुमन्त्र बीरय ।) ततः । कोऽप्रथमात् । (प्रतिमा ४।८ के बाद)

६ सीता—(आरमगतम् ।) यहि क्व एव । सरबोबो वि सो एव । ४।१४ के बाद

७ प्रतिमा ५।१०

८ प्रतिमा ५।१३

९ राम—तेन हि बहमेव यास्यामि ।

सीता—अयमवत । बहू कि करिरस ।

राम—दुभूपयस्व भगवतम् । (प्रतिमा ५।१३ के बाद)

१० प्रतिमा ६।११

उसे बिनकारते हैं।^१ इस पर केकयी 'अवणवाप'^२ का उत्सव करके अपने को निर्दोष बतलाती हुई जब उनसे कहती है कि उसने बसिष्ठ आदि की अनुमति से 'वाप' के परिहार के लिए राम का नेबस १४ दिन का वनवास चाहा था, किन्तु घूम से मूँह से १४ वर्ष निकल गया^३, तब भरत उसे सर्वथा निर्दोष कह कर समा पाव लेते हैं।^४ 'मानस' में भरत और केकयी का ऐसा सम्वाद नहीं प्राप्त होता है।

इस नाटक के अनुसार सीता-हरण का समाचार सुनकर भरत राम की सहायता के लिए अपनी विद्यालय सेना को साथ लेकर जब तक 'जनस्थान' तक पहुँचते हैं^५, तब तक रावण को मार कर और सीता को साथ लेकर राम भी वहीं जा बाठे हैं।^६ उसी समय वही पर बसिष्ठ और वामदेव अभिषेक-सामग्री लेकर राम का अभिषेक कर देते हैं।^७ उत्पत्तयात् पुण्यक विमान द्वारा सब भोग व्योष्या के लिए प्रस्थान करते हैं।^८ 'मानस' में यह विस्तार नहीं मिलता है।

(२) अभिषेक—मास के इस नाटक में 'वात्सिबभ' से लेकर 'रामाभिषेक' तक का कालक ऋतुओं में नियोजित किया गया है। इसकी कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं—

इसमें सुग्रीव की लजकार से मुख्य वात्सि जब उससे इन्द्रमुखा करने के लिये प्रस्थान करता है तब उसकी पत्नी तारा उसे मन्त्रियों से परामर्श कर लेने की प्रार्थना करती है^९ किन्तु 'मानस' की ठाठ 'राम-सुग्रीव-मिशठा' का स्पष्ट उल्लेख करके उसे रोकती है।^{१०}

इसमें 'वात्सिबभ' प्रसंग में अपने हृदय में सदैव हुए बाण में राम का नाम पढ़ कर वात्सि उनसे अपने निरपराध बंध का कारण पूछता है।^{११} राम के द्वारा 'प्रातुवन्-मन' ^{१२} कहे जाने पर वह उसे अपना कुछ बर्ष बतलाता है तथा उसके बर्ष होने पर वह सुग्रीव को भी समान अपराधी कहता है।^{१३} उस समय राम केवल 'अनूजवन्-मन' को ही बर्ष बतलाते हैं।^{१४} 'मानस' के राम बहिन, पुत्र वन् और कृपा को भी इसी कोटि में रखते हैं—

१ प्रतिमा ६।१३

२ प्रतिमा ६।१५

३ केकयी-वाप । अतहस विजस वि वतुक्रामाए पय्याठसहिजमाए अतहस वरिसाभि वि उत्त । (प्रतिमा ६।१५ के वाप)

४ प्रतिमा ६।१५ के वाप

५ प्रतिमा ७।१-६

६ , ७।२

७ , ७।१०

८ , ७।१४

९ अभिषेक १।१ के वाप

१० मानस ४।७

११ अभिषेक १।१७-१८

१२ अभिषेक १।२०

१३ , १।२१

१४ राम न।१६ व हि ववाविअपेठस्य मबीपसो वापमिमतम् । (१।२१ के वाप)

अनुब भविनी सुत गारी । सुनु उठ कस्या सम ए चारी ॥४१॥

इसमें बासि, जो मरते समय गंगा बाधि महानदियों, उर्वशी बाधि अप्सराओं और काल के हंसयुक्त विमान के दर्शन प्राप्त होने का भी वर्णन किया गया है^१, जो 'मानस' में नहीं है।^२

इस नाटक के हनुमान् सीता के प्रति रावण क त्रास को देखकर क्रुद्ध होते हैं और राम की कार्य-सिद्धि के लिए उस पर आक्रमण भी करना चाहते हैं, किन्तु अपनी मृत्यु की वासंका करके वे रुक जाते हैं।^३ 'मानस' में यह विस्तार नहीं मिलता है।

इस नाटक में 'हनुमान-निग्रह' के अक्षर पर जब विभीषण हनुमान् के सामने ही रावण को समझाते हुए, सीता को वापस करने का आग्रह करता है^४ तब रावण उसे धारणा देता है^५ और 'वृत्त-वच' को स्वयमेव अनुचित बतसा कर हनुमान् की पूँछ में आम छगाने की आज्ञा देता है।^६ 'मानस' में स्वयं विभीषण वृत्तवच को अनुचित बतसाता है और अन्य दृष्ट को व्यवस्था की प्रार्थना करता है।^७

इस नाटक में विभीषण के अपवेश से क्रुद्ध होकर रावण उस पर चरण प्रहार नहीं करता है, किन्तु उसे दरबार से निकाल देने की आज्ञा देता है। तब विभीषण स्वयं ही बाहर चला जाता है।^८

इसमें विभीषण-सरणायति प्रसंग' में सुग्रीव के विरोध करने पर भी राम हनुमान् के आग्रह से विभीषण को स्वीकार कर लेते हैं।^९ 'मानस' के हनुमान् इस अवसर पर मौन रहते हैं। वहाँ राम अपनी 'सरणायत-वसन्तता' के कारण ही उसे बहल करते हैं—

सखा नीति तुम्ह नीकि विचारी । मम पत सरनायत भयहारी ॥१४१॥

इस नाटक का विभीषण समुद्र के मार्ग न देने की अवस्था में समुद्र पर बाण प्रयोग के निमित्त राम को परामर्श देता है।^{१०} 'मानस' का विभीषण समुद्र को राम का कुसंगुव बतसाकर उसकी ध्यासना की प्रार्थना करता है।^{११}

इसमें समुद्र पर 'सितु-वच्य' की आश्चर्यता ही नहीं पड़ती है, क्योंकि वह बीच से ही दो भाग में विभक्त हो जाता है।^{१२} और स्वतः मार्ग निकल जाता है।

इस नाटक में रावण सीता को राम-सहस्र के लक्ष्मी कटे हुए तिरों को

१ अभिवेक १।२६ के बाद

२ मानस ४।१०

३ अभिवेक २।१६

४ अभिवेक ३।१६

५ ३।२०

६ , ३।२१ के बाद

७ मानस १।२४

८ अभिवेक ३।२३-२६

९ हनुमान्—देवे मया वयं भवतास्तथा मय्ये विभीषणम् ।

आज्ञा विषदमानोऽपि दृष्टः पूर्वं पुरे मया ॥ ४।१०

१० अभिवेक ४।११ के बाद

११ मानस ४।५०

१२ विभीषण—देव । साम्प्रतं द्विभामृत इव दृश्यते जलनिधिः ॥ (४।१६ के बाद)

विवाहाकर जब रामको आर्तकृत करना चाहता है तब उसी समय लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वध किये जाने की घोषणा से उसका बहु पर्यय स्वयं समाप्त हो जाता है।^१ 'मानस' में इस प्रसंग का उल्लेख नहीं मिलता है। वहीं मेघनाद-वध के इस समाधार से धूम होकर रावण उग्रत हो जाता है और बहु कभी आर्यहृत्या का विचार करता है^२ और कभी सीता की हत्या का निश्चय करता है,^३ किन्तु उसका एक यत्नी 'स्त्री-वध' को अनुचित बतला कर उसे रोक लेता है। 'मानस' का रावण इस अवसर पर अपना संतुमन नहीं खोता है। प्रत्युत जगत की नरनरता का अपरोध बेकर बुरतों को भी स्वल्प करता है।^४

इसमें राम जिस ब्रह्मास्त्र से रावण का वध करते हैं वह पुन उन्हीं के शीप वा बाता है।^५ 'मानस' में भी इस कार्य के लिये प्रयुक्त राम के इच्छीसों वाच उनके सुधीर में मोट जाते हैं—

बंदोदरि आर्ये मुख सीता । बरि सर जसे बही बगदीसा ।

प्रविसे सब निर्पग महूँ जाई । देखि मुरम्ह बुझुभी बजाई ॥ ६।१०३

इस नाटक में 'सीता-भुक्ति' के तुरन्त पश्चात् ही अग्निदेव राम का वहीं तंत्र में स्वयं अभियेक भी कर देते हैं।^६ और वहीं पर 'महेन्द्र के नियोग' से प्ररत तथा धनुष्म के साथ अयोध्या की प्रजा भी उपस्थित हो जाती है।^७ 'मानस' का वर्णन इससे सर्वथा भिन्न है। वहीं राम के अयोध्या मोटने पर गुह बसिष्ठ के हाथों से उनका अभियेक धम्पन्न होता है।^८

(३) महावीर चरित—राम-कथा से सम्बन्ध रखने वाले भवभूति के दो नाटक हैं—'महावीर-चरित' और 'उत्तर राम चरित'। महावीर चरित' के सात अंकों में राम के विरवामित्र-आधम-धमन' से लेकर 'अभिषेक' तक का कथानक है। इस नाटक के वस्तु-विवरण में अनेक गभीरतायें दृष्टिपोचर होती हैं।

इसमें विरवामित्र के वाद्यम में ही सीता और लसिता के साथ जनक के भाई राजा कुसुम्वध पहुँच जाते हैं। वहीं उनके साथ राम-लक्ष्मण का परिचय होता है।^९ वहीं पर उनके सामने राम-शाठका-वध^{१०} करते हैं। उनके द्वारा 'बहुस्पोदार' की योजना वहीं 'अपेक्ष' से निकली है।^{११} वहीं विरवामित्र के ध्यान-मात्र से वहीं धिग

१ अभियेक १।८-११

२ अभियेक १।१३-१४

३ अभियेक १।१६ के बाद

४ मानस ६।७७-७८

५ रघुवतसुख वेपविप्रमुक्तं ब्रह्मण दिवाकरमुबतपीट्यधारम् ।

रत्नचरितरत्नं तिहार्य सर्वस्य पुनरभिगच्छति राममेव शीघ्रम् ॥ ६।१७

६ अभियेक ६।३१ के बाद

७ अभियेक ६।३४ के बाद

८ मानस ७।१२

९ महावीर चरित १।१६-२३

१० महावीर चरित १।३९

११ महावीर चरित १।३६ के बाद

इसमें कबन्ध के आक्रमण से शवरी की रक्षा करते हुये^१ सम्पूर्ण उससे विभीषण का एक पत्र प्राप्त करते हैं^२ जिससे ज्ञात होता है कि वह रावण को त्याग कर श्रेष्ठ्यमूर्क पर्यट पर सुग्रीव और हनुमान के साथ ठहरा हुआ राम की प्रतीक्षा कर रहा है। वहाँ कबन्ध भी दिव्य देह धारण करके राम से अपने साथ और उसकी मुक्ति^३ का वर्णन करता है जो 'मानस' के वर्णन के समान है।^४ वहीं वह रावण और वासि की मित्रता का संकेत करके उनसे सावधान रहने की प्रार्थना भी राम से करता है।^५ 'मानस' में यह घटना नहीं मिलती है।

इसमें राम से वासि का सीधा युद्ध होता है^६ जिसमें उनका बाण वासि के शरीर दुम्बुभि-ऊँकास सप्त ताम तथा अन्य पर्वत आदि को एक साथ नष्ट करके छिद्र उग्री की तूनीर में प्रविष्ट हो जाता है।^७ 'मानस' में वासि से सुग्रीव के ही युद्ध का वर्णन है, और वहाँ राम 'वासि-वध' के पूर्व सुग्रीव की प्रार्थना पर दुम्बुभि-ऊँकास तथा सप्त ताम आदि का विनाश करके उसे अपने बल का विश्वास दिलाते हैं—

दुम्बुभि अस्मि ताम देहराय । विनु प्रयास रघुनाथ दृष्ट्वाए ॥

दैलि अमित बल बाकी प्रीती । वासि बधव इन्ह मद्र परतीती ॥४७७

इस नाटक में वासि अपने मरण के समय राम और सुग्रीव को 'अग्निकाशी' मित्रता सम्पन्न करता है^८ और विभीषण को लंका का राज्य देने के लिए राम से प्रार्थना करता है^९ जिसका वर्णन 'मानस' में नहीं है।

इसमें इन्द्र और गंधर्बराम विभरथ अपने-अपने रथों पर बैठे हुये आकाश से राम रावण युद्ध देख कर उसका वर्णन करते हैं। वहाँ राम को रघुनीन देख कर इन्द्र विभरथ के रथ पर बैठ जाते हैं और अपना रथ राम के समीप भज देते हैं।^{१०} 'मानस' के वर्णन में विभरथ का उल्लेख नहीं है।^{११}

इस नाटक का रावण कृष्णकर्ण और मेघनाद के साथ ही युद्ध में प्रवेश करता है।^{१२} कृष्णकर्ण के बध^{१३} के पश्चात् वहाँ राम के ब्रह्मास्त्र से रावण

१ महावीर चरित १।२७

२ महावीर चरित १।३०

३ १।३४

४ मानस ३।१३

५ द्यु—प्रार्थ्य मास्त्ववता वासी युष्मदाते नियुज्यते ।

तेनापि रावणे र्थीमीमनुबध्याम्युपेयते ॥११।३२

६ महावीर चरित ३।४२-४३

७ भमना—एष वासिकायदुम्बुभिर्करुण्युष्मतामपिरिमहीतसाम्बधायं

रामगुपीरमविद्ययित धरः । (३।३४ के बाद)

८ महावीर चरित ३।६०

९ महावीर चरित ३।६० के बाद

१० ६।३ के बाद

११ मानस ६।८२

१२ महावीर चरित ६।३३

१३ महावीर चरित ६।४२ के बाद

के और लक्ष्मण के बन्धुतात्म से मेघनाद के भी बन्ध का एक साथ ही वर्णन है।^१ वही रावण-बन्ध के बाद उसके कारागार से मुक्त होने वाली देवताओं की स्त्रियों का इसमें बढ़ा करण वर्णन किया गया है।^२ 'मानस' में यह विस्तार से नहीं मिलता है।

इसमें सुग्रीव राम को परामर्श देते हैं कि वे भरत साखना के लिए हनुमान् को पहले ही सजा से अयोध्या भेज दें क्योंकि द्रोणाद्रि जाते समय लक्ष्मण-भूषार्थ के समाचार पाकर वे (भरत) बहुत दुःखी होंगे।^३ 'मानस' के राम प्रयाग पहुँच कर कुशल समाचार के आशान प्रदान के लिए ही हनुमान् को वही से अयोध्या भेजते हैं।^४

इस नाटक में अयोध्या लौटते समय राम पुष्पक द्वारा सूर्यमोक उद्यमोत्सव अस्तावक, कलास पर्वत, अजन पर्वत गंधर्व-सौह और हिमासय पर्वत आदि का भी प्रमन करते हैं^५ जो 'मानस' में नहीं है।

इसमें राम के अभियेक के समय बिश्वामित्र पुन पंचारते हैं और बहु सुभकार्य चन्ही के हाथों सम्पन्न होता है।^६ 'मानस' में यह सीमाग्य गुरु बलिष्ठ को प्राप्त हुआ है—

प्रथम तिस्रु बलिष्ठ मुनि कीन्हा । पुनि सब बिप्रन्ह आयुमु बीग्हा ॥७॥१२

(४) उत्तर राम चरित—बोला कि इसके नाम से स्पष्ट है कि भवभूति इस नाटक में राम के अभियेकोत्तर चरित का वर्णन किया गया है। तुलसी ने कवनायक राम के इस प्रसंग का 'मानस' में आन-बूस कर वर्णित नहीं किया क्योंकि 'रामाभियेक' के द्वारा राम के चरित का पूर्ण नत्कर्ष स्थापित करने के पश्चात् वे सीता के 'परित्याग का कर्त्तक' उनके नाम के साथ जोड़ना सम्भवत अयोध्या समझते होंगे। इसके अतिरिक्त वह उनकी भक्ति-भावना और विचारधारा के अनुकूल भी नहीं पड़ता है।

'महावीर चरित' में रामाभियेक ठक की कथा का उपयोग करने के बाद भवभूति ने भी इस सामग्री को एक नए नाटक में पृथक रूप से ही प्रस्तुत करना योग्य समझा। इससे स्पष्ट है कि राम-कथा के इन दो भागों से ब पूणतया परिचित थे।

इस नाटक में नाटकीय-व्यापार कम और भावुकता की मात्रा अधिक है इसलिये यह 'नीति-नाट्य' के रूप में अधिक उपलब्ध माना जा सकता है। एको रस-करण एव' के नायक भवभूति ने इसमें उस कल्प भावना को बढ़ी उत्प्रेरता के

- | | |
|-----------------------|---------------------------|
| १ महावीर चरित ११६३ | २ महावीर चरित ७१५ |
| ३ " ७१८ के बाद | ४ मानस ११२१ |
| ५ " ७१२१-२७ | ६ महावीर चरित ७१३७ के बाद |
| ७ उत्तर राम चरित ३१७७ | |

साथ प्रस्तुत किया है जो वस्तुतः उनकी प्रकृति की और सम्भवतः उनके समस्त जीवन में व्याप्त एवं स्रोतमोह की।

इसी भावना के बंध में होकर उन्होंने इस नाटक में 'सीता परित्याग'^१ और 'जनस्नान'^२ में सीता-मिसन^३ के अवसरों पर राम के विरही हृदय की लक्ष्मण और मेरुना का बड़ा भावुक और ड्रावक विवरण प्रस्तुत किया है।

'मानस का कथानक यहाँ समाप्त होता है, यहीं से इसका आरम्भ है इसलिये कथा वस्तु की दृष्टि से दोनों की कोई तुलना नहीं हो सकती है। 'मानस' विरह-वर्णन में और इसके विरह-वर्णन में एक साम्य देखना भी निरर्थक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उन दोनों विरहों में इस नाटक के राम के अनुसार ही एक बड़ा मौखिक अन्तर है।^४

(५) कुन्वमासा—राम के अमियेकोत्तर चरित ये सम्बन्ध रखने वाला मह बृहदा नाटक है। इसके लेखक आचार्य विष्णुनाग हैं। ६ अंकों के इस नाटक में सीता के मन में परित्याग से लेकर 'राम के द्वारा उनके पुनर्प्रेम तक का कथानक प्रस्तुत किया गया है। 'मानस' की कथावस्तु इससे भी मिला है, अतः उसकी इससे तुलना करना सम्भव नहीं है।

'उत्तर राम चरित' और 'कुन्वमासा' दोनों तुलनात्मक नाटक हैं। इनमें नाटककारों ने परम्परा से भिन्न राम और सीता के 'पुनर्मिसन' की योजना करके संस्कृत के नाटक आरम्भों के आदेश का सम्यक पालन किया है। इन नाटकों में राम और सीता के विरह का बड़ा स्वाभाविक वर्णन मिलता है। इनमें राम और सीता के मिलन की एक ऐसी योजना है जिसमें सीता को अबोध रखा गया है। राम तो उन्हें देख नहीं पाते हैं, किन्तु वे उन्हें बराबर देखती रहती हैं। 'उत्तर राम चरित' में मापीरबी के प्रमाण से^५ और 'कुन्वमासा' में आरम्भिक के प्रमाण से^६ सम्भवतः इस 'अबोध सीता मिलन' की एकमात्र उपयोगिता यह है कि राम को विरह-प्रभाव करते देख कर सीता को पूर्ण विश्वास हो जाय कि राम के हृदय में उनके लिये पूर्ववत् प्रेम है और उन्होंने केवल परिस्थितियों के बधीभूत होकर ही उनका परित्याग किया है, न कि प्रेम में किसी ग्लानता के कारण।

'मानस' और इन प्रयोगों के विरह-वर्णन में प्राप्त मौखिक अन्तर का अभी संकेत किया जा चुका है फिर भी इन दोनों के उन वर्णनों में राम और सीता के

१ उत्तर राम चरित १।४०-४९

२ उत्तर राम चरित १।२८, ३१-३३ ३५-३६ ३८-४१, ४४-४५

३ विद्योषो मुग्धायाः च तप्तु त्रिपुपाशावधिरम्—

रघुस्तुषीं बहो निरवधार्यं तु प्रविशत ॥३।४४

४ उत्तर राम चरित १।३ के बाद ५ कुन्वमासा ३ प्रथम पृष्ठ

हारिक उद्धारों एवं आन्तरिक मनोभावों का जो स्पष्ट मार्मिक परिचय मिलता है, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(६) अनर्घ रावण—मुरारि कवि के इस नाटक के पाँच अंकों में 'विश्वामित्र-जागमन' से लेकर 'रामाभिषेक' तक की समस्त कथा का वर्णन किया गया है। जिसमें कुछ अपनी मौलिकताये हैं। उनका निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है—

इसमें बसिष्ठ के आग्रह से आये हुए रामदेव जिस समय दशरथ को उनका 'सन्देश' देते हैं कि उन्हें सभी याचकों को पूर्ण सम्पुष्ट करने वाले अपने रघु-कुल के धर्म का सर्वत्र पालन करना चाहिए, उही समय विश्वामित्र आते हैं और राम सशपथ की याचना करते हैं। इस पर बसिष्ठ के आज्ञाकारी दशरथ भीम ही स्वीकृति दे देते हैं।^१ 'मातस' में इस संदेश का और उसके बाह्य रामदेव का कोई उल्लेख नहीं है।

इस नाटक का आम्बवाम वासि को रावण से मित्रता करने से रोकता है, किन्तु उसके न मानने पर वह सुग्रीव और हनुमान् को लेकर उससे जलज हो जाता है।^२ 'मातस' में वासि और सुग्रीव के विच्छेद का कारण बूझा ही है।^३

इसके हनुमान् सूर्य से ब्याकरण पढ़ने के कारण उनके धिप्य हैं और गुह्य-सिद्धि का रूप में उनके पुत्र सुग्रीव के सेवक हैं।^४ 'मातस' में इसका कहीं संकेत भी नहीं है।

इसमें सीता को हनुमत् की सहायता से पृथ्वी से उत्पन्न बटला कर उन्हें 'बनर्धसंभवा'^५ कहा गया है। 'मातस' में सीता के जन्म का विवरण नहीं है।

इस नाटक के विश्वामित्र जगद के यज्ञ की सुरक्षा के लिये ही राम और लक्ष्मण को वहाँ से आते हैं।^६ 'मातस' में केवल बनुप-यज्ञ का उल्लेख है किन्तु वहाँ उसकी सुरक्षा को कोई समस्या नहीं है।

इसमें रावण का पुरोहित शीष्कस उसके लिये जलक से सीता की याचना करता है।^७ राम के द्वारा बनुर्भय देखकर वह विश्वामित्र से आग्रह करता है कि वे उसको टाटका-बध के अपने अपराध के क्षमापन के लिये सीता विवाह से रोकें।^८ इसके पश्चात् वह सीता के रावण-हस्तगत होने की मविष्यवाणी करता

१ अनर्घ रावण १।१७

२ अनर्घ रावण १।४३

३ " २।७ के बाद

४ मातस ४।६

५ मूल.शेष— (विहस्य) पुरं विभायमजिनेयो भगवत् सहस्र क्रिष्णाद्भ्याकरण विद्यामधीयानस्तदारमत्रमनो बानरयोने सुग्रीवस्य साहायक—ममिमायद्यो सुहृदक्षिणीचकार। (२।७ के बाद)

६ अनर्घ रावण २।८६ के बाद

७ अनर्घ रावण २।८७ के बाद

८ अनर्घ रावण ३।४२, ४४

९ अनर्घ रावण ३।१७ के बाद-६०

है और राम को उससे विवाह के लिये मना भी करता है।^१ 'मानस' में इस पुरोहित का नाम तक नहीं है।

इस नाटक में बाटिका मिलन अथवा 'स्वयंवर-योजना नहीं है। वहाँ विवाहामित्र की आज्ञा से राम अनुर्मय के लिये 'नैपथ्य' में बसे जाते हैं जिसके पश्चात् पत्र पूर्ण हो जाने के कारण अतः राम को सीता का समर्पण कर देते हैं और उर्मिका के लिये बर-हृय में सङ्गम को निश्चित करते हैं,^२ उसी समय यत्नात्म्य माँझवी और धृतिकीर्ति के साथ भरत और शत्रुघ्न का विवाह करने के लिये विस्वा-मित्र से प्रार्थना करते हैं।^३ 'मानस' का विस्तार इससे भिन्न है।

जाम्बवाम् की आज्ञा से इस नाटक की सबरी 'परपुर-प्रवेश विद्या' के द्वारा मन्थरा के शरीर में प्रविष्ट होकर 'राम-निर्वासन' का प्रयत्न रचती है।^४ वह कैकयी का वाली पत्र लेकर मिथिला में ही पहुँच जाती है और 'परशुराम-विजयोत्सव' पर जब बसन्त स्वयं 'रामाभिषेक का निश्चय करते हैं उसी समय वह सङ्गम को पत्र सौंप देती है।^५ इसमें 'राम-अन-समन' के बरवान में ही सीता और सङ्गम के भी सङ्गमन की याचना है।^६ 'मानस' की सबरी ऐसी 'मायाविनी' नहीं है।^७ वहाँ 'बर-याचना-काण्ड अयोध्या में ही भटित होता है और उसमें वैदथ राम के सङ्गमन की ही प्रार्थना है—

मायउं दूसर बर कर खोरी । पुरबहु नाच मनोरप मोरी ॥

ठापस बैप बिसेवि उवासी । खौबह बरिस राम बनवासी ॥ २।२६

इस नाटक में 'परशुराम विवाह' विधिका में ही सम्पन्न होता है और इसमें अतः 'बसन्त' 'यत्नात्म्य' और 'ब्रह्मण' सभी भान लेते हैं तथा परशुराम को फटकारते हैं। वहाँ राम भी परशुराम के मुख से मुद्गबर्षी का अपवाह सुनकर बुद्ध के लिये सङ्गम से अनुप मंगा लेते हैं।^८ उसी समय परशुराम उनकी बस

१ स्वयं पौलस्त्येन त्रिबुवनमुखा वेत्सि कृता—

मरे राम त्वं मा जनकपतिपुत्रीमुपपया ॥३।६१

२ जनार्ध रामव ३।२६

३ जनार्ध रामव ३।२६ के बाद

४ " ४।१४ के बाद

२ जनार्ध रामव ४।६३ के बाद

५ वपामि तिष्ठन्नु अनुर्मय दण्डकावा

सौमिभिर्मन्त्रितमुठासहितराम ॥४।६६

६ मानस ३।१४-३६

८ जनार्ध रामव ४।३८ ४१ के बाद

९ जनार्ध रामव ४।४० ४३

१० ४।४२ के बाद ४३ के बाद

११ , ४।४६ ४० के बाद

१२ राम — श्रुये जानकस्य पटञ्जरीभूता शक्तिर्यं पुरातनी कीर्तिपताका ।

नगिबदानीमेव द्रष्टव्यम् । (नेपथ्याग्निमुखम् ।) बरस सङ्गम,

अनुर्मनु । (जनार्ध रामव ४।३४ के बाद)

परीक्षा के लिए उन्हें अपना वैश्वक धनुष दे देते हैं^१ फिर वे दोनों वास्तविक युद्ध के लिये नेपथ्य में जसे जाते हैं और वहाँ से राम के विजय की घोषणा होती है।^२ 'मानस' में परशुराम के द्वारा सस्यमण से विवाद करने^३ और राम को धनुष^४ देने के अतिरिक्त और कोई वर्णन इस नाटक से नहीं मिलता है।

इसमें बाम्बवान्-सखरी-संवाद में राम-निर्वासिन से लेकर करतूपान-अथ तक की सूचना मिलती है।^५ मानस में ये सभी अर्थ विषय हैं केवल 'सूष्य' नहीं।

इस नाटक में सीता-हरण के पूर्व लक्ष्मण रावण-संवाद भी है जिसमें रावण अपने को 'बैशेषिक-कटम्बी-पण्डित' बतसा कर राम से शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट करता है। वह 'सर्वविद्रावण' कह कर अपना दिव्य परिचय देता है और लक्ष्मण उसे 'सर्वविद्' रावण समझ भी लेते हैं किन्तु वह स्वयं को 'सर्व विद्रावण' कहकर अपना अस्य परिचय दिये बिना ही वहाँ से सीध्र चला जाता है।^६ 'मानस' में ऐसा कोई संवाद नहीं है।

इस नाटक का मुह अधिक सक्रिय है। वह लक्ष्मण को प्रसिद्ध कुमुदि-अंकाल रिक्ततावा है जिसे वे विधेर देते हैं।^७ वह राम की सेवा में सीता का वह उत्तरीय प्रस्तुत करता है जिसे सुग्रीव ने उसे राम को भेंट करने के लिये दिया था। (इस उत्तरीय को सीता ने अपने हरण के समय बानरों को बेखकर परिचय देने के लिये वहाँ फेंक दिया था और हनुमान ने उसे लपक कर सुग्रीव को दे दिया था।^८) वह राम को बालि का परिचय भी दूर से कराता है।^९ वहाँ रावण के पङ्कज से प्रभावित बालि को साथ जब राम का सीता इन्द्र-मुठ होता है।^{१०} तब सुग्रीव और हनुमान् को धौड़ते जाते देखकर लक्ष्मण के संकित होने पर मुह ही उन्हें जमका परिचय देकर सान्त करता है।^{११} अन्त में सत्य ठाऊ और बालि को भेदकर रामबाण के पुन दूधौर में प्रवेश करने की घोषणा भी वही करता है।^{१२} मानस में इस अवसर पर मुह की उपस्थिति का कोई संकेत नहीं है और न कोई पङ्कज अपना इन्द्र मुठ ही है।^{१३}

- | | |
|---|-------------------------|
| १ अनर्षरायण ४।३३ | २ अनर्षरायण ४।३६ के बाद |
| ३ मानस १।२७१-२८० | ४ मानस १।२८४ |
| ५ अनर्षरायण ३।१ से ३।५ के बाद | |
| ६ (नेपथ्ये) भी भी लक्ष्मण बैशेषिककटम्बीपण्डितो जगद्विजयमान पर्यंताम।
बबासी राम। तेन सह विद्विष्ये। सर्वविद्रावण। लक्ष्मणम्।
लक्ष्मण—कि भवान्नावण (३।५ के बाद) | |

रावण—सर्वेषां विद्रावण लक्ष्मणमिति। तन्मूक मां मिलार्ये।

- | | |
|------------------|-------------------------|
| ७ अनर्षरायण ३।२३ | ८ अनर्षरायण ३।२५ के बाद |
| ९ " ३।३१ | १० " ३।३७-५२ |
| ११ " ३।५० के बाद | १२ " ३।५२ |
| १३ मानस ४।७-८ | |

इस नाटक में 'मास्ववान्-सारथ-संवाद' में विभीषण-सारथगति सेतुबन्ध रावण के विधोष-शुभार कृष्णकर्ण-वध मेघनाद-वध आदि की सूचना-मात्र ही जाती है। 'मानस' में यह संवाद नहीं है और वहाँ रावण के विधोष वर्णन के अतिरिक्त अन्य सभी प्रसंगों का विस्तृत वर्णन किया गया है।^{१२}

इसमें 'रत्नचूड़-हेमायद-संवाद' में राम-रावण-मुञ्ज रावण-वध, मन्दोदरी विज्ञाप आदि का उल्लेख मिलता है।^{१३} 'मानस' में यह संवाद नहीं है।

इस नाटक के 'सीता-शुद्धि' प्रसंग में साक्षी रूप में स्थित धूर्त और विक-पार्ष्णों के सामने सीता के अग्नि में प्रवेश करने और 'बधत्' निकलने का वर्णन किया गया है।^{१४} 'मानस' में सीता शुद्धि के पश्चात् इन्द्र ब्रह्मा और शिव आदि देवता उपस्थित होते हैं किन्तु वे साक्षी के लिए नहीं जाते हैं प्रत्युत वे राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करके उनकी स्तुति करते हैं।^{१५}

इस नाटक में राम 'रावण-वध' के बधत्तर पर सूर्यमंडल में बधत्तर के दर्शन करते हैं, जो उन्हें भरत की सूचना देने के लिए हनुमान् की भेजने की आज्ञा देते हैं।^{१६} 'मानस' के वलरूप राम की केवल आशीर्वाद देते हैं।^{१७}

इसमें लंका से अयोध्या लौटते समय पुष्पक विमान द्वारा राम प्रासेव पर्वत भीषणप्रस्थ नगर मन्धराचल, कैलास सुमेरु जगत्सोक आदि की यात्रा करके पश्चात् क्रमशः रोह्यगिरि, ताम्रपर्णी नदी मलयचल अयस्त्यायन प्रसन्नमपर्वत महाराष्ट्र के कृद्विन नगर आश्रम के श्रीमत्तर मंदिर द्विद्व की काशी नदी उज्ज्विनी माहिष्मती, यमुना यमा बाराबसी मिथिला जम्पा प्रयाग धरपू आदि के भी दर्शन करते हैं।^{१८} 'मानस' के राम भरत की विन्ता से इतने व्यथित हैं कि वे श्रीमत्तरिणी अयोध्या पहुँचना चाहते हैं।^{१९}

'मानस' में राम अयोध्या पहुँचते ही भरत आदि से मिलने के पहले पुष्पक विमान को बिदा कर देते हैं।^{२०} —

उत्तरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहि जाहु ।

प्रेरित राम जसेउ सो हरपु विच्छु बलि ताहु ॥ ७१४

इसमें रामाभियेक के बहुत बाद विभीषण पुष्पक को मुक्त करने के लिए राज से प्रार्थना करते हैं।^{२१}

१ अनर्षरायण १।५ २२

३ " १।२१-२४

४ मानस १।१०६ ११३

७ " १।११२

८ " १।११६

११ अनर्षरायण ७।१४१

२ मानस १।४२ १।७७

४ अनर्षरायण ७।१

६ " ७।११

८ " ७।२६ १११

१० मानस ७।४

(७) प्रसन्न-राज्य—महाकवि जयदेव के इस नाटक के सात वर्णों में 'सीता-स्वयंवर-वर्णन' से लेकर 'अयोध्या-प्रत्यावर्तन' तक की समस्त कथा बड़े ही सरस और आकर्षक रूप से प्रस्तुत की गयी है। इस नाटक की प्रसार-शुभ सम्पत्ता को देख कर इसका 'प्रसन्न राज्य' नाम बचार्थ सिद्ध होता है।

इस नाटक में तुमसीदास को 'मानस' के निर्माण में सबसे अधिक सहायता दी है। 'पुष्पवाटिका-प्रसन्न' 'राम-सीता-पूर्व-मिलन' 'लक्ष्मण-परशुराम संवाद' 'राम-विच्छेद', 'राजम-सीता-संवाद' 'सदमण-मूर्च्छा-प्रसन्न' आदि के वर्णनों में इस नाटक और 'मानस' में बहुत साम्य है। इस नाटक के श्लोकों के सम्मानुवाच और भावानुवाच के अतिरिक्त उनके पाद अर्थ और छन्द आदि का ग्रहण भी 'मानस' में बनेक स्वर्णों पर प्राप्त होता है। वही तक इस नाटक की कथावस्तु का सम्बन्ध है, जहाँ बनेक बस्मीकनीय विशेषताएँ हैं।

इस नाटक में जनक के दो बन्धी सीता-स्वयंवर में भाग लेने के लिये जाये हुये निमग्नित राजाओं का पुनक-मृषक विस्तृत परिचय देते हैं^१, जो 'मानस' में नहीं है।

इसमें राजप^२ और बान^३ भी स्वयंवर में उपस्थित हैं। वे दोनों 'धनुष' चढ़ने में अक्षमर्ष होकर^४ परस्पर बानकलह करते हैं और बहाना बनाते हुए चले जाते हैं।^५ 'मानस' में इसका संकेत-मात्र अन्वियों की घोषणा में मिलता है—

राजनु बानु महामत मारे । देखि सरासन गर्बहि सिधारे ॥१२३०

इस नाटक का 'पुष्पवाटिका-वर्णन' 'मानस' के वर्णन के बहुत कुछ समाप है, किन्तु समय का अन्तर है। इसमें सायंकाल है^६ जबकि मानस में प्रातःकाल है।^७ इसमें राम-सीता को देख कर उनके रूप-सीन्दर्य का बड़ा विस्तृत वर्णन करते हैं।^८ 'मानस' में यह वर्णन संक्षिप्त और मर्यादित है।^९ इसमें सीता को देखकर लक्ष्मण को अपनी माता 'सुमित्रा' का स्मरण हो जाता है और लक्ष्मण को देख कर सीता भी अपनी बहिन समिधा का ध्यान करती है।^{१०} 'मानस' में इन दोनों के

१ मञ्जीरक स एष—मस्त्रिकापीडो नाम । सोऽयं काश्मीरतिलकः ।

स एष काशीमण्डनो बीरमामिवयनामा नृपति ।

सोमम्—मत्स्वराज । स एष—सिम्पुराज ।

(प्रसन्न राज्य १।२८ के बाद)

२ प्रसन्न राज्य १।३२ के बाद

३ प्रसन्न राज्य १।४७

४ " १।३९ के बाद २६ तक

५ " १।५९, ६० के बाद

६ " २।५ के बाद

७ मानस १।२२६

८ " २।७-९, ११-१७ १९-२०, २६

९ मानस १।२३१

१० प्रसन्न राज्य २।१५ के बाद

जातिरिक्त भावों का कोई संकेत नहीं है। इसमें 'पुष्प-वाटिका' में राम को देख कर सीता अत्यन्त ध्यानमग्न हो जाती है और सखियों के पूछने पर वे बड़ी कुचसटा से 'मा राम' में (राम या बाग में) 'वत्तचित्त हूँ' कह कर स्नेह के द्वारा सत्य भी कहती है और अपनी दुर्बलता को छिपाना भी चाहती है^१ किन्तु 'मानस' में सीता की सखियाँ ही उन्हें राम-दर्शन के लिये प्रेरित करती हैं।^२

इस नाटक में राम 'बिस समय 'सिद्धबन्धु' मंग करना चाहते हैं' उसी समय परशुराम का एक वृत्त आकर जनक को इस कार्य से रोकना चाहता है किन्तु वे उसकी पूर्ण उपेक्षा कर देते हैं।^३ 'मानस' में यह वृत्त वर्णन नहीं है।

इस नाटक में मिथिला में ही 'परशुराम विवाह' की योजना है। वहाँ परशुराम बन्धु-संग-कर्ता का आधा विवरण सुनते ही उसे 'रावण' समझकर उसके प्रति कोप प्रगट करने लगते हैं किन्तु भूल-सुधार होने पर वे बड़ी द्विविधा में पड़ जाते हैं। एक ओर तो राम के शीघ्र और सीम्हर्य से आकृष्ट होकर वे उन्हें 'समर विजयी होने का आशीर्वाद भी दे देते हैं और दूसरी ओर तुरन्त ही उन पर प्रहार करने का विचार भी व्यक्त करते हैं।^४ 'मानस' में उनकी इस द्विविधा का संकेत नहीं है। इस प्रसंग में राम और लक्ष्मण का परशुराम से संवाद भी 'मानस'^५ के संवाद से बहुत भिन्नता युक्त है।^६ इसमें परशुराम की शक्ति के लिए जनक तथा सदानन्द भी प्रयत्न करते हैं^७ जिसका वर्णन 'मानस' में नहीं है। वहाँ परशुराम जब विश्वामित्र के क्रिये भी कटु बचनों का प्रयोग करते लगते हैं तब राम क्रुद्ध होकर सगसे युद्ध के लिए उन्हें 'नेपथ्य' में ले जाते हैं।^८ 'मानस' के राम अन्त तक लज्ज बने रहने हैं वहाँ युद्ध की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। वहाँ राम की परीक्षा के लिए परशुराम उन्हें अपना बन्धु बन्धुप दे देते हैं जिससे राम उनकी 'देवभोक्त-मति' को रोक देते हैं^९ किन्तु 'मानस' के राम ऐसा नहीं करते।^{१०}

इसमें गंगा यमुना सरयू, गोदावरी तुंगभद्रा और घागर का मानवीकरण किया गया है। इन सबके सम्बाह से केकयी-वर-माचना से लेकर सीता-शोष तक की सूचना मिलती है।^{११} 'मानस' में ये सभी प्रसंग अति विस्तृत हैं।

१ सखी—बब तहि वत्तचित्तति ।

सीता—भारतमम्भि ।

२ मानस १।२३४

३ प्रसन्न रावण ३।३६ के बाद

४ प्रसन्न रावण ३।३८-३९

५ मार्गव—(स्वयमम्) रामे चंद्राभिरामे विनयवति सिद्धी कि प्रकृष्यातिमाशं
हं चारं चंद्रमीशेश्वरपद्मतिरसाविमुदष्टं अर्धं १।४।९

६ मानस १।२७१-२८४

७ प्रसन्न रावण ४।२०-२९

८ प्रसन्न रावण ४।२९ के बाद-३० के बाद

९ ,, ४।३७-४१

१० प्रसन्न रावण ४।४१-४३

११ मानस १।३८४-२९४

१२ ,, ५।१-५३

इसके सीता हरण प्रसंग में अतसूया प्रभाव से सीता के चारों ओर अग्नि के निरन्तर बसते रहने का उल्लेख है जिसे बहल मंत्र से मुसाले के बाप ही रामण सीता हरण में समर्थ हो पाता है।^१ 'मानस' में अग्नि वर्णन नहीं है।

इस नाटक में एक 'हृद्रजाम' (माया-नाटक) में राम और महामय दोनों ही सीता-विजया संवाद राजन ब्राह्मण, सीता-विरह हनुमान-सीता-संबन्ध और संका बाह्मणिक के रोचक और मर्मस्पर्शी दृश्यों का वर्णन करते हैं।^२ इन सभी प्रसंगों के वर्णन 'मानस' के वर्णनों से अद्भुत साम्य रखते हैं।^३ किन्तु इसमें वही 'सीता स्वप्न' के वर्णन हैं वही 'मानस' में 'विजया-स्वप्न'^४ का ब्यक्त है। इसमें सीता की बस्तीकृति से कृत्र राजन जब उनका रक्षपात करने के लिये 'कपास माँवटा है, है एक हनुमान बृक्ष से छिपे-छिपे, उसके पुत्र 'अस' का कटा हुआ छिर उसकी बन्धन में बाँध देते हैं जिसके वर्णन से क्षुब्ध और क्रुद्ध होकर वह वहाँ से तुरन्त चला जाता है।^५ 'मानस' में यह बटना नहीं है। इस नाटक में सीता के द्वारा अशोक वृक्ष से अमिकम माँवने और हनुमान् के द्वारा 'राम-मुद्रिका' बाँध देने का वर्णन है।^६ मानस का वर्णन भी ऐसा ही है—

सो० कपि करि हृष्य विभार सीगिह मुद्रिका शरि तब ।

अनु अशोक अंगार सीम्ह हरपि उठि कर गहेउ ॥३॥१२

मानस के हनुमान् संका से मोटते समय सीता से 'प्रयभिज्ञान' लेते हैं,^७ किन्तु वही उसका वर्णन उनके प्रथम मिलन में ही किया गया है।^८

इस नाटक में सीता के प्रति आकर्षण से लित्त राजन के विरहोपचार का भी रोचक वर्णन किया गया है^९ जो 'मानस' में नहीं प्राप्त होता है।

इस नाटक में एक ही श्लोक में कुम्भकर्ष और मेघनाद क साब ही बन होने का संक्षिप्त उल्लेख है।^{१०} मानस में इसके वर्णन को अत्यधिक विस्तार मिला है।^{११}

इसमें सङ्गम-मूर्च्छा पर विनाश करते हुये राम को उदिला के सोमाम्य का

१ ततो बहलमग्निविश्रानाहृततूनवनाहृत्वाचमनिचुमितपानिरस्त्युसदेव १।४४ के बाद

२ प्रसन्न राजन ६।५ के बाद—२० ३ मानस २।११—२७

४ , ६।१६ के बाद ५ २।११

६ , ६।३३ के बाद

७ सीता—(विमोक्ष्य । सहर्षम् ।) हला वेणु वेणु । निबद्धि दाव इमस्य
सिहरादो अंगालखण्डम् । ६।३५ के बाद ।

८ मानस २।२७ ९ प्रसन्न राजन ६।४६

१० प्रसन्न राजन ७।६—७ ११ , ७।२४

१२ मानस ६।६२—७७

भी ध्यान आ जाता है^१, जिसका संकेत 'मानस' में नहीं है।^२

इस नाटक के राम हनुमान् को संका से ही भरत के पास अयोध्या भेज देते हैं^३। 'मानस' में वे उन्हें प्रयाग से भेजते हैं।^४ इसमें अयोध्या के मार्ग का बड़ा ही संक्षिप्त वर्णन है। समुद्र तट से दम्बरकन गोदावरी और यमुना आदि के पन्चाशु बिम्बकूट पहुँचने का उल्लेख केवल एक ही श्लोक में किया गया है।^५ 'मानस' में मार्ग में पड़ने वाले स्वर्गों का विस्तृत और साभिप्राय वर्णन मिलता है।^६

(८) बास रामायण—राम कथा से सम्बन्धित यह सबसे बड़ा नाटक है। इसके लेखक महाकवि राजशेखर स्वयं को वास्त्विक भर्तृहरि और भवभूति का अवतार मानते हैं। इस नाटक के १० अंकों में 'रावण के विभिन्न आयमन से लेकर राम के अभियेक' तक का समस्त कथानक बड़े ही रोचक और आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटककार ने अनेक प्रसंगों में मौसिकता का समावेश करके इसमें अपनी विशेष प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। उसकी इन नाटकीय विशेषताओं का निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है—

इस नाटक में प्रहस्त के साथ रावण स्वयं विचिता में उपस्थित होकर जनक से सीता की माचना करता है^७। जनक की प्रणप्ति के लिए 'शिवबनुप' को वह पहले उठा सेता है^८ किन्तु उसे मंग करने के पूर्व वह इस 'बनुप' को अपना अपमान समझ कर उस बनुप को दूर फेंक देता है।^९ 'बनुप' के इस अपमान से दुःख होकर जनक रावण को मारने के लिए जब अपना बनुप उठा सेते हैं, तब ऋषि शून-सेष उन्हें रोकते हैं। जब वे उसे छाप देना चाहते हैं तब छतानम्ब उन्हें समझाते हैं।^{१०} उसी समय रावण सीता के भावी पति को अपना शत्रु और बध्य मानने की प्रतिज्ञा करके वहाँ से जाता है।^{११} अभिमानी रावण के हाथ वहाँ इससे परशुराम से अपना परशु मांगने और न देने पर क्रोध करने का भी वर्णन है।^{१२} 'मानस' में वे वर्णन नहीं है।

१ हा वत्स लक्ष्मण विक्रासव मेधपद्मे भागाधिर्ब मुपपदेव समस्तमस्तम् ।

भाग्य दिवाकरकृतस्य च बोधितं च रामस्य किं च गणनाजगमुमिसाया

॥७१३०॥

२ मानस ६।६१

३ प्रसन्न राघव ७।७२ के बाद

४ " ६।१२१

५ ७।७८

६ " ६।११६-१२१

७ बास रामायण १।३४

८ बास रामायण १।७६

९ रावण-सोऽर्ह दुर्मदबाहुदण्डलजिबो संकेरवरस्तस्य मे-।

का रतावा पुन जर्जेरज बनुपा कृप्येन भन्नेनवा ॥१।२१

१० बास रामायण १।२४-२७ के बाद ११ बास रामायण १।६१

१२ " २।१६-१९

इस नाटक में सीता के विरह से व्याकुल रावण के उपचार के लिए अनेक प्रयत्न किए जाते हैं जिनमें भरतमुनि द्वारा एक सीता-स्वयंवर नामक गर्भक (नाटक में नाटक) के प्रयोग की भी योजना है,^१ जिसमें स्वयंवर के लिए निमन्त्रित अनेक राजाओं ने समझ बनूर्सन करके राम सीता को विधिवत प्राप्त करते हैं।^२ रावण इस वृथ्व को देखकर उद्विग्न होता है किन्तु उसे नाटक मात्र समझकर धान्त हो जाता है।^३ 'मानस' में रावण के विरहोपचार और इस गर्भक-योजना का कोई संकेत नहीं है।

इसमें राम से क्रुद्ध होकर परशुराम उनसे युद्ध करने के लिए इतना घस्त्रास्त्र संघर्ष करते हैं कि उसे होने के भय से उनके शिष्य रातों-रात भाग जाते हैं^४ कसहृदिय मारक इस युद्ध-वर्षन के लिए सब देवताओं का आवाहन करते फिरते हैं।^५ उस समय दशरथ इन्द्र के अतिथि हैं, अत इन्द्र उन्हें राम की रक्षा के लिये अपने सारथि मातलि के साथ सीध ही सिधिया भेज देते हैं।^६ 'मानस' में इन देवताओं का कोई संकेत नहीं है।

इसमें परशुराम-विबाध का बड़ा विस्तृत वर्णन किया गया है। राम के बराबर लज रहने पर भी जब परशुराम अपना अग्र श्रेष्ठ प्रमट ही करते जैसे जाते हैं,^७ तब उनका दमन करने के लिये जनक अपना धनुष उठाते हैं।^८ उस समय दशरथ राम को ही समर्थ बतलाकर उन्हें रोक लेते हैं।^९ वहाँ राम की परीक्षा के लिए परशुराम के द्वारा दिए गए शिष्य धनुष को सम्मन बीच में ही लेकर सम्म्य कर देते हैं।^{१०} जिस पर प्रसन्न होकर जनक उनके साथ उमिसा के विवाह की घोषणा कर देते हैं।^{११} इस बल-परीक्षा के पश्चात् भी परशुराम धान्त नहीं होते हैं और युद्ध के लिए राम को लेकर नैपथ्य में जैसे जाते हैं।^{१२} 'मानस' के परशुराम के द्वारा शिष्य धनुष सम्म्य करने पर उनकी स्तुति करते हुए विवाह हो जाते हैं।^{१३}

इस नाटक में रावण की विरह-शान्ति के लिए एक 'यज्ञ-जानकी का विचित्र प्रयोग किया गया है जिसमें सीता और उसकी जात्री की कठपुतलियाँ बना कर

- | | | | |
|----|---|----|-------------------------------|
| १ | बास रामायण ३।१० के बाद | २ | बास रामायण २।११-२६ |
| ३ | रावण — (सस्मरणलज्जम् । भारमयतम्) कर्ष प्रेक्षकमेतत् ।
मुखा संरूप्य मस्मायिः । ३।२३ के बाद | | |
| ४ | बास रामायण ४।१ से पूर्व | ५ | बास रामायण ४।४-८ |
| ६ | बास रामायण ४।१० के बाद | ७ | बास रामायण ४।३८ ६०, ६२, ६३ ६६ |
| ८ | ' ४।६७-६८ | ८ | " ४।६६ |
| ९ | " ४।७३ | | |
| ११ | जनक—हरधनुषि हृत्विरोधमेन चितितनयापरिपापित पत्नी मृत ।
विहितमपरिमायितं पत्नत्वं पुनरिदमूमिन्नया मुच्यतिवापै ॥३।२१ | | |
| १२ | बास रामायण ४।८२-८४ | १३ | मानस १।२८४-२८३ |

उनके मुख में 'सारिका' स्थापित की जाती है जो राम से प्रेमाभाष करती है, किन्तु उसके स्पर्श से अन्त में रहस्योद्घाटन हो जाता है और वह अत्यन्त निरास होता है।^१ वहाँ राम के निरह-प्रसाप और उन्माद का अति विस्तृत वर्णन किया गया है जिसमें उसके उपचार के लिए पट चतुर्भों के आशेषन के म्याज में मादककार के अत्यन्त सरस चतु-वर्णन भी प्रस्तुत कर दिया है।^२ 'मावस' में वह सब नहीं है।

इस नाटक में राम-निर्वासन के कर्मक से केकयी की मूक्त करने के लिए एक 'रादास-पदार्थ' की खोजना की गई है। वहाँ दसरथ और केकयी की अनुपस्थिति में माधामय और भूर्वजसा अयोध्या आकर और उनका सम्बन्ध रूप बारण कर्के परस्पर 'हरदान-याचना' का नाटक करते हैं तथा राम आदि को वहाँ से निवासित करके भाग जाते हैं।^३ 'मानस' में ऐसा कुछ नहीं है।

इसमें सुमंत्र राम आदि के साथ लम्बा तक बातें हैं इसीलिए वे वहाँ से लौट कर 'विद्युत-वध' तथा 'अयन्त-सासन' आदि की घटनाएँ भी दहरथ को सुनाते हैं।^४ 'मावस' में वे केवल अंगाठ तक ही उनके साथ रहते हैं।^५ इसमें सुमंत्र के आशयन के पश्चात् बटामु का एक दूत जाकर दहरथ को 'सीता-हरण' और 'पटावृषभ' का समाचार देता है जिसका उन पर मातक प्रभाव पड़ता है।^६ 'मावस' में 'सुमंत्र मिलन' के बाद ही दहरथ-मरण का वर्णन किया गया है।

इस नाटक में राम के साथ से आहत समुद्र ज्योतिष मयाए और पट्टी बाधे हुए तथा साथ में लंबा-अमुना की लेकर राम की घरण में उपस्थित हो जाता है। वह राम से उन नदियों का परिचय भी कराता है और सेतुबन्ध के लिए उपयुक्त स्थान बतला कर नग की अति का संकेत करता है।^७ 'मानस' में समुद्र का यह अतिव्यपित वर्णन नहीं मिलता है और वहाँ वह नग के साथ गीत को भी सेतुबन्ध में समर्थ बतलाता है।^८

इसमें बुद्धभूमि में राम से उक्त पुत्रोक्त 'अग्नि-जानकी' का चिर काट कर राम के समस कैंक देता है। जब राम उसे सत्य समझकर खिल होते हैं तब उसके अग्नि कण्ठ में स्थित सारिका रहस्योद्घाटन कर देती है जिससे वे घाम्त हो जाते हैं।^९ 'मानस' में इसका वर्णन नहीं है।

इसमें राम के एक विभिन्न पुत्र सिंहनाद का उल्लेख है, जिसके

१ रामय-कथमयत्नैव संस्पर्शः । (पुननिस्स्य) बने । सारिकापिठियावर्ण
सीताप्रतिकृतियग्गम् ॥ ५-२२ के बाद

२ बात रामायण ३।२२ के बाद-७६

४ " ६।४२-४३

५ " ६।३६-३९

६ बात ३।३६-६०

३ बात रामायण ६।४ के बाद

५ मावस २।१००

७ बात रामायण ७।३४-४३

८ बात रामायण ७।७१-७६

१ मूँह और १० भूजामे हैं ।^१ 'मानस' में उसका उल्लेख नहीं है ।

इस नाटक में रावण युद्ध के पूर्व राम के पास एक सन्देश भेजता है कि मीथिल रक्षपाल के स्वाम पर केवल एक निर्णायक इन्द्र युद्ध हो जाने जिसमें यदि उनका पक्ष जीते तो संका और सीता उनकी, और यदि उसका पक्ष जीते तो अयोध्या और सीता उसकी हो जाएँ ।^२ राम इस चुनौती को स्वीकार करके अपने पक्ष से अर्जुन को नियुक्त करते हैं और रावण अपने पुत्र नरान्तक को भेजता है । इस इन्द्र युद्ध में अर्जुन के द्वारा नरान्तक का वध कर दिए जाने पर भी रावण 'हर्त' से विमुख होकर युद्ध की घोषणा कर देता है ।^३ 'मानस' में इस इन्द्र-युद्ध का कोई उल्लेख नहीं मिलता है ।

कूर्मकर्म की अगाने के लिए इस नाटक में अनेक प्रयत्न किए जाते हैं । उलकादि सर्पों के संघ संघके लिए भूनाम-वत् छिद्र होते हैं । हिमालयादि पर्वतों का भार उसको बदा पर कन्दुक के समान लगता है विष्णुओं की शक्ति भी वहाँ स्थित हो जाती है और उपरिवार शकर भी हार मान जाते हैं ।^४ अग्नि में वह कामिनियों के स्तन-स्पर्श से ही स्वयं जागता है ।^५ 'मानस' में इसका कोई विवरण नहीं दिया गया है ।^६ इसमें राम के साथ कूर्मकर्म और मेघनाद दोनों का समान युद्ध बसता है और अग्नि में दोनों के वध भी घोषणा भी साथ ही होती है ।^७ 'मानस' में पहले कूर्मकर्म का वध होता है फिर मेघनाद का ।^८

इसमें इन्द्र के साथ विमान पर बैठे हुए अक्षरुण भी 'राम रावण-युद्ध' का वर्णन कर रहे हैं और बीच-बीच में उसकी टीका टिप्पणी भी करते हैं ।^९ उन दोनों के संवाद में ही समस्त युद्ध और 'रावण-वध' का वधन पूरा कर दिया जाता है ।^{१०} 'मानस' में इस संवाद की योजना नहीं है ।

इस नाटक में भी संका से अयोध्या के लिए यात्रा करते समय राम का पुष्पक विमान हिमालय कंठास मानसरोवर, मन्वराजस खीर सागर, सुमेरु इन्द्रसोक और अग्रसोक^{११} तक जाकर फिर सैतुबन्ध अमस्त्यामय केरस, आग्नि, कर्नाट मङ्गराष्ट्र विश्वं नाट, मानस काव्यकृष्ण, प्रयाग, वाराणसी मिथिला^{१२} जाति होता

१ वास रामायण ७।८०-८०

२ रावण-किमञ्जिलवानरराक्षसव्यकरेभ संयामेण तरेण तुकाद्युतं प्रवर्तयाम तत्र च ।
वसुकाङ्ककारविजये तत्र राम । संका सीता च ते पुनरियं भवतो स्तु वाराण
वसुकाङ्ककार विजये तु ममाधिपत्यं तस्मै च ते पुरि कसमजने च तत्र ॥८१२

३ वास रामायण ८।६-१०

४ वास रामायण ८।२१ ३१

५ " ८।१४

६ मानस ६।६२

७ वास रामायण ८।८१, ८२

८ मानस १।६४ ६७

८ वास रामायण ८।१२ से १।२९

१० वास रामायण १।१७-२९

११ १०।२७-४१

१२ " १०।४३-६९

रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन

हुमा जन्त में समोष्मा पहुँचता है। 'मानस का मार्ग-वर्धन बहुत सरल और संक्षिप्त है।'

समोष्मा पहुँचकर इस नाटक के राम भरत से सुधीव और विभीषण का परिचय कराते हुए उन्हें 'सीता-देवर कहते हैं।' 'मानस' के राम उन्हें सखा और भरत से भी अधिक प्रिय बतलाते हैं। 'मानस' में राम भरत-मिसन के पूर्व ही पूष्पक को सूबेर के समीप जाने की आज्ञा दे देते हैं। जबकि इसमें 'रामाभिवेक' के उपरान्त सूबेर स्वयं जाकर उनसे अपना विमान माँग ले जाते हैं।^१

(६) हनुमन्नाटक—इस नाटक को हनुमान के द्वारा लिखित राजा भोज के द्वारा उद्धृत और रामोदर मिश्र के द्वारा संपादित कटा जाता है। इसको 'महा नाटक' के नाम से भी उल्लिखित किया जाता है जो सम्भवत इसके १४ अंकों के विस्तार पर आधारित है। इस नाटक में नाटकीयता कम है किन्तु वर्णन की भाषा अत्यधिक है। इसके अतिरिक्त इसमें अन्य प्राचीन कवियों भवभूति मुचारी और कृष्णदेव भाषि के प्रसिद्ध दसोहों की भी श्यों का स्थो उपसृष्टि कर लिया गया है। कृष्णदेव के दृष्टिकोण से इस नाटक का भी 'मानस' पर बहुत प्रभाव है। इसके अनेक दसोहों का उद्घाटन और माणानुवाद 'मानस' में अनेक स्थलों पर बड़ी सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। तुलसी ने इस नाटक के कई संकेतों से उल्लेखित होकर 'मानस' में बड़ी-बड़ी उद्घाटनार्थ की हैं। इस नाटक की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं—

इसमें विष्णु के चतुर्पा विमल होकर, दशरथ के पुत्र बनने का वर्णन किया गया है।^२ 'मानस' के विष्णु राम अपने माहियों को अपना बंधावदार कहते हैं—

असह्य सहित मनुज अवतारा । सेहवँ दिनकर बंस उवारा ॥ १।१८७

इस नाटक में 'मनुर्गण' में आर्म्भित सभी राजाओं को उसमें अद्यमर्न देसकर राम को जो धीम होता है < 'मानस' में उसी को अमर के द्वारा व्यक्त कराया गया है।^३ बड़ी पर लक्ष्मण अपना जो 'सक्ति-वर्धन' राम से करते हैं। उषी को 'मानस' में वे अनेक से करते हैं।^४

इसमें भी राजन का एक पुरोहित उसके लिए अनेक से सीजा की माचना

१ मानस १।११९ १२१
" ७।८

२ बास रामायण १०।१०१ के बाद
४ मानस ७।४

राम—विमानराज । भयवता धनदेन प्राप्यसे समर्प्यसे च ।
हनुमन्नाटक १४। २४-२६

उर्ध्वीर्ध्वरभूरिमाहुरणे भूरिपवा पुनता
मस्यार स्वमपो विनाय महित पूर्ववचतुर्पा विष्णु ॥१।१२
हनुमन्नाटक १।१०
" १।११
१ मानस १।२१।२२२
११ " १।२२३

कटा है और राम को 'सीता-ग्रहण' से रोक्ता भी है ।^१ 'मानस' में इसका संकेत नहीं है ।

'राम-नरगुराम-विबाह' इसमें 'मानस' की तरह भिक्षा में ही ठीक अनुर्मग के परचात् उपन होता है किन्तु यहाँ राम अथ तक शास्त्र नहीं रखते हैं । ये परगु राम को 'बुद्धिद्वज' कह कर उनके दमन के लिए 'बदपरिचर' भी हो जाते हैं ।^२ 'मानस' के राम अधिक यत्नीर हैं ।^३

इसके 'बानकी-विभास' नामक द्वितीय अंक में राम और सीता के सम्भोग गृ पार का विस्तृत वर्णन किया गया है जो अनेक स्वप्नों पर अरपीस भी हो गया है ।^४ 'मानस' में यह वर्णन नहीं है ।

इसमें राम निर्वासन के लिए 'मानस' से भिन्न एक अन्य योजना है जिसमें बभोष्मा में किसी समय महान् उत्पातों एवं अचकूनों को देखकर केकयी सीता को कर्मवशी बधु और राम को कुष्माण्ड-मूर्ति कहती हुई उन दोनों के निर्वासन और मरत के बीरराज्य की प्रार्थना उद्यरप से करती है ।^५ इसमें 'राम-जल-ममन के समय मरत बभोष्मा में उपस्थित हैं और 'राम-निर्वासन के कारण 'मानस' के मरत के समान ही दुःख्य हैं ।^६ इसमें 'चित्रकूट मिसन' नहीं है किन्तु मरत का नभिसाम प्रवास 'मानस' के समान ही वर्णित हुआ है ।^७

बन-मार्ग में स्थियों के द्वारा राम का परिचय पूछे जाने पर, इस नाटक की सीता कुछ मुस्कण कर, सज्जापूर्व कटास करती हुई और मुँह को कुछ मुकाठी हुई अपने मीन से ही सब स्पष्ट कर देती है ।^८ 'मानस' में वे पहिले लक्ष्मण का परिचय 'देवर्' कहकर देती हैं, फिर वह इन्हीं श्रेष्ठियों के द्वारा वे अपना आसय स्पष्ट करती हैं—

सहज मुभाय मुमय तन गोरे । मामु सखनु सनु देवर मोरे ॥

बहुरि बरनु निभु अचस डीकी । पिय तन चितइ भौह कर डीकी ॥

संबन मंनु तिरीये जयननि । निज पति कहेउ तिगुहि सिधं सपननि ॥

इसमें राम के 'बहिस्पोडार' पर व्यंग करती हुई सीता उनसे कहती कि उनके चरचस्वसे से सभी चिन्ताओं के हरी बन जाने पर अनेक मुनि और तपस्वी 'उपस्तीक' हो जायेंगे ।^९ तुलसी ने सीता के इस व्यंग का उपभोग 'माकस' के

२।११७

१ हनुमनाटक १।१२-१३

२ मानस १।४८१-४८४

३ हनुमनाटक ३।३

४ " ३।११

५ " ३।१४

२ हनुमनाटक १।४६

४ " २।१-३०

६ ' ३।४ ८

७ मानस २।३२४

१० परचमसरजोनिर्मुषनवागानवेदामतमन परहृना बीतयो धर्मपरतीम् ।

अतिरिक्त अन्य ग्रंथ में किया है।^१

इस नाटक में सीता के हरण के अवसर पर उनकी कसल बचा और बटायु मुद्रा का वर्णन^२ 'मानस' से बहुत साम्य रखता है।^३ 'मानस' के राम की ही तरह^४ इस ग्रंथ के राम भी बटायु से यह प्रार्थना करते हैं कि वह स्वर्ग जाकर बरारण्य से सीताहरण^५ की चर्चा न करे।^६

इस नाटक का बासि राम के ऊपर आक्रमण करने के लिए जब कुटिल सप्तवासों की भेद्यता है तब उसमय अपने चरण के भार से उनको सीधा कर देते हैं और फिर राम एक ही बाण से उन्हें समाप्त कर देते हैं^७। 'मानस' के राम सुग्रीव के निवेदन पर उन तापों का उन्मूलन कर के उसे अपनी शक्ति का परिचय देते हैं।^८ तारा का उल्लेख बासि द्वारा अपहृत सुग्रीव-पत्नी के रूप में किया गया है, जो सुग्रीव से 'पुनर्मिसन' के लिए बासि के बच की कामना भी करती है।^९ 'मानस' की तारा बासि की पतिव्रता पत्नी है और वह उसे राम-विरोध करने से रोकती है।^{१०} इसमें राम बासि-बच के प्रायश्चित्त स्वस्व अपने बचसे ब्रह्म (कृष्ण-ब्रह्म) में बदला देने से लिए बासि को बरबाद भी देते हैं।^{११} 'मानस' में इसका उल्लेख नहीं है।

इसमें बाम्बवान् हनुमान् के खाबतार होने का उल्लेख राम से करता हुआ उनसे सीता-खोज के लिए उनकी स्तुति करने की प्रार्थना भी करता है।^{१२} जिसके बाद हनुमान् राम से अपने पराक्रम का विस्तृत वर्णन करते हैं।^{१३} 'मानस' में इसका संकेत नहीं है।

इसमें हनुमान् को प्रत्यभिज्ञान देती हुई सीता मन्त्रिसमा-विसृक्त^{१४} का भी वर्णन करती है, जो 'मानस' में नहीं है।

विभीषण के समझाने पर इस नाटक का राजक स्पष्ट कहता है कि वह राम के हाथों से अपनी मृत्यु को निश्चित बातकर भी सीता को वापस करने में असमर्थ है।^{१५}

त्वयि चरति विधीर्ब्रह्मविभ्याद्विपादे कति कति चकितारस्तापसा वारवंत ।

१।१९

- | | |
|---------------------------|--------------------|
| १ कवितावली । अयोध्या । २८ | २ हनुमनाटक ४।७।१४ |
| ३ मानस १।२६ | ४ मानस १।३१ |
| ५ हनुमनाटक २।१६ | ६ हनुमनाटक २।४४-४६ |
| ७ मानस ४।७ | |
| ८ हनुमनाटक २।३१ | ९ मानस ४।७ |

१० रामः—शुद्धिर्भविष्यति पुरम्बरमन्दन त्वं मायेव वेदहृद् पाठकिं यमानम् ।
सास्वाभिर्न निरपराधिनमाहनिष्यत्यस्मात्पुनर्जनकया विरहोऽस्तु मा मे ॥ २।३७

- | | |
|------------------------|-------------------|
| ११ हनुमनाटक ६।२ के बाद | १२ हनुमनाटक ६।१-६ |
| १३ , ९।३३ | |

१४ जानामि सीतां बन्धुप्रसूतां जानामि रामं मधुसूदनं च ।
बर्षं च जानामि विद्वं दद्यात्पस्तयापि सीतां न क्षयंपयामि ॥ ७।११

मुनसी ने रावण की इस गबोचिंत को उसकी हठधर से पूर्ण भक्तिभावना में परि
 षठ कर दिया है—

सुर रंजन भंजन महि भारा । जो भयवत सीम्ह जबतारा ॥

ती में जाइ बैब हठि करळ ॥ प्रभु सर प्रान तजें भव तरळ ॥ १।२१

इस नाटक का अंशव राम से बालि-जब का बचता लेने के लिये ही रावण को युद्ध
 के लिए मड़काता है । वह बालि के सम्बन्ध से रावण को भी समुभाव से देखता
 है ।^१ इसका 'रावण-अंगद-संवाद' 'मानस' के संवाद से बहुत भिन्नता जुसता है ।^२

इसमें रावण कुम्भकर्ण को युद्ध में इसलिए पहले भेजता है कि कहीं वह
 उसे ही न समाप्त करदे ।^३ 'मानस' में इसका संकेत नहीं है ।

इसमें सीता का बधित करने के लिए रावण बहुत प्रयत्न करता है । पहले
 वह राम-नक्षत्रण के कटे हुए नकली शिरो को उसके सामने प्रस्तुत करता है जो
 पोंड़ी देर में आकास में उड़ जाते हैं ।^४ फिर वह अपने नकली कटे हुए १० शिरो
 का लेकर राम के भेष में सीता के सामने जाता है । जब वे उसे राम समझ कर
 स्नान के लिये बौझती हैं, तब वह नमकूवर के साप के प्रभाव से बनीब हो जाता
 है और वहाँ से भाग जाता है ।^५ 'मानस' में रावण के इन प्रयत्नों का वर्णन नहीं है ।

इसमें रावण के द्वारा प्रेषित प्रभजनी नाम की एक राक्षसी राम-सदमण का
 बध करने के लिए रात्रि में चुपचाप उनके सिबिर में प्रवेश करती है । अंगद उसे
 देखत ही मार डालते हैं ।^६ 'मानस' में इसका भी उल्लेख नहीं है ।

इस नाटक में एक राक्षसी सरमा सीता को 'पुष्पक-विमान' पर बिठा कर
 राम-रावण-युद्ध के पूर्व ही उन्हें राम के दर्शन करा देती है ।^७ एक अन्य बखसर
 पर वह रावण की आज्ञा से मेघनाद के मागपाश में जाकर राम और सहमण के
 दर्शन भी सीता को कराती है । उसी समय उनके सामने मरुड आकर उन दोनों
 को (राम सहमण को) स्वस्थ करते हैं ।^८ मानस में केवल राम के ही मागपाश
 बज होने का वर्णन है और वहाँ उन्हें देखने के लिए सीता को नहीं भेजा जाता है ।^९

इसमें हनुमान् के रणकीरम से दुग्ध हाकर रावण बध सहा पर आक्रमण
 करता है तब वे मारव को आज्ञा देत हैं कि वे हनुमान् को कहीं अग्रयन से जायें

१ हनुमनाटक ८।१

२ हनुमनाटक ८।४ २८

३ मानस ६।२० ३३

४ रावण—नीतिशास्त्रमिदं भूत्वा कुम्भकर्णं बधविद्वसती ।

हन्ति चेन्मानसो मुदे प्रबभं प्रेष्यतामयम् ॥१।३०

५ हनुमनाटक १०।१ ३ के बाद

६ हनुमनाटक १०।१८ २१

७ ११।२ ३

८ ११।११ के बाद

९ " १२।६ १२

१० आनन्द ६।७३-७४

वाकि राजस्य सफल हो सके ।^१ 'मानस' में ब्रह्मा की इस विवशता का कहीं संकेत नहीं है ।^२

इस नाटक में 'लक्ष्मण-भूषण' के अवसर पर सुमित्रा को ज्योष्मा में 'कुस्वप्न' होता है और वह उसकी छात्रिणी भी करवाती है ।^३ 'मानस' में इसका वर्णन नहीं है । 'मानस' के वर्णन के समान^४ इसमें भी 'संजीवनी पर्वत' लिखे हुए हनुमान् ज्योष्मा के ऊपर से धाटे हैं और मरत उन्हें बाध से मार कर नीचे गिरा देते हैं ।^५ शेष आख्याना में भी दोनों ग्रंथों में बहुत साम्य है किन्तु यहाँ ज्योष्मा से लीटते समय हनुमान् कासनेमि आदि का बध करते हैं,^६ जब कि 'मानस' में उसका वर्णन उनके प्रस्थान-काक में ही किया गया है ।^७

इसमें सीता की बापसी के बरसे में राजस्य राम से परशुराम का अनुपमापता है, जिसे देने में राम अछमर्षता व्यक्त करते हैं < फिर वह संक्षि के लिए जब मन्धोदरी से परामर्श करता है तब वह छगि-बाटां को व्यर्थ बतला कर स्वर्ग बुद्ध में जाने की आज्ञा मायती है ।^८ 'मानस' में यह वर्णन नहीं है । यहाँ राम राजस्य बध के परश्याय मन्धोदरी को विभीषण से विवाह करने के लिए परामर्श भी देते हैं,^९ जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं है ।

इस नाटक में राम के ज्योष्मा पहुँचने पर अंबव वासि-वप का बहसा लेने के लिए जब राम पर एकदम आक्रमण करना चाहता है^{१०} तब एक आकाशवाणी से यह सुनकर कि वासि अपने जन्म में राम से अवश्य बधला ले लेगा वह छात्र ही जाता है और राम की स्तुति करने समता है ।^{११} 'मानस' का अंबव ऐसा विकार प्रस्त नहीं है ।

इसमें 'सीतापवाद' से लेकर 'राम-स्वर्गाटोह्य' तक का भी अति संक्षिप्त वर्णन केवल दो श्लोकों में ही किया गया है,^{१२} जो 'मानस' में नहीं है ।

(१०) महानाटक—'हनुमत्नाटक' और 'महानाटक' दोनों में बड़ी समानता है । इन दोनों ग्रंथों को अधिकतर विद्वान् एक ही ग्रंथ मानते हैं क्योंकि दोनों के आरंभ से अंतिक श्लोक समान हैं । 'महानाटक' के भी रचयिता स्वर्ग हनुमान् माने जाते

- | | | | |
|----|---|---|----------------------|
| १ | हनुमत्नाटक १११-१२ | २ | मानस ६१७-६१८ |
| ३ | " १११-१२ २४ | ४ | ६१८ |
| ५ | ११-२४ | ६ | हनुमत्नाटक १११-१२ १२ |
| ७ | मानस ६१२-६१७ | ८ | १४१२ |
| ९ | हनुमत्नाटक १४१४-७ | ९ | १४१२ के बाद |
| ११ | " १४७-२ | | |
| १२ | आकाशवाप्यमन्धोदरीवधो छ वासी वासो हनिष्यति पुनर्ममुरावतारे ।
सुरवा विसोवय रघुनन्दनवानराणां काश्यपमन्त्रसिपुर्त्तं छ रघामिभूष । १४१७ | | |
| १३ | हनुमत्नाटक १४१६-१७ | | |

है किन्तु उसके सम्पादक मधुसूदन मिश्र हैं। इस महानाटक में १ अंक है जिसमें 'राम-जन्म' से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक का समस्त कथानक प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों के अनेक श्लोक संग्रहीत हैं, जिनसे इसकी परवर्तितता स्पष्ट हो जाती है। 'हनुमत्नाटक' से बहुत समानता रखते हुए भी इस नाटक की कुछ अपनी विशेषतायें हैं।

इसमें भरत को उपदेश देते हुए राम उनसे 'शिव भक्ति' करने के सिद्धे विशेष आग्रह करते हैं^१, जिसका 'मानस' में उल्लेख नहीं है यद्यपि वहाँ अग्न्य प्रसवों में शिव को पूज्य बतलाते हुए राम उनकी भक्ति को ही सर्वोपलब्ध ठहराते हैं।^२

इसमें 'बह्मस्योद्धार' का संकेत करता हुआ गुरु राम के शरणों में 'मानुषी करण रेणु' की उपस्थिति की आशंका करता है और इसीसिद्धे तीकारोहण के पूर्व उनके शरणों को जाने का आग्रह करता है।^३ 'मानस' में तुलसी ने इस प्रसंग को इसी आधार पर भक्ति-संबन्धित कर दिया है—

मागी नाथ न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं आना ॥

बरण कमल रज कहुं सब कहई । मानुष करणि मूरि कहुं कहई ॥

बो प्रमु पार लखिसि मा कहहु । मोहि पब पदुम पचारन कहहु ॥१।१००

इसमें 'कपट भिक्षु' के भेष में उपस्थित होने पर भी रावण को सीता पहिचान जाती है और मिथ्या के लिए उससे हाथ जोड़ कर क्षमा माँग लेती है।^४ 'मानस' में इस घटना का वर्णन नहीं मिलता है।^५

इसमें 'गुपीक-प्रमाद' के वर्णन में लक्ष्मण के समझाने पर भी गुपीक यह कहता है कि वह राम को विस्मृत नहीं जानता है, किन्तु जब न उसे अनुप-बाण से घमकाते हैं तब वह अपने प्रमाद के लिए क्षमा माँग लेता है।^६ 'मानस' का वर्णन इससे विभिन्न है।^७

संका में सीता-शोभ-कार्य करते हुए इस नाटक के हनुमान् रावण के सभी भाइयों स्वियों मित्रियों, सचियों और पुत्रों के यक्षों की शूपश्राप लक्षारी लेते हैं, फिर निराश होने पर उन्हें यह आशंका होती है कि रावण के साथ समुद्र पार करते समय, सीता दुःख के कारण कहीं समुद्र में तो नहीं गिर गई।^८ 'मानस' में भी हनुमान् के द्वारा प्रतिभवन-धोष करने का उल्लेख है जिसके अन्त में भी विधीपक्ष

१ महानाटक ३।३४

२ मानस ६।२-३

३ गुरु — मानुषीकरण रेणुरस्ति ते पादयोरितिकथा प्रवीयसी ।

शाक्यपाणि तब पादपङ्के नाप दाह दुयदोरस्तु का मिया ॥१।४३

४ महानाटक ३।९४

५ मानस ३।२८

६ " ३।१४-१५

७ " ४।२०

८ " ३।३६-३७

के संकेत से सीमे बसोक-बाटिका बाकर सीता के दर्शन करते हैं।^१ वहाँ उनका किसी आरांका का वर्णन नहीं है।

इस नाटक का रावण सीता को प्रलोभन देता हुआ केवल एक वृषादूषि के लिए मन्बोदरी भादि १०० रादिनों को उसकी सेवा में नियुक्त कर देने की प्रतिज्ञा करता है। वहाँ वह सीता के चरणों पर गिरकर जब हाथों से उन्हें पकड़ भी सके तब वे उसे बहुत फटकारती हैं।^२ 'मानस' में रावण के प्रलोभन का ही इस प्रकार वर्णन है—

कह रावणु मुनु मुमुक्षि स्यामी । मन्बोदरी भादि सप्त रागी ।

तव अनुचरीं करचें पन गोरा । एक बार बिसोक मम बोरा ॥११६॥

इसमें हनुमान् को बिबा करती हुई सीता उन्हें ल. फस देती हैं जिसमें से एक राम के लिए, एक लक्ष्मण के लिए, एक सुग्रीव के लिए एक स्वयं हनुमान् के लिये और छेप दो फल बानर सेना के लिए हैं।^३ मानस में यह फल-वितरण नहीं है।

इस नाटक में 'हांका-बाह' के बबसर पर पानी की पुकार करता हुआ रावण अपने बसों मुसों से समुद्र के बस नाम लेकर बिस्ताता है।^४ सेतुबन्ध के बबसर पर समुद्र को बिनकारता हुआ^५ और साव ही आरचर्च भी प्रकट करता हुआ^६ वह फिर समुद्र के बस नामों का उल्लेख करता है। मानस में वह सेतुबन्ध पर बन्दित होकर अपने बस मुसों का एक साथ प्रयोग केवल एक बार ही करता है^७—

बांभ्यो बतनिधि नीरनिधि असधि सिंधु बारीस ।

सयम तोयनिधि कम्पति उबधि पयोधि नरीस ॥११७॥

इसमें बिभीषण अपनी माता तिकुपा से प्रेरित होकर ही रावण को सीता त्याग के लिए समझाता है।^८ 'मानस' में वह स्वयं राम-भक्त है और अपने हृदय की प्रेरणा से यह कार्य करता है।^९

इस नाटक में 'रावण-अंमद-संवाद' का वर्णन अत्यन्त विस्तृत है^{१०} और

१ मानस १।१-८

२ एकोनाश्च सतीकराजमहिषीरत्यवत्या बमन्बोदरी ।

सेवार्थं विनिपुम्बते च सकसं हांकापिपत्वाय से ॥११७॥

३ महानाटक १।१८

४ महानाटक १।१६

५ धिक स्वां नाम तवाम्बुधि सभिलधि पानीपबिस्तोयधि

पायोबिर्बलधि पयाबिद्वयभिर्बाटाभिभिर्वादिधि ॥ १।१६२

६ महानाटक १।१३

७ मानस १।१३

८ १।११-४३

९ १।१८-४१

१० रे रे रावण हीन भीम कुमठे रामोर्जवि कि मानुष ,

बनेक स्वसों में यह मानस' के संवाद से बहुत साम्य रखता है।^१

इस नाटक की सीता नागपाश में राम को मृतप्राय देख कर अत्यन्त विलाप करती है और बह्विध विषयान्वित, पीठम व्यवन आदि उन ऋषियों को झूठा कहती है किन्तु इनके कभी भी विषय न होने की यथिय्यवाणी की थी।^२ 'मानस' में यह वर्णन नहीं है।

इस नाटक में भी सीतापवाद' से लेकर राम-देह-स्वाग का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है।^३ त्रिसका 'मानस' में उक्तया समाप्त है।

(११) आरक्ष्यं ब्रह्ममणि—इस नाटक के लेखक महाकवि धर्मिन्द्र हैं। इसके ७ वकों में 'सूर्पणखा-आगमन से लेकर सीता-मुक्ति तक की कथा का वर्णन किया गया है। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह एक अद्भुत-रस-प्रधान नाटक है। इसमें राम के पास एक अद्भुत मुद्रिका है और सीता के पास भी वैसी ही एक ब्रह्ममणि है जिसका स्पर्श-मात्र से मायाविधियों की माया नष्ट हो जाती है और वे अपने अपने रूप को ग्रहण कर लेते हैं। इस नाटक की कथावस्तु में नाटककार ने बनेक नवीन योजनार्यों भी की हैं।

इसमें 'सूर्पणखा-विरूपण' प्रसंग में सूर्पणखा के प्रथम वर्णन से तत्काल पहले कुछ विकारग्रस्त होते हैं फिर अपनी स्थिति सोचकर वे सीता ही सावधान हो जाते हैं।^४ जब सूर्पणखा बनेक तर्क प्रस्तुत करती हुई उनसे प्रणय निता मांगती है तब वे अपने उपस्थित और दासत्व का उल्लेख करके उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं।^५ 'मानस' के लक्ष्य इस अवसर पर केवल अपने दासत्व का ही उक्ति करते हैं।^६ इसमें 'राम-सूर्पणखा संवाद' में सीता भी भाष लेती है और वे उसकी अपेक्षा न करने के लिए राम से आग्रह भी करती हैं।^७ 'मानस' की सीता इस अवसर पर मौन है। इसमें सूर्पणखा जब क्रोध होकर तत्काल को पकड़ कर नाकाश में उड़ जाती है तब राम उनकी सहायता करना चाहते हैं किन्तु सीता मय के कारण उन्हें रोक लेती है। इस पर राम स्वयं को बहुत विनम्र करते हैं। उसी समय तत्काल सूर्पणखा का विरूपण करके सज्जन आ जाते हैं।^८ 'मानस' में सूर्पणखा

कि गंवादि नदी गत्र सुरगजोऽप्युर्ध्वयवा कि ह्य ।

कि रम्भाप्यवसा हृत किमु पूर्वा कामोर्ध्वि भग्नी नृ कि

भीमोवयप्रकटप्रतापविभव कि रे हनुमाकवि ॥७१११

१ मानस १।२६

२ महानाटक १।३३

४ आरक्ष्यं ब्रह्ममणि १।९-७

५ मानस १।१७

७ आरक्ष्यं ब्रह्ममणि २।१ के बाद

३ महानाटक १।१२३-१४८

४ आरक्ष्यं ब्रह्ममणि १।८-१०

८ आरक्ष्यं ब्रह्ममणि २।१-१३

के भयकर रूप के दर्शन-मात्र से सीता के भयभीत होने पर राम की आज्ञा से लक्ष्मण के द्वारा उसके विकृष्ट किये जाने का उल्लेख है।^१

इस नाटक में 'सीता-हरण' के पूर्व राम को कुछ असह्युत होते हैं जिनके फलस्वरूप वे ज्योष्ठा पर वज्रुओं के आक्रमण एवं माताओं के स्वर्गवास आदि की आशांका करते हैं।^२ 'मानस' में इसका उल्लेख नहीं है।

इसमें लक्ष्मण राम और सीता को क्रमशः 'अवमूर्तागुलीयक' और 'आश्चर्य बुद्धामणि' घंट करते हैं जो उन्हें चरदूपनादि राक्षसों के बध से प्रसन्न ऋषियों से प्राप्त हुई थी। इन उपहारों के स्पर्श-मात्र से मायारूप-बारी राक्षस अपने असनी रूप प्राप्त कर लेते हैं।^३ मानस में इन उपहारों का वर्णन नहीं है।

इस नाटक में 'मृग-बध' के लिए राम के जमे जाने पर 'हा! लक्ष्मण' की ध्वनि सुनकर सीता उन पर किसी विपत्ति की आशांका करती है और उनकी सहायता के लिये लक्ष्मण को सीध भेजना चाहती है किन्तु राम की शक्ति में पूर्व विश्वास होने के कारण वह लक्ष्मण कोई ध्यान नहीं देते हैं जब वह उनकी कृपुष्टि की आशांका करके उन्हें बाधित, भूमार एवं कामुक आदि कह कर फटकारती है और वहाँ से जमे जाने के लिये विवक्ष कर देती है।^४ 'मानस' में सीता के ऐसे मर्म-बचनों का संकेत है किन्तु उनका कोई विवरण नहीं दिया गया है।^५

इसमें 'सीता-हरण' के लिये एक विविध पद्यग्रह है। वहाँ रावण राम का, उसका सारथि सदमण का और मूर्धन्यता सीता का रूप धारण करती है। इसके पश्चात् रावण और सारथि तो रथ लेकर इधर सीता के समक्ष प्रगट होते हैं और उधर मूर्धन्यता राम को बधित करने के लिये उनको मार्ग में रोक लेती है। फिर राम-रथ रावण सीता से कहता है कि इस ऋषि प्रदत्त रथ द्वारा वे भोग्य सीध ज्योष्ठा पहुँच कर भरत की रक्षा करें क्योंकि वहाँ वज्रुओं ने आक्रमण कर दिया है। वह सीता निराश होकर उसके आकाशमामी रूप में सुरम्भ बैठ जाती है।^६ मार्ग में इधर जब पृथ्वी पर राम और मूर्धन्यता-रुपिणी सीता को देखकर वे उन्हें 'माता' समझती हैं क्योंकि वे सोचती हैं कि गीते वे असनी हैं उसी प्रकार उनके साथ के राम भी (जो वास्तव में रावण है) असनी है, उधर राम भी ऊपर

१ मानस ३।७

२ राम—आक्रमणा किनु बामो भरत इति परैकतय कोषणा मे ।

स्वर्ग द्योकातिमारामम जनकमुत्रे किनु पाठा जनस्य ॥३।२

३ मधिमंशुकेशरितर्मगुलीयक कसपीतसिद्धमपि चारयन्ति ये ।

समवाप्य तानवयमासु माधिन प्रवृत्ति व्रजन्ति सहसा सपाचरा ॥३।१०

४ आश्चर्य बुद्धामणि ३।२८-३१ के बाद ५ मानस ३।२८

६ " ३।११-१२ के बाद

बाकास में सीता और रावण-रूप राम को देखकर उन्हें 'माया' ही समझते हैं क्योंकि वे भी सोचते हैं कि जैसे वे असली हैं उसी तरह से उनके साथ की सीता (जो वास्तव में पूर्णमखा है) असली हैं। इस प्रकार रावण वही राम के समझ ही 'सीता-हरण' करने में सफल हो पाता है।^१

इसके जिस समय सद्यन्त राम-बाण से आहत मारीच को जो राम-रूप धारण कर लेता है, राम समझ कर अत्यन्त विस्मय करते हैं^२ उसी समय राम बाकर उन्हें छाँटना देते हैं किन्तु वे उन्हें राक्षस समझ कर खड्ग निकाल लेते हैं।^३ फिर राम अपनी मुद्रिका विसर्ज्य कर उन्हें भाववस्तु करते हैं और जब वे मारीच का स्पर्श करते हैं तब वह अपने असली राक्षस-रूप को प्राप्त कर लेता है।^४ इस दुःख को देख कर सीता कृपिणी रूपलक्षा पत्रकाकर रोने का बहाना करती हुई जब भावना चाहती है तब राम उसके अम्बु पौंसने के लिये उसे पकड़ लेते हैं, उसी समय मुद्रिका के प्रभाव से वह भी अपने असली रूप में प्रगट हो जाती है, फिर राम के समयमान होने पर वह सारा पद्मपत्र स्पष्ट कर देती है।^५ उधर सीता 'हरण' के पश्चात् बाकास मार्ग में ही सीता के स्पर्श का आमन्त्र प्राप्त करने की कामना से रावण जब उनकी देवी को पहचन करता है, तब वहाँ मने 'भारक्षर्यं बृहामणि' के प्रभाव से वह अपने वास्तविक रूप को प्राप्त कर लेता है फिर तो शारणी भी स्वयं अपने असली रूप में आ जाता है।^६ उस समय सीता अपने हरण की शरपता को जान कर कडक विस्मय करती हैं। मानस' में यह भटना-वैचित्र्य नहीं है।

सीता-रावण-संवाद' में इस नाटक का रावण सीता को अनेक प्रलोभन देता हुआ जब उनके शरवों पर अपना शिर रख देता है जिसे वे ठुकरा देती हैं तब रावण क्रुद्ध होकर उन पर पद्म से प्रहार करना चाहता है किन्तु मन्वोदरी उसे रोक लेती है।^७ मानस' में इस भटना का भी उल्लेख नहीं है।

इस नाटक में राम के बिरह में सीता के विस्मय और प्रसाप का बड़ा कठन वर्णन है। वे अग्रमा सप्यपि और अल्पमती नदान आदि को उपालम्भ देती हुई राम का समाचार पूछती हैं फिर वे अत्यन्त दुःख होकर आत्महत्या का निश्चय करती हैं उसी समय हनुमान् उन्हें रोक लेते हैं।^८ 'मानस' में उनके ऐसे उम्मार

१	भारक्षर्यं बृहामणि १।३३ के बाद	२	भारक्षर्यं बृहामणि १।३५-३६
३	' १।३७	४	" १।३८
५	' १।३६ के बाद	६	३।४-६ के बाद
७	' २।३०-३२ के बाद		

८ सीता—एवे एवे इसमो उत्तति, अमं तु भमर्षं बसिदुटो एवा तु भमवरी अरुणर्षी देवी। अमवदि कोनाम अमं बवसावो सम्भहा तव इंसपयसं अण्णहा करिस्सम्।

हनुमान्—स्वामिनि अहं तावत्प्रतिबन्ध्यामि। (१।५ के बाद)

का वर्णन नहीं है।

इसमें 'सीता-हनुमान-संवाह' में 'राय-विरह' का भी बड़ा भासिक और निस्तृत वर्णन किया गया है^१ जो 'मानस' में अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु प्रभावशाली है।^२ यहाँ हनुमान् सीता को मुद्रिका के मण्डिरिक्त 'मन्त्रिका-बाण' का एक अन्य अग्निज्ञानमन्त्र भी देते हैं और सीता प्रत्यभिज्ञान के रूप में केवल ब्रह्ममणि देती हैं।^३ 'मानस' में मन्त्रिकाबाण का उल्लेख नहीं है और सीता के प्रत्यभिज्ञानों में 'अमल-कमा' का वर्णन अधिक है।^४

इस नाटक में रायब बध के पश्चात् जब सीता राय के दर्शन करती है तब मनसूया के बरदान से वे पूर्ण स्वस्थ और अलङ्कृत हो जाती हैं^५ जिसे उनके विरहाकरण के प्रतिकूल समझ कर राम उनसे मुँह की लेते हैं। अमल हनुमान् और सुधीव बाधि भी विस्मृति उन्हें राम-दर्शन के पूर्व विरहिणी-रूप में देखा था इस अवस्था में उन्हें पहचान नहीं पाते हैं और जब वे उन्हें मामा समझकर उचित सम्बन्ध के सिधे राम से प्रार्थना करते हैं^६ तब सीता खुम्ब होकर अग्नि में प्रवेष्ट करती है। सोफी देव बाध अग्निदेव उमको सुरक्षित लेकर प्रपट होते हैं।^७ उसी समय मारक मुनि बाधर राम को इन्द्रादि देवताओं एवं मनु बादि पितरों के वर्णन कराते हैं और सीता के पावित्र्य प्रणय का वर्णन भी करते हैं।^८ मनसूया के बरदान का उल्लेख करके वे राम की रांका भी दूर करते हैं। फिर राम सबके साथ ही सीता को ग्रहण कर लेते हैं।^९ 'मानस' में न तो मनसूया के बरदान का उल्लेख है और न मारक मुनि ही इस अवसर पर दिखलाई पड़ते हैं।^{१०}

(१२) अद्भुत-रूपस्य—इस नाटक के लेखक महादेव कवि हैं। इसके १० अंकों में 'अपद-दीप्य' से लेकर 'रामाभिषेक' तक की कथा का वर्णन है। इसके भी नाम से स्पष्ट है कि यह एक अद्भुत रूप प्रमाण नाटक है। इसके नामकरण का आधार एक ऐसा विचित्र कर्णक है जिसमें 'टेसीविमल' की तरह तीन योजन (२४

१ आरचर्य ब्रह्ममणि १।८-१३ २ मानस ३।१३

३ " ६।१८ ४ " ३।२७

५ राम-सुधीव परदेवानी शवावृष्टपूर्व विरहचरितम्।

हरिचम्पकप्रमपिनो बरोधरी कमुनाधित मुर्मि मेधबन्धनम्।

अक्षय प्रजातिशय चोरमन्त्रर विरहव्रताय बहते पतिव्रता ॥७।१६

सीता—(आननया) इति मनसूयाए अद्भुतो वि मे दाधि तातो संवृत्तो।

६ आरचर्य ब्रह्ममणि ७।१८ ७ आरचर्य ब्रह्ममणि ७।१८-१९

८ " ७।२१-२७ ९ " ७।३०

१० मानस ६।१०९

मील) के भीतर की सारी वस्तु और क्रियायें दिखाती पड़ जाती हैं।^१ यह वर्णन रावण के एक मुकुट में बड़ा हुआ वा जो सुग्रीव के चरम प्रहार से कभी पृथ्वी पर गिर पड़ा वा और सम्पाति ने उसमें से इस मणि को निकाल कर बिभीषण को दे दिया वा जिसने उसे राम को समर्पित कर दिया वा।^२ राम और लक्ष्मण इसी वर्णन की सहायता से हांका को सारी योजनाओं को बटित होने से पूर्व ही जान सते हैं।

कथा-वस्तु की दृष्टि के इसमें कुछ विशेषतायें हैं—

इसके प्रथम चार अंकों के विस्तार में धम्बर नामक एक राक्षस की माया की विचित्र योजनायें हैं। वह रूप-परिवर्तन में विशेष रूप से इस है और कभी 'वधिमूख' बन कर या कभी अंगद बन कर राम-राम में बड़ी बख्यबस्था फँसाता है। 'वधिमूख-रूप' में वह लक्ष्मण के काम में कहता है कि 'दूत-कर्म' के क्रिये गया हुआ अंगद वहीं राक्षस से मिल गया है और राम से बाकि बच का बरसा सेने तथा बख्यब खभिराग्य प्राप्त करने के सिध प्रयत्नशील है।^३ उसकी शैष्टाओं से उस पर उपेह करके जाम्बवान् उसे बन्दी बना होता है किन्तु वह (धम्बर) मठसी वधिमूख को देख कर बखसर पाकर भाग जाता है।^४ वह पुन 'वधिमूख' बन कर सुग्रीव का कटा हुआ मकनी सिर लेकर राम-लक्ष्मण को दिखाता है और उसे अंगद का कुहुर्य कहकर उगका श्रेय उद्दीप्त करता है।^५ इसके पश्चात् वह स्वयं अंगद बन कर और वधिमूख का कटा हुआ मकनी सिर लेकर जब राम लक्ष्मण के समक्ष उपस्थित होता है,^६ तब प्रहस्त राक्षस उसे सबमूख अंगद समझ कर पकड़ ले जाता है।^७ इसके पश्चात् बसकी सुग्रीव के आँसू पर लक्ष्मण उसे मायावी समझ कर जब उस पर प्रहार करना चाहते हैं तब राम उन्हें रोक कर सुग्रीव की रक्षा करते हैं।^८ फिर सुग्रीव की आज्ञा से जाम्बवान् प्रहस्त और धम्बर दोनों को तुरन्त बन्दी बना लेते हैं किन्तु राम के कहने पर प्रहस्त को छोड़ कर देते हैं और धम्बर को मुझ की समाप्ति तक किष्किन्धा की एक गुहा में बन्द करा देते हैं।^९ मानस में इस धम्बरी माया का कहीं भी संकेत नहीं है।

इसमें वैशनाव के नामपात्र से राम और लक्ष्मण को छोड़कर सभी लोग पूर्णग्न हो जाते हैं फिर राम 'भद्रा मकडास्त्र' के प्रयोग से सबको स्वस्थ करते

१ प्रतिफलति यत्र सर्वं वस्तु यथा योजनावितयात् ।

उत्तरिक्रमाराध सर्वा विना पुनर्मनिर्घो वृत्तिम् ॥१२३॥

२ अद्भुत वर्णन १२३-२४

३ अद्भुत वर्णन १२६ के बाद

४ " १२८-२९

४ " २१७ के बाद

५ " १३०-१०

५ " ११४ के बाद

६ " १११-१८

६ " २१४-७ के

हैं, जबकि 'मानस' में स्वयं राम ही 'बागपालबद्ध' होते हैं और यक्ष की सेवा से स्वतः होते हैं।^१

इस नाटक में मास्वयान् राम आवि चारों भाइयों और सीता को 'विष्णु के पाँच अक्ष' कहता है।^२ 'मानस' के अनुसार राम विष्णु हैं, भरतादि उनके अक्ष हैं और सीता उनकी 'परमशक्ति' हैं।^३

'अद्भुत-वर्षण' की सहायता से इस नाटक में राम और लक्ष्मण रावण महोदर-संबाध' सुन कर उनके कई गुप्त भेद जान सेते हैं कि रावण महोदर के सप्त प्रस्ताव को ठुकरा देता है जिसमें वह राम को 'माया-सीता' देकर उनसे सन्धि कर लेने का माग्रह करता है कि वह सीता प्रेम के कारण ही जब तक राम की उपेक्षा करता रहा है, कि वह 'रम्भावसात्कार' के फलस्वरूप प्राप्त लक्ष्मण के घाप के कारण 'अकामा सीता पर बल प्रयोग नहीं कर सकता है अन्यथा उसका सिर सङ्क्षमा फट जायगा, कि वह राम-रूप धारण करके सीता को बन्धित करने में असमर्थ हो चुका है और यम्बोदरी आदि उसकी रागिनी भी उसे रिक्ताने के लिये सीता रूप धारण करने में असफल हो चुकी हैं।^४ 'मानस' में यह चर्चा नहीं है। इती वर्षण की सहायता से राम और लक्ष्मण सरमा के द्वारा सीता के मनोरंजनार्थ आयोजित एक 'माया-नाटक' भी देखते हैं जिसमें उनका और रावण का अभिनय किया जा रहा है। रावण और महोदर भी द्विपे हुये इस नाटक को देख रहे हैं^५ और वे चारों लोग बीच-बीच में क्या स्त्रान टीका टिप्पणी भी करते जाते हैं। 'मानस' में इसका संकेत नहीं है।

'राम रावण-मुठ' में 'मानस' के रावण की तरह^६ इस नाटक का रावण भी अपनी माया से असंख्य-रूप होकर राम-मया पर आक्रमण करता है।^७ यहाँ राम के भी असंख्य रूप होकर उस पर आक्रमण करने का उल्लेख किया गया है, जो 'मानस' में नहीं है।

इस नाटक का मय रावण राम की शंका विजय को निष्फल बनाये के विचार से उनकी अनुपस्थिति में उनका रूप धारण करके सीता को 'परगृहवास' के कारण कटुवचन कहता है^८ जिससे क्षुब्ध होकर वे अग्नि में प्रविष्ट हो

१ अद्भुत वर्षण ४।१६

२ मानस ६।७४

३ एकस्वतुषी जातो पस्तस्याधि-पंचमो ह्ययम् ।

सर्वनासाय सीतैति सम्बोद्धवति रावणम् ॥१॥११

४ मानस १।१८७

५ अद्भुत वर्षण ६।१ ४ २२, २३, ७।४

६ अद्भुत वर्षण ७।१ के बाद

७ मानस ६।६६

८ " ६।३-४

९ अद्भुत वर्षण १०।८

जाती हैं^१ किन्तु उनको बसते न देखकर वहाँ उपस्थित सभी भोग्य आश्चर्य प्रकट करते हैं। उसी समय तेष्वप्य से 'सीता क्षुब्धि' की घोषणा होती है जिसमें अपि वैषम्य और दृष्टरथ भी भाग लेते हैं।^२ 'मानस' में यह पङ्क्ति नहीं है किन्तु शेष विवरण समान है।^३

इसमें इन्द्रादि के बरवान से युद्ध में मृत सभी क्षानर पुनर्जीवित हो जाते हैं और उनके मृत्यु एवं अपहृत समस्त अंग भी मघास्पाग स्वयं बुद्धि जाते हैं।^४ 'मानस' में इस अवसर पर इन्द्र की केवल सुभाषुष्टि का उल्लेख है—

सुभा वरपि कपि भ्रातु जिमाए । हरपि उठे सब प्रभु पहि आए ॥ १।११४

इस नाटक के 'रामाभिषेक' में विभीषण सुग्रीव और गुह अपनी-अपनी पत्नियों और भाग्यवों के साथ सम्मिलित होते हैं।^५ 'मानस' के 'अभिषेक' में केवल विभीषण, सुग्रीव और कृष्ण पुत्र हुए क्षानर सेनापति ही भाग लेते हैं। वहाँ उनके साथ न तो उनकी पत्नियाँ हैं और न अन्य पौरव ही।^६

(११) मैथिली कस्याण—इस नाटक के रचयिता कवि हस्तिसम्भ हैं। इसके १ अंकों में राम और सीता के 'पुष्प-आटिका-मिसन' और विवाह का ही वर्णन किया गया है। वहाँसे चार अंकों में केवल 'पूर्व-मिसन' का विस्तृत श्रुतिमय वर्णन है, जिसमें राम और सीता को परस्पर मिसन और संवाद के तीन अवसर मिलते हैं किन्तु नाटकीय कारणों से उनको सीधे ही पूरक ही जाना पड़ता है। नाटककार ने उनके ऐसे विधोय और उसके उपचार का बड़ा धरस, रोचक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण किया है। अन्तिम अंक में सीता-स्वयंवर समुत्सव और राम-सीता विवाह के कुछ प्रसंग प्रस्तुत किए गए हैं। कथानक की विशेषता के दृष्टिकोण से इसमें अनेक उत्कृष्टनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं।

इस नाटक के 'पुष्प-आटिका' प्रसंग में सीता के 'शुक्ला शूभ्र' की घोषणा सुनकर उन्हें सिधे-सिधे देखने के लिए राम वहाँ पर स्थित 'कामदेव मन्दिर' में पहुँच जाते हैं।^७ संयोग से सीता और उनकी सखी भी वहाँ आ जाती हैं। सीता राम को 'कामदेव की ही मूर्ति' समझकर प्रणाम करती हैं और उनकी सखी उनके विदित अनुसूत बर' की प्रार्थना भी करती है, किन्तु उनकी मुद्रिका में राम-नाम पढ़कर

१ महाभारतशोषुहवासशोपवाकानुपस्तेन रमुहेन ।

रपत्ता समर्षा महतो जनस्य स्वययहो देहमियं हुतापे ॥१०१६

२ अद्भुत वर्णन १०।१०-१२ १३ १७-२१ ३ मानस ६-१०८-१०९

४ तद्दामाभि हुताप्यपि त्रिजगत्सर्वस्थाप्यपि श्वापदे

रषासु स्वारवमितोऽपि मूर्तिषु मघास्वामं भित्तित्ति स्वयम् ॥ १०।२४

५ अद्भुत वर्णन १०।१९

६ मानस ७।१०-१२

७ मैथिली कस्याण १।११ के बाद

बहु ठाँहें पहिचान सेती हैं और सीता से समका परिचय भी कराती है । इससे दोनों परस्पर आकृष्ट होते हैं । उसी समय नैपथ्य से अन्य सखियों का कोलाहल सुनकर सीता विवश होकर बसी जाती है ।^१

सीता के इस वियोग से क्रुम्भ होकर^२ दूसरे दिन जब राम वहीं पास के 'माधवी-कुंज' में अपने विरहोपचार की अनेक योजनायें करते हैं,^३ तब संयोग से सीता वहीं आ जाती है और राम प्रेमवश उसका हाथ भी पकड़ लेते हैं । उसी समय नैपथ्य से प्रबोध' की सूचना पाकर सीता वहाँ से बसी जाती है और दोनों का फिर वियोग हो जाता है ।^४

तीसरे दिन सीता की एक काम-दूती' राम के समीप आकर सीता की विरह-दुर्दशा का कथन वर्णन करती है^५ और उनसे 'संकेतस्वप्न' पर मिलने के लिए राम से प्रार्थना भी करती है ।^६ जब राम वहाँ पहुँचकर सीता के मनोरंजन का कृत्रिम प्रयत्न करते हैं तब एक बेटी जाकर सीता को जनकी माता का आसन्नत्व बतला कर के जाती है । इस प्रकार सीता के जैसे जाने से उनका यह मिसन फिर अपूर्ण रह जाता है ।^७ मानस' का यह प्रसंग बड़ा मर्यादित है वहाँ राम और सीता के परस्पर वर्तन और आकर्षण को छोड़कर संवाद मिलन एवं विरहोपचार आदि का कोई वर्णन नहीं है ।^८

इस नाटक के अनुर्यन प्रसंग में राम के द्वारा अनुर्मन करने पर अरुण राजाओं के द्वारा विद्रोह की कृत्रिम शिष्टा करनी और उसी समय 'आकाशवाणी से राम के ईश्वरावतार होने की घोषणा सुनकर शान्त हो जाने का वर्णन है ।^९ वहाँ जनक और सदस्य भी इस घोषणा पर अकित होते हैं ।^{१०} मानस में राज-विद्रोह का वर्णन तो है^{११} किन्तु 'आकाशवाणी' का कोई संकेत नहीं है। वहाँ उस अवसर पर परशुराम के आगमन से ही वे विद्रोही राजा सोम स्वयमेव संकुचित हो जाते हैं ।^{१२}

(१४) उन्नत राघव—इस एकांकी नाटक के रचयिता भास्कर कवि हैं ।

१ मैथिलीकस्याम १।२६ के बाद

२ राम —तग्मया मम संकस्यास्तग्मयं मम चिन्तितम् ।

तग्मयानि ममाहीनि तग्मयं ममजीवितम् ॥ २।३

३ मैथिलीकस्याम २।२१-२८

४ मैथिलीकस्याम २।२८-३६

५ यद्यपि नमिष्यति भवानु भवदावममोत्सव प्रबोधाव ।

स्वन्दितुमपि न क्षमते वामाहया वाममप्यधि ॥ ३।४२

६ मैथिलीकस्याम ३।४२ के बाद

७ मैथिलीकस्याम ४।५ के बाद १४

८ मानस १।२२७-२३७

९ मैथिलीकस्याम ५।३७ के बाद, ४४-४५

१० लक्ष्मणो जनकप्रभ —(शुल्का) कपमसो चरमदेहवारी पुरुषोत्तम ॥

११ मानस १।२६६

१२ ४४ के बाद

१२ मानस १।२६५

इसमें सीता से सम्बन्धित राम के प्रेम का चित्रण करने के लिए एक नवीन प्रसंग की उद्भावना की गई है जो इसकी मौसिकता है। इसमें स्वर्गमूर्त्यु के बध के लिए राम और लक्ष्मण दोनों ही साथ चले जाते हैं। फिर सीता समीप के कुर्बों में फूँस तोड़ती हुई एक ऐसे स्थान पर पहुँच जाती है जहाँ दुर्वासा के शाप से वह 'मृगी' हो जाती है।^१ 'मृगवध' के पश्चात् शीघ्र कर राम आश्रम में सीता को न पाकर अनेक मार्गक्रमों करते हैं और बिरह-नाशक होकर विविध विसाप और प्रसाप करते हैं।^२ उसी समय अमस्त्य मृत्ति अपनी समाधि से सीता के रूप परिवर्तन को जानकर उनको शाप-मुक्त करते हुए राम के समीप ल जाते हैं और सारा विवरण बतलाते हैं।^३ 'मानस' में 'मृगवध' के लिए केवल राम जाते हैं और वहाँ ऐसे 'दुर्वासा शाप एवं 'अमस्त्य प्रशाप' का कार्य संकेत नहीं है।

(१५) दूतागद—सुमत् कवि द्वारा निर्मित इस एकांकी नाटक में मन्मथि और राजरोसर आदि अनेक कवियों क कथने हुए बहुत से श्लोक संश्लेष कर लिए गए हैं। इसमें रावण की समा में अंगद के दूत कर्म से लेकर राम के 'तडा-स्याम' तक का कथानक मिलता है जिसमें कुछ अपनी विशेषताएँ हैं।

इसमें मन्दोदरी से संवाद करता हुआ रावण 'सीताहरण' को अपनी पहली भूल, उनको पहले ही प्रामपण्य न करने को दूसरी भूल और अथ मुठारम्भ के समय उनके प्रत्यर्पण के विचार को तीसरी भूल कह कर मुठ को अनिर्वाय बतलाता है।^४ 'मानस' में उसकी यह अपराध स्वीकृति नहीं है।

इसमें 'अंगद-गवण-संवाद' के समय एक माया मयित्री (नक्षत्री सीता) कहीं से आकर रावण की गोद में बैठ जाती है और उससे प्रेमासाप करती है, जिसे देखकर अंधक को बड़ा विस्मय और शोक भी होता है।^५ द्विगु उसी समय एक पक्षी आकर सीता के द्वारा आत्महत्या के प्रयत्न की सूचना देती है जिससे सारा खल्ल सुल जाता है।^६ 'मानस' में माया मयित्री की कोई ऐसी योजना नहीं है।

(१६) कुशाक्षयोद्य—यह नाटक छविनास सुरी के द्वारा विरचित संघो पित और संपादित है। इसके १ अंकों में राम के अभिषेकोत्तर अरिष का वर्णन किया गया है जो 'मानस' का विषय नहीं है।

१ उगतराधक १५ के बाद

२ उगतराधक ११२ १२

३ अमस्त्य—अमस्त्य शापो जानकीमण्डलम् । अह समाधिना तां जानकीं
निदिशय तत्क्षणमेव पापाग्नीषवित्वा मन्मथिन्कमनयम् ।

(उगतराधक । ४ के बाद)

४ दूतागद । १८

५ दूतागद । २७ के बाद ३०

६ राक्षसी—मृत्वा रघुपतेः किञ्चिदतिष्ठत् वेव मयिती ।

विद्यालु संस्कृत, गणपतिशान बोधवि । ३१ ॥

(१७) अन्य नाटक—डा० कामिल कुस्के ने अपने पत्र में व्यास मिश्र के 'रामायण' और राममद्र वीरसिंह के आनकी-परिचय, दो नाटकों की कथावस्तु का बहिर्बहिष्ण संकेत किया है।^१ इनके अतिरिक्त उन्होंने छठार राघव, अक्षित रामायण, कल्याणराघव, भावापुष्पक, स्वप्न-सञ्ज्ञान, अक्षित राघव रघुविद्यास राघवाभ्युदय एवं रामायण आदि प्राचीन किन्तु अप्राप्य नाटकों का नामोल्लेख भी किया है।^२ अिनके सम्बन्ध में अधिक विवरण प्राप्य नहीं है।

३ श्लेष काव्य

राम-कथा के साव साव अन्य कथा या कथाओं को भी एक ही काव्य में निबद्ध करने की चेष्टा ने बनेक श्लेष-काव्यों की जन्म दिया जिनमें राघव-पाण्डवीय (प्रथम) राघव-नाण्डवीय (द्वितीय) राघव-नैपथीय, राम-चरित, राघव-पाण्डव नाण्डवीय आदि उल्लेखनीय हैं।

(१) राघव पाण्डवीय (प्रथम)—इस महाकाव्य के लेखक 'अज्ञेय' ने इसके १८ सर्गों में 'रामायण और महाभारत' दोनों की कथाओं का श्लेष के द्वारा समन्वय किया है। एक ओर 'बयोध्या-वीर्य' से लेकर 'राम राज्य' तक रामायण का कथानक है, तो दूसरी ओर उन्हीं श्लोकों में 'हस्तिनापुर-वीर्य' से लेकर 'युधिष्ठिर राज्य' तक महाभारत की कथा है। कथावस्तु की दृष्टि से इसमें बनेक विरोधताएँ मिलती हैं जो या तो कवि-प्रकृति की स्वतन्त्रता के कारण हैं अथवा श्लेष-काव्य द्वारा आरोपित अत्यन्तता के कारण।

इसमें 'मानस' की तरह^३ 'पुत्रवद्ध' का वर्णन नहीं है किन्तु सभी राधियाँ स्वाभाविक रूप से वर्ण पारण करती हैं।^४

इसमें कैटकी के एक ही वर का उल्लेख है और उसका भी विवरण नहीं दिया गया है।^५ 'मानस' में यह प्रसंग अति विस्तृत है।^६ इसमें सूर्यनद्या-विक्रमण के प्रसंग में सूर्यनद्या के द्वारा लङ्का पर आक्रमण करने का उल्लेख है।^७ किन्तु उसके नाक-कान काटे जाने का बड़ा कोई वर्णन नहीं है। मानस का वर्णन इससे निम्न है।^८ इसमें आनि-वध के प्रसंग होकर सुग्रीव राम को अपनी कल्याणी कन्या समर्पित कर देता है।^९ जिसका 'मानस' में संकेत भी नहीं है। बड़ा महत्त्व से

१ रामकथा (अराधित और विद्यास), पृ० ११८

२ " " " " पृ० ११९

३ मानस १।१८१ ४ राघवपाण्डवीय ३।१

५ राघवपाण्डवीय ४।३४ ६ मानस २।२१ ३७

७ " " १।३० ८ " " ३।१७

८ सुग्रीव उवाच पराक्रमेण कन्यां वैकुण्ठ परिकल्पित-पुत्रां तुमन्त्राम् ।

कल्याणीसबहुमती त्रितारदेज्यैः त्रिसप्तक्रमत तया वर्नकयाप ॥ १।३२

'क्रीटिष्ठिता' उठवा कर सुधीव उनकी परीक्षा लेते हैं और उससे राम की शक्ति का अनुमान करते हैं।^१ 'मानस' में यह बच-परीक्षा भी गई है।

इसमें समुद्र-उत्थ पर पहुँचते ही बानर सेना के शूमार बिहार और बस शौड़ा बाधि का अतिविस्तृत वर्णन है,^२ जो 'मानस' में नहीं है।

'मानस' के समान ही^३ इसमें भी सखमण-मूर्धा के प्रसंग में हनुमान् के द्वारा 'शोषाचस' साने और अयोध्या में भरत से मिलने का वर्णन है।^४

(२) राघव-पाण्डवीय (द्वितीय)—इस काव्य के लेखक कविराज माधव भट्ट हैं जो सुबन्धु बाणभट्ट और स्वयं के अतिरिक्त किसी को भी अश्लेषिनिपुण नहीं मानते हैं।^५ इन्होंने भी रामायण-कथा और महाभारत-कथा को इस काव्य में बड़ी दक्षता के साथ शिष्ट रूप में निरूपित किया है। प्रथम काव्य से इस काव्य का आधार समु होने पर भी यह अधिक प्रसिद्ध है। इसके १३ सर्गों में 'दशरथ-मृतया वर्णन' से लेकर 'रामाभिषेक' तक की कथा है जिसकी कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं—

इसमें 'दशरथ-मृतया' और भवण-कथा का अति विस्तृत वर्णन किया गया है,^६ जो 'मानस' में नहीं है। इसमें 'रामाभिषेक' से पूर्व दशरथ के द्वारा एक अरव मेघ-वज्र की योजना का भी उल्लेख है * जिसका भी कोई संकेत 'मानस' में नहीं है। इस काव्य में राम के बतवास-कास में अक्षरय मुनि के द्वारा उन्हें धनुर्विद्या की शिक्षा देने का उल्लेख है।^७ 'मानस' का बचन इससे भिन्न है। इसमें मेघनाद के नाशपात्र से राम और सखमण दोनों आबद्ध हो जाते हैं जब कि 'मानस' में उससे केवल राम ही प्रभावित होते हैं।^८ इसमें इती प्रसंग में राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करते हुए उन्हें 'मनुष्य-मूर्ति' और 'पुराण-मुरय' कहा गया है।^९

(३) राघव-नैपथीय—राम और लस के अरिज को स्तेय द्वारा अजित करने वाला यह एक-मात्र काव्य है। इसके लेखक हरदत्त गुरि हैं। इसके प्रथम सर्ग में राम,अम से लेकर राम-शुभमारोहण तक की कथा है और अन्तिम द्वितीय सर्ग में केवल 'पञ्चतु बधन' है। यह सर्ग अपूर्ण है और इसमें स्तेय निर्वाह भी नहीं है।

कनावानु की दृष्टि से इसकी कुछ विशेषतायें हैं।

१	राघव-पाण्डवीय १२।४४	२	राघव-पाण्डवीय १५।१२ ३२
३	मानस ६।३२ ६१	४	१७।७२
५	राघव-पाण्डवीय १।४१	६	राघव-पाण्डवीय १।१ ५६
७	, ३।१०	८	, ४।२ ४
९	का३१ मिलाइये 'मानस ६।७३		

१० जिपासया तस्य शरादिदानि बलानि भ्रान्तानि निरीक्षमाण ।

मनुष्य-मूर्ति पुरय पुराणो महीतसं मयुबधाज्जगाम ॥ का३२

'राम मीरराज्य' के पूर्व इसमें नारद के जाने और राम से मिलने का वर्णन है,^१ जो 'मानस' में नहीं है।

इस काव्य में राम के द्वारा किसी राजा में 'नमिनी' के वर्णन का और उसके रूप-सौंदर्य का विस्तृत वर्णन किया गया है, जो राम-कथा की दृष्टि से बना नरक है किन्तु मत्स्य-कथा की दृष्टि से अनिर्वाह्य है क्योंकि इसी व्यास से वहाँ ब्रह्मयन्त्री के सौन्दर्य का विस्तृत निरूपण किया गया है।^२

इसमें एक ही वसोक में रावण कुम्भकर्ण मेघनाद, अठिकाय अकम्पन देवात्मक नरनाटक आदि सभी राक्षसों के उपरिवार बन्ध का वर्णन किया गया है।^३ इससे स्पष्ट है कि यह इसका मुख्य प्रतिपाद्य नहीं है, जबकि 'मानस' की मूलकथा में इसका प्रमुख स्थान है। इसमें अन्तिम सात वसोकों में 'सीतापचार' से लेकर 'राम स्वारीह्वय' का भी संक्षिप्त वर्णन है^४ जो 'मानस' में नहीं मिलता है।

(४) रामचरित—इस काव्य के लेखक सम्भ्याकरनम्ही हैं। इसके चार सर्गों में कवि ने राम-कथा के साथ-साथ अपने समसामयिक राजा रामपास का भी वर्णन किया है, जिसने अपने बड़े भाई राजा महीपाल के द्वारा लोभे हुए 'भारेन्नीतपरी' के राज्य को पुनः प्राप्त किया था। इसमें 'भारेन्नी' और 'बैदेही' के हरण एवं वृत्तप्रहण की समान रूपमा से प्रभावित होकर कवि ने अपने श्लेष के अन्तकार को प्रदर्शित किया है।

इसमें 'राम-अम्भ' से लेकर 'राम महाप्रयाण' और सबकृष्ण चरित्र का भी वर्णन किया गया है। कथा की दृष्टि से इसमें कोई उत्प्रेक्षणीय विशेषता नहीं है।

(५) राघव पाण्डव-यादवीय—रामायण महाभारत और भागवत तीनों ग्रंथों की कथाओं का एक साथ श्लेष द्वारा वर्णन करने वाला तीन सर्गों का यह काव्य, श्लेष-मञ्जरी का अरुण अम्भरसाय है। इसके लेखक विशम्बर कवि हैं। यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिपि महाश एवं लखौर के बुस्तकासर्गों में है।^५

४ विज्ञोम काव्य

विज्ञोम पद्धति के काव्यों में अक्षरों को साधारण क्रम (बाईं ओर) से बहने पर एक अर्थ निकसता है तथा उमटे क्रम (दाईं ओर) से पढ़ने पर दूसरा अर्थ निकसता है। ऐसे काव्यों में कवि के काव्य कौशल की परखान्या के वर्णन होते हैं, जो उसे अमररथ ब्रह्म करने में पूर्ण समर्थ हैं। 'रामकृष्ण विज्ञोम काव्य' 'राघव रावणीय' और 'राघव-यादवीय' इसी प्रकार के विज्ञोम काव्य हैं।

१ राघव नैपथीय १।३६-३७

२ राघव नैपथीय १।६२-६८

३ " १।१०८

४ " १।१२०-१२६

५ श्री बलदेव कृष्णायामृत 'अस्तुत साहित्य का इतिहास' के आचार पर पृ० २६८

(१) रामकृष्ण विलोम काव्य—भी सूर्यक कवि द्वारा विरचित इस काव्य में कुल १६ श्लोक हैं। इसकी टीका भी स्वयं लेखक के द्वारा ही लिखी हुई है। इस काव्य में प्रत्येक श्लोक का पूर्वार्ध ही विलोम पद्यति से लिखे जाने पर उसका उत्तरार्ध बन जाता है। इस प्रकार पूर्वार्ध में जहाँ 'रामचरित' का वर्णन किया गया है, वहीं उत्तरार्ध में 'कृष्ण चरित' का वर्णन मिलता है। इसमें 'विश्वामित्र द्वारा राम-सकलम याचना' से लेकर 'रावण-वध' तक का कथानक वर्णित किया गया है। कथा की दृष्टि से इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

'मानस' के समान ही इसमें भी राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करते हुए उन्हें 'तारक परब्रह्म' कहा गया है।^१ वहीं सीता को 'साक्षात् सखी' का रूप बतलाया गया है।^२

इसमें विश्वामित्र के आश्रम में ताटका के छात्र सूर्यवसा के भी जाने का उल्लेख है।^३ वहीं ताटका का फिर जागे कोई विवरण नहीं दिया गया है, किन्तु पूर्णव्या के विकल्प का प्रयोग पंचवटी में यथास्वाम निरूपित है।^४

इस काव्य में रावण के द्वारा अपने परिवार वध के पश्चात् राम (तारक ब्रह्म) में शीत हो जाने का वर्णन किया गया है,^५ किन्तु 'मानस' में केवल रावण और कुम्भकर्ण की ही बीघी मुक्ति का उल्लेख है।

(२) यावत् राघवीय—इसके लेखक बेंकटाचरि ने १०० श्लोकों के इस सप्तु काव्य में राम और कृष्ण के चरित का पूर्ववत् विलोम-पद्यति से एक साथ वर्णन किया है। यह काव्य भी अभी तक अप्रकाशित है और इसकी हस्तलिपि मद्रास एवं लखनऊ के पुस्तकालयों में है।^६

(३) राघव-याव्हीय—केवल १४ श्लोकों के इस सप्तुकाव्य की कथावस्तु 'यावत्-राघवीय' के समान ही है। इसका लेखक और उसका समय अज्ञात है। यह 'विलोम काव्य' भी अभी तक अप्रकाशित है और इसकी भी हस्तलिपि मद्रास तथा 'दण्डिया आकिस' के पुस्तकालयों में है।^७

५ चित्र-काव्य

चित्र-काव्यों में वर्णविन्यास इस प्रकार किया जाता है जिससे किसी वस्तु का चित्र प्रस्तुत हो सके। डा० कामिज बुफे ने अपने ग्रन्थ में 'राम सीतामृत और चित्रकव्य रामायण इन दो चित्र-काव्यों का उल्लेख किया है। 'रामसीतामृत' के लेखक 'कृष्णमोहन' हैं, जिनका समय और स्थान अज्ञात है। १२० श्लोकों के इस

१ राम कृष्ण विलोम काव्य ३, १३

२ राम कृष्ण विलोम काव्य १५

३ " " " " " " " १९

४ तारके त्रिपुराध भीरवा बासनुताम्बित ॥ १३ ॥

५ संस्कृत साहित्य का इतिहास (श्री बलदेव उपाय्याय), पृ० २९७

७ रामकथा (डा० कामिज बुफे), पृ० २००

सभी काव्य में विरहामित्र के आत्मन के लेकर रावण-वध तक की समस्त 'राम-कथा' संक्षेप में बर्णित है। इसमें पद्म-वग्ध, सङ्घ-वग्ध, सम-वग्ध, सोम-वग्ध, चतुर्वग्ध, सोपान-वग्ध, आदि चित्राङ्कारों का प्रदर्शन किया गया है। 'चित्रवग्ध रामायण' के लेखक 'बैकतेल' हैं। उनका भी समय और स्थान अज्ञात है। १ सर्गों और १२० छन्दों के इस चित्र-काव्य में भी अनेक काव्य-वर्णों का व्यापक प्रयोग किया गया है। ये दोनों ग्रन्थ अप्राप्य हैं।^१

६ सप्तक काव्य

समस्त 'रामचरित' का वर्णन करने की अपेक्षा उसके केवल कुछ महत्वपूर्ण अंशों को ही प्रस्तुत करने के विचार से संस्कृत में अनेक सप्तक काव्य भी लिखे गए। इस प्रकार के काव्यों में भी रामायण, बालकी-परिचय, श्री रामचरित, सीता-स्वयंवर, उत्तर रामचरित आदि अत्यन्तनीय हैं।

(१) श्री रामायण—इसके लेखक अथवाशरत्थ तर्क शूद्रामणि हैं। इसके १६ सर्गों में 'अयोध्या-वर्णन' से लेकर केवल 'राव-विवाह' तक का ही कथानक है। कथावस्तु के दृष्टिकान से इसमें कोई नवीनता नहीं है किन्तु इतना अवश्य है कि कई अनाशयक वर्णनों को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार मिल गया है।

इसमें दशरथ-वसिष्ठ-संवाद पुत्र-काम-वद आदि-वर्णन, पादकाव्य सुवाह वच, आदि प्रसंगों को भी स्वतन्त्र अध्यायों में बर्णित किया गया है।^२ 'मानस' में इन सबको केवल १० पंक्तियों में ही सीमित कर दिया गया है। इसी प्रकार राम और सीता के 'मानस-सन्तोह' का वर्णन भी इसमें एक पूरे सर्ग में है।^३ 'मानस' में उसका संकेत भी नहीं है।

(२) बालकी परिचय—शक्र-कवि द्वारा लिखित ८ सर्गों के इस काव्य में 'अयोध्या-वर्णन' से लेकर 'शरदुराय-वराहव' तक का कथानक समाहित किया गया है। इसकी कथा में अनेक स्थलों पर नवीनताओं की विशेष योजना की गई है।

'मानस' के वर्णन के समान ही^४ इसमें श्री 'मन्वन्तापरम के पश्चात् 'पुत्रन निन्दा' का विस्तृत वर्णन किया गया है।^५ इस ग्रंथ के 'वसन्तिरथ' प्रसंग में सीताका को १/२, केकयी को १/४ और सुमित्रा को १/४ और १/८ ज्ञान प्राप्त होता है^६, जो 'मानस' से विभिन्न है।^७

इसमें राम-मदमन को देने के लिये दशरथ की अतीवृत्ति पर विस्वामित्र

१ राम कथा (बा० कामिल लुत्के) पृ० २००

२ श्री रामायण सर्ग १३ १, १२ १४ ३ श्री रामायण सर्ग ११८

४ मानस ११४-२

२ बालकी परिचय ११७-२२

५ बालकी परिचय २१७२

७ मानस ११६०

के क्रोध से मुकम्प, जलधि-शोभ और भग्नि-मामु-स्तम्भ' आदि हो ज्ञान का वर्णन है।^१ 'मानस' में यह स्थिति नहीं जाती है।^२

इसके 'अहस्योदार' प्रसंग में अपनी आसंकारिक रधि का परिचय देता हुआ कवि कहता है कि राम के चरण-स्पर्श से अहस्या के अग्य जनों ने तो परचर-रूप का परिवर्णन कर दिया किन्तु उसके स्तन ज्यों के र्यों ही परचर के बने रहे।^३ 'मानस' का यह वर्णन बड़ा संयत है।^४

इसमें अयोध्या के नागरिकों के बिसास का अति विस्तृत वर्णन किया गया है जो अनेक स्थलों पर बदलीत हो गया है।^५ मानस में एसा शूझार-वर्णन कहीं नहीं मिलता है।

'मानस' के वर्णन के समान ही^६ इस ग्रंथ में श्री मिथिला में ही परशुराम के आपमन का वर्णन है किन्तु वे यहाँ राम के समक्ष तीन विकम्प रखते हैं कि वे (राम) या तो युद्ध करें या उनके वैष्णव-अनुष को बड़ायें या फिर उन्हें अपना शिर मुकायें।^७ 'मानस' में इन विकम्पों का संकेत नहीं है।

इसमें विवाह के पश्चात् सीता और राम के बिसास का भी विस्तृत वर्णन किया गया है^८, जो मानस में नहीं मिलता है।

(३) श्री राम चरित—इस संस्कृतकाव्य के लेखक कोटिमिग राजर्षि के 'मुषराज कवि' हैं। दो सगों के इस काव्य में देवताओं की विष्णु-स्तुति से लेकर 'परशुराम-पराजय' तक का ही बचानक है। इस काव्य में रावण से मस्त देव-गण ब्रह्मा के नेतृत्व में 'विष्णु-भोक' पहुँचते हैं। वहाँ विष्णु उन्हें आचरस्त करते और 'जानरी-योनि' में जन्म लेने का आदेश भी देते हैं।^९ 'मानस' का वर्णन इससे विभिन्न है। इसमें ताटका के स्त्रीत्व के कारण राम उसके बच में हिचकिचाते हैं फिर विद्वामिन्न उनको स्त्रीत्व के लिये अनेक उपदेश देते हैं।^{१०} 'मानस' में इस बचवर पर राम की किसी हिचक का उल्लेख नहीं मिलता है। इसमें ठीक अनुर्मग के पश्चात् मिथिला में ही परशुराम के आपमन और विवाह का वर्णन^{११} 'मानस' के वर्णन के समान ही मिलता है।^{१२}

(४) सीता-स्वयंवर—हरिहृदय मठ के इस काव्य में केवल १२७ श्लोक

१ मानकी चरिचय १।१८	२ मानस १।२०८
३ जानकी हरण २।६७	४ मानस १।२११
५ " ६।१७-७६	६ १।२६५
७ " ८।१४	८ जानकी हरण ८।१६-६१
९ श्री राम चरित १।१७-४०	१० श्री राम चरित २।११
११ " २।८१	१२ मानस १।२६८

है। इसमें 'सीता-स्वर्णरत्न-वर्णन से होकर 'राम-विवाह' तक का ही कथावक्र है। कथावस्तु के दृष्टिकोण से इसमें कुछ विधेयताएँ हैं। इस ग्रन्थ के 'स्वर्णरत्न-वर्णन' में रामचंद्र के माने, 'धनुर्भंग' की खेपटा करने और जन्त में हतास होकर भाग जाने का वर्णन है।^१ 'मानस' में इसका केवल संकेत-मात्र है।^२ यहाँ 'धनुर्भंग' में रामायणों की असफलता देखकर जनक के जिस शोक का वर्णन किया गया है, वह 'मानस' के इस वर्णन से बहुत मिलता है—

एव चक्रावक तोरक भाई। तिसु मरि सुयि न सके छड़ाई।

जब अति कोट भाई मटमानी। और बिहीन मही में जानी ॥१२२२

(२) कथार राम चरित—इस काव्य के लेखक 'राम पाणिनाथ' हैं। इसमें केवल 'रामायणिक' और 'रामराज्य' का ही बड़ा सरस वर्णन किया गया है, जिसमें कथा की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं है।

७: सन्देश-काव्य

'मेघदूत' के अनुकरण पर राम-कथार से सम्बन्धित अनेक सन्देश-काव्य भी मिले गये, जिनमें हंसदूत, भ्रमरदूत, बाणदूत आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(१) हंसदूत—इसके लेखक वेदान्त दीक्षिक हैं। इस काव्य के राम एक हंस के द्वारा अपना सन्देश सीता के समीप भेजते हैं। अपनी विरह-श्रवणा का मार्मिक निरूपण करते हुये वे उस हंस से सहाय्य-मूर्ति की याचना करते हैं, उसे शंका तक पहुँचाने का मार्ग-निर्देश करते हैं और सीता के विरहिणी-रूप-सौन्दर्य का ऐसा चित्रण भी करते हैं जिससे वह उन्हें सुविधानुसार पहिचान सके और फिर जनका करण-सन्देश तक विस्तारपूर्वक सुना सके।

(२) भ्रमरदूत—यह व्यास-संपादन द्वारा लिखित इस 'दूत-काव्य' में एक भ्रमर का दूत के रूप में प्रयोग किया गया है। इसके अनुगत जब जंका से लौटकर सीता का सन्देश और कुङ्कुमिक लाकर राम को देते हैं, तब राम विरह से अत्यन्त व्यथित होकर उसी समय एक भ्रमर के द्वारा अपना संदेश सीता के समीप भेजने का प्रयास करते हैं।

इसमें वे भ्रमर की सरसता के लिए शोक-निमग्न सीता का यथार्थ वर्णन करते हुए उनकी करुण-भूति का एक सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हैं।^३ वे कहते हैं कि संसार का प्रत्येक पुरुष अपनी प्रियतमा की कामना-भूति सब प्रकार से करता है किन्तु उसी इच्छा में उन्हें अपनी प्रिया से भी वंचित होना पड़ा है।^४ अपनी उद्देश में वे सीता को यह आश्वासन भी देते हैं कि वे भीम ही रामचंद्र को मार कर

१ सीता स्वर्णरत्न ११६२

२ मानस ११२२०

३ वनस—बाणो न हृष्टः किम रात्रकराय सर्वस्य सर्वस्य च वर्णयति।

केनापि नाटकि म चाप्यथापि निर्बीरनुर्बतिसमयजातम् ॥१६॥

४ भ्रमर दूत १०६ ११२

२ भ्रमर दूत ११६

उसे प्राप्त करेंगे और फिर अयोध्या में संयोग के बिसाहों में वे दोनों पूरकत व्यस्त हो जाएंगे ।^१

(३) वासदूत—इस तरह 'दूतकाव्य' के रचयिता श्री कव्यनाथ भट्टाचार्य ग्याय-संपानन हैं। इसमें सीता बामु को अपना दूत बनाकर राम के समीप भेजती है। बामु को सखि-भाव से सम्बोधित करती हुई सीता उसकी सर्वव्यापकता के कारण ही उसे इस दूत-कर्म में समर्थ बतलाती है। अपनी बिरह दशा का कल्याण-वर्धन करती हुई सीता बामु से मायह करती है कि वह राम के शरणों में आराम निवेदन करके उनसे पूछे कि उन्होंने किस अपराध के कारण उनकी मुआ किया है। वैसे तो उनको बिस्वास है कि प्राणों के रहते हुए उन दोनों का प्रेम-भंग कभी नहीं हो सकता है। वे स्पष्ट कहती हैं कि राम ने अनुर्मग किया, मार्मक-मर्म भंग किया और अपना अमियेकोस्रभ भंग किया किन्तु उसके स्नेह को उन्होंने कभी भंग नहीं किया^२ अतः उन्हें भरोसा है कि राम के अत्याचारों से उनकी दशा कितनी ही क्षोभनीय क्यों न हो जाये किन्तु राम का प्रथम प्रेम-स्पर्श पाते ही वे पुनः स्वस्थ और क्षोभा-सम्पन्न हो जाएंगी।^३

इन काव्यों के अतिरिक्त अन्य दूत-काव्यों में भी अनेक स्थलों पर राम-कथा से वय-उच्च प्रेरणा प्राप्त की गई है। श्रीमद्भूप-शोस्वामी के हंस-दूत में भयबामु के सभी अवतारों का वर्णन करते हुए एक ही श्लोक में^४ स्तैप से राम और कव्य दोनों की स्तुति की गई है। 'हंस-सन्देश' में एक 'शिव-मन्त्र' का वर्णन करते हुए उसकी तुलना बिरही राम के साथ की गई है।^५ सत्मीराज के मुकु-संदेश का संदेशवाही मुकु हनुमान् के दूत-कर्म से प्रेरणा प्राप्त करता है।^६ विष्णुबाठ के कोक-सन्देश में भी दूतरव कं भाषार पर कोक और हनुमान् की तुलना की गई है तथा उससे प्रार्थना की गई है कि वह माग में अनेक निरिष्ट स्वप्नों पर राम और सीता की स्तुति भी सफ़रों पथों में करता हुआ बसे। उसकी मुषिषा के लिए दूत पर भी बहाने प्रस्तुत कर दिये गये हैं।^७ धामी के 'पवनदूत' में 'रामसेतु' का विशेष आर्थकारिक वर्णन किया गया है।^८

१ भ्रमरदूत । १२२

२ मन्महापत्न्यपुराणयिनो मार्मकस्यापि गणो
मनो लोकोत्सवविचिरपि स्वीयरागपाभियेक ॥
एतैवमनास्तवपि न क्वचिद्विकरीस्नेहवर्जग
स्तेनारमार्म कलपति भवत्यव्ययमार्म जनाग्रम् ॥ उत्तर ७१

३ वासदूत उत्तर ७३

४ हंसदूत । १३४

५ हंस संदेश । पूर्व । १,२२
उत्तर । ३०-४१

६ मुकु राग्येग उत्तर । ३१

७ कोक संदेश पूर्व । १०६-१०७

८ पवनदूत । १०

८ ऐतिहासिक-काव्य

'राम कथा के साय-साय अपने समकालीन या माध्यमकालीन राजाओं की प्रशस्ति को भी जोड़ते हुए बनेक कवियों ने ऐतिहासिक काव्य लिखे हैं, जिनमें निम्नलिखित काव्य विशेष रूप के उल्लेखनीय हैं।

(१) रघुनाथाम्बुदय—इसकी लेखिका प्रसिद्ध स्त्री कवि राममज्जाम्बा^१ हैं, जिन्होंने इसमें तंजोर-नरेश रघुनाथ नायक से ऐश्वर्य और साम्राज्य का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। यों तो पूरे काव्य में ही राम और रामा रघुनाथ की तुलना करते हुए 'राम-चरित' का बनेक बार उल्लेख हुआ है किन्तु उसके चतुर्थ सर्ग में ३३ में से ६६वे श्लोक तक 'राम-जन्म' से लेकर 'रामाभिषेक तक समस्त कथा संक्षेप में दी गई है।

इस संक्षिप्त 'राम-चरित' में राम के ईश्वरत्व-वर्णन के साय-साय उनकी अद्वितीय प्रतिभा और शक्ति का बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है।^२ कथा की दृष्टि से इसमें कोई नवीनता नहीं है। यह संक्षेप का ही प्रमाण है कि एक ही श्लोक में कृष्णकर्म, मेघनाद और रावण के वध का उल्लेख कर दिया गया है।^३

(२) पृथ्वीराज-विजय—सम्राट पृथ्वीराज के भावित कवि जोगराज ने इन महाकाव्य का निर्माण किया था। इसमें उसने पृथ्वीराज के पिता सोमेन्द्र को 'बहरथ' का बहदार^४ बतला कर प्रकारान्तर से पृथ्वीराज को 'राम' का बहदार सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसीसिद्ध्य उसने पृथ्वीराज की चित्रछाता में पूरी रामायण को चित्रित करवाया है और उसके वर्णन से पृथ्वीराज को पूर्वजन्म के स्मरण होने का भी उल्लेख किया है।^५ इसका कथानक यद्यपि पर्याप्त संक्षिप्त है, फिर भी उसमें कुछ विशेषताएँ हैं।

इसमें रावण से बस्त देवताओं की विष्णु से स्तुति, पुत्रेष्टि में प्राप्त वध से राजाओं के गर्म-भारण टाटकावध, अहस्मोक्षार और धनुर्भंग के परबात् विपिका में ही परशुराम विबाह^६ का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान ही किया गया है।^७ इसके 'सूर्यवद्या-विक्रमण प्रसंग में उसके ओठों^८ के भी काटे जाने का उल्लेख है और लंकापुत्र में कृष्णकर्म से पहले मेघनाद क वध^९ का वर्णन है, जो 'मानस' से भिन्न है।

९ व्याकरण-काव्य

कथा-वस्तु की गुण्य समता के साय-साय व्याकरण-शास्त्र की भी समुचित

१ रघुनाथाम्बुदय ४१७७ ३०

२ पृथ्वीराज विजय ६१३५, ४१

३ पृथ्वीराज विजय ११११ ३१

४ , १११६४

५ रघुनाथाम्बुदय ४१६१

६ पृथ्वीराज विजय १११२४ १०४

७ मानस १११८४ १८६, २०६ २१० २१८

८ पृथ्वीराज विजय १११८०-८२

धिया देने के साधुदेस्य से मिले गये वनेक 'शास्त्रकाव्य' भी संस्कृत-साहित्य में प्राप्त होते हैं। ऐसे काव्यों में कवि का ध्यान मुख्यतया व्याकरण के बिराम पर ही रहता है वहाँ कथालोक वीम कव से ही प्रस्तुत किया जाता है। 'राम-कथा' से सम्बन्ध रखने वाले इस प्रकार के ये दो काव्य प्राप्त होते हैं।

(१) 'मट्टिकाव्य अथवा रावण-वध'—महाकवि भट्टिक के द्वारा लिखित यह सर्वप्रथम मौखिक शास्त्रकाव्य है। उसके २२ सर्गों में 'राम-व्रत' से लेकर 'रामा विप्रेक' तक का बड़ा ही रोचक वचन प्रस्तुत किया गया है। कथा की दृष्टि से इसमें अनेक लकीरवाएँ हैं।

इसने ब्रह्मरथ भव होने का वर्णन मिलता है,^१ जो 'मानस' में नहीं है। वहीं राम और मारीच के विस्तृत संवाद^२ का भी उल्लेख है, जो 'मानस' में प्राप्त नहीं होया है।

इसमें राम के साहस की परीक्षा के लिए जनक-द्वारा उन्हें धनुष दिए जाने और उसके धन होने का वर्णन एक ही श्लोक में किया गया है। वहीं केवल राम के ही बिवाह का उल्लेख मिलता है।^३ 'मानस' के वर्णन इनसे भिन्न और विस्तृत हैं।

इस काव्य में मथुरा-व्यवस्था नहीं है। यहाँ केव्यो ब्रह्मरथ से पहले केवल 'राम-निर्वासन' की याचना करती है फिर उनके अधिक गिरिविज्ञाने पर वह उनका विरहकार करके 'मरुताविप्रेक' को भी कामना व्यक्त करती है।^४

'मानस' के मरुदाज के समान ही^५ इस काव्य क मरुदाज विनकूट जाते हुए भरत का दिव्य स्वागत करते हैं,^६ किन्तु 'मानस' के भरत उद्यम सर्वथा अलिप्त रहते हैं जबकि इसमें उनकी धृतिमत्त प्रतिभिया का कोई पृथक संकेत नहीं मिलता है। इसके काव्य के सटमज भरत को बिद्यात जन समुदाय के साथ विनकूट जाते बैठकर जन पर संका करते हैं और जब वे मुद के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं तब राम जन सब आगमनों को स्वैत वस्त्र धारी और धरुवहीन, अतः शोकयन्त वतसा कर उनको शाप करते हैं।^७ 'मानस' का वर्णन इससे भिन्न है।^८

इसमें मूर्धन्या राम की उपस्थिक बैठकर उनकी उपेक्षा करती है और तीये मथमन से ही पहले काम प्रार्थना करती है। वहीं उद्यकी केवल माक काटे जान का ही संकेत है।^९ किन्तु 'मानस' की मृपयथा पहले राम से ही प्रार्थना करती है और वहीं उद्यके माक-काम दोनों ही काटे जाते हैं।^{१०}

१ भट्टिकाव्य १।१

२ भट्टिकाव्य १।४२-४८

३ मानस २।२१२-२१४

४ भट्टिकाव्य १।४७-४८

५ " ४।११-११

२ भट्टिकाव्य १।१२-१६

४ भट्टिकाव्य २।११

६ " १।४२-४२

८ मानस २।२११-२१२

१० " १।१०

इसमें राम बाहुत बटामु को सीता का पाठक समझ कर जब उसे मारने के लिए बीड़ते हैं, तब वह उनको अपना परिचय देता हुआ अपनी दण्डरत्न-मिश्रता का भी उल्लेख करता है और सीता-हरण को रामज का कृत्य बतलाकर मर जाता है।^१ 'मानस' का बटामु राम का पूर्व परिचित है और मरते समय वह 'सुभ-वप' छोड़ कर 'हरि-वप' में उनकी स्तुति करता है और उनसे अद्विज मक्ति का वरदान पाकर 'हरिदाम' जमा जाता है।^२

इसमें बहरी के उपस्थिती बेष का विस्तृत वर्णन किया गया है और राम उससे उपरत्न-सम्बन्धी कृष्ण भी उपस्थितार पूछते हैं जिसका उत्तर देकर वह उनसे 'सुधीव-मिश्रता' की अभिप्रायणी करती हुई विरोहित हो जाती है।^३ 'मानस' के राम उसे नवयामक्ति का उपदेश देते हैं और फिर उनके द्वारा पूछे जाने पर वह उन्हें सुधीव-मिश्रता का परामर्श देकर 'योयामि' से 'हरिदाम' में चीन हो जाती है।^४

इस काव्य में बालिक का निरपराध बच करने के कारण राम को मुनियव विवकारते हैं।^५ स्वयं बालि भी राम को उनके इस पद्यवाच के लिए बुरा-जमा कहता है किन्तु 'मानस' के राम के समान ही^६ इस काव्य के राम जब उसे अनुज बच-हरण का दोषी ठहराते हैं तब तब सोच निरतर हो जाते हैं।^७

'मानस' के वर्णन के समान ही^८ इसमें भी 'स्वयं-प्रभा प्रसंग' में स्वयंप्रभा के भाव्य पर जानकों के द्वारा बालि बन्ध करके मुझ से सकलत बाहर जा जाने का वर्णन किया गया है।^९

इसमें 'प्रभाति-प्रसंग' में प्रभाति अन्यादि जानकों के बाध स्वयं बाहर उन्हें राम-कार्य के लिए प्रोत्साहित करता है और लंका में सीता की स्थिति का पूरा-पूरा पता भी बतलाता है।^{१०} 'मानस' में वह पहले उन जानकों के बाह्य की इच्छा म्नाह करता है फिर बटामु-रुपा से प्रभावित होकर वह उनको अपने सुय-अभियान की यात्रा सुनाता है। बड़ी जानकों के वर्णन से उसकी पुनः प्रसन्नता भी होती है।^{११}

'प्रभात-वर्णन' के बहाने से इस काव्य में लंका के राजाओं के राज-विकास या बड़ा विस्तृत और अरलीक वर्णन किया गया है।^{१२} जो 'मानस' में नहीं है।

इसमें भी विनीयव अपनी माता 'नीकपी' के भाव्य पर ही सीता के

१ भद्रिकाव्य १४१ ४२	२ मानस १११ १० १२
३ " ११०-७२	४ " ११४ १६
५ " १११७	६ " ४-२
७ " ११२० ११९	८ " ४१२५
८ " ७१६६-७०	९ भद्रिकाव्य ७१८२ १०१
१० मानस ४२७ २६	११ भद्रिकाव्य ११११ १७

परवर्ष के लिए रावण को समझाता है ।^१ 'मानस' का विभीषण स्वयं राममत्त है और वह उर्वर स्वयं प्रेरित होता है ।^२

इस काव्य का मेघनाथ अपने 'माघपाश' से राम और लक्ष्मण तथा समस्त बाणर-सेना को बाण्ड कर बैठा है ।^३ जिससे पुखी होकर राम जब सुग्रीव को किष्किन्धा सोट जाने का परामर्श देते हैं और स्वयं आत्महत्या करने का विचार व्यक्त करते हैं ।^४ तब विभीषण उनके मर्क के स्मरण का आग्रह करता है, जिसके कलावक्य धारे नाथ उनको त्याग कर समुद्र में प्रविष्ट हो जाते हैं । तदुपरान्त मर्क स्वयं भाकर अपने स्वयं से राम को स्वस्थ करते हैं और उन्हें अपनी परिचय देकर अपने जाते हैं ।^५

इसमें युद्ध में जाने से पूर्व मेघनाथ के द्वारा एक यज्ञ में ब्रह्मा से विषयप्रद रथ और सैन्य भी प्राप्त करने का वर्णन किया गया है ।^६ 'मानस' में उसके यज्ञ का बानरों के द्वारा संय करवा देने का उल्लेख है ।^७ इस काव्य का मेघनाथ अपने बानरों से संरक्ष करके बानरों को मार कर जब राम और लक्ष्मण को अन्धे कर बैठा है, तब विभीषण के आदेश से हनुमान् हिमान्त से 'मूठबीबनी' 'उपामकरणी' और विष्णुस्वरणी' औपमियों को संपर्क ले आते हैं । जिनकी सुगन्धि-मात्र से सब भोग स्वस्थ हो जाते हैं ।^८ 'मानस' में केवल लक्ष्मण-मूर्च्छा के प्रसंग पर हनुमान् के द्वारा विष्णुस्वरणी छाय जाने का उल्लेख है ।^९ इसमें मेघनाथ के द्वारा ब्रह्म भूमि में माया-सीता का बंध कर देने का वर्णन मिलता है, जिससे शम्भु होकर राम और लक्ष्मण बड़ा विचार करते हैं, किन्तु ब्रह्म में विभीषण से उस माया का उद्घस्य जान कर वे दोनों शान्त हो जाते हैं ।^{१०} 'मानस' में यह वर्णन नहीं है ।

इसमें सीता को 'सका प्रवास' के कारण कर्त्तव्य बतलाते हुए राम जब उनको यह परामर्श देते हैं कि वे सुग्रीव विभीषण, भरत लक्ष्मण या किसी अन्य बाँधित व्यक्त से सम्बन्ध स्थापित करें^{११} तब सीता पंचतत्व को ग्राम्यित करती हुई उन्हें अपनी निर्बोपता का साक्षी बतलाती हैं और लक्ष्मण से निता बतवा कर

- | | | | |
|----|---|----|------------------|
| १ | मट्टिकाव्य १२।१६ | २ | मानस २।३८-४१ |
| ३ | , १४।४४-४७ | | |
| ४ | समीहै भर्तुमान्ने तेन बाबाञ्जितं यमम् ।
बापवृष्टी च सुग्रीवं स्वं दैवं विघ्नसर्वं च ॥ १४।६३ | | |
| ५ | मट्टिकाव्य १४।६३-६० | ६ | मट्टिकाव्य १२।१३ |
| ७ | मानस ६।७१-७६ | ८ | , १२।८८-९० |
| ९ | , ९।६१ | १० | १७।२०-२५ |
| ११ | उपमांरूपपरिविस्तृता स्वं हस्तेऽकरोती यम ।
पतिं बन्धनं सुग्रीवं पाशसेन्द्रं पृहाणं च ॥२२॥
अथान् भरताङ्गुलीमान् लक्ष्मणं प्रभुभोष्यं च ॥२०॥२३ | | |

उसमें प्रवेश कर जाती है।^१ 'मानस' में राम के केवल दुर्बल का संकेत है। इस काव्य के अग्निदेव सीता को सुद बतला कर उन्हें राम को समर्पित कर देते हैं, फिर ब्रह्मा तथा शिव राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करते हैं। दशरथ उनको दर्शन देते हैं और इन्द्र मृत जानरों को पुनरुज्जीवित करते हैं।^२ 'मानस' में य सत्री देवता राम की स्तुति भी करते हैं, और इन्द्र अमृत-वर्षा से सत्री मृत जानरों और मातृओं को पुनरुज्जीवित करते हैं।^३

इस काव्य में राम संका से ही हनुमान् को अयोध्या भेज देते हैं। उस समय वे उनसे 'मार्ग' का बड़ा संरक्ष बर्नन भी करते हैं जिसकी सत्री मेघदूत का स्मरण दिखाती है।^४ 'मानस' के राम हनुमान् को प्रयाग से बिदा करते हैं।^५ वहाँ मार्ग-वर्नन नहीं है।

इसमें भरत-मिथुन रामाभियेक, अरवमेघ-यज्ञ भरत-योगराज्य आदि का अति संक्षिप्त वर्नन किया गया है।^६ 'मानस' में प्रथम दो प्रसंग बड़े विस्तार से वर्णित हैं तृतीय का केवल संकेत-मात्र है^७ और चतुर्थ तो बिल्कुल नहीं है।

(२) रावणशत्रुनीय—इस काव्य के रचयिता भट्टमीम हैं। इसकी प्रेरणा का स्रोत यह 'भट्टिकाव्य' ही जान पड़ता है। इस ग्रन्थ के २७ सर्गों में रावण और कर्तवीर्य वर्जुन के युद्ध का वर्नन है और छाप में अष्टाध्यायी के क्रम से पदों का भी सुन्दर निदर्शन किया गया है। रावण के चरित्र-विवरण की दृष्टि से इसका यहाँ कुछ महत्त्व है किन्तु आलोच्य राम-रूपा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

१० चम्पू काव्य

संस्कृत साहित्य में अनेक मध-मध-मय काव्य मिलते हैं जिन्हें 'चम्पू' के नाम से अभिहित किया जाता है। राम-रूपा के आधार पर ऐसे बहुत से काव्यों का निर्माण हुआ है, जिनमें 'चम्पू रामायण' प्रमुख है।

(१) चम्पू-रामायण—इसके लेखक प्रसिद्ध कवि योगराज हैं जिन्होंने 'बालकाण्ड' से लेकर 'सुन्दर काण्ड' तक इस काव्य का निर्माण किया है। इसके पत्रपाठ लक्ष्मणमूर्ति ने 'सुन्दरकाण्ड' लिखकर इसमें जोड़ दिया। 'उत्तर काण्ड' की रचना किसी बेंकट कवि ने की। इस प्रकार वात्सीकि रामायण के छठों काण्डों की रूपा इसमें समाहित की गई जिसकी विशेषतायें इस प्रकार हैं—

इस काव्य का आरम्भ 'बासीमकि-मारद-संवाह' से होता है। यहाँ ब्रह्मा रामचरित के प्रचार के लिए वात्सीकि से प्रायना करते हैं जिसके परस्वरूप ने 'रामायण' की रचना करके सीता के दोनों पुत्रों कृप और सब को सिद्धा देते हैं,

१ भट्टिकाव्य २०।१४-१७

२ मानस ६।११०-११५

३ मानस ६।१२१

४ " २३।२६-३१

५ भट्टिकाव्य २१।११-२०

६ " २३।१-१७

७ " ७।११२,२५

जो इबर-उमर जाते हुए राम के प्रासाद में भी पहुँच जाते हैं एवं उन्हें इस मयूर काव्य का रस-मान कराते हैं।^१ 'मानस' की कथा 'भरद्वाज-मातृवस्त्रि-संवाद' से आरम्भ होती है, जिसका आधार राम के ईरवरत्न पर संदेह और उसका निवारण करना है।^२

इसमें ब्रह्मा के नेतृत्व में देवमण लीरसागर जाकर विष्णु की स्तुति करते हैं और रावण के अत्याचारों का विस्तृत वर्णन करते हुए जब उनसे सुरता की पाचना करते हैं, तब वे उन्हें अच्युत लेने का आश्वासन देते हैं।^३ 'मानस' के देवमण शिव के परामर्श से जब ब्रह्मसोक में ही मयवान् की स्तुति करने सबते हैं तब वे उन्हें 'आकाशवाणी' से वही संतुष्ट करते हैं।^४

इसमें गौतम के साथ से बहुत्या के केवल 'अद्भुत' होने का उल्लेख है, फिर उसके उद्धार का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान ही है।^५

इस काव्य में राम के निर्वाचन की आज्ञा से शुभ्य सदस्य उसके प्रतिकार के लिए उनसे बल प्रयोग की आज्ञा पाते हैं, तब राम अपनी बंस-भर्यादा का ध्यान दिखा कर उन्हें रोकते हैं।^६ वहाँ सुमन्त्र केकयी की माता के भी कृटिम स्वभाव की कथा सुनाते हुए केकयी को भ्रष्टकारों से और वे उसे 'वर-पाचना' से रोकते भी हैं किन्तु वह तभी अनेक राजाओं के पुन-रवान का दृष्टान्त देती हुई राम कीया और मन्मथ तीनों के लिए 'बस्त्रक जाति' भी प्रस्तुत कर देती हैं।^७ 'मानस' में सुमन्त्र कोव' का संकेत तो नहीं है, किन्तु केकयी के द्वारा वहाँ भी राम जाति के लिए 'मुनिपट' जाति से माने का उल्लेख है।^८

इस काव्य का गृह राम से प्रार्थना करता है कि वे उसका रोग्य-ग्रहण करके वहीं १४ वर्ष का वनवास बिठावें।^९ 'मानस' का गृह उनसे अपने नगर में प्रवेश करने की प्रार्थना करता है।^{१०} दोनों ही प्रार्थों के राम वहाँ अपने विशेष व्रत के कारण मगर प्रवेश को अनुचित बतलाते हैं। इसमें राम के रंगा पार करते समय गृह के द्वारा उनके चरणों को धोने के आग्रह का उल्लेख इसमें नहीं है, किन्तु 'मानस' में है।^{११}

इस काव्य के अन्त्य में राम से मिलने के समय उनको ईश्वर यन्त्र ब्रह्मास्त्र, इन्द्र के दो तूषीर और तबस्त्रि घटग-क्रोश के साथ-साथ अपना

१ चम्पू रामायण १।३ १०

२ " १।११।२२

३ " १।१०

४ " २।२९

५ मानस २।७६

६ " २।८८

७ मानस १।४२ ४६

८ " १।४४ १८०

९ " १।२१० २११

१० चम्पू रामायण २।१४ के बाद

११ " २।४८ के बाद-४६

१२ मानस २।१००

घसमें प्रवेष्ट कर जाती है।^१ 'मानस' में राम के केवल बुद्धि का संकेत है। इस काव्य के अग्निदेव सीता को मुझ बतला कर उन्हें राम को समर्पित कर देते हैं फिर ब्रह्मा तथा शिव राम के ईश्वरत्व का उल्लेख करते हैं। दशरथ उनको दर्शन देते हैं और इन्द्र मृत जानरों को पुनरुज्जीवित करते हैं।^२ 'मानस' में ये सभी देवता राम की स्तुति भी करते हैं और इन्द्र अमृत-नर्पा से सभी मृत जानरों और प्राणियों को पुनरुज्जीवित करते हैं।^३

इस काव्य में राम संका से ही हनुमान् को व्योम्वा भेज देते हैं। उस समय वे उनके मार्ग का बड़ा संरक्षक भी करते हैं। जिसकी सैनी मेघदूत का स्मरण विभाती है।^४ 'मानस' के राम हनुमान् को प्रयाग से बिदा करते हैं।^५ वहाँ मार्ग-वर्जन नहीं है।

इसमें भरत-मिसन, रामाभिषेक भरतमेघ-यज्ञ भरत-बीरराम्य आदि का अति संक्षिप्त वर्णन किया गया है।^६ 'मानस' में प्रथम दो प्रसंग बड़े विस्तार से वर्णित हैं, पृथ्वी का केवल संश्लेष-मात्र है^७ और पशुर्ष तो बिल्कुल नहीं है।

(२) रावणालु नीय—इस काव्य के रचयिता भट्टमीम हैं। इसकी प्रेरणा का स्रोत यह 'मट्टिकाव्य' ही जान पड़ता है। इस ग्रंथ के २७ सर्गों में रावण और कार्तवीर्य अर्जुन के युद्ध का वर्णन है और साथ में 'अष्टाध्यायी' के क्रम से पदों का भी सुन्दर निदर्शन किया गया है। रावण के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इसका यहाँ कुछ महत्व है किन्तु आसौख्य राम-कथा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

१० अम्बु काव्य

संस्कृत साहित्य में अनेक पद्य-पद्य-मय काव्य मिलते हैं जिन्हें 'अम्बु' के नाम से अभिहित किया जाता है। राम-कथा के आसार पर ऐसे बहुत से काव्यों का निर्माण हुआ है, जिनमें 'अम्बु रामायण' प्रमुख है।

(१) अम्बु-रामायण—इसके लेखक प्रसिद्ध कवि सोनराज हैं जिन्होंने 'दासकाण्ड' से लेकर 'सुन्दर काण्ड' तक इस काव्य का निर्माण किया है। इसके पश्चात् लक्ष्मणसूरि ने 'युद्धकाण्ड' लिखकर इसमें जोड़ दिया। 'उत्तर काण्ड' की रचना किवी बंछट कवि ने की। इस प्रकार शास्त्रीय रामायण के सातों काण्डों की कथा इसमें समाहित की गई, जिसकी विशेषतायें इस प्रकार हैं—

इस काव्य का आरम्भ 'शारीरक-नारद-संवाद' से होता है। वहाँ ब्रह्मा रामचरित के प्रचार के लिए शास्त्रीय से प्रार्थना करते हैं जिसके फलस्वरूप वे 'रामायण' की रचना करके सीता के दोनों पुत्रों 'कुच और मय' को सिद्धा देते हैं,

१ मट्टिकाव्य २०।३४ ३७

२ मट्टिकाव्य २१।१३ २०

३ मानस ६।११०-११३

४ " २५।१ १७

५ मानस ६।१२१

यो इपर-उपर जाते हुए राम के प्रासाद में भी पहुँच जाते हैं एवं उन्हें इस मधुर काव्य का रस-नाश कराते हैं।^१ 'मानस' की कथा भरद्वाज-याज्ञवल्कि-संवाह से आरम्भ होती है जिसका आधार राम के ईश्वरत्व पर सन्देह और उसका निवारण करना है।^२

इसमें ब्रह्मा के नेतृत्व में वैवश्वत क्षीरसागर जाकर विष्णु की स्तुति करते हैं और रावण के अत्याचारों का विस्तृत वर्णन करते हुए जब उनसे सुरक्षा की याचना करते हैं तब वे उन्हें बबतार सेने का आश्वासन देते हैं।^३ 'मानस' के देव पण धिव के परामर्श से जब ब्रह्मलोक में ही भगवान् की स्तुति करने समते हैं तब वे उन्हें 'आकाशवासी' से बही समुष्ट करते हैं।^४

इसमें गीतम के घाप से बहस्या के केवम 'अदृश्य' होने का उल्लेख है, फिर उसके उद्धार का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान ही है।^५

इस काव्य में राम के निर्वासन की आज्ञा से दुष्प सदमन उसके प्रतिहार के लिए उनसे बल प्रयोग की आज्ञा माँगते हैं, तब राम अपनी बंध-मर्यादा का ध्यान रिसा कर उन्हें रोकते हैं।^६ बही सुमन्त्र केकयी की माता के भी कुटिल स्वभाव की कथा सुनाते हुए केकयी की धिक्कारते हैं और वे उसे 'बन्ध-याचना' से रोक्ते भी हैं किन्तु वह उनी अनेक राजाओं के पुत्र-श्याम का दुष्टान्त बेसी हुई राम पीठा और सदमन पीठों के लिए बरुठल आदि' भी प्रस्तुत कर देती है।^७ 'मानस' में सुमन्त्र कोय' का संकेत तो नहीं है किन्तु केकयी के द्वारा बही भी राम आदि के लिए मुनिपट' आदि से माने का उल्लेख है।^८

इस काव्य का मुह राम से प्रार्थना करता है कि वे उसके राज्य-ग्रहण करके बही १४ वर्ष का बतबास बिठायें।^९ 'मानस' का मुह उनसे अपने नगर में प्रवेश करने की प्रार्थना करता है।^{१०} दोनों ही प्रर्थों के राम बही अपने बिरोध ब्रत के कारण मयर-अवेद्य को अनुचित बतलाते हैं। इसमें राम के र्थना पार करते समय मुह के द्वारा उनके बरनों को धोने के आग्रह का उल्लेख इसमें नहीं है, किन्तु 'मानस' में है।^{११}

इस काव्य के अन्त्य मुनि बम में राम से मिलने के समय उनको बँप्यब पनुप ब्रह्मस्त्र, इन्द्र के दो तूणीर और स्वर्णिम पाङ्कज-कोश के साय-साय अपना

१	बम्बू रामायण १।२ १०
३	१।११।२२
५	" १।१०
७	" २।२९
८	मानस २।७१
११	" २।८६

२	मानस १।४३ ४६
४	" १।८४ १८७
६	" १।२१० २११
८	बम्बू रामायण २।३४ के बाद
१०	" २।४८ के बाद ४१
१२	मानस २।१००

वक्ष्य भी उन्हें दे देते हैं^१ जिसका वर्णन 'मानस' में नहीं है।^२

इस काव्य के अनुसार सीता के हरण के पश्चात् वन में उन्हें खोजते हुए राम और सखियाँ एक ऐसे स्थान पर पहुँच जाते हैं जहाँ धनकी भेंट जयोमुखी नाम की एक ऐसी राक्षसी से हो जाती है जिसके कुरिचत प्रस्ताव पर सखियाँ उसे सूर्यजला की तरह विकृषित कर देते हैं।^३ 'मानस' में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

'मानस' के पश्चात् इस काव्य के सुधीर राम से प्रार्थना करते हैं कि वे किष्किन्धापुरी में ही वर्षा-प्रवाह करे, किन्तु राम अपने मगर-प्रवेश को अनुचित बतलाकर उसकी बात नहीं मानते हैं।^४ 'मानस' में सुधीर के इस आग्रह का वर्णन नहीं है।

इसके 'सम्प्राप्ति-मिलन प्रसंग' में सम्प्राप्ति अपने पुत्र सुपासर्ब के द्वारा माखों देखा सीता-हरण का वृत्तान्त अनन्त आदि को सुनवाता है^५ जो 'मानस' में बर्णित नहीं है।

'मानस' के वर्णन के समान ही^६ इसमें भी हनुमान् के द्वारा समुद्र-मंथन करते समय मीनाक सुरवा और सिंहिका के पश्चात् उस संकिनी से भी उनकी भेंट होने का वर्णन है, जो अपने पराजय के कारण राक्षसों के भावो विनाश की सूचना भी उन्हें देती है।^७

इस काव्य का राजस अघोर-घाटिका में स्थित सीता के समक्ष पहुँच कर उनसे कृष्ण नहीं कहता है, किन्तु वे ही मुख में लूण रखकर जब उसे फटकारती और धमकाती हैं तब वह केवल एक रात्रि की अवधि लेकर चला जाता है।^८ 'मानस' का राजस ऐसे अवसर पर सीता को अनेक प्रसन्नोत्तन देता है और अन्त में निराश होकर उन्हें एक मास की अवधि देता है।^९

इसके हनुमान् सीता-संवाह' में सीता के द्वारा हनुमान् से विभीषण की पत्नी शरमा और उसकी पुत्री मन्सा के सङ्घर्ष-हार की प्रशंसा करने का वर्णन है।^{१०} 'मानस' में उनका नामोस्मरण तक नहीं है। इस काव्य के हनुमान् अपना निराद् रूप सीता को स्वयं दिखाते हैं।^{११} 'मानस' में वे सीता के संकेत पर ही बंधा करते हैं।^{१२} इसमें हनुमान् को प्रथम वर्णन में ही प्ररमजिज्ञान देती हुई सीता उनसे 'जयस्त-प्रसंग' का उल्लेख करती है,^{१३} यद्यपि उस घटना का वहाँ पहले नहीं

१ जम्पुरामायण ३।१२ के बाह

३ " ३।४२ के बाह

२ " ४।४० के बाह

७ " ५।३-१२ "

८ मानस ५।१०

९ जम्पुरामायण ५।३१

१३ " ५।३४ के बाह

२ मानस ३।१२ १३

४ जम्पुरामायण ४।२१-२२

६ मानस ५।१-४

७ जम्पुरामायण ५।२०-२१ के बाह

१० " ५।३० "

१२ मानस ५।१६

भी वर्णन नहीं किया गया है। 'लंका-वाह' क पश्चात् इस काव्य के हनुमान् सीता से पुनरा मिलकर के इस पार का भाग है।^१ 'मानस' के हनुमान् भी सीता से दो बार मिलते हैं किन्तु वे द्वितीय मिलन में ही प्रत्यभिज्ञान ग्रहण करते हैं।^२

'लंका-मुक्त' के पूर्व राक्षसों की समा में विमर्श करता हुआ इस काव्य का राक्षस अपने गल-कूबर-शाय' 'गन्दी-शाय' और 'बहुला-शाय' आदि का वर्णन करता है,^३ जिनका 'मानस' में संकेत भी नहीं है। वहाँ राक्षस की भाँसा से प्ररित होकर विष्णुजिह्व राक्षस राम के कटे हुए मकसी सिर और धनुष बाण को सीता से समस्त प्रस्तुत करता है, जिससे दुःख्य होकर वे अत्यन्त विनाश करती हैं किन्तु सरमा के द्वारा उसका भेद जान कर वे सीध ही क्षान्त हो जाती हैं।^४ 'मानस' में यह घटना नहीं है।

इसमें राक्षस का प्रथम वर्णन करते ही सुधीर उखल कर उसका मुकुट उतार कर पृथ्वी पर फेंक देता है और राम के समीप भाग जाता है।^५ 'मानस' में ऐसी भी कोई घटना नहीं है।

इस काव्य का मेघनाद मुक्तभूमि में सीता का मकसी कटा हुआ सिर फेंक देता है जिसे देखकर हनुमान् जब राम और सद्यमल को उरुकी सूचना देते हैं तब वे अत्यन्त विनाश करते हैं उसी समय विभीषण उसका रहस्य स्पष्ट करके उनको निरिच्छत करता है।^६ 'मानस' में यह घटना भी नहीं है।

इस काव्य के 'सीता-मुक्ति प्रसंग' में राम सीता से कुछ भी नहीं कहते हैं किन्तु सीता ही अपनी पवित्रता का स्वयं परिचय देने के लिये बहुधा आदि देवताओं के समस्त धनि में प्रवेष्ट करती है। उनके वक्षत निरुक्त शाने पर राम उन्हें प्रदूष कर सेते हैं।^७ 'मानस' में राम के 'दुर्बाह' से दुःख्य सीता जिता में प्रविष्ट होती है और अनिन्देव उन्हें गुड घठना कर राम को समर्पित कर देते हैं—

यदि क्व पावक पाणि यहि धी सत्य अ ति अग विदित जो।

जिमि छीरसागर इबिरा रामहि समर्पि जानि तो ॥६।१०६

इसमें एक ही वाक्य में 'ब्रह्मादि की स्तुति 'दत्तारज के दर्शन', जानकों के पुनर्जीवन' और राम के पुण्यकारोहण' का संक्षिप्त वर्णन है।^८ 'मानस' में इसको आश्चर्यक विस्तार दिया गया है।^९ इस काव्य के 'रामानिषेक' प्रसंग में

१ अश्व रामायण ५।१७

२ मानस ५।१६

३ अश्व रामायण ६।१२ के बाद

४ अश्व रामायण ५।१९ के बाद

५ ६।१३

६ " ६।१८-७० के बाद

७ विमूढसीतामनसेन मंवा।द्विदेव्या तत्र बिलोचय सीताम्।

प्रथा पुन प्रमुपसीव पूया प्रयधृतीसोऽयसरो रपुणाम् ॥६।१८

८ अश्व रामायण ६।१८ के बाद

९ मानस ६।११०-१११

सुग्रीव और विभीषण आदि के सपत्नीक सम्मिलित होने का उल्लेख है^१, जो 'मानस' में नहीं मिलता है।^२

(२) उत्तर-रामचरित चम्पू—बैक्य कवि द्वारा निर्मित ३०० श्लोकों के इस चम्पू के अनुसार ऋषिबन्ध राम से रामन और हनुमान् की चम्पू-कथाओं का विस्तार से वर्णन करते हैं^३ जिसके परचात् इसमें 'रामचरित' का यह उत्तर भाव बर्णित हुआ है जो 'मानस' में नहीं है। इसमें अनेक स्थलों पर जगन्नाथ राम की विस्तृत स्तुति की गई है।^४

(३) अन्य चम्पू—काव्य—इनके अतिरिक्त अन्य चम्पू कवियों में भी प्रायः एक रूप से 'मानस' की इस कथा का बज-तब उल्लेख हुआ है। विजयचम्पू में श्रीराम के महापराब विजय के समा कवि बाधेश्वर विद्यासंकार के द्वारा राम विजय के स्वप्न में जाकेट के लिए जाने और अन्त में अयोध्या पहुँचकर राम की स्तुति करने का बड़ा सरस वर्णन किया गया है।^५ 'रघुनाथ विजय-चम्पू' में कृष्ण कवि ने २ विद्याओं (अध्यायों) में रामा रघुनाथ और उनकी रात्री जानकी देवी के नाम-साम्य से प्रभावित होकर स्वेप से राम-कथा का भी बज-तब उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त वहाँ रामा रघुनाथ के द्वारा 'चण्डीय' में जाकर विस्तार से 'रामस्तुति' करने का भी वर्णन है।^६ जनक भट्ट भारत चम्पू^७ और 'तिरुमलाम्बा' के 'वरदाम्बिकापरिचय चम्पू'^८ काव्यों में 'राम-सेतु' का बड़ा रोचक वर्णन मिलता है।

११ धार्मिक-काव्य

इसके अन्तर्गत 'महामारत' और पुराणों का ग्रहण किया गया है, जिनमें 'राम-चरित' का बड़े विस्तार के साथ काव्य-मग वर्णन मिलता है। राम-कथा के पाठों और उनके चरित्रों को तो उदाहरण के लिये इन ग्रन्थों के अनेक स्थलों में प्रचुरता के साथ स्मरण किया गया है।

(१) महामारत—इस विद्याम-काव्य ग्रन्थ के अन्तर्ग में तीन अंशों में और श्लोक पर्व में तथा शान्ति पर्व में भी 'राम चरित' का बड़ा सरस निरूपण प्राप्त होता है।

वन पर्व (प्रथम प्रसङ्ग)—इसके 'शीर्ष-भाषा-वर्णन' में 'युधु-शीर्ष' का उल्लेख करते हुए वहाँ परमुचम की तपस्वा और उसके मूल कारण उनके राम से

- | | |
|-----------------------------|---|
| १ चम्पू रामायण १।१०१ के बाद | २ मानस ७।१२ |
| ३ उत्तर रामचरित चम्पू। १-१० | ४ उत्तर रामचरित चम्पू। ३, २४१-२४७ |
| ५ विजय चम्पू। २११-२३८ | ६ रघुनाथ विजय चम्पू १।१७, २०
४।२६-२७ |
| ७ भारत चम्पू। ३।४४-४२ | ८ वरदाम्बिका परिचय चम्पू ५० ६ |

बनाव' पर प्रकाश डाला गया है। इसके अनुसार परशुराम अयोध्या आकर राम की बल-परीक्षा के लिये उन्हें अपना वन्यूप देते हैं जिसके सज्ज करने पर वे उन्हें अपना बाण भी सत्यान क लिये देते हैं। इस पर राम उनके दर्प के लिये उन्हें श्टकारते हैं और उन्हें अपना विराट रूप दिखला कर उसी बाण से उनका तेज समाप्त कर देते हैं। इससे क्रोध हुआ परशुराम उनकी आज्ञा से महेश्वर पर्वत पर बसे जाते हैं फिर वहाँ वे भृगु-शीर्ष' पशुच कर के कठिन तपस्या करके अपने तेज को पुनः प्राप्त करते हैं।^१ मानस' में राम-नरनाराम-मिलन विपिना में और टीक यमूर्ध्व क पश्चात् बणित हुआ है। वहाँ भी राम की बल परीक्षा के लिये परशुराम के द्वारा उनको अपना वन्यूप देने का उल्लेख है जिसके सज्ज हो जाने पर वे उनकी स्तुति करते हुए किसी अज्ञात वन में तपस्या के लिये बसे जाते हैं। वहाँ इस अवसर पर राम के विराट-रूप प्रदर्शन का कोई संकेत नहीं मिलता है।^२

वन पर्व (द्वितीय प्रसङ्ग)—इसी तीर्थयात्रा पर्व' में हनुमान् भीम सबाय में हनुमान् भीम को अपना संक्षिप्त परिचय देते हुये राम-सुग्रीव मिलन' से लेकर 'रामाभियेक' तक का संक्षिप्त कथानक भी प्रस्तुत करते हैं जिसके अन्त में वे उनके आग्रह पर 'सागर-अंघन' जाता अपना विराट रूप भी उनको दिखलाते हैं। उनकी अप्सृत सामर्थ्य देख कर जब भीम उनसे प्रश्न करते हैं कि उन्होंने राक्षस का बध स्वयम् क्यों नहीं किया और उसे राम के लिए क्यों रखने लिया तब वे उनको स्पष्ट बशर देते हैं कि राक्षस-बध का भय राम को दिमान के लिए ही उन्होंने बैठा नहीं किया।^३ मानस' में हनुमान क ऐसे रूप का कोई उल्लेख नहीं है।

वन पर्व (तृतीय प्रसङ्ग)—इसी पर्व के 'रामोपाख्यान' में रामजन्म' से लेकर 'रामाभियेक' तक का समस्त कथानक १८ अध्यायों में बड़े विस्तार से वर्णित किया गया है। कथा-वस्तु के विचार से इसकी उत्सैयनीय विनोपतायें इस प्रकार हैं—

इन्होंने राम और सीता के साधारण जन्मों का वर्णन मिलता है जबकि 'मानस' में 'राम-जन्म प्रसंग' में 'पुत्र काम-वश' आदि का विस्तार है और 'सीता जन्म प्रसंग' का वहाँ कोई संकेत भी नहीं है। इसी प्रकार 'मानस' में राक्षस आदि के जन्म और उनके माता-पिता का भी कोई वर्णन नहीं है किन्तु वहाँ उन सबके पिता ब्रियवा है और उनकी तीन पत्नियों में से 'पुण्ड्रास्तुटा' से राक्षस और कुम्भकर्ण, मातिनी' से बिभीषण तथा 'राका' से राव और दूर्वाणसा का जन्म होता है।^४

इसमें राक्षस कवेर से उसका पुत्रक विमान बलपूर्वक प्राप्त कर लेता है।

- १ महाभारत । वन । ६६।४०—७१ २ मानस १।२१८, २८४—२८५
 ३ महाभारत । वन । १४७।२६—१४८।१६ ४ २०।१—१९
 ४ महाभारत । वन । २०४।७, ९ ५ महाभारत । वन । २७२।१—८

रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन

वहाँ कृनेर के साथ का भी सम्बन्ध है कि रामच पुष्पक का उपयोग न कर सकेगा, प्रत्युत उसका विरोधा ही उसका उपयोग करेगा।^१ 'मानस' में कृनेर के साथ का सम्बन्ध नहीं है।^२

इसमें रामच से तत्त्व वैभवाय अग्नि के तैत्त्व में जब ब्रह्मा से सुरदा की प्रार्थना करते हैं तब वे उन्हें आस्वायन देते हैं कि विष्णु अवतार लेकर सब कथ्य व्यवस्थित कर द्ये। तत्पश्चात् वे इंद्रादि देवताओं को वाचरिणों और ऋषियों की सहायता से ऐसे पुत्रों को उत्पन्न करने की आज्ञा देते हैं जो विष्णु को सहायीय हों। फिर वे बुधुभी नामक पंचमी को सब योजनायें समझा-बुझा कर मन्वराज बनने के लिए प्रेरित करते हैं।^३ 'मानस' में वैभवाय के साथ ब्रह्मा के द्वारा भी मयवाय की स्तुति करने का सम्बन्ध है। वहाँ मयवाय उन्हें आकाशवापी से सात्त्वता देते हैं। फिर ब्रह्मा उन देवताओं को स्वयं वाचर-रूप में अग्नि से कर मयवाय की सेवा करने की आज्ञा देते हैं। यहाँ मन्वरा' के पूर्वजन्म का भी कोई संकेत नहीं है।

इसमें 'मानस' के वर्णन की तरह ब्रह्मरव के श्वेत-केश' की कोई वर्णा नहीं है।^४ वहाँ ब्रह्मरव स्वयं अपने को बृह मान कर जब 'रामामिवेक' का विचार करते हैं तब मन्वरा की प्रेरणा से केकयी छारे शृङ्गार करते हुंछपी हुई ब्रह्मरव से एकान्त में एक ही वर माँघी है किमें परत का अमिवेक और राम के निर्वाचन की प्रार्थना की जाती है।^५ 'मानस' की केकयी कुनेय बनाकर कोय मयग' में पहले मान करती है और फिर ब्रह्मरव के मनाने पर वह उगते उक्त प्रार्थना दो वरों में करती है।^६

'मानस' के स्वर्ण-मृग-जय' प्रसंग में छीठा के 'मय-जयनों का कोई विवरण नहीं दिया गया है।^७ किष्ण इसमें उनके द्वारा मन्वरा को कामी और मुहू जाकि कहते तथा उनके साथ परलीकत् रहने की अपेक्षा अस्व प्रहार पर्वत-पतन अग्नि प्रवेश जावि से बारमहत्या कर लेने के निरन्धय का वर्णन किया गया है।^८

इसमें ताप 'सर्वं भूत-रुद्रा' है इधीलिय सुधीय की लसफार को गुन कर वह उसकी 'राम-निशता की छारी पटना जान लेती है और तबनुसार जाकि को रोकने की चेष्टा करती है।^९ 'मानस' की ताप जाकि को रोकती अवश्य है किष्ण उसके इस विरोध जान का वहाँ कोई संकेत नहीं है।^{१०}

१ महाभारत । अम । २७५।३४-३५ २ मानस १।१७६

३ " २७६।१-१५ ४ २।२

५ महाभारत । अम । २७७।७-१५ ६ ७-२६

६ मानस २।२४-२६ ७ मानस ३।२८

८ महाभारत । अम । २७८।२६-२८ ९ महाभारत । अम । २८०।१६-२४

१० मानस ४।७

इसके अनुसार समुद्र में राम की स्वप्न में दर्शन लेकर लक्ष्मी की सहायता से 'वेतुबन्ध' का उपाय बतसाता है।^१ 'मानस' में वह राम के कोप से क्षुब्ध होकर उनकी स्तुति करता है और लक्ष्मी तथा नील शोभा को उस महान कार्य में समर्पण बतसाता है।^२

इसमें कर्मण ही कुम्भकर्ण का वप करते हैं^३, जब कि 'मानस' में इसका प्रयोग राम की बिलता है।^४

देवनाभ की बाण-वर्षा से अकेले राम-कर्मण को इस प्रसंग में विभीषण 'प्रजास्य' से स्वस्थ करते हैं और सुपीथ 'विश्वस्य' भीषण से उन्हें पूर्ववत् कर देते हैं।^५ इसमें विभीषण कुबेर के द्वारा प्रिय 'विश्वस्य' भी उसको देते हैं जिसके प्रयोग से उन्हें अक्षय्य के भी दर्शन की शक्ति प्राप्त हो जाती है।^६ 'मानस' में इसका कहीं संकेत नहीं है।

'मानस' का रामण 'माया-मुद्र' करते समय कभी अनेक 'रावणों' को प्रवट करता है तो कभी अनेक 'हुनुमानों' को।^७ किन्तु इसमें वह अनेक रावणों और कर्मणों का निर्माण कर देता है।^८

महामारुह' के नाम इन्द्र-रथ को राजस-माया समझ कर पहले मस्त्री कर कर देते हैं फिर विभीषण के परामर्श से ही उन्हें उसकी मछली उप योगिता का विश्वास होता है।^९ मानस में इस मछल पर राम की किसी शंका का उल्लेख नहीं है।^{१०}

इस प्रसंग के 'सोता-सुद्धि प्रसंग' में सीता के अग्नि प्रवेश का उल्लेख नहीं है, प्रसूत वायु, अग्नि, बरुण, प्रह्ला आदि देवता और दशरथ के द्वारा उनकी सुदृढा की पोषणा करने तथा राम से उन्हें प्रहृष्ट कर लेने के मायह का वर्णन है।^{११} 'मानस' में स्वयं अग्निदेव सीता को मुञ्ज बतला कर उन्हें राम की अर्पित करते हैं, फिर उपर्युक्त देवमण उनकी स्तुति करते हैं।^{१२}

लंका से अयोध्या सीटते समय इस प्रसंग के राम मार्ग में किष्किण्या में रुक कर अंमल को वही का युवराज बना देते हैं फिर अयोध्या के पास पहुँच कर

- | | | | |
|----|--|----|--------------------------|
| १ | महामारुह । वन । २८३।३३-४२ | २ | मानस ५।१८-१७ |
| ३ | महामारुह । वन । २८७।१२-१६ | ४ | मानस ६।७१ |
| ५ | " , २८९।१-७ | ६ | महामारुह । वन । २८९।८-१४ |
| ७ | मानस ६।२६, १०१ | | |
| ८ | इत्या रामस्य कृपाणि सप्तमणस्य च भारत ।
अभियुक्ताव रामं च सप्तमं च ब्रह्मानन ॥२२०॥ | | |
| ९ | महामारुह । वन । २२०।१२-१७ | १० | मानस ६।७६ |
| ११ | " , २२१।९-१६ | १२ | " ६।१०६-११५ |

के हनुमान् को दूत बनाकर भरत के समीप भेजते हैं।^१ 'मानस' में राम किष्किन्धा में नहीं चक्रे हैं और वे प्रयाग से ही हनुमान को भेज देते हैं।^२

श्लोचपर्व—इस पर्व में काम के महात्म्य का वर्णन करते हुए उसके सामने राम को भी असमम बतला कर उनके जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक का समस्त कथानक अतिसंक्षिप्त रूप में बर्णित किया गया है।^३ कथा की दृष्टि से इसमें कोई विशेषता नहीं है। उसे भी कवि का ध्यान कथावर्णन की ओर न होकर मृत्यु के समस राम की विवशता के निरूपण में एकाग्र है। 'मानस' में ऐसा बर्णन नहीं है।

शान्तिपर्व इस पर्व में भी यद्य के महाबिलास से संतुष्ट मन्दिष्ठि को साम्बना देते हुए धीहृष्य १५ महान राजाओं के चरित और शक्ति का वर्णन करते हैं जिनको अन्त में काञ्च का प्राप्त बनना पड़ा। इसी प्रसंग में रामराज्य का संविस्तार वर्णन करके अन्त में वे राम की मृत्यु का भी उल्लेख करते हैं।^४ 'मानस' की कथा रामराज्य-वर्णन पर समाप्त हो जाती है।^५

(२) पुराण—साहित्य—प्रसिद्ध १८ पुराणों के अन्तर्गत 'मार्कण्डेय' मन्विष्य 'सिव' 'बराह' 'वामन' 'मत्स्य' और ब्रह्माण्ड पुराणों में राम-कथा का कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता है। यों तो अथर्वार चर्चा के साथ-साथ 'रामचरित' का जोड़ा बहुत प्राथमिक वर्णन तो यत्र-तत्र प्राप्त हो ही जाता है। गदक कूर्म और वारह पुराण में एक तो प्रक्षिप्त अंशों की प्रचुरता है और दूसरे वही भी राम-कथा का अति संक्षिप्त वर्णन है जो किसी उल्लेखनीय विशेषता का प्रतिपादन नहीं करता।

'मानस' में बर्णित राम-जन्म की हेतु-कथामों और 'शिव चरित' पर 'सिव पुराण' का बहुत आभार है किन्तु उसका मूल-कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वर्ग पुराण में 'रामचरित' का अपेक्षाकृत अति विस्तृत बर्णन मिलता है यद्यपि वहाँ भी उल्लेख अंशों को प्रक्षिप्त माना जाता है। इस पुराण के लगभग सभी अध्यायों में राम-कथा का कुछ न कुछ भाग प्राप्त हो जाता है।

इसके 'माहेश्वर-खंड' में रावण के जन्म और बन्धन का वर्णन है। 'शैब्य-खंड' में राम की निर्वाण प्राप्ति की कथा है। 'वायु-खंड' में शत्रुघ्न और वहाँ 'सिवसिम' की स्थापना का वर्णन है। 'वर्मारण्य-खंड' में राम-कथा की समस्त घटनाओं की अर्धक विविधों का विवरण दिया गया है। 'अश्वती-खंड' में हनुमान् के घाबतार का संकेत है। 'रेवाण्ड' में ब्रह्मसोडार की घटना बर्णित की गई

१ पुष्पकैव विमानेन वीदेह्या वर्धयन् वनम् ।

किष्किन्धां तु समाधाद्य राम प्रहृष्टां वत् ॥२८॥

अंघ्रं कतुर्कर्मात् पौत्रराज्येऽभ्यवेचयत् ॥ २९१।२९

२ मानस ५।११६-१२१

३ महाभारत । श्लोक १३९।१-७

४ महाभारत । धाम्नि । २६।३१-६२

५ मानस ७।२३११

है। नामर खण्ड में पुत्र प्राप्ति के लिए बधरथ की तपस्या एवं उनके फलस्वरूप उनके द्वारा रामादि पुत्रों के साध-साध छान्दा को भी पुत्री रूप में पाने का उल्लेख है। इसी खण्ड में सीता-स्वाग सम्मन-मृत्यु आदि के वर्णन के पश्चात् राम के द्वारा विभीषण को उपदेश देने और उसकी प्रार्थना पर 'सेतु' को भंग कर देने का भी वर्णन मिलता है। प्रयाग-खण्ड में राम लक्ष्मण बधरथ तथा रावण के द्वारा अनेक पुष्प क्षेत्रों में विध्वंसियों की स्थापना करते फिरने का विस्तृत वर्णन किया गया है।

पुराणों के अतिरिक्त शेष भागवत विष्णु महा संहारवर्णन जगिन तथा पद्म आदि पुराणों में प्राप्त राम-कथा का विवरण इस प्रकार है—

(३) भागवत—इसके नवम स्कन्ध में 'सूर्यवश' के इतिहास के क्रम से 'रामचरित' का भी संक्षिप्त वर्णन मिलता है। यहाँ रामजन्म से लेकर राम-निर्वाण तक का कथानक गृहीत हुआ है। उसकी कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—

मानस में राम के पूर्वजों का कोई वर्णन नहीं मिलता है किन्तु इसमें 'पटवाण' से लेकर बीर्षबाहु उनके रघु उनके जन्म' फिर उनसे 'बधरथ' के जन्म से का विस्तृत उल्लेख है।^१ इसमें राम आदि चारों माई ब्रह्ममय भयवान् के बतुर्बा अर्थात् है।^२ मानस का वर्णन इससे भिन्न है। इसमें राम निर्वाण प्रसंग में बधरथ को स्मरण तक कहा गया है।^३ मानस में बधरथ का यह अपमान नहीं है।^४ मानस के वर्णन के समान ही^५ इतम भी समुद्र के द्वारा राम के ईश्वरत्व का वर्णन करते और उन्हें 'अव्ययवर्णित कूटस्थ' आदि पुरुष और जगदाधीश' आदि कहने का उल्लेख है।^६ इसमें सेतुकरण के पश्चात् विभीषण मिसन का वर्णन है^७ जो 'मानस' के क्रम के विपरीत है। इस पुराण के राम-रावण के लिए 'गुणपावपूरीय श्वाण और निर्मलज आदि अपशब्दों का प्रयोग करते हैं।^८ मानस के राम इस दिशा में बड़े समत और आदर हैं। इसमें राम अयोध्या-वाटिका में स्वर्ण बाहर सीता से मिलते हैं और उन्हें पुष्पक पर बैठाकर अयोध्या में लाते हैं। यहाँ सीता सुति का भी कोई उल्लेख नहीं है।^९ मानस का वर्णन इससे भिन्न है।

(४) विष्णु पुराण—इसमें इक्ष्वाकुवंश का इतिहास-वर्णन करते हुए राम के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु तक का समस्त चरित केवल १८ श्लोकों में प्रस्तुत

१ सट्वाण्वाद् बीर्षबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुशवा ।

अजस्ततः महापात्रस्तस्माद् दमरथो भवत् ॥ ६ १०११ ॥

२ भागवत ६।१०।२

३ भागवत ६।१०।८

४ भागवत २।३८-४२

५ भागवत १।२६ १०

६ भागवत ६।१०।१२ १४

७ भागवत ६।१०।१६

८ " ६।१०।२२

९ " ६।१०।३० ३२

किया गया है ।^१ इसकी विशेष प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं—

इसमें राम के पूर्वजों का वर्णन 'मायवत' के ही अनुसार है जो मानस में प्राप्त नहीं होता है । इसमें सीता के 'अयोध्या' होने का उल्लेख है,^२ जो 'मानस' में नहीं है । यहाँ राम केवल अपने दर्शनमान से ही बह्वया को 'अपाय' करते हैं ।^३ वहाँ के सिद्धा होने और राम के चरणस्पर्श से उसके छटार होने का कोई वर्णन नहीं है किन्तु 'मानस' में वह अत्रि विस्तृत है ।^४ इस पुराण में मन्बरा-मन्बरा, कैकयी-बर मायता भरदाबादि मित्त, बिजकूट में भरत मित्तन अमय प्रसय सुर्वनखा-विक्रम सीता-हरम मुषीव-मित्तन विधीपन-मित्तन तथा राजव के अति रिक्त अय राक्षसों के वष का कोई वर्णन नहीं है ।^५ इसके अनुसार उनी अयोध्या वाली 'सामोष्य-मुक्ति' प्राप्त करते हैं^६ जबकि 'मानस' में अयोध्या को 'निज-धामवा-पुरी' तो कहा गया है किन्तु मयरावियों की मुक्ति का उल्लेख नहीं है ।^७ इसमें राम के अन्वितेक के परवात् उनके राज्य और मृत्यु का भी वर्णन किया गया है किन्तु 'सीतापवाद' का कोई उल्लेख नहीं है^८ जबकि 'मानस' की कथा 'राम राज्य' पर ही समाप्त हो जाती है ।

(२) ब्रह्म-पुराण—इस पुराण में अनेक स्वर्गों पर राम कथा के विभिन्न प्रसंगों का वर्णन किया गया है और एक स्वाम पर सभी अवतारों का विवरण देते हुए 'रामचरित' को भी अति संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है । कथामक की दृष्टि से इसकी कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—

इसके अनुसार सखरम से कैकयी को ३ बरदान^९ देने का वर्णन दिया जा । 'मानस' में केवल २ बरदानों का ही वर्णन है । इसमें सीता-मुक्ति के परवात् राम सीता को अपने अंक में बँटने के लिये आमन्त्रित करते हैं जिसका विरोध करते हुए अयव और हनुमान् उनसे अयोध्या में सीता की पून पुत्रि करवाने की प्रार्थना करते हैं किन्तु राम उनकी अपेक्षा करके सखमय विधीपन और बाम्बवान् बादि के परामर्श से सीता को वहीं 'अंकुस्य कर सेते हैं ।'^{१०} 'मानस' में वह प्रसंग नहीं है । इसमें 'रामराज्य' का समय ११ सहस्र वर्ष बतलाया गया है, जो 'मानस' में नहीं मिलता है ।^{११}

१ विष्णु पुराण भाषा-७-१०४

२ विष्णुपुराण भाषा ११

४ मानस १।२।१०-२११

५ यैत्रि तैप्प मयवदशोष्यनुयानिम- काचमनयराजवरास्तेप्रिय
तमनसस्तसाशोष्यतामबापु ॥ भाषा १०३

७ मानस ७।४

८ ब्रह्मपुराण १२।१।१०-११

११ ब्रह्मपुराण १३।४।४-६

३ विष्णुपुराण भाषा ११

२ भाषा १३-२७

५ विष्णुपुराण भाषा १०२

१० मानस २।२७

११ ब्रह्मपुराण १७।४।१-२०

(१) महावैवर्त पुराण—इस पुराण के 'प्रकृति खण्ड' में 'वेदवती-चरित' के प्रथम में सीता जन्म से लेकर 'राम-स्वर्गारोहण' तक का कथानक प्रस्तुत किया गया है। इसकी कुछ नवीन योजनायें इस प्रकार हैं—

इसमें सीता के पूर्वजन्म का वर्णन है, जिसमें यह कदापञ्च की पुत्री वतसाई मई है जिन्होंने कठोर तपस्या के पश्चात् अपने जगसे जन्म में विष्णु को पति बन में वरण करने का वरदान प्राप्त किया था किन्तु रामन के द्वारा कामबाधना से ग्रहण किये जाने पर उन्होंने उसे उपरिचार मष्ट होने का शाप दे दिया था।^१ 'मानस' में सीता के पूर्व जन्म तथा वर्तमान जन्म का भी कोई विवरण नहीं है।

इसी पुराण में 'छाया सीता' का भी प्रबंध मिलता है जिसके अनुसार राम अपने जननास-कास में जब समुद्र-तट पर पहुँच जाते हैं तब अग्निदेव विप्र बेश में धाकर उनसे 'सीता-हरण' की मन्त्रिप्यवाणी करते हैं और सीता की सुरक्षा के लिए उन्हें 'छाया-सीता' लेकर वे वास्तविक सीता को अपने शाप से जाते हैं तथा 'गुडि' के बबसर पर उनको बापस करने का बचन भी उन्हें देते हैं। इस गोप्य परिवर्तन को वही सदमन भी नहीं जान पाते हैं।^२ 'मानस' में 'अग्नि-मिसन' का कोई संकेत नहीं है। वही स्वयं राम ही 'नर-सीता' करने की इच्छा से सीता से अग्नि निवास' करने का आग्रह करते हैं। वही भी सदमन इस 'मर्म' से अनभिज्ञ रहते हैं—

सुनहु प्रिया इव बधिर सुसीमा । मी कष्ट करबि कसित नरसीता ॥

सुम्ह पावक महु करहु निबासा । जो मनि करी निवाचर मासा ॥

सदमनहु यह मरतु न जाना । जो कष्ट चरित रथा भयबाजा ॥

१।२४

'सीता-गुडि' के पश्चात् इस पुराण की छाया-सीता के अपने जन्म में 'शोषदी हो जाने का उल्लेख है।^३ 'मानस' में यह छाया सदा के लिए भाग में पस जाती है।^४

इसी पुराण के 'वीरुण-जन्म-खण्ड' में 'अहस्वोडार' का वर्णन करते हुए वही के शाप 'राम चरित' को भी संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें राम

१ महावैवर्त पुराण । प्रकृति । १४।१-२२

२ बह्मियोमेत सीताया मायासीतावाकर ह ।

तनुस्मगुणस्पा तां वदो रामाय नारद ॥

सीतां पृहीत्वा स ययो मोष्यं बभूवु निषेध्य च ।

नरमनो नैव बुभुव गोधमन्यस्य का कथा ॥ प्रकृति । १४।३४-३५

३ महावैवर्त पुराण । प्रकृति । १४।४०-१०

४ मानस १।१०८

वर्णन नहीं है।^१

इस पुराण में सीता के विरह-विषाद का वर्णन तो ११ श्लोकों में है, किन्तु 'धेतुवग्भ' से लेकर 'रामराज्य-वर्णन' तक की कथा केवल ४ ही श्लोकों में है।^२ 'मानस' में इस प्रकार का अत्यन्तुमन नहीं है।

(७) अग्नि-पुराण—इस पुराण में सभी अक्षतारों का वर्णन करते हुए 'रामावतार' के प्रसंग में 'रामवग्भ' से लेकर 'रामराज्य' तक का कथानक छान्द ब्रह्मण्यो में प्रस्तुत किया गया है और प्रत्येक अध्याय के अन्त में तरुसम्बन्धी काण्ड का नाम भी जोड़ दिया गया है। अन्त में रामकादि के अन्त का वर्णन भी है। इसके विस्तारों में अनेक उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

इस पुराण में भी रामादि के रूप में विष्णु के 'वतुर्भा' होने का उल्लेख है।^३ यहाँ 'मानस' के वर्णन के समान 'पुत्र-काम-यज्ञ' का यद्यपि वर्णन नहीं है, तो भी 'शुद्धयुक्ता' और 'पामस' का संकेत है।^४

इसके 'मन्वरा-पञ्चम्य' प्रसंग में मन्वरा को राम के किसी पूर्व पदावतार से युग्म बतलाया गया है इसीलिए वह नरके निर्वाहन का पञ्चम्य रचती है।^५ 'मानस' में यह भी उल्लेख नहीं है। 'मानस' के वर्णन के समान ही किन्तु संक्षेप में इसमें भी 'मन्वरा-केकयी-संवात' केकयी श्रेयागार प्रवेश और 'अर-याचना' आदि का वर्णन किया गया है। इसमें केकयी विष खाकर दशरथ को आरमहुरया की वमकी भी देती है^६ जो 'मानस' में वर्णित नहीं है।

इस पुराण के 'अयस्त-संसर्ग' में अयस्त के द्वारा सीता के शरीर में केवल 'नय विदारण' करने का उल्लेख है। यहाँ अय-विशेष का कोई संकेत नहीं मिलता है^७ जबकि 'मानस' में अयस्त के द्वारा सीता के शरीरों में 'अंशु प्रहार' करने का वर्णन किया गया है।^८

इसमें राम विरह से बुझी दशरथ के शक्ति के किसी उच्चात राज में मर जाने का उल्लेख है^९, जिसका पठा प्रातःकाल ही अच्छता है। 'मानस' में उनकी मृत्यु का ऐसा कोई संकेत नहीं है।^{१०}

इसके 'शूर्पणखा-विकल्पन' प्रसंग में शूर्पणखा राम से स्पष्ट कहती है कि वह अत्यन्त और सीता को राम के परधातु उनके साथ विवाह करना चाहती

१ मानस ३।१६

२ ब्रह्मण्यवर्त १ धीहृत्प्य अग्नि १६२। ७८-८८, ११-१७

३ अग्निपुराण ३।४

४ अग्निपुराण ३।३

५ " ६।८

६ " ६।१-२२

७ " ६।१६

८ मानस ३।१

९ " ६।३१-४२

१० " २।११५

है।^१ बाह में अपने विरूपन से क्रुद्ध होकर वह अस्मय और सीता का रक्त पिजाने के लिए छर से प्रार्थना करती है और 'अरवच' के परचाद् वह रामन को उल्लेख करती हुई उससे 'सीताहरण' करने तथा उसे राम और अस्मय के रक्त का पान कराने का भी आग्रह करती है।^२ मानस में ये भीमस्त प्रस्ताव नहीं है।

इस पुराण के 'शंकायुद्ध' वर्णन के प्रसंग में दोनों पक्षों के बीचों का नामोल्लेख तो बहुत है, किन्तु युद्ध का विवरण नहीं है।^३ 'मानस' में इससे विपरीत है।

'मानस' में रामन के माता-पिता का वर्णन नहीं मिलता है, जबकि इसमें रामन कुम्भकर्ण, विभीषण और कूर्पवचा सब सगे भाई बहिन वतमाए नए है, बिजकी माता 'कैकसी' है और पिता बिम्बा है।^४

(८) पद्म-पुराण—इस पुराण के सृष्टि पाठास और उत्तर अर्धों में राम-कथा का बहुत कृष्ण परिवर्तन के साथ बड़ा रोचक वर्णन किया गया है।

(९) सृष्टि खण्ड—सृष्टि-खण्ड में राम के 'बन प्रवास' की कृष्ण घटनाएँ हैं और अभिवेक के परचाद् उनकी पुत्र 'शंका-याग' के कृष्ण संस्मरण हैं जिसकी विशेषताएँ इस प्रकार उल्लेखनीय हैं—

इसमें राम के द्वारा बलि के संकेत से पुष्कर में स्थित 'अभियोग कूप' के समीप वनरूप का भाङ करने का उल्लेख है जिसमें मृग मांस बलि का भी प्रयोग किया जाता है।^५ 'मानस' में यह भाङ-वर्णन नहीं है।

इसमें राम और लक्ष्मण का एक विचित्र संवाद है जिसमें राम के द्वारा बस भेजाए जाने पर लक्ष्मण मस्तीकार ही नहीं करते हैं अपितु यह भी स्पष्ट कह देते हैं कि वे उनके सर्वत्र बास नहीं हैं। वे सीता के प्रति भी कटु आरोप करते हैं। राम के समझाने पर भी वे न तो अयोध्या सीटना चाहते हैं और न उनके साथ बास ही जाना चाहते हैं। लक्ष्मण के इस अपूर्व व्यवहार से सीता जब अकित एवं खिन्न होती है तब राम उसे स्नान-विशेष का प्रभाव बतलाते हैं क्योंकि वहाँ से पोड़ा हटते ही लक्ष्मण उनसे लमा भाग लेते हैं और पूर्ववत् स्वस्थ हो जाते हैं।^६

१ अग्निपुराण ७।३-५

२ अग्निपुराण ७।७-१२

३ " १०।३-१५

४ कैकसी रामको जसे बिसबाहुर्वसानन ।

कुम्भकर्ण-सनिद्रोऽम्बुडमिष्टोऽम्बुविभीषण ।

स्वसा कूर्पवचा तेषां

" " ॥११।३-४

५ पद्म । सृष्टि । ३।१।६५-८३

६ नाहं राम सर्वकाले बासनाबं करोमि ते ।

इयं पुष्टा च मुमुरां पीवरी च मयाप्युत ॥

कि एवं करिष्यस्यनया मार्यया वद साम्प्रतम् ॥ सृष्टि । ३।३-१२४-१२५

इस पुराण के राम अष्ट के साथ पुष्पक-विमान पर बैठ कर लंका की पुनः यात्रा करते हुए मार्ग में अनेक आश्रमों का उनसे उल्लेख करते हैं। वे किसिष्णवा से सुपीन की भी अपने साथ ले लेते हैं और कंका पहुँच कर वे सब लोग वहाँ बिभीषण का आतिथ्य स्वीकार करते हैं। वहाँ से सौतेले समय राम उसकी प्रार्थना पर 'सेतु' के अनेक खण्ड भी कर देते हैं।^१ 'मानस' में यह यात्रा-वर्णन नहीं है।

इसी खण्ड में 'बहस्वोदार' के प्रसंग में बहस्या के मांसहीन मखहीन और अस्त्रि-वर्माविशिष्ट हो जाने के साथ का उल्लेख है।^२ 'मानस' में उसके 'शिखा' धन जाने का वर्णन है।^३

पाताल खण्ड—इस खण्ड में राम की 'पुष्पक-यात्रा' से लेकर 'रामामयेक' और उसके बाद सीता-स्वाय एवं अश्वमेध-यज्ञ' तक का कथानक है, जिसके विस्तारों में कुछ नए प्रसंग समाविष्ट मिलते हैं।

इस खण्ड में अपनी माता कीकठी द्वारा फटकारे जाने पर ही रावण वादि के घोर उप करने का उल्लेख है। वहाँ रावण से ब्रह्म देवमथ पहले ब्रह्मा के समीप जाते हैं फिर उनके नेतृत्व में वे सब क्षत्र के समीप जाते पहुँचकर उनकी स्तुति करते हैं। तदुपरान्त वे सभी लोग अब बिष्णुलोक जाते हैं तब बिष्णु 'आकाश यात्री' के द्वारा उनके कर्त्यों से अपना परिचय बतसा कर उन्हें सारथ्यता देते हैं और अपने बबठार-ग्रहण की बोधना करते हुए उनको श्रेय और बानर मगने का आदेश देते हैं।^४ 'मानस' का वर्णन इससे कुछ भिन्न है। इस खण्ड में राम 'रावण-वध' से प्राप्त ब्रह्म-हत्या के महापाप की क्षान्ति के लिए अब प्रायश्चित्त करना चाहते हैं तब भगवन्त मुनि उनके ईश्वरत्व का उल्लेख करके उन्हें निर्दोष बतसाते हैं किन्तु उनके आरम्भार व्याघ्र पर वे उन्हें 'अश्वमेध-यज्ञ' करने का परामर्श देते हैं।^५ 'मानस' में यह वर्णन नहीं है।

इसी 'पाताल-खण्ड' में एक 'पुराकल्पीय रामायण' का गद्य में वर्णन है जिसमें 'राम-अग्नि' से लेकर 'रामराज्य' तक का कथानक है। इसमें भी अनेक महीनतायें निहित की गई हैं।

इसके अनुसार दशरथ के ४ रामियाँ हैं और उनमें से कीर्तन्या से राम,

१ पद्म । सुप्ति । ४०।६-११७

२ परेवासिमतायि त्वमप्येव्या पापकारिणी ।
अस्त्रिचर्मबवाविष्टा निर्वाताऽसचरिता ॥

बिन्दु स्वास्मिन्नि चैवापि एवा परमन्तु जनाः दिवका ॥ सुप्ति । ४१।१७

३ मानस १।२११

४ पद्म । पाताल । ६।१०-११

५ पद्म । पाताल । १।७-१७

मुनिगा से सस्मय, सुस्मा से मरत और सुवेला से बभ्रुम्य जादि पुन ब्रम्भ भेते हैं ।^१ इसमें राम के विवाह की इच्छा से दशरथ चारों ओर दूत भेजते हैं और उनसे बनक की स्वीकृति जानकर वे बाघत लेकर मिथिला पहुँचते हैं । वहाँ मारद सीता के स्वयंवर के लिए विधेय आग्रह करते हैं तब बनक चित्र की स्तुति करके उनसे बरदान में एक ऐसा वन्य प्राण्य कर लेते हैं जिसे केवल राम ही ठोक सके । उस 'सीता स्वयंवर' में वहाँ इन्द्र, सूर्य वामु आदि देवता बाल, प्रह्लाद बलि आदि राजस स्वयं विध्यामिष और अनेक राजकुमार प्रतिपत्नी रूप में सम्मिलित होते हैं और असफल हो जाते हैं । इसके पश्चात् राम धनुर्बन करते हैं और उन असफल राजकुमारों के विद्रोह करने पर उनको पराजित भी करते हैं ।^२ वहाँ 'पारपुत्रम विवाह' का कोई संकेत नहीं है । ऐसा प्रथम, अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है ।

इसमें 'बाकि-बध' के प्रसंग में तारा का 'बालि प्रयोग मानस' के समान ही बर्णित है किन्तु बालि की मृत्यु के बाद राम से उसके बध का कारण पूछती हुई तारा अनेक सम्भावनाओं को व्यक्त करती है और उनका समाधान भी स्वयं देती है । वह राम से कहती है कि उम्होंने 'बागर माल' खाने के लिये बालि का बध किया है तो वह 'अभोग्य' है यदि स्वयं बुझी होने के कारण दूसरों को भी बुझी बनाने के लिए उम्होंने ऐसा किया है तो वह उनका 'बिमोह' है, यदि स्वयं उससे (तारा के) अपहरण के लिए वह किया गया है तो फिर उनके एक-पत्नी बध का निर्वाह नहीं हो सकता है और यदि सीता की प्राप्ति के लिए ही समस्त उद्योग है, तो स्वयं है, क्योंकि वह कहती है कि बाकि स्वयं इतना समर्थ था कि वह राम पर दबाव डाल कर नहीं झिंटे-झिंटे सीता को लेवता सकता था । जब राम बाकि पर घातुबन्धु-हरण का शोष लगाते हैं तब वह सुपीन को भी समान शोपी टहराती है । इस पर राम अपनी 'भुगवा-प्रियता' की ओट संकर छाँट हो जाते हैं ।^३ 'मानस' में तारा के ये कुतर्क नहीं मिलते हैं ।^४

इसमें राम अपनी सेना के सहित बभ्रुमरुत पर पहुँचकर, इनुमान् को 'सीता प्रवृत्ति' के लिए संका में भेजते हैं, जहाँ वे सीता से मिलकर और उन्हें सांगत्वता देकर 'संकाशह' के बाद वापस मोट जाते हैं ।^५ 'मानस' में सीता-शोष का विवरण इससे भिन्न है ।^६

१ अथ राजमहिष्यरथतस कोसस्या मुनिगा मुक्त्वा मुक्त्वा वैति । अथ कोसस्याया रामो लवभ मुनिगाया मुक्त्वाया मरत सुवेयाया बभ्रुम्यो जज्ञे ॥ पदम । पाताल । ११६ । पृष्ठ २६१-२६२

२ पद्म । पाताल । ११६ । पृष्ठ । २६३-२७०

३ " " " " पृष्ठ २७३-२७४

४ पद्म । पाताल । ११६ । पृ० २७४-२७२

५ मानस ५१२

६ मानस ५१०-५१३

इस अण्ड में 'समूह-तरण' के लिये राम शिव की स्तुति करके उनसे 'आवगण बन्य' प्राप्त करते हैं, जिस पर अपनी सारी सेना के साथ बैठकर वे लंका में प्रवेश करते हैं।^१ 'मानस' में इसके लिये 'सेतुबन्ध' की योजना की गई है।^२

इसमें शुक राम को एक रक्ष्य वतसाठा है कि लंका के द्वार पर 'बाद-पंच बन्ध' के भेदन करने वाले के ही हाथों से रावण की मृत्यु हो सकती है इसलिये राम पहले वीरा ही करते हैं। वहाँ रावण के पक्ष के पश्चात् कुम्भकर्ण के वध का उल्लेख है,^३ जो 'मानस' से मिला है।

इस पुराण के राम लंका से लौटते समय समुद्र तट पर शिव प्रतिष्ठा करते हैं।^४ 'मानस' में इसका वर्णन लंका-गमन से पूर्व किया गया है।^५

उत्तर खण्ड—इसका धारम्भ 'मानस' के धारम्भ के समान ही 'रावण बन्ध' के प्रसंग से किया गया है, किन्तु इसका अन्त 'राम-स्वर्गारोहण' से है। कथा की दृष्टि से इसमें अनेक विशेषताएँ हैं—

इसमें भी रावण आदि की माता का नाम कैकसी है।^६ इसमें रावण से वसु देवगण सीमे विष्णुलोक जाते हैं यद्यपि उनके साथ ब्रह्मा और शिव भी हैं। वहाँ विष्णु उन्हें साम्बना देकर 'नन्दिसाप' का भी उल्लेख करते हैं, जिसके फल स्वप्न उन देवताओं को बानर बनना पड़ता है।^७ मानस का वर्णन इसके विपरीत है।

इसमें भगवान् विष्णु 'यज्ञानि' से ही प्रगट होकर बभ्रुवर्ण और कौसल्या को अपने दिव्य-स्वप्न का दर्शन देते हैं और उनकी प्रार्थना पर उनका पुत्र बनना स्वीकार करके उन्हें तुरन्त 'बन्ध' भी दे देते हैं। इसमें बन्ध के समान बितरण का भी संकेत है।^८ 'मानस' में न तो यज्ञ से विष्णु प्रगट होते हैं और न बभ्रुवर्ण ही कभी उनके दिव्य-स्वप्न का दर्शन करते हैं। 'बन्ध' का बितरण भी वहाँ मिला है।^९

'मानस' के वर्णन के समान ही^{१०} इसमें भी राम के द्वारा कौसल्या को अपने विराट् स्वरूप का दर्शन देने और उनकी प्रार्थना पर विमुक्त जीता करने का उल्लेख है।^{११}

इसके 'जयन्त प्रसंग' के अनुसार इसमें भीता के स्तनों में 'नक्षत्र' करने वाले जयन्त पर राम कृष्ण के ब्रह्मास्त्र से प्रहार तो करने हैं किन्तु उसके विमुक्त

१ पद्यम । पाठात् । पृ० २७२-२७६

२ " " " २७७-२७८

३ मानस ६।२-३

४ पद्य । उत्तर । २४२। १८-२१

५ पद्य । उत्तर । २४२। ४७-६१

६ मानस । १।१२२

७ मानस २।१०-११

८ पद्य । पाठात् । ११६ पृ० २७९

९ पद्य । उत्तर । २४२। १८-३०

१० मानस । १।१२०

११ पद्य । उत्तर । २४३। ८२-८०

अमय के पश्चात् उन्हीं की शरण में आ जाने पर वे उसे 'अमय-दान' देकर मुक्त भी कर देते हैं।^१ 'मानस' में सीता के परमों में अमय के 'अंशु प्रहार' का उल्लेख है। वहाँ राम 'सीक बान' से उसे 'एकाक्ष' कर देते हैं।^२

इसमें शूर्पणखा राम से कहती है कि वह सीता को छाकर उनके साथ बन में रमन के लिए प्रस्तुत हैं और राम के कुछ बोसने के पूर्व ही जब वह सीता पर आक्रमण कर देती है, तब राम ही उसके नाक-काग काट डालते हैं।^३ 'मानस' में उसका यह विकल्प उल्लेख करते हैं।^४

'मानस' के बर्णन के समान ही^५ इसमें भी रामन से बाहुत बटायु के द्वारा राम के समक्ष ही हरि का सामान्य रूप धारण करके और मुक्ति प्राप्त करने का उल्लेख है।^६

इसमें राम लंका जाने के लिये पहले एक बाण से समुद्र को सुखा देते हैं फिर जमी की प्रार्थना पर वे उसे बह्मस्त्व से पूर्ववत् मर जी देते हैं और 'सेतुबन्ध' के द्वारा इसे पार करते हैं।^७ 'मानस' में केवल 'सेतुबन्ध' का बर्णन है।^८

इसमें 'सीता-मुक्ति' से बबसर पर ब्रह्मा और बिब बारि सभी देवयन राम और सीता के ईश्वरत्व एवं सक्षीत्व का क्रमशः उल्लेख करते हुए राम से सीता के ब्रह्म की प्रार्थना करते हैं।^९ 'मानस' में सीता के ब्रह्म के साथ ही देवताओं की स्तुतियों का बर्णन है।^{१०} इस पुराण के अनुसार लंका-मुक्ति में मृत बाण-मन ब्रह्मा के बरदान से पुनर्जन्मीत हो जाते हैं।^{११} जबकि 'मानस' में इसके लिए शत्रु के द्वारा अमृत-वर्षा करने का बर्णन है।^{१२}

'मानस' के राम के समान^{१३} ही इस पुराण के राम भी लंका से अयोध्या लौटते समय 'मरदाज-आधम' के समीप हनुमान् की भरण की सूचना के लिये वहाँ भेज देते हैं किन्तु इसमें वे मुह से बिलते हुए 'नन्दिग्राम' पहुँचते हैं।^{१४} जबकि 'मानस' का मुह उनके आगमन की सूचना पाकर उनसे मिलने के लिए स्वयं पंजा-सट पर आ जाता है।

१ पद्य । उत्तर । २४२।११५-२११

२ मानस ३।१२

४ " ३।१७

५ स्वयं च बही तस्मै योमिषम्व्यं धनातनम् ।

हृदेः सामान्यरूपेण मुक्तिं प्राप क्षयोत्तम ॥ उत्तर । २४२।२६३-२६६

७ पद्य । उत्तर । २४२।२६७-२६९

८ पद्य । उत्तर । २४२।३२६-३४३

९ पद्य । उत्तर । २४२।३४३

१० मानस ६।१२१

३ पद्य । उत्तर । २४२।२४१-२४६

४ मानस । ३।३२

६ मानस । २।१७-६।४

१० , । ६।१०८-११५

१२ , । ६।११४

१४ पद्य । उत्तर । २४२।३४६-३५२

इसमें 'रामाम्रियेक' के परत्वात् केवल छिन्न ही राम की विस्तृत स्तुति करते हैं, जिसके परत्वात् राम उन्हें अपने 'दिव्य-वचन' भी देते हैं।^१ 'मानस' में इस बदतर पर बनेक देवताओं और देवों की भी स्तुति का उल्लेख है, किन्तु राम के दिव्य-वचन का कहीं संकेत नहीं है।^२

१२ गद्य साहित्य

गद्य साहित्य के अतिरिक्त गद्य-साहित्य में भी राम-कथा का बड़े सम्मान के साथ प्रहल हुआ है। कथा सरित्सागर 'बृहत्कथा-मंजरी' तथा 'राम-कथा आदि गद्य-ग्रंथों में 'राम चरित' का बड़ा आकर्षक वर्णन मिलता है।

(१) कथा सरित्सागर—इस ग्रंथ के अलंकारवती नाम के नवें सम्बन्ध के प्रथम अर्ध में कुल १३ श्लोकों (१८ से ११२ तक) में राम-कथा का संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है। इसके अलावा सोमदेव ने इसमें गुणाडय के प्राकृत-भाषा के शब्द बहबहकाहा का संक्षेप और भाषा भेद से 'यथाभूत' अनुवाद प्रस्तुत किया है।^३ 'राम-जम्' से लेकर 'रामाम्रियेक' फिर 'सीता-निर्वासन से सीता-ग्रहण' तक का सुशान्त कथानक इसमें समाहित है। कथा की दृष्टि से इसमें कोई विशेषता नहीं है। इसी के 'पंच सम्बन्ध' नामक १७वें सम्बन्ध के तृतीय अर्ध में भी केवल १३ श्लोकों (१२ से २६ तक) में सुधीव-मैत्री से लेकर रावण बन्ध तक की कथा का अति संक्षिप्त वर्णन मिलता है। इसमें भी कोई नवीनता नहीं है।

(२) बृहत्कथा-मंजरी—सोमदेव की इस रचना में अन्ततः कथा के रूप में 'रामचरित' का अति संक्षिप्त बचन किया गया है, जिसकी कथावस्तु में कोई नवीनता नहीं मिलती है।

(३) राम-कथा—वास्तविक के इस अर्थ में 'राम-जम्' से लेकर रामाम्रियेक तक का कथानक प्रस्तुत किया गया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि संक्षिप्त होने पर भी इसमें राम-कथा का कोई प्रसंग नहीं छूटा है।

इसमें रावण के बरदाया देवता के रूप में संकर का उल्लेख किया गया है * जबकि 'मानस' में ब्रह्मा का वर्णन है।^४ इसके अनुसार इतरण कोपत्या और केन्द्री में ही उस वामन को विचरित कर देते हैं, फिर मुनिना के जा जाने पर वे दोनों रामिया योद्धा-योद्धा भाग उसे नी दे देती हैं।^५ 'मानस' का विवरण इससे भिन्न है। इसमें सीता के 'अयोनिजा' और सखी के अन्तर्गत होने का वर्णन किया

१ कथा । बलर १२४३।२३-४३

२ मानस ७।१२-१४

३ कथा सरित्सागर १।१।१०

४ राम कथा पृष्ठ १

५ मानस १।१७७-८

६ " " ४

पया है।^१ वहीं मन्वरा के भी बुन्दुनि नगर्षी के अबतार होने का उल्लेख है,^२ जो 'मानस' में प्राप्त नहीं होता है। इसमें केकयी के परदात में ही राम के साथ सीता और लक्ष्मण के भी सहयमन की प्रार्थना है,^३ जबकि 'मानस' में केवल राम के ही अनन्यमन का उल्लेख है।^४ इसके अनुसार अनन्य मूनि राम का स्थायण करते हुए उन्हें दिव्यास्त्र भी प्रदान करते हैं।^५ जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं मिलता है।^६

इस प्राय के नृपभन्ना-विरूपण' प्रसंग में नृपणसा के नाक काग, भोठ और स्तन आदि के भी काट सिधे जाने का उल्लेख है।^७ जबकि 'मानस' में केवल नाक और काग के ही काटे जाने का वर्णन है।^८

'मानस' के वर्णन के समान ही इसके अनुसार भी रामदुर्गों के वर्णन से सम्पाति को पत्नी की पुन प्राप्ति हो जाती है जिससे वह वृत्त उड़ कर और संका में सीता को देखकर उन जानरों से यथार्थ समाचार बतलाता है।^९ 'मानस' में वह अपनी सुदूर दृष्टि से ही सब कुछ देख लेता है और नृदावस्था के कारण अन्य सहायता कार्यों में अपने को असमर्थ बतलाता है।^{१०}

इस प्राय का सुदीन रावण का प्रथम वर्णन करते ही उल्लस कर उस पर आक्रमण करता है और उसके मुकुटों को छीन कर राम को उपहार-स्वरूप द देता है।^{११} 'मानस' में इस बटना का वर्णन नहीं है।

'मानस' के वर्णन के समान ही^{१२} इसमें भी 'सीता-मुक्ति' के प्रसंग में स्वयं अग्निदेव के द्वारा सीता को पूर्ण शुद्ध बतला कर उन्हें राम को समर्पित करने का उल्लेख है।^{१३} वहीं इस अवसर पर ब्रह्मा त्रिभुव और वराह आदि के धाने का वर्णन नहीं है यद्यपि देवताओं की कृपा से जानरों के पुनर्जीवित हो जाने का उल्लेख है।^{१४} जो मानस में भी मिलता है।

इस विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संस्कृत-साहित्य में राम-कथा बहुत अधिक लोकप्रिय रही है। इसीलिये महाकाव्यों और नाटकों के अतिरिक्त

- | | |
|---|---------------------|
| १ राम कथा पृष्ठ ६ | २ रामकथा पृ० ७ |
| ३ राम कथा पृष्ठ १३ | ४ मानस २।२६ |
| ५ " " १५ | ६ " " ३।१२-१३ |
| ७ " " १६ | ८ " " ३।१७ |
| ८ " " ३० | ९ " " ४।२८ |
| ११ अथ सविभुव उपादि समुत्पत्य त्रिभुवुर्गुटं विरस- समाञ्जित्य
प्रभोरुपायनीकृतवान् । रामकथा पृष्ठ ४२ | |
| १२ मानस ६।१०६ | १३ राम-कथा पृष्ठ ३० |
| १४ राम-कथा पृष्ठ ३१ | |

काव्य के अग्राग्य रूपों में भी उसे बड़े सम्मान का स्वाग प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा 'मानस' के वास्तु-संगठन में संतुलन वीचित्र्य एवं तारतम्य का जो कुशल निर्वाह मिलता है उपयुक्त प्रश्नों में कहीं भी वृष्टिगोचर नहीं होता है। इसके अतिरिक्त जहाँ तक राम के चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध है इन ग्रंथों में यद्यपि उनके ईश्वरत्व का उल्लेख अनेकपा किया गया है तथापि उसके लिए अपेक्षित ऐश्वर्य एवं ओजोत्तरत्व के दर्शन नहीं होते हैं। जबकि मानव कारण राम के प्रत्येक कार्य को असौकरिता के आसोक से घोटित करता हुआ 'मन्वान' की 'नरनीला' का प्रकार करता हुआ चलता है।



कथा-विवेचन

संस्कृत राम-कथा की दीर्घ परम्परा की विवेचना से यह अनुमान समाना कठिन नहीं है कि 'वाल्मीकि रामायण' में सप्रतिष्ठ दृष्टिकोण—जिसमें कवित्व और चरित्र का सुन्दर समन्वय दिखलाई पड़ता है—आगे चल कर कितना छँटा-फूटा। संस्कृत की प्रत्येक रचना, राम-कथा के सम्बन्ध से एक नया आशय बनना मन्तव्य लेकर प्रस्तुत हुई। 'राम-चरित-मानस' की कथा उस परम्परा की एक कड़ी होते हुए भी समन्वयपूर्ण प्रकृति की ओर प्रेरित है। महात्मा तुलसीदास ने अपनी उत्कामीन परिस्थितियों में जाति, वर्ण, समाज दर्शन आदि से सम्बन्धित दृष्टिकोणों में जिस संशोधन का सासात्कार किया था वह शोध्य ही नहीं बाँक भी था, इसीलिए वैद्य-काण्ड की प्रकृतियों के अनुकूल समझे हुए 'मानस' की सृष्टि की जिसमें सब बाह्य करने वाला 'नपताप' से मुक्त हो सके।

यद्यपि मूलतः तुलसीदास ने वाल्मीकि-रामायण को ही अपने सामने रखा है, तो भी उनकी सुश्रुति और सौन्दर्य भावना ने अनेक प्रसंगों को जोड़-तोड़ कर, जिस आदर्श काव्य को जन्म दिया है वह अनेक विशेषताओं से युक्त है। 'वाल्मीकि-रामायण' के मूल कथानक में अनेक विस्तारों का बोध चाहे वह शोध्य भी भावना से हो और चाहे दृश्यगत विशेषता के सम्बन्ध से हो 'मानस' के मूल्य को बढ़ाने में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। अतएव 'रामचरित-मानस' की वस्तु-विवेचना, उन सब राम-कथाओं के परिच्छेद में अपेक्षित है जिनसे उसको किसी भी प्रकार की प्रेरणा मिली है। इतना ही नहीं जिन राम-कथाओं में तुलसीदास को कुछ बोध या आशा छटके हैं, 'मानस' में या तो उनका परिमार्जन हो गया है या अव्यथा पूर्ण हो गई है। विस्तारों को बढ़ाने-बढ़ाने में तुलसी के चारित्रिक आदर्शों का भी बड़ा योग रहा है। किसी पात्र की स्थिति जोड़-बर्न को माहृत न कर है, इस दृष्टि से कई प्रसंगों में व्यक्ति-वर्ण के ऊपर जोड़-बर्न की प्रतिष्ठा की गई है। यद्यपि मूल कथानक के प्रवाह में इन प्रसंगों से विशेष अन्तर नहीं जाता है, फिर भी इनका नैतिक मूल्य मूलाप्य नहीं जा सकता है। इन्हीं मूल्यों की भूमिका पर 'मानस' के चरित्रों की प्रतिष्ठा है इसी से उसको इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है और इसीसे वह लोक-विरा के युग के रूप में प्रतिष्ठित है।

इन प्रसंगों को ध्यान में रख कर 'रामायणेतर' संस्कृत काव्यों के कथानक के साथ 'रामचरित-मानस' के कथानक की तुलनात्मक विवेचना स्वतः इस ग्रन्थ में मौलिक दिशा है, यद्यपि 'राम-काव्य' की परम्परा के साथ इसका अध्ययन मत्वावश्यक हो जाता है।

इस अध्ययन में 'मानस' की राम-कथा बांटों का काम कर रही है। 'मानस' का प्रत्येक काण्ड हमारे सामने कुछ मोटे-मोटे 'बांट' प्रस्तुत करता दिखाई देता है। यों तो कहीं-कहीं इनके साथ तोसा-भासा भी जुड़े हुए हैं और प्रासंगिक रूप से उनका अपना मूल्य है किन्तु संस्कृत की राम-कथाओं को जोड़ने के लिए मूलतः हमें प्रमुख 'बांटों' से ही काम लेना पड़ेगा, जिनका उल्लेख काण्डक्रम से नीचे किया जा रहा है—

वास-काण्ड—इस काण्ड के भूमिका भाग में 'संवाद-वस्तुष्टय' और 'पुनर्जन्म' की बनेक कथाएँ हैं और मूळ कथा भाग में राम-जन्म, राम-विश्वामित्र मिशन, सीता-स्वयंवर, परशुराम-पराजय और राम-विवाह आदि प्रसंग हैं।

अयोध्या-काण्ड—इसमें राम के यौवराज्याभियेक के सम्भार, केकयी की वरदान माचना राम वन-जमन सीता और लक्ष्मण के अनुगमन राम-निपाह मिशन राम-मुनि-मिशन सुमन्त्र प्रयावर्तन दशरथ-मरण, भरत के अयोध्या-आयमन, विश्वकूट में राम भरत-मिशन और भरत के नगद्वारम प्रवास आदि का वर्णन है।

अरण्य काण्ड—इसमें जयन्त-शासन पूर्णगन्धर्व-विरूपण, सीता-हरण बटामु मरण, पक्षी-मिशन, और नारद मिशन आदि की कथाएँ हैं।

किष्किन्धा-काण्ड—इसमें सुषीब-सैनी, सीता-शोक स्वयंप्रभा-कथा, और सम्पाति-कथा आदि का विवरण है।

सुन्दर-काण्ड—इस काण्ड में हनुमान्-विभीषण-मिशन, हनुमान्-सीता मिशन, शंका-रहस्य और विभीषण की वरणागति आदि का वर्णन किया गया है।

संका-काण्ड—इसमें सेतु निर्माण, अंगद-वीर्य लक्ष्मण-मूर्च्छा, कुम्भकर्ण-वध, मेघनाद-वध रावण-वध और सीता मुक्ति आदि के प्रसंग हैं।

उत्तर-काण्ड—इस काण्ड के मूल कथा भाग में राम का अयोध्या-प्रयावर्तन रामाभियेक और रामराज्य आदि के प्रसंग हैं तथा उपसंहार भाग में काण्ड पद-संवाद और कथा-माहारम्य आदि का वर्णन किया गया है।

१ वास-काण्ड

(१) भूमिका-भाग— वास-काण्ड के आरम्भ से लेकर रावण-कथा के आरम्भ तक का यह भाग 'मूल कथानक' की भूमिका का कार्य करता है यद्यपि इसे भूमिका भाग कहना ही उपयुक्त है। इसके अन्तर्गत संवाद 'वस्तुष्टय' और पुनर्जन्म की कथाओं का उल्लेख किया जा चुका है।

(२) संवाद-वस्तुष्टय—तुलसी ने मानस' के सप्तष्ट रूपक^१ में जिन संवादों का संकेत किया है वे उसकी सीमा-सृष्टि के साथ-साथ उसके सीप्य एवं गुणधन के भी भिन्नानक हैं। गुरु-तुलसी-संवाद' 'मानस' का आदि संवाद है। इसमें कवि अपनी अपरिपक्व मति और नरु के धारम्भार 'प्रबोध' का जो संकेत करता है^२, वह रामकथा की गूढ़ता का ही परिभाषक है। यद्यपि इस संवाद में किसी शंका का उल्लेख नहीं है तो भी इसके अन्तर्गत बर्णित 'याज्ञवल्क्य' और 'भरद्वाज' के संवाद का आरम्भ भरद्वाज की इस शंका से होता है कि स्त्री विरह में कुछ पाने वाले राम और सिय के द्वारा अपने पाने वाले राम एक ही हैं या दो हैं।^३ इस व्यक्तियुक्त शंका में शोक-शंका का आभास पाकर याज्ञवल्क्य उसका समाधान करते हुए उनको वह शिव-पार्वती-संवाद' सुनाते हैं जिसमें पार्वती के पूर्वजन्म 'सती-जन्म' और वर्तमान जन्म की बीबी ही शंका और शिव द्वारा उसके समर्थ समाधान का भी विवरण है।^४ जिन अपने इस संवाद में ही उस 'काक-गण्ड संवाद' का भी वर्णन करते हैं जिसमें राम को नामपास' में असमर्थ देख कर गण्ड उनके ईश्वरत्व में शंकासु हो जाता है^५ और भुक्तभोगी काय^६ अपने अनुभव सुना कर उसको स्वस्थ करता है।^७ यह संवाद-वस्तुष्टय' मानस की कथा का आद्यत है और इसमें कवि का एक मात्र उद्देश्य यही है कि राम की गर-बीजा देख कर उनके ईश्वरत्व के विषय में किसी को भी शंका न हो। रामायणोत्तर संस्कृत काव्यों में इस प्रकार की संवाद-योजना प्राप्त नहीं होती है।

(३) पुनर्जन्म-कथायें—इन संवादों के अतिरिक्त भूमिका भाग में सापों और बरदानों के फलस्वरूप होने वाले अनेक पुनर्जन्मों की कथाओं का वर्णन है जिनका राम और रावण के साथ विशेष सम्बन्ध है क्योंकि वे 'मानस' की कथा के मूल आधार पात्र हैं।

इन सापों और बरदानों के पीछे तुलसी एक नैतिक धारणा की प्रतिष्ठा भी करना चाहते हैं कि बरदान यदि सरकर्म का परिणाम है तो साप सरकर्म का और एक जन्म के कर्मों का परिणाम कभी-कभी कई जन्मों तक भोगना पड़ता है जैसे जय और विजय तीन जन्मों तक राजस बनने को विवश हो जाते हैं। इस प्रकार तुलसी 'कर्म के अनुसार जन्म' का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं और पाठक के मन में यह विश्वास जमा देना चाहते हैं कि उसका वर्तमान जन्म उसके विगत जन्म के अन्धे या नुरे कर्मों का ही परिणाम है और साथ ही उसके वर्तमान जन्म कर्मों के आकारोंके पर ही उसे अन्ध या नुरा मावी जन्म भी प्राप्त हो सकेगा। इसीलिए मावी जीवन

१ मानस १।३६

२ " १।४६

३ " ७।२८

४ " ७।१२२

५ मानस १।३०-३१

६ " १।१०

७ " ७।७७-७२

को पूज सुधी देखने की महारवाकीया प्रत्येक व्यक्ति को वर्तमान में भी उत्कर्म के लिए संदेह प्रेरित करती रहती है। एक मज्ञात भय उस कुकर्मों से इस प्रकार बचाता हुआ बचता है, क्योंकि तुमसी के अनुसार जब स्वयं भयवान् को भी घाय के कारण पुनश्चम भकर अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। तो फिर साधारण मनुष्य की क्या विश्वास है। राम और रावण आदि कर्मों के कारणों में इसी प्रकार घातों एवं बरदानों की महिमा प्रतिष्ठित करके तुमसी न कबल जनकी सख्यता पर ही बस देते हैं, अपितु पाठकों को एक नैतिक बरातल पर खड़ा करके 'आचरण की सीमा' के लिए भी प्रेरित करत हैं।

(४) राम-जन्म के सामान्य कारण—राम के अवतारों की प्रतिरूप में निम्न बतसा करे तुमसी उनके लिए अनेक कारणों की योजना करते हैं। 'गीता' के आचार पर 'बमहानि' और 'अमर्मबुद्धि' की चरम स्थिति को वे रामजन्म का सामान्य कारण मानते हैं। उनके अनुसार यह सिधात रावण के ही अत्याचारों से उत्पन्न होती है, अत वे दोनों बातें—बमहानि और रावण के अत्याचार—वस्तुत एक ही हैं क्योंकि रावण समस्त आसुरी प्रकृतियों का प्रतीक है इसीलिए अवसर पाते ही वह इतने अत्याचार करता है कि पृथ्वी तक काँप पाती है और देवता भी निष्णाम हो जाते हैं उस समय जनकी प्रयत्ना पर रावण के विनाश के लिए और पर्य रसा के लिए विष्णु को रामावतार ग्रहण करना पड़ता है। अवतार के इसी चरम को अधिक सुस्पष्ट करने के लिए मण्डिकार्य में 'भुवनहितम्भन'^६ रघुवंश में 'शोकानुग्रह'^७, महाभारत में प्रकाशान 'रामायन-मंजरी' में 'मैत्रोवय-संकट बाध'^८ हनुमन्पाठक में 'भूमिमातृहरण'^९ रामचरित में 'विश्वार्य'^{१०}, रामकीय में 'उदयन-वध'^{११} उदाररावण में 'जगदुत्पन्न-शक्ति'^{१२}, रामाभ्युदय में 'विभुवन-पत्न विद्याम'^{१३}, भागवत में 'पर्यमंस्यापन'^{१४} बह्म-पुराण में 'शोक-प्रसादन', 'राघव-निग्रह' तथा 'वर्म-बुद्धि'^{१५} एवं पद्म पुराण में 'साधु-परित्राण'^{१६} 'दुष्कृत विनाश' 'वर्म-संस्थापन'^{१७} आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

१ मानस १।१३७	२ मानस १।३३
३ गीता ४।७-८	४ मानस १।२२१
५ मानस १।१७८-१८७	६ मण्डिकार्य १।१
७ रघुवंश १०।३१	८ महाभारत । वन । १२७२।३
९ रा० मंजरी । भाग । ६९	१० हनुमन्पाठक १।५
११ रामचरित १।५	१२ रामकीय १।४४
१३ उदार रावण ३।२०	१४ रामाभ्युदय १।११
१५ भागवत १०।३।१७	१६ बह्म २।१।१२६ १८।१।२-४
१७ पद्म । उदार । ३।४।१७	

(३) विशेष कारण 'शाप और वरदान—इन सामान्य कारणों के अतिरिक्त 'रामायण' के विशेष कारणों में नारद और बृम्हा के द्वारा राम को दिए गये शाप एवं उनके (राम के) द्वारा यमु और सतस्पा तथा कश्यप और अश्विनि को दिये गये वरदानों का प्रमुख उल्लेख है।

'मानस' के नारद रामा धीसनिधि की पुत्री विश्वमोहिनी के स्वयंवर में विष्णु के कपट से क्षुब्ध होकर उनको 'नरदेह-धारण' का शाप दे देते हैं।^१ 'शिव पुराण' में बर्णित इसी प्रसंग में केवल नामों का अन्तर है, शेष बृत्त समान है। वहाँ धीसनिधि के स्थान पर अम्बरीष और 'विश्वमोहिनी' के स्थान पर 'धीसती' का उल्लेख है।^२ 'मानस' की बृम्हा भी विष्णु के कपट से क्षुब्ध होकर उनको 'नरदेह-धारण' का शाप देती है।^३ 'शिवपुराण'^४ और 'स्कन्द पुराण'^५ में भी यह प्रसंग समान रूप से बर्णित है।

इन शापों के अतिरिक्त यमु और सतस्पा तथा कश्यप और अश्विनि को दिए गए विष्णु के वरदान भी 'रामायण' के कारण छिड़ होते हैं। 'मानस' के विष्णु यमु और सतस्पा की तपस्या से प्रसन्न होकर उनकी प्रार्थना पर एक बार उनके पुत्र बनना स्वीकार कर लेते हैं।^६ किन्तु 'वल्गुपुराण' में वे उनके तीन बार पुत्र बनने का वरदान उनको देते हैं इसीलिए उनके 'वसुदेव और कौसल्या' होने पर वे 'राम' बनते हैं, उनके बसुदेव और देवकी होने पर वे ही कृष्ण बनते हैं और उनके 'हरिदत्त' और देवप्रमा होने पर वे ही पुन 'कृष्ण' बनें।^७ कश्यप और अश्विनि को दिए गए विष्णु के वरदान के तथ्यों का उल्लेख यद्यपि 'मानस' में नहीं है तो भी उसके प्रभाव से उनके 'वसुदेव और कौसल्या' बनने का वर्णन मिळता है। मानस की मूळ कथा के राम उन्हीं के पुत्र हैं।^८ 'भाषवत' के अनुसार कश्यप और अश्विनि विष्णु के वामनाश्वतार के पिता-माता हैं और वे ही उनके 'कृष्णाश्वतार' में बसुदेव और देवकी हो जाते हैं।^९ सम्भवतः इसी प्रसंग को 'रामाश्वतार' के शाप जोड़कर तुलसी ने उन दोनों की 'वसुदेव' और 'कौसल्या' के रूप में अवतरित दिखसाया है। इस प्रकार 'रामायण' की एक 'कारणमाता' ही प्रस्तुत करने पर भी तुलसी उते केवल 'उदाहरणमात्र' ही करते हैं, क्योंकि उनके अनुसार कश्यप से उसके अनेक रूप हो सकते हैं।^{१०}

(६) रावण-सम्म का कारण—राम और रावण के अविच्छिन्न सम्बन्ध के कारण तुलसी 'रावण-जन्म' के भी विविध रूपों का उल्लेख करते हुए उनके एक

१ मानस १।११७	२ शिव । छ । सृष्टि । ४।१३
३ " १।११३-११४	४ " पुत्र । २३
५ स्कन्द । वैष्णव । २०-२१	६ मानस १।१४६-१४७
७ पद्म । उत्तर । २४२।१-१२	८ " १।१७७
८ भाषवत १०।१।१२-४४	९ मानस १।१२१-१२२

नाम कारण 'घाप प्रभाव' का निर्देश करते हैं, क्योंकि उनके अनुसार ऐसे कुपान के काम का कोई भसा कारण हो ही नहीं सकता है ।

'मानस' में इस सम्बन्ध में चार शाप-कथार्य हैं । 'अप-विजय-शाप' कथा के अनुसार विष्णु के दोनों द्वारपाल अम और विजय विप्रदाय' के कारण ३ जर्मों एक राक्षस बनते हैं । प्रथम जन्म में य हिरण्यकशिपु और हिरण्यक होते हैं तथा द्वितीय जन्म में ये ही राक्षस और कुम्भकर्ण हो जाते हैं ।^१ यही तृतीय जन्म का कोई संकेत नहीं है जबकि भागवत^२ और पद्मपुराण^३ में उन दोनों के तृतीय जन्म में क्रमशः शिशुपाल और दन्तिवज्र बनने का भी उल्लेख है । 'मानस' की दूसरी शाप कथा 'असंवर-कथा' में जलंधर के परजन्म में राक्षस होने का वर्णन मिलता है, यद्यपि उसके लिए वहाँ किसी शाप का संकेत नहीं किया गया है,^४ जबकि 'पद्म पुराण'^५ स्कन्द पुराण'^६ शिव पुराण'^७ आदि की 'असंवर कथा' में असंवर के 'परजन्म' का कोई संकेत नहीं है बल्कि वहाँ 'अप' के ही राक्षस बनने का उल्लेख मिलता है । 'मानस' की 'नारद-शाप-कथा' में नारद के द्वारा शिव के दो बच्चों को 'राक्षस' होने के शाप के लिए जाने का वर्णन प्राप्त होता है,^८ यद्यपि उनके राक्षस होने का वहाँ स्पष्ट उल्लेख नहीं है फिर भी कथा के विस्तार से उसका अनुमान कर लेना बड़ा सरल है । शिव पुराण' की 'श्रीमती-स्वयंवर-कथा' में भी नारद के ऐसे ही शाप का उल्लेख है ।^९ 'मानस' की अश्विनी शाप कथा 'प्रतापमानु कथा' में प्रतापमानु के विप्रदायकण सपरिवार राक्षस हो जाने का वर्णन किया गया है, जिसमें बहु स्वयं राक्षस होता है उसका भाई कुम्भकर्ण और उसका सखिद विभीषण हो जाता है तथा उसके अम्म पुत्र और देवक सभी राक्षस बन जाते हैं ।^{१०} 'मानस' की मूल कथा में इसी राक्षस-परिवार का वर्णन है । सामान्य परिस्थितियों में 'विप्र-शाप' के प्रभाव से राक्षस-मात्र बन जाने का उल्लेख भागवत' की 'सोदास कथा'^{११} में भी है, किन्तु प्रतापमानु का नाम और उससे सम्बन्धित कथा का यह विस्तार अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है । यह बस्तुव तुलसी की यौक्तिक कल्पना है ।

अन्य संस्कृत ग्रंथों में राक्षस के पूर्व या पर जर्मों का वर्णन नहीं मिलता है । वहाँ उसके वर्तमान जन्म के विस्तारों में उसके पिता का नाम तो वर्णन विप्रदाय' बतलाया गया है, किन्तु उसकी माता का नाम कहीं पुण्योक्त है,^{१२} कहीं केकयी^{१३}

१ मानस १।१२२	३ पद्म । उत्तर । ५४०।१७
२ भागवत ७।१।३२	४ " १०।१।२६-२७
४ मानस १।१२४	७ शिव । इन्द्र । मुद्र । २३
५ स्कन्द । ईश्वर । २०-२१	८ शिव । इन्द्र । सृष्टि २।२ वी ४।१७
६ मानस १।११२-११६	९ भागवत २।१।२०-२२
१० " १।१७५	११ रा० मंजरी । उत्तर । १२१-१२६ महाभारत । वन । २७।१७-८

है और कहीं नेकपौ है ।^१

(७) भूमिका का उद्देश्य—‘मानस’ में मूलकथा के पूरा इतनी विस्तृत भूमिका देने में तुलसी का उद्देश्य अनेक दृष्टिकोणों से संबन्धित जान पड़ता है। राम के ईश्वरत्व की स्थापना और अवतारवाद की सिद्धि के निमित्त उन्होंने ‘विष्णु और राम’ की एकरूपता और उनके अनेक पूर्व जन्मों का वर्णन किया है। कथा-नायक की महिमा प्रतिपादित करने के लिए उन्होंने बैठा ही महान् प्रतिनायक भी वहाँ नियोजित किया है और उसके भी अनेक पिछले जन्मों का विवरण दे दिया है। शापों और बरवानों की अद्भुत धमता के साथ-साथ असीकिकता का प्रतिपादन करने के लिए तुलसी ने स्वयं विष्णु तक को सबसे प्रभावित निरूपित किया है। इससे अतिरिक्त समस्त ग्रन्थ में भक्ति की महिमा का विस्तार से प्रतिपादन करते हुए उन्होंने ‘मानस को एक आदर्श भक्ति ग्रन्थ’ सिद्ध करने के लिये भी यथासम्भव सभी प्रयत्न किये हैं।

संस्कृत-ग्रंथों में इस प्रकार की भूमिका कहीं नहीं मिलती है। ‘रामायण मञ्जरी’^२ और ‘जम्बू रामायण’^३ में मूल कथा के पूर्व ‘वाल्मीकि रामायण’ के जन्म करण पर ‘वाल्मीकि-नारद संवाद काश्यप से प्रथम श्लोक के जन्म’ ‘रामायण की रचना’ और राम की राज्य-समा में ‘कृष्णजन्म’ के द्वारा उसके पावन आदि का वर्णन मिलता है। ‘राजवीर’^४ ‘उदार राम’^५ ‘जानकी-हरण’^६ आदि ग्रंथों में बर्णित अयोध्या-वैभव ‘हरण-मृगया’ और मुनि पूष-वध’ आदि के प्रसंगों को भी इसी प्रकार भूमिका के रूप में माना जा सकता है किन्तु उनके अन्ततः बहु सोहृदयता और वारपमिठता नहीं है जो ‘मानस’ में सहज गुलज है।

(८) मूल कथा-भाग—भूमिका भाग’ के विवेचन के पश्चात् इस भाग पर विचार करते से इसमें अलौकिक और लौकिक दो स्वरूपों का विडम्बित समन्वय दृष्टिकोण होता है। अलौकिक स्वरूप में विष्णु के ‘रामावतार’ का निरूपण है जबकि लौकिक स्वरूप में राजकुमार राम की सीताओं का वर्णन है। ‘रामजन्म’ के प्रसंग में उनको इस अलौकिकता का ही प्रचुरता से प्रतिपादन किया गया है।

(९) रामजन्म की अलौकिकता—इस प्रसंग में राजसे अस्त पूष्णी के द्वारा गोरूप धारण करके पहले देवताओं और फिर ब्रह्मलोक में ब्रह्म के समीप जाने का वर्णन है जहाँ ब्रह्म भी स्वयं की असमर्थ बतला कर उन सबको विष्णु के समीप जाने का परामर्श देते हैं। उपरान्त बैकुण्ठ या दीर यानर तक जाने के लिये उत्सुक देवताओं को समस्त शिव विष्णु या जयवान् की सर्वव्यापकता बतला कर

१ मद्दि ११२१।

२ जम्बू रामायण १।२-१०

३ उदार राम १।१-१०५

२ रा० मञ्जरी । बाल १-३१

४ राजवीर १।१-१५

५ जानकी हरण १।१ १०

उनकी वही स्तुति करने के लिये उनसे आग्रह करते हैं। इस प्रस्ताव के क्रियान्वित होने पर विष्णु भगवान वही आकाशवाणी से सबको सांगतना देते हैं और अपनी शक्ति एवं शक्तों के साथ सबकार देने की घोषणा करते हैं।^१ इस प्रकार इस प्रसंग में 'पृथ्वी के गोरूप धारण, विष्णु के क्षीर सागर निवास और उनकी भविष्यवाणी का विशेष उल्लेख हुआ है। संस्कृत साहित्य में उसके विभिन्न रूप हैं।

(१०) पृथ्वी का गोरूप धारण—यह वर्णन भागवत^२, पद्म पुराण^३ तथा ब्रह्म पुराण^४ में भी मिलता है, किन्तु यहाँ वह 'रामावतार के स्थान पर 'कृष्णावतार' के प्रसंग में आभोजित किया गया है। अन्य ग्रन्थों में उसका उल्लेख नहीं मिलता है। वस्तुतः यह रूपक अयाचार की पराकाष्ठा का चोखक है, और इसी अर्थ में तुमसी में उसे यहाँ स्वीकृत भी किया है।

(११) विष्णु का क्षीर सागर निवास—संस्कृत के सभी ग्रंथों में विष्णु की तिरपचाय रूप से क्षीरसागर की निवासी बतलाया गया है किन्तु तुमसी में उनको भगवान् भगवान् की प्रेम से युक्त प्रमत्त होने के योग्य बतलाकर और विद्या कर, इस दिशा में एक बड़ा मोक्षिक और चराहनीय प्रयास किया है। वास्तव में एक ओर तो भगवान् की सर्वव्यापी कहना और दूसरी ओर उन्हें केवल 'क्षीरसागर' की सीमाओं में बाँधकर देना देवताओं के लिये भले ही उपयुक्त ही सचता हो, किन्तु उससे मानव-मान-विशेषकर मर्त्तों—की मर्दा और आस्था को कोई संबंध नहीं बिधता है। इसलिये हरि ध्यापक सर्वत्र रामाना। प्रेम से प्रमत्त होहि मैं जाना। कहकर तुमसी में उसे केवल सिद्धांत रूप में ही नहीं रहने दिया है, जिनसे देवताओं की प्रार्थना पर भगवान् को ब्रह्मलोक में भी प्रस्तुत विद्या कर उसका व्यावहारिक पक्ष भी निरूपित कर दिया है। उनकी यह उद्भासना सर्वजनोपयोगी होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(१२) आकाश-यात्री—आकाशवाणी का उल्लेख 'भागवत' और 'पद्म पुराण' दोनों में मिलता है। भागवत में उनके केवल ब्रह्मा ही सुनते हैं और फिर वे उसका तात्पर्य सब देवताओं को समझाते हैं।^५ 'पद्म पुराण में इसके माध्यम से विष्णु सब देवताओं को बतलाते हैं कि वे उनकी कुर्व्या से पूर्व परिचित हैं और स्वयं अवतार-ग्रहण की घोषणा करते हुए वे उन्हें भी श्राद्धों तथा वातरों के रूप में सब तर्कित होने की आज्ञा देते हैं।^६ मानस में ऐसी आज्ञा पढ़ा देते हैं।^७ इन आकाश वागियों का प्रयोग तुमसी उसी समय करते हैं जब वे किसी उक्ति में प्रभाविकता के साथ-साथ अलौकिकता का भी समर्थन करना चाहते हैं। 'मानस' में इसीलिये

१ भागवत १।१८४-१८७

२ पद्म । ब्रह्म । ७।१४-१६

३ भागवत १०।१।२६

४ भागवत १। ४७

५ भागवत १०।१।१७-१८

६ ब्रह्म । १८।१४-१६

७ पद्म । वातराज । ७।७-२६

जनैक स्पर्शों पर आकाशवाणी पद्धति का उल्लेख स्मरण किया गया है ।

(१३) रामजन्म की अलौकिकता—रामजन्म की इस अलौकिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ उसकी लौकिक प्रक्रिया का भी 'मानस' में विस्तार वर्णन है । इसमें 'पुत्रामाव' से सुम्ब दसरथ सुब बसिष्ठ के परामर्श से शृग्रीण्डिय के द्वारा एक 'पुत्रकामयज्ञ' की योजना करवाते हैं, जिसमें अग्निदेव स्वयं प्रवृत्त होकर राजा दसरथ को उनकी रानियों में वितरण करने के लिए 'हवि' लेकर अवस्थ हो जाते हैं ।^१ राजा दसरथ इस 'हवि' का भाग माय कौसल्या को देते हैं और भागे का भाग भाग केकयी को देते हैं । फिर शेष माय के भी दो भाग करके वे उसे उन दोनों रानियों के हाथों से सुमित्रा को दिलावा देते हैं । इस 'हवि' के प्रयोग से सभी रानियाँ गर्म बारण कर लेती हैं ।^२ ब्रह्मासमय अग्न्य लेने के पूर्व राम कौसल्या को अपने 'चतुर्भुज' रूप का वर्णन देते हैं और वह उनकी स्तुति करती हुई उनसे विष्णु-सीता करने की प्रार्थना करती है, जिसके फलस्वरूप ये विष्णु-रूप में विविधवद् अग्न्य ग्रहण करते हैं ।^३

इस लौकिक वर्णन में अग्निप्रवृत्त पुत्रोत्पादक हवि और राम के चतुर्भुज रूप प्रवर्तन आदि अलौकिक तत्त्वों की योजना भी गई है । जिसका एकमात्र सत्य 'राम जन्म' को महापारथ और अवतार के रूप में प्रतिष्ठित करना है । संस्कृत-साहित्य में भी योड़े बहुत परिवर्तन के साथ यह वर्णन प्राप्त हो जाता है ।

(१४) अग्नि प्रवृत्त हवि—संस्कृत के सत्रमय सभी शंखों में दसरथ के 'पुत्रकाम-यज्ञ' और 'हवि प्राप्ति' का समान वर्णन मिलता है किन्तु हवि-वितरण में वहाँ विभिन्नता है । 'रघुवंश'^४, 'उदार रावण'^५ 'रावणविय'^६ 'शृग्रीराज-विजय'^७ और 'पद्म-मुत्तर'^८ आदि में उस 'हवि' के समान चार भाग किये जाते हैं और कौसल्या तथा केकयी को उससे एक-एक एवं सुमित्रा को दो भाग दे दिये जाते हैं । 'रामायण-मंजरी'^९ का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान है किन्तु वहाँ सुमित्रा 'हवि' के स्वयं दो भाग कर लेती है ।^{१०} जबकि 'मानस' के वर्णन में अग्निक चारमी मता है । 'रामचरित' में भी दोनों रानियों के द्वारा सुमित्रा को हवि लिए जाने का उल्लेख है किन्तु वहाँ एक तो उसकी भाषा निश्चित नहीं है और दूसरे सतमी आत्मीयता भी नहीं है क्योंकि वहाँ कौसल्या और केकयी को पहले ही उसका बराबर भाग-भाग माय बाँट दिया जाता है, फिर सुमित्रा के अकस्मात् जा जाने पर वे अपनी इच्छानुसार उसका थोड़ा-थोड़ा भाग उसे भी दे देती हैं ।^{११} 'जानकी-परिचय'

१ मानस १।१८६

२ , १।१८१-१८२

३ उदार रावण २।१०

४ शृग्रीराज विजय १।१३७

५ रा० मंजरी । शाल । ७०

६ मानस १।१८०

७ रघुवंश १०।१५४-१६

८ रावणविय १।६९

९ पद्म । उत्तर २४२।६१

१० रामचरित ८।६१-६२

में कौसल्या को तो ठीक भाषा मान मिल जाता है परन्तु केवल केवल १।८ भाग प्राप्त कर पायी है, जबकि सुमित्रा को उसका ३।८ भाग मिलता है जिसमें से १।४ भाग से लक्ष्मण और १।८ भाग से शत्रुघ्न के जन्म का बर्णन किया गया है।^१ 'मट्टिकाग्न' में पुत्र-यज्ञ का बर्णन तो है किन्तु वहाँ 'हवि' नहीं है, उसके स्थान पर 'वृषोष्प्युट' के ही प्रयोग से रानिमा गर्भवती होती है।^२ 'राजशील' में यज्ञबर्णन नहीं है किन्तु 'हवि' का उल्लेख है। वहाँ भगवान् बिष्णु अपने तेज को चतुर्धा विभक्त करके उसका ही 'पामस' बना देते हैं और अपने पारिवर के द्वारा बत्सर के समीप भिक्षा देते हैं।^३ भागवत,^४ अग्नि-पुराण^५ तथा हनुमत्प्राटक^६ आदि ग्रन्थों में न यज्ञ है और न हवि। इनमें भगवान् बिष्णु स्वयं चतुर्धा होकर जन्म ग्रहण करते हैं यद्यपि 'मानवत' में ही एक अन्य प्रसंग में पुत्र-यज्ञ से पुत्र प्राप्ति का बर्णन मिलता है।^७

'मानस' का 'हवि वितरण' सर्वथा उचित है क्योंकि उसमें एक समुदाय की व्यवस्था है, जो चारों भाइयों की मर्यादित स्थिति को स्पष्ट करती है जबकि संस्कृत के इन बर्णों में वहाँ हवि के समान वितरण का उल्लेख है, राम की विशेष ईश्वरता का कोई आशय नहीं रह जाता है।

(१२) चतुर्भुज रूप—'मानस' के बर्णन के समान ही 'पद्मपुराण' में 'राजयज्ञ' के समय कौसल्या के द्वारा बिष्णु के 'चतुर्भुज रूप' के दर्शन का उल्लेख मिलता है किन्तु 'मानस' में केवल कौसल्या ही यह दर्शन करती है, जबकि वहाँ सर्वप्रथम बत्सर भगवान् के सनातन रूप का दर्शन करते हैं फिर बहिष्कृत उनके आचर्यम आदि संस्कार कराते हैं, उसके पश्चात् कौसल्या को उनके दिव्य दर्शन मिलते हैं, जिसमें उनके बिराट रूप का भी वहाँ पर समन्वय कर दिया गया है < जबकि 'मानस' में यह बिराट दर्शन पृथक् बर्णित है।^१ भागवत^२ में भी 'वृष्य जन्म' के प्रसंग में बसुदेव और देवकी के द्वारा बिष्णु के 'चतुर्भुज रूप' के दर्शन का बर्णन मिलता है। वहाँ भी बसुदेव के पश्चात् देवकी उनकी स्तुति करती हुई उनसे 'पिपुलीना' की प्रार्थना करती है।^३ कारावृह में ही वृष्ण प्रसव हो जाने के कारण वहाँ बसुदेव की उपस्थिति और स्तुति का आशय है किन्तु 'पद्मपुराण' में इस बत्सर पर बत्सर और बहिष्कृत आदि का उल्लेख अप्रासंगिक जान पड़ता है, इती तिये सुसती ने उसमें आश्चर्यक संशोधन करके दर्शक रूप में केवल कौसल्या का ही संकेत किया है।

१ मानकी पारिवर २।७२

२ राजशील १।४१-४२

३ अग्निपुराण ३।४

४ भागवत ७।१३।३३

५ भागवत १।२०१-२०२

२ मट्टि । १।२३

४ भागवत २।१०।२

६ हनुमत्प्राटक १।३

७ पद्मपुराण २।४२ ६६-६०

१० भागवत १०।१।८-४६

(१६) राम-विरवामित्र-सिंहान—‘राम-जग्म’ के पश्चात् ‘बालकाण्ड’ का यह दूसरा महत्वपूर्ण प्रसंग है। इसमें ‘मानस’ के विरवामित्र राम के ईदवरण से सुपरिचित हैं इतौसिये वे राक्षसों से अपने यह की सुरक्षा के लिए दशरथ से राम और लक्ष्मण की याचना करते हैं, जिसे सुनकर दशरथ कांप जाते हैं और उनकी मांग को ‘विरवामित्र’ कहते हुए वे उनसे भूमि भेनु वन कोय शरीर और प्राण तक सर्वस्व मांग सिने का आग्रह करते हैं किन्तु राम को वे सर्वथा अवेद्य बतलाते हैं। उन्हें राम की बलौकिक शक्ति में विश्वास भी नहीं है फिर भी यथिष्ठ के बहुत समझाने बुझाने पर वे किसी तरह राम-लक्ष्मण को विरवामित्र के हाथों में समर्पित कर देते हैं।^१ वन मार्ग में जब उन पर टाटका आक्रमण करती है तब राम एक ही भाष से उसका बध कर देते हैं और उसको खीन जान कर निजपद^२ भी दे देते हैं।^३ फिर विरवामित्र उन दोनों को ऐसी विचार्ये देते हैं जिनसे उन्हें दुःख-व्यास न सके किन्तु उनके शरीर सर्वैय समर्प्य रहें। इसके अतिरिक्त वे उन्हें अम्याम्य घस्नास्थ भी दे देते हैं।^४ इसके बाद वज्रात्म के समय मारीच और सुबाहु आदि के आक्रमण करने पर राम प्रथम को बिना फल के बाण से समुद्र के पास घटपोजन^५ तक फेंक देते हैं और द्वितीय को अग्निबाण से समाप्त ही कर देते हैं। रोप राक्षसों को सब्बन मार डालते हैं।^६ इस ‘निदधरनाह’ से आश्रम में शान्ति स्थापित हो जाने के कुछ समय बाद मिथिला से धनुर्वज्र का निमग्नण पाकर विरवामित्र राम और लक्ष्मण के साथ वहाँ के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग में एक निर्जन आश्रम में एक शिला को देखकर राम, जब उसके विषय में विरवामित्र से पूछते हैं तब वे उनको बहुस्या के पाप और आप की कथा बतसा कर उनसे अपने वरमस्पर्ष के द्वारा उसका उधार करने का आग्रह भी करते हैं। राम के बीसा करते ही उस बिना से बहुस्या प्रपट हो जाती है जो उनकी विविध स्तुति करती हुई उनसे अनीष्ट वरदान प्राप्य करती है और अपने ‘पतिलोक’ बली जाती है।^७

इस प्रकार इसमें विरवामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण-याचना टाटकावय विचारान वरदान अथ राक्षस-वध बहुस्मोडार आदि प्रसंगों का विशेष वर्णन किया गया है। संरक्ष्य के प्रबंधों में इनमें कुछ विधिप्रतायें मिलती हैं।

(१७) विरवामित्र द्वारा राम लक्ष्मण-याचना—इस प्रसंग में ‘रामा पच-मंत्रदी और मानस’ के वर्णनों में बहुत साम्य है, किन्तु वहाँ दशरथ की आसोक्ति पर विरवामित्र क कोप से भूकम्प आदि होने का उल्लेख है,^१ जबकि ‘मानस’ के विरवामित्र दशरथ के आसत्य पर मन ही मन बड़े प्रसन्न होते हैं—

१	मानस	११२०८
३	"	११२०९
५	"	११२११

२	मानस	११२०९
४	"	११२१०
६	रा० मंत्रदी। वास।	१०५

मुनि मृग गिरा प्रेम रस सानी । हृदय हरय माना मुनि प्यानी ॥ १।२०८

‘मट्टिकाव्य’ के विश्वामित्र दशरथ से राम-सङ्गम के लिये बारम्बार मागह करते हैं किन्तु वे कुछ नहीं बोलते हैं और अन्त में उसकी श्लेषामि से मन ही मन डर डर के चुपचाप स्वीकृति दे देते हैं।^१ पुत्रराज कृत रामचरित के दशरथ भी कुछ नहीं बोलते हैं। वे उस समय बाह्य-सम्पन्न समुद्र की भांति अन्तर्ज्वलित और बहिःशान्त रहते हैं फिर भी रालसों के हमल यज्ञ की रक्षा विश्वामित्र से याचक राम के महत्त्व और सूर्यवंश के कुसुमधर्म आदि का उदारोत्तर प्दान करके वे बड़ी मञ्जा से राम-सङ्गम को विश्वामित्र के हाथों में सौंप देते हैं।^२ रामबीम के दशरथ को भी उपयुक्त सब बातों का प्दान है।^३ किन्तु ये राम जैसे पुत्र के विमोग की श्लेषा बिप पीना सिंह के मुँह में जाना या अग्नि में प्रवेग करना अधिक सरल और मुझर समझते हैं और वे स्वयं जाने को प्रस्तुत भी हो जाते हैं, परन्तु राम सङ्गम को ‘शीर-कण्ठ’ समझ कर भेजना नहीं चाहते हैं। अन्त में विश्वामित्र के श्लेष करने पर बहिष्कृत एक ओर उम्हें शान्त करते हैं और दूसरी ओर वे दशरथ को भी समझाते हैं कि वे राम-सङ्गम इनसे शस्त्रकला सीख कर घातीय आदि क्या, राक्षस तक को मार सकेंगे। फिर तो दशरथ उनकी बात मान लेते हैं।^४ ‘जानकी परिचय’ के दशरथ अस्वीकृति के कुपरिणामों से डरते हुए विश्वामित्र से ही यह प्दान पूछते हैं जिससे पुत्रों को न बचना पड़े। इस पर विश्वामित्र के कोप से जब बुद्धम्य समुद्रस्रोम, अग्निप्रसार और वायुस्तम्भ होने लगता है, तब वे विवश हो जाते हैं।^५ ब्रह्मपुराण के दशरथ भी विश्वामित्र को सघरीर राज्य तक बेने के लिये प्रस्तुत है किन्तु राम-सङ्गम के प्दान के लिए वे स्वयं को पूर्ण विवश घटताते हैं।^६ ‘उदार-राघव’ के विश्वामित्र दशरथ से राम-सङ्गम को मागते हुए उनके बाह्यशान्त तथा पूर्व क्रम से अपना परिचय भी बतलाते हैं। इसकी पुष्टि के लिए बहिष्कृत तथा कामदेव का प्रभाव कहते हैं। अन्त में दशरथ उस दोनों श्लेषियों के परामर्श से उनकी बात मान लेते हैं।^७ मट्टिकाव्य में राम-सङ्गम गमन के इस बखर पर पुरतद्विनियों के अतिशोकाकुल हान का वर्णन है किन्तु मायविक्र प्रयोजन होने के कारण वे आँसू नहीं बहाती हैं। ‘जानकी-हरण’ की प्रजा तो इस समय बड़ी अपुत्रर्षा भी करती हैं।^८ दूसरी वे इस विस्तार का अनुपयुक्त समय इतका वर्णन नहीं किया।^९

१ मट्टिकाव्य १।२३

२ रामबीम ४।४०-४२

३ जानकी परिचय ३।२६ ३८

४ उदार राघव २।२४-४२

५ जानकी हरण ४।२०

२ पुत्रराज रामचरित २।२२-२३

४ रामबीम २।४६-४४

६ ब्रह्मपुराण १२।३।६०

८ मट्टिकाव्य १।२६

९ मागध १।३।२०८

(१८) ताटका-वध—मदिटकाव्य^१ तथा उदार रावण^२ का यह प्रसंग 'मानस' के वर्णन से बहुत धाम्य रहता है किन्तु रामायण-मंजरी^३ बाण-रामायण^४, महावीर-चरित^५, अनर्घराज^६ आदि ग्रन्थों में इस व्यवहार पर ताटका के स्त्रीत्व के कारण उसके वध में राम की द्विपकिचाहट का स्पष्ट उल्लेख है। वहाँ विस्वामित्र के आदेश को ही सर्वोपरि मानकर राम 'ताटकावध' करते हैं। 'रावणवीर्य के विस्वामित्र ताटका के वर्णन के पूर्व ही उसके वध में राम की द्विपक का अनुमान करके उसके स्त्रीत्व पर ध्यान न देने के लिए उनसे बहुत आग्रह करते हैं। वे उन्हें समझाते भी हैं कि शासक राजा सोम वध के लिए की पिन्दा नहीं करते हैं। वही राम के द्वारा मारे जाने पर ताटका स्वयमेव विष्य शरीर धारण करके 'निजपद' को प्राप्त कर लेती है।^७ जबकि मानस के राम अपने ईश्वरत्व के प्रभाव से उसे 'निजपद' देते हैं।^८

(१९) अन्य राक्षस वध—संस्कृत के सभी ग्रन्थों में सुबाहु आदि के वध और मारीच के प्रक्षोभ का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान ही मिलता है। मारीच के वध न करने का कारण केवल 'हनुमत्ताटक' में ही बतलाया गया है कि भविष्य में होने वाले 'सीताहरण' के अवसर पर उसकी उपसोनिता जाय कर उसे इस समय भीषित छोड़ देते हैं।^९ मदिटकाव्य में 'राम-मारीच-संवाद' भी है जिसमें राम मारीच से पूछते हैं कि वह उन अक्रिय, वनस्पति-कलाहारी ऋषियों पर क्या क्यों नहीं क्रुद्धा है और वह उत्तर देता है कि उन ऋषियों की हत्या करना उसका भाति धर्म है। फिर राम भी प्रत्युत्तर में ब्रह्म-ऋषियों की हत्या करना अपना क्षत्रिय-धर्म बतला कर उस पर आश्चर्य कर देते हैं।^{१०}

(२०) बह्मसोदर—रघुवंश^{११}, बानही-हरण^{१२}, बानही-परिणय^{१३}, पृष्णीराज-विजय^{१४}, पद्मपुराण^{१५} और ब्रह्मवैवर्त पुराण^{१६}, आदि ग्रन्थों का

- | | |
|--|--|
| १ मदिटकाव्य २।२३ | २ उदार रावण २।२२ |
| ३ रा० मंजरी । भाग १।३६ | ४ बाण रामायण ३।२ |
| ५ महावीर चरित १।३८ | ६ अनर्घ राज २।२६ |
| ७ वध विष्यधवाय्य सा बधु' उत्तथापा निजमासवत् वधम् ॥ रावणवीर्य ३।४ | |
| ८ मानस १।२०८ | ९ हनुमत्ताटक १।७ |
| १० बर्होप्रित्त सप्तमं तत्र राक्षसाभ्यमम्बोभ्यतिष्ठे तु मन्नाप्रिबर्धम् ॥
ब्रह्मविपस्ते प्रविहन्मि दैन राज्यन्वृतिर्बृहत्कामुकेषु ॥ | |
| | मदिट २।३२ |
| ११ रघुवंश १।३४ | १२ बानही हरण ६।१४-१२ |
| १३ बानही परिणय ४।६७ | १४ पृष्णीराज विजय १।१४६ |
| १५ पद्म । उत्तर १।२४२।१३६-१३७ | १६ ब्रह्मवैवर्त । श्रीकण्ठ अंश १।२१६-९ |

वर्णन 'मानस' के वर्णन से पूर्ण साम्य रखता है। 'राघवीय' की बहुस्त्रा विद्या बनने के साथ-साथ यद्यपि अदृश्य भी रहती है फिर भी राम के चरित्रस्पर्श से वह मुक्त हो जाती है। राम की स्तुति करने की अपेक्षा वह सज्जित होकर उनसे समस्त धन भर सही रहती है, फिर विश्वामित्र की आज्ञा से वह अपने पति के समीप खसी जाती है।^१ रामायण-मंजरी की बहुस्त्रा विद्या होने के स्थान पर बरहस्प और बरहस्पयिनी हो जाती है और राम के वर्णन-मात्र से उसे मुक्ति मिल जाती है।^२ 'महावीर-चरित' में बहुस्त्रा के द्वारा 'बन्ध-तामिस्र नरक की प्राप्ति का उल्लेख है तथा राम के तेज से ही उसके उद्धार का वर्णन किया गया है।^३ 'अनर्ष-राघव' की बहुस्त्रा 'प्रस्तर पुस्तिका के रूप में स्थित रहती है और राम के तेज से वह भी अपने स्त्री-रूप को पुनः प्राप्त करती है।^४ 'जानकी-हरण की बहुस्त्रा राम के चरित्रस्पर्श से मुक्त होकर उनके सामने 'इन्द्र' का नाम लेकर जब प्रीति हो जाती है तब वे अपने से ही सब कुछ समझ जाते हैं।^५ 'उदार राघव' में एक महीनता है, वहाँ राम अपने परस्पर्श से एक विद्या के स्त्री बन जाने पर जब अस्मित होकर कृष्ण जिज्ञासा से उसकी ओर देखते हैं तब वह अपनी समस्त धारणा उन्हें सुनाती है।^६ वहाँ विश्वामित्र के माध्यम से ही वीरम उसे ग्रहण करते हैं और फिर प्रथम होकर वे उन सबके साथ मिलिसा तक जाते भी हैं। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' की बहुस्त्रा माप-मुक्त होकर राम की आशीर्वाद देती है और फिर गीतम भी अपनी पत्नी को पाकर वहाँ राम को अनेक आशीर्वाद देते हैं।^७ 'पृथ्वीराज-विजय' और 'जानकी-चरित' में उद्धार के बाद भी बहुस्त्रा के केवल स्तन परपर के ही बने रहते हैं और वेप अंम मारी-रूप की मुकुमारता को प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ पर स्तनों का यह रूप तात्त्विक नहीं है किन्तु साहित्यिक दृष्टि से केवल कठोररत्न का पर्याय मात्र है। 'पद्मपुराण' के एक प्रसंग के अनुसार बहुस्त्रा को अस्ति अस्तिविष्टा, निर्माणा, महामहिता और एकाग्र में चिरस्त्रायिनी होने का श्राप प्राप्त होता है वहाँ जाते जाते स्त्री-मुरप उसे बराबर देखते रहें। इसके साथ ही वहाँ उसके शापमोचन के विधान में यह भी कहा गया है कि जब राम उसके विषय में विश्वामित्र से सब कृष्ण जान कर उसे निर्दोष कहेंगे तभी उसकी मुक्ति होगी।^८

'बहुस्त्रोद्धार' सम्बन्धी राम की विद्या शक्ति को लेकर हनुमत्प्राटक में कुछ अज्ञातमक प्रयोग भी मिलते हैं। वहाँ राम के चरित्रस्पर्श से मायम की

- | | |
|-----------------------------------|-------------------------------|
| १ राघवीय १।७२-८० | २ रा० मंजरी । अंत १३०७ |
| ३ महावीर चरित १।२६ के बाद | ४ अनर्ष राघव २।६ के बाद |
| ५ जानकी हरण । ६।१४-१२ | ६ उदार राघव ३।२८-३३ |
| ७ ब्रह्मवैवर्त । श्रीकण्ठ १।२।६-८ | ८ पृथ्वीराज विजय १।१।६ - |
| ८ जानकी चरित १।१।६ | ९ - पद्म । दृष्टि । २।१।३०-४३ |

समस्त विताओं के स्त्री-रूप में परिणत होने की सम्भावना व्यक्त करती हुई सीता सभी आध्यात्मिकताओं के सपत्नीक हो जाने का उल्लेख करके राम पर मुहुर्ष्य करती है ।^१ तुमसी ने इसका उपयोग कवितावली में किया है ।^२ 'हनुमत्पाठक' में ही गंगा पार करते समय सीता माव के रूप-परिवर्तन की वैसे ही आर्शाका प्रमट करती है^३ त्रिगुणा मयूर संकेत तुमसी ने 'बृह-मिलन' के प्रसंग में किया है ।^४ 'अग्नि-मरीचा के समय भी इसी नाटक की सीता इसी वय से राम के चरणस्पर्श नहीं करती है कि कहीं उसके हाथ के अङ्गुलि आदि स्त्री ग बन जायें ।'^५ तुमसी ने सीता के इस वय का उल्लेख ठीक 'धनुर्मेघ' के पश्चात् उनके द्वारा राम के चरणस्पर्श प्रसंग में किया है ।^६

'मावस' के इन प्रसंगों में तुमसी का ध्यान राम के ईश्वरत्व का प्रतिपादन की ओर अधिक रहा है, इतकिये विश्वामित्र जैसे ऋषि भी उन्हें हरि धू-मार हर्षा, 'ज्ञान-चिराग-अयन' निव-माव' 'विद्यानिधि' आदि के रूप में जानते और पहचानते हैं । इसके अतिरिक्त राम भी वहाँ अपने वीही अनुमाव से पाठका को 'निजवय' लेकर तथा अहस्या का उद्धार करके अपने ईश्वरत्व का परिचय देते हैं । संस्कृत के ग्रन्थों में राम के ऐसे ईश्वरीय रूप का विद्विष्ट और विस्तृत वर्णन कहीं भी नहीं मिलता है ।

(२१) सीता-स्वर्णवर—अहस्वोद्धार के पश्चात् विश्वामित्र राम और लक्ष्मण के साथ मिथिला पहुँच कर 'मावस' के राम वनक का आदिष्य ग्रहण करते हैं । वही दूसरे दिन प्रातः काल जब वे लक्ष्मण के साथ अपने मूढ विश्वामित्र के 'वेवाचन' के लिए पुष्प वनक के ठहरे स्थ से 'वनक नाटिका' में पहुँचते हैं तब योरी-पूजा के लिये सपत्नी के साथ मन्दिर जाती हुई सीता भी संयोगवश वहाँ मा जाती हैं ।^७ उनकी देस कर इतर राम के मन में घुम चकुरों के साथ एक 'अनिर्बचनीय धोव' उराम होता है जिसे वे लक्ष्मण से व्यक्त भी कर देते हैं ।^८ उबर सीता भी अपनी सपत्नी के प्रयत्न से राम के वर्णन करती है और अपने पिता के 'प्रथ' का स्मरण करती हुई गद ही मन शम्प होती है ।^९ फिर योरी की पूजा के पश्चात् वे उनसे राम को 'पत्रिक' में प्राप्त करने का आशीर्वाद ग्रहण करती हैं और घुम चकुरों से प्रयत्न होती हुई वे अपने मदन सोट जाती हैं—

सो० आनि नीरि अनुकूल सिय द्विय हरवु न जाइ कहि ।

मंजुन संगठ मूल वाम वय करकन लये ॥१२३६

१	हनुमत्पाठक ३।१६	२	कवितावली । अयोध्या । २८
३	" ३।२०	४	मावस २।१००
५	३।४३८	६	" ३।२६३
७	मावस ३।२२८	८	मावस ३।२३१
९	" ३।२३४		~

इसके बाद राम भी सीता के सम्मुख ही मन ही मन प्रकृष्टा करते हुए लज्जित के साथ विश्वामित्र के समीप आ जाते हैं और उनसे इस घटना को निदोष भाव से बतला देते हैं।^१ फिर दूसरे दिन स्वयंवरघाता में राम के पहुँचने पर उनके प्रथम-दर्शन से सभी उपस्थित व्यक्ति प्रभावित होते हैं और अपनी विभिन्न भावनाओं का संकेत भी करते हैं। उन्हें देख कर भीर भोग उनको सदेह भीर-रस, प्रतियोगी रूप-मग्न 'मयातक-मूर्ति', कपटी असुर भोग 'कात' नगर की स्त्रियाँ 'शुक्लार-मूर्ति', नगर के मुख्य 'नर भूषण बिदाल सोय 'विराट्प्रय' जनक समे स्वयं', उनकी स्त्रियाँ 'सिधु', योगीजन 'परम-वत्सलमय' तथा हरिमत्त-मग्न 'दृष्टदेव' के रूप में मानते हैं और इस सम्बन्ध में सीता की भावना कवि के अनुसार स्वयं उनके लिए भी अपर्यायी है।^२

इसके पश्चात् जनक के बन्धुओं के द्वारा उनके प्रतिष्ठ 'पथ की शोषणा' होती है जिसकी सुन कर आमन्त्रित राजा भोग 'मनुर्भग' के लिए पहले बंधेने, फिर सब मिल कर भी असक्त प्रयत्न करते हैं।^३ उनकी असमर्थता से शुम्भ होकर जनक भीर विहीन मही कह कर जब सबका तिरस्कार सा करते हैं, तब मन्दमग्न उषका सम्प्रेष प्रतिभाव करते हैं।^४ फिर विश्वामित्र की आज्ञा से राम बड़ी सरसता से 'मनुर्भग' कर झलते हैं।^५ जिसके फलस्वरूप उन्हें पतिरूप में बरग करती हुई सीता उनके गले में जयमाला पहना देती है।^६

इस प्रकार इस प्रसंग में पूर्व-मिलन राम-दर्शन प्रभाव जनक-पथ, अनेक राजाओं के निमग्न जनक-शोभ राम द्वारा मनुर्भग और सीता की 'जयमाला का वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संस्कृत साहित्य में इस प्रसंग में अनेक मनीषी योजनायें प्राप्त होती हैं।

(२०) पूर्व-मिलन—मानस के इस प्रसंग की योजना पर 'प्रथम राघव' का बड़ा आभार है किन्तु उसमें मिलन का समय प्रायः काम के स्थान पर साधकात् है।^७ बड़ी पुष्प-माटिका में स्थित 'अग्निशायन' को देख कर राम जब देवी की प्रणाम करते हैं तब घोड़ी पैर में ही दूर से उन्हें सीता एवं उनकी सखी के दर्शन हो जाते हैं।^८ सीता को देख कर मन्थन के मन में मातृ प्रेम की उत्पत्ति होती है और सीता भी उन्हें देख कर बाण्डव्य का अनुभव करती है। बड़ी मन्दमग्न और सीता की एक घड़ी का परिपथ एवं संवाद भी होता है।^९ एकान्त में राम को

१ मानस १।२।३७

२ " १।२।४१-२४२

४ " १।२।२२-२२३

६ " १।२।६४

८ प्रथम राघव २।६ के बाद

३ मानस १।२।४०-२४१

५ " १।२।४४-२६१

७ प्रथम राघव २।२ के बाद

८ " २।१४ के बाद

देख कर सीता ध्यान-मग्न हो जाती है और जब उसकी सभी सनके भाव को ताड़ कर उससे उनका 'ध्यान-केन्द्र' पुछती है, तब भी 'बा राम में (उपवन में बा राम में) कहकर श्लेष से अपनी मनोरथा भी व्यक्त कर देती है।^१ वहाँ राम सीता की रूप-सम्पत्ति का विस्तृत वर्णन करते हैं और लक्ष्मण भी उसमें कुछ योग देते हैं।^२

'गौधिली-कल्याण' नाटक में भी इस 'पूर्वमिलन' का अति विस्तृत वर्णन किया गया है। वहाँ यह मिलन तीन भागों में विभाजित है। पहली बार वहाँ बाटिका में स्थित कामदेव मन्दिर में राम और सीता का मिलन तथा परिचय होता है।^३ इसके पश्चात् वे दोनों परस्पर इतने आकण्ट हो जाते हैं कि बिछुड़ते ही उन्हें बिरह-वैरग का अनुभव होने लगता है और वहाँ उनका विस्तृत उपचार भी किया जाता है। दूसरी बार वे दोनों फिर वही 'मावली-कुम्भ' में मिल जाते हैं, वहाँ उनके प्रेमाभाव और बिरह-वैरग का अविस्तार वर्णन प्राप्त होता है।^४ अन्त में तीसरी बार बिरह-सन्तप्ता सीता की एक बूटी के प्रयत्नों से राम वहाँ पर स्थित 'बम्बकाणापार' नुह में पहुँच कर सीता से मिलते हैं और उन्हें विविध सात्वनायों भी देते हैं।^५ इस नाटक का यह नु बार-वर्णन कहीं-कहीं अरबीस जो हो गया है।^६

इन नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत के किसी ग्रंथ में यह प्रथम नहीं प्राप्त होता है। राम और सीता के प्रति पूज्य भाव होने के कारण तुलसी इस विधा में बहुत सावधान हैं। पूर्व-मिलन का पर्याप्त विस्तृत वर्णन करते हुए भी वे उसमें कामुकता की गन्ध कहीं भी नहीं जाने देते हैं। मानस में नारद के वचनों^७ का उल्लेख करके वे एक ओर तो उसमें जलौकिकता का समावेश करते हैं और दूसरी ओर उनके प्रेम को अमूर्ततम यथस्य और पुञ्जनों के समान विवक्षात करा के वे उसकी सुहावा के होय का भी परिमार्जन कर देते हैं^८ तथा अन्त में 'वीरी' के बाधीबन्ध^९ के समन्वय से वे उसको आदर्श एवं पवित्र प्रेम के रूप में प्रतिष्ठित भी करते हैं।

(२३) राम-दर्शन-प्रभाव—ऐसा ही उपाय वर्चन केवल 'मानवत' में प्राप्त होता है और तुलसी उससे बहुत प्रभावित भी जान पड़ते हैं। 'मानवत' के अनुसार कंस की रथयात्रा में हनुम को देखकर मत्स्य तोष सनको 'बन्ध' राजा तोष

१ प्रथम पाव २।२१ के बाध

२ प्रथम पाव २।७-८, ११-१७, १६-२० २२ २६ २८ ३० २।११ के बाध

३ गौधिली कल्याण १।२२ के बाध ४ गौधिली कल्याण २।७-१६

५ " ४।१-१४ ६ " २।२८ के बाध

७ मानस १।२२९ ८ मानस १।२११, २१४, २१७

९ " १।२१६

'नरवर' स्त्रियो 'मूर्धकाम', गोपमथ स्वजन' असत् मृगमथ 'सासक', पितृवर्ष 'सिद्धु' संघ 'मृत्यु' अविज्ञान मोघ 'बिराट', योगीजन 'परमतरु' और वापयवाम्यु 'परदेवता' के रूप में समझते हैं।^१

(२४) जनक-पण्य—'रघुबंध'^१, 'राम चरित'^२, 'उदार रावण'^३, राघवीय'^४, 'अनर्धरावण'^५ आदि संस्कृत के मयमय सभी ग्रन्थों में जनक के ऐसे ही पण का वर्णन मिलता है। केवल 'मट्टिकाव्य' में उसके स्थान पर राम के ही बाहुबल की परीक्षा के लिए एक 'यनुर्यग' की योजना है^६ और 'ब्रह्मपुराण' में स्वयं राम के द्वारा स्वयमेव केवल जनक की उपस्थिति में अपनी बलिष्ठ यनुरिधा का परिचय देने का उल्लेख है।^७

(२५) अनेक राजाओं को निमन्त्रण—'रामायण-मंजरी', 'प्रसन्न राघव', 'बाण रामायण' और 'पद्म-पुराण' आदि में इसका निरूपण प्राप्त होता है। 'रामायण-मंजरी' में राम के भागमन के पूर्व अनेक राजाओं के स्वर्ग्वर में जाने और अलक्षम होकर एक वर्ष तक मयर को भेरे रहने का वर्णन है। फिर देवताओं के प्रसार से जनक सर्वै पराजित करते हैं। इस वटना के बहुत समय पश्चात् राम विधिसा पहुँचते हैं।^१ 'प्रसन्नराघव' स्वर्ग्वर में यस्त्रिकापीठ काश्मीर तिसक नीर-माधिरय भरत्यराज और सिम्भराज आदि अनेक राजा लोग निमन्त्रित किए जाते हैं।^२ उन्हीं के समय 'रावण'^३ और बाण^४ भी वहीं पहुँच जाते हैं और 'यनुर्यग' में अलक्षम होकर आपस में युद्ध-कम्ह करते हुये वहाँ से चले जाते हैं, किन्तु पूर्वोक्त राजा लोग अलक्षम होकर भी बहुत समय तक जनक के अतिथि बने रहते हैं।^५ इसी बीच में राम आदि वहीं पहुँच जाते हैं और उन राजाओं के साथ ही यनुर्यग करते हैं।^६ 'बाण-रामायण' सीता-बिरह से उन्मत्त रावण के मनोरञ्जन के लिए एक विस्तृत यमोक्त (माटक में माटक) की योजना की जाती है।^७ जिसमें 'सीता-स्वर्ग्वर' का अभिनय प्रस्तुत किया जाता है। इसमें शायोतिष, कामरूप यमुमती वाण्डूव इबिड, माहिष्मती, केदि, बसार्थ, मेकल, सिंहस (शंका), मधुरा (दक्षिण) अवन्ती कचकैबिक, कुन्तल काशी, माट, मुयुत

१	भागवत १०।४३।१०	२	रघुवंश ११।४७
३	रामचरित ५।७४	४	उदार राघव ३।६०
५	राघवीय ४।१९	६	अनर्ध राघव ३।२०
७	मट्टिकाव्य २।४२	८	ग्रह्य । १२३।१०२-१०३
९	रा० मंजरी । बाण । ४६३-४६६		
१०	प्रसन्न राघव १।२० के बाद	११	प्रसन्न राघव १।३२ के बाद
१२	" १।१०	१३	" ३।४०
१४	" ३।४१	१५	बाण रामायण ४।११ के बाद

बोध मन्त्र, कम्बाज, सीतासुन्दर, मेघनाथ और आश्रम आदि ग्रन्थों के राजाओं के सम्मिलित होने का वर्णन प्राप्त होता है।^१ इन सब राजाओं के बहुत प्रयत्न करने और अक्षय्य होने के परभाव नहीं (नाटक में) उनके समस्त राम 'धनुर्मय' करके सीता को प्राप्त करते हैं।^२ 'पद्मपुराण की 'पुरुषोत्तम रामायण' के स्वर्णकर' में इस सूर्य वासु बाण प्रह्लाद, वासि आदि के साथ-साथ विश्वामित्र के भी प्रतियोगी होने का उल्लेख किया गया है।^३

(२६) लम्बक शोम—'मानस में बणित लम्बक के शोम का विवरण' 'सीता-स्वयंवर काव्य के वर्णन से बहुत साम्य रखता है।^४ 'प्रसन्न रायण' में यह शोम लम्बक के बड़ी मन्त्रीरक से सम्बन्ध मिलता है।^५ जबकि हनुमन्नाटक में वही राम के द्वारा व्यक्त किया गया है।^६ अन्य ग्रन्थों में यह प्रत्यक्ष नहीं है।

(२७) धनुर्भोग—संस्कृत के मगधव सभी ग्रन्थों में यह प्रथम 'मानस' क समाप्त ही प्राप्त होता है। इस योजना में कुछ परिवर्तन वा परिवर्धन करने का साहस किसी कवि ने प्रदर्शित नहीं किया है। केवल 'महावीर चरित' में स्पष्ट परिवर्तन है। वहाँ 'सीता स्वयंवर' की समस्त घटनाएँ विश्वामित्र के आश्रम में ही पटित होती हैं और उद्यम लम्बक सम्मिलित भी नहीं होते हैं। वहाँ सीता और उद्यम के साथ लम्बक के छोटे भाई कुशव्यज विश्वामित्र के आश्रम में पहुँच जाते हैं और वही विश्वामित्र के प्यान-आन से विम-रूप भी उपस्थित हो जाता है।^७

(२८) सीता की अयमाज्ञा—यह योजना भी तुलसी की अपनी और मौलिक है। संस्कृत-साहित्य में इसके स्थान पर वैदिक काल-उत्पत्ति^८ में 'वापिपद' का उल्लेख मिलता है।

संस्कृत के ग्रन्थों में निर्माहित कुछ ऐसे अन्य प्रत्यक्ष भी दृष्टिगोचर होते हैं, जो 'मानस' में पणित नहीं हैं।

(२९) राम के इतरत्व की सूचक आकाशवाणी—'गीर्वाणी-कल्याण' नाटक में वैदिक धाम और लक्ष्मण ही सीता-स्वयंवर में सम्मिलित होते हैं। वहाँ उनके साथ विश्वामित्र का उल्लेख नहीं है। वहाँ पर राम के द्वारा 'धनुर्मय' के परभाव अक्षय्य राजाओं के विरोध करने के समय एक आकाशवाणी से राम के 'पुरुषोत्तम' होने की घोषणा की जाती है, जिसे सुनकर वे विरोधी राजा सोप लाग्न हो जाते हैं और लक्ष्मण तथा जनक आदि भी आश्चर्य व्यक्त करते हैं।^९

१ बाण रामायण ३।२५-३९

३ पद्म । पाठान । ११६।१३

२ सीता स्वयंवर । १६६

७ हनुमन्नाटक १।१०

९ बाण रामायण ३।२४

२ बाण रामायण ३।२४

४ मानस १।२२१-२२२

६ प्रसन्न रायण; १।३२

८ महावीर चरित १।६-४२

१० गीर्वाणी कल्याण ५।३७ के बाद

(३०) स्वयंवर में रावण की उपस्थिति—'मानस में सीता-स्वयंवर के पूर्व ही रावण और बाण के ध्यान तथा निरास होकर सोट आने का संकेत मिलता है, किन्तु 'प्रसन्नरायण' में स्वयंवर के समय ही उनके वहाँ आने तथा धनुर्मग' में असमर्थ होकर सोट आने का विस्तृत वर्णन किया गया है।^१ 'बाण रामायण' में रावण के साथ उनके माग्नी प्रहस्त के आने का वर्णन है। वहाँ रावण धनुर्मग' के बिना ही सीता की प्राप्ति के लिए आग्रह करता है।^२ महावीरचरित में रावण के पुरोहित सर्वमाय^३ 'अनर्परायण' में उसके पुरोहित घोषक^४ तथा हनुमत्पाठक' में भी उन्हीं पुरोहित' के द्वारा अनक की राज्य-सभा में आने और उनसे रावण के लिए सीता की पाषना करने का बर्णन मिलता है। वहाँ के सभी पुरोहित रावण के कुल और बल का ही विस्तृत वर्णन करते हुए किसी भी पक्षपूर्ति को धर्म्य बतलाते हैं।

इस प्रसंग के वर्णन में तुलसी को अमृतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। संश्लेष रसों में प्राप्त धामिनी के साथ अपनी मोक्षिक कल्पना के सरस समन्वय से उन्होंने इसको अधिक चमत्कारपूर्ण बना दिया है। 'स्वयंवर-दासा' में राम के प्रथम-वर्णन के प्रभाव से छाये हुए धातुक का वर्णन करते उन्होंने समस्त प्रतिधोषी नृपों की 'हीनत्व भावना की ओर एक सबल संकेत किया है। फिर धनुर्मग' में उनके सामुहिक प्रयत्न के भी निष्फल हो जाने का उल्लेख करके उन्होंने उन सबको राम की तुलना में अरप्यत लाड सिद्ध कर दिया है। 'प्रसन्न राम' और 'बाण रामायण' की विस्तृत नामावली के स्थान पर उन्होंने उनका नामोस्तीख करना तक उचित नहीं समझा। उन सभी प्रतिधोषियों के सर्वथा असफल हो जाने के परचातु उन्हीं के समय राम के सहज भाव से सफल होने का उल्लेख करके, उन्होंने राम के गौरव का अपरिपठ सब सोंगों की दृष्टियों में बहुत ऊँचा स्थापित कर दिया है। 'धनुर्मग' में रावण की बहामर्ष्य का पहले ही उल्लेख करके उन्होंने निकट भविष्य में भी उसकी 'परज्येष्ठा' की सम्भावना व्यक्त कररी है।

इस प्रकार तुलसी ने राम को सव्यक्तित्वाभी और सर्वोपरि सिद्ध करने के लिए इस 'स्वयंवर-योद्धा' को एक सबल और सफल धायन के रूप में प्रयुक्त किया है। पहले के कवि और नाटककार न तो इस योद्धा का ऐसा महत्व समझ सके और न इसका उचित दिशा में समर्थ प्रयोग ही कर सके।

(३१) परशुराम पराजय—'सीता-स्वयंवर' में राम की विजयी और सफल देखकर मानस के प्रतियोगी राजा भीम निरास होकर उस समय जब कुछ

१ प्रसन्नरायण १।३२-१० क बाण

२ बाणरामायण १।३०-३१

३ महावीरचरित १।२८

४ अनर्परायण ३।३५

५ हनुमत्पाठक १।१९

कोजाहल करते हैं^१ उसी समय 'धनुर्मय' के समाचार से शुक और कृष्ण परशुराम सहसा नहीं आ जाते हैं^२ और 'द्विव धनुष' के दो सख प्रयत्न देखकर वे अपराधी को क्षीय प्रवृत्त करने के लिये बमक को धमकी देते हैं।^३ उस समय कृष्ण उनका कृष्ण अपमान सा करते हुए जब उनके दर्प पर ध्वंस करते हैं तब वे उनकी वृत्ति को बाल चापस्य मान कर उसकी व्यवहृतता कर देते हैं जिसके उत्तर में सभमन भी उनको ब्राह्मणत्व के नाते समा-योग्य बतसा कर उनका पुनः तिरस्कार करते हैं। परशुराम इसके अत्यन्त क्रुद्ध होते हैं और जब तक विश्वामित्र उन्हें किसी प्रकार दाम्भ कराने का प्रयत्न करते हैं तब तक सभमन 'रेबुका-जब' आदि का उल्लेख करके उन्हें और कपिठ कर देते हैं।^४ सभमन के इस दुर्म्यह्वार पर खेद प्रवृत्त करते हुए राम जब परशुराम से ब्राह्मणत्व के नाते समा की प्रार्थना करते हैं तब उसकी चर्चा-मात्र से अत्यन्त क्रुद्ध होकर वे उनके सामने अपने असाधारण अधिम कर्म का वर्णन करने लगते हैं।^५ फिर राम उनके इस क्रोध के लिये अग्रसद्यता व्यक्त करते हुए काम तक से अपनी निर्भयता किन्तु ब्राह्मणों के साथ अपनी विद्वत्ता का संकेत करते हैं।^६ इसके परशुराम को उनके ईश्वरत्व का सहसा कृष्ण मान होता है और सन्नेह-निवारण के लिए वे राम को अपना 'वैश्वस' धनुष सजब करने के लिए दे देते हैं जिसमें राम का तपन देखकर वे उन्हें ईश्वर मान लेते हैं और उनसे अपने कटु व्यवहार के लिए बारम्बार क्षमायाचना करते हैं। इसके पश्चात् वे उनकी स्तुति करते हुए तपस्वा के लिए किसी वन की ओर चले जाते हैं।^७

तुलसी ने इस प्रसंग में 'परशुराम-निविदा-आगमन', 'परशुराम-अशमन-संवाद' और 'राम परीक्षा' का विद्यय रूप से वर्णन किया है। संस्कृत ग्रंथों में इस प्रसंग के विस्तार में अनेक विभिन्न प्रकृतियों का विस्तार मिलता है।

(३२) परशुराम-निविदा आगमन—संस्कृत के नाटकों को छोड़कर ऐप सभी ग्रंथों में यह 'आगमन' राम-विवाह के पश्चात् भारत के निविदा से अयोध्या लौटते समय मार्ग में वर्णित किया गया है। रघुवंश रामायण-मंजरी, अट्टिकाव्य अठार-रावण जानकी-परिषद, राम-कथा रामचरित रामवीथ और पद्म-पुराण आदि ग्रंथों में जब परशुराम बाणधरिणी को मार्ग में ही रोक कर राम के लिए कटु वचनों का प्रयोग करने लगते हैं तब दशरथ तक बहड़ा जाते हैं किन्तु राम पहले पूर्व अप्रमादित ही रहते हैं। वहाँ दशरथ और बलिष्ठ आदि की उपेक्षा करते हुए परशुराम वही दशरथ एवं राम दोनों को शाशित करने की दृष्टि व्यक्त करते हैं।^८

१ मानस १।२६६

२ " १।२७०

३ मानस १।२८२-२८३

४ " १।२८४-२८५

५ मानस १।२६८

६ " १।२७२-२७६

७ मानस १।२८३-२८४

८ रामचरित ५।६१-६२

कहीं 'इलाहू तया बिबेह' दोनों बंनों को समाप्त करने की धमकी देते हैं। कहीं राम से इस बात पर भी अपनी अप्रसन्नता दिखावाते हैं कि उन्होंने उनका नाम क्यों अपना लिया है? कहीं उनके सामने वे इन्द्र-मुद्य' या 'बम्ब-बन्धु-नमन या लमा याचना' आदि के तीन विकल्प भी रखते हैं। और कहीं वे इलाहूतुबंन को अपना मातामह-बंध बतला कर उसे अवश्य तो मानते हैं किन्तु राम के लिये वे अपने पूर्वोक्त विकल्पों पर पूर्ववत् दृढ़ रहना चाहते हैं।^१

संस्कृत के नाटकों में यह प्रसंग अति विस्तृत तथा उन्नीव है। इन्हीं से पर्याप्त प्रभावित होकर तुलसी ने 'मानस' के इस प्रसंग में अद्वितीय नाटकीयता का समावेश किया है। इसके साथ ही सार-ग्रहण को अपनी प्रकृति के द्वारा उन्होंने इसमें गुरुत्वपूर्ण लघुता का सूत्रन भी सर्वत्र बिचा है।

प्रथम रायब हनुमन्नाटक' बाद रामायण, जनर्ष' रायब, महावीर चरित' आदि सभी नाटकों में यह प्रसंग मानस के समान ही ठीक अनुसंधान के परभाव स्वयंभर-तामा में ही बणित हुआ है। प्रथम रायब में मनुर्मगकारी के नाम का प्रथम अक्षर 'रा' सुनते ही परधुराम को 'रायब' का भ्रम हो जाता है और वे बड़ी देर तक उसी पर स्नेह व्यक्त करते रहते हैं, किन्तु बाद में श्रेयस्य से 'राम-सीता के विवाह की घोषणा सुनकर वे अपनी भूल सुधारते हैं।^२ महावीर चरित में वे राम को खोजते हुए सीधे जनक के अग्र-पुर में ही पहुँचे जाते हैं।^३ 'जनर्ष' रायब' और हनुमन्नाटक' में वे राम को 'मनुर्मगकारी' के रूप में पहले से ही जानत हैं, इसीलिए वे उन्हें मन्दुबन्धन करते हुए वे सहता वहीं पर प्रपट हो जाते हैं। 'मान रामायण' में तो वे राम से बिबिधत मुद्र करने के लिये पहले से ही अपने सन्तान एकत्र करते हैं कि उनके बाने के भय से उनके विषयगत रातों रात उनका आधम त्याग कर कहीं अग्रज चले जाते हैं।^४

'मानस' में परधुराम के 'रूप वर्णन' ^५ और 'शक्ति वर्णन' ^६ के प्रसंगों पर

- | | |
|---------------------------------|-----------------------------|
| १ रायबीब ४१६७-७३ | २ उदार रायब ११२३ |
| ३ जानकी परिचय ८१४ | ४ पद्य १२८२।१२९-१३२ |
| ५ प्रथम रायब ४१८-१३ | ६ महावीर चरित ५१० |
| ७ जनर्ष रायब ४१२०-२७ | ८ हनुमन्नाटक ११३२-३७ |
| ९ मान रामायण ४१ विष्कम्भक | १० मानस ११२६८ से निम्नाह्ये |
| ११ मानस ११२७२ २८३ से निम्नाह्ये | हनुमन्नाटक ११२६-३० |
| हनुमन्नाटक ११३१-३४, ३६-३७ | प्रथम रायब ४१३३ |
| प्रथम रायब ४१२४, २८ २९, ३३, ३४ | जनर्ष रायब ४१२७ |
| जनर्ष रायब ४११८ २०, २५ ३२, ३६ | महावीर चरित २।२३, २६ |
| ३७, ३९ ४७ ५२ | |

भी इन नाटकों का बहुत प्रभाव है। अठ्ठाइनमय के सात-सात नहीं कहीं-कहीं अष्ट-अष्ट ही निस्तंकोच रूप से कर लिया गया है।

(३३) परशुराम खड्गमय संघात्— मानस के इस प्रसंग पर भी संस्कृत के उपर्युक्त नाटकों का बहुत बड़ा आकार है।^१ राम की धार्मिकता की रक्षा के निमित्त, तुलसी ने उनके स्थान पर खड्गमय को ही परशुराम से अधिकतर कट्टु उन्हाव करते हुए बिल्लताया है। इसलिए इन नाटकों के राम की अनेक कृत्तियों को उन्होंने लक्ष्मण के नाम से ही प्रस्तुत किया है।^२ 'प्रसन्नराज' और 'जनार्दनराज' में खड्ग और सतामय दोनों परशुराम के लिए कट्टु शब्दों का प्रयोग करते हैं। 'जनार्दनराज' में दशरथ और लक्ष्मण भी अपने-अपना सहयोग देते हैं।^३ महावीरचरित में परशुराम को प्रसन्न करने के लिए बलिष्ठ और विश्वामित्र पहले उन्हें 'बल्लठरी'

महावीर चरित २।१६ १७ १८, ४८

३।१३ १४ २४ ३२ ४८

बाल रामायण ४।२३ २४ २७ २९

१ (क) मानस १।२७७ से मित्ताइये
हनुमन्नाटक १।३८
प्रसन्न राज ४।२६ के बाद
बाल रामायण ४।६१

१ (ख) मानस १।२७९ से मित्ताइये
हनुमन्नाटक १।३९
बाल रामायण ४।६१

१ (ग) मानस १।२८१-२८२ से मित्ताइये
हनुमन्नाटक १।३९-४०
प्रसन्न राज ४।२३
जनार्दन राज ४।३२

१ (घ) मानस १।२८३ २८४
से मित्ताइये
हनुमन्नाटक १।४१ ४४
प्रसन्न राज ४।२१ २३
जनार्दन राज ४।३१, ४९
बाल रामायण ४।६४

२ (क) मानस १।२७१ २७२ से मित्ताइये
जनार्दनराज ४।३१
प्रसन्न राज ४।२१

२ (ख) मानस १।२७३ से मित्ताइये
जनार्दनराज ४।३३, ४९
प्रसन्नराज ४।२१
हनुमन्नाटक १।४४

२ (ग) मानस १।२७९ से मित्ताइये
जनार्दनराज ४।३९
प्रसन्नराज ४।२६ के बाद
हनुमन्नाटक १।४१

३ प्रसन्न राज ४।३० के बाद
४ जनार्दनराज ४।३८ ४२-४४
५ " ४।४०, ४२, ४६ ४७
के बाद

और 'पुतास' के सहभाज के लिए पहले आमंत्रित करते हैं । किन्तु उनकी निरन्तर उपेक्षा देखकर वे भी विवश हो जाते हैं । वहाँ परशुराम के बमन के लिए शतानन्द उन्हें भरी गालियाँ देते हैं और शाप ठक भी देना चाहते हैं तब दशरथ और बसिष्ठ उन्हें रोक लेते हैं ।^१ जब जनक अपना धनुषबाण सम्भालते हैं तब दशरथ उन्हें समझाते हैं किन्तु जब परशुराम बसिष्ठ के लिये अपहरण करते हैं तब तो जनक शतानन्द विश्वामित्र आदि सभी मिलकर उन्हें फटकारने लगते हैं ।^२ 'बास रामायण' में शतानन्द दशरथ और विश्वामित्र का उल्टे घण्टों से समझाते हैं किन्तु जनक अपने धनुष पर जब हाथ चढ़ा लेते हैं तब दशरथ और विश्वामित्र दोनों उन्हें रोकते हैं ।^३ 'हनुमन्नाटक' के रान तो परशुराम को बृत्तिकर्षों से खिन्न होकर उनके धमन के लिए इतने विवश हो जाते हैं कि फिर वे न तो उनकी बाह्यता होने के कारण अवध्य मानते हैं और न स्वयं को ही रघुवंशी होने के कारण उनके घासन में अतृप्तिकारी समझते हैं ।^४

(१४) राम परीक्षा— संरक्षित के सभी ग्रन्थों में राम की शक्ति परीक्षा के लिए परशुराम के बल्लभ धनुष के प्रयोग का वर्णन किया गया है । 'मानस' में उसका उद्देश्य केवल समझी ईश्वररथ परीक्षा है ।^५ रघुवंश^६ रामायण मञ्जरी^७ रामचरित^८ रामबीम^९ उदाररायण^{१०} पद्मपुराण^{११} हनुमन्नाटक^{१२} प्रसन्नरायण^{१३} अनर्परायण^{१४} भट्टिकाव्य^{१५} आदि ग्रंथों में राम शक्ति प्रदयन करते हुए उस धनुष को केवल उद्योग ही नहीं करते हैं अपितु उस पर एक वाण चढ़ा कर उसका प्रयोग भी परशुराम के ही ऊपर अनिर्वाय रूप से करना चाहते हैं और अन्त में उन्हीं की प्रायश्चित्त के अनुसार वे उसका पुण्य प्राप्त रगतोक्त समाप्त भी कर देते हैं ।

राम को बल्लभ धनुष उद्योग करते हुए देखकर 'हनुमन्नाटक'^{१६} और अनर्परायण^{१७} की सीता उनके द्वितीय विवाह की आज्ञा करती हैं जिसका उल्लेख 'मानस' में नहीं है । 'बास रामायण' नाटक में उस धनुष की मरमन बीज में ही

१ महावीर चरित १।२	२ महावीर चरित ३।१।२०, २२ ३३
३ ३।२६-७०	४ " ३।३०-३९
५ बास रामायण ४।९८-९९	६ हनुमन्नाटक १।६६
७ मानस १।२५४	८ रघुवंश १।१८७
९ रा० मञ्जरी । बाण । ६२१	१० रामचरित ८।६४
११ रायबीम ४।७९	१२ उदार रायण १।१२४
१३ पद्म । उत्तर । २४२।१७८	१४ हनुमन्नाटक १।४९
१५ प्रसन्न रायण ४।४३	१५ अनर्परायण १।१२७
१७ भट्टिकाव्य २।६३	१८ हनुमन्नाटक १।१
१९ अनर्परायण ४।१७	

सेकर लौक्य मानते हैं जिससे प्रसन्न होकर जनक जमिना के साथ उनके विवाह की सही समय घोषणा कर देते हैं।^१ 'मानस' में यह बटना नहीं है। परशुराम के पराजित एवं शक्तिहीन होने के पश्चात् सीता ही अपने जाने का बर्णन प्राप्त सभी प्रसंगों में मिलता है किन्तु 'रामकथा' में वे चाते सुमनस-व्यवहार का बरन-स्पर्श करते हैं^२ जबकि 'हनुमत्क' में स्वयं राम ही उनका बरनस्पर्श करते हैं जिससे प्रसन्न होकर वे वही उनके विवाह में भी सम्मिलित होते हैं।^३ किसी भी अन्य ग्रन्थ में ऐसा बर्नन नहीं मिलता है।

'मानस' के इस प्रसंग पर संस्कृत के काव्यों का कोई प्रभाव नहीं जान पड़ता है क्योंकि अयोध्या के मार्ग से परशुराम के मिलन उनके विकल्प और वैष्णव धनुष पर चढ़ाये गये बाण से उनके स्वर्गध्वज आदि का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वही एक संस्कृत के नाटकों का सम्बन्ध है उनमें वर्णित राम-परशुराम कथा उसमें जनकादि के योग राम के श्रेय और अन्त में राम के द्वारा परशुराम के बरनस्पर्श आदि प्रसंगों को भी संभवतः मनीषित्व के कारण मानस' में कोई स्थान नहीं मिल सका है। ही स्वयंवर खाना में ही परशुराम के स्वायत्त और वही मरमम से उनका संवाद कराने की प्रेरणा तुमसी को उन नाटकों से ब्रह्मस्य मिली है। उन्होंने एक ठो कथावस्तु में रोचकता एवं नाटकीयता साने के लिए बृहते स्वयंवर के प्रतियोगी तथा बिरोही राजाओं को उनके प्रबलतम बिरोधा (परशुराम) के बमन से एकदम सान्त करने के लिए और तीसरे परशुराम-नराजम के पश्चात् 'राम-विवाह' के वातावरण को पूर्ण आगन्धमय बनाने के लिए स्वयंवरखाना में ही परशुराम विवाद को प्राथमिकता दी। इसके अतिरिक्त राम के चरित्र की महत्ता स्थापित करने के लिए उन्होंने इस प्रसंग की समस्त कृत्वा को 'परशुराम-मरमम संवाद' में ही सीमित कर दिया और राम अथवा जनक आदि की उसमें कहीं भी जीभ में जाने नहीं दिया। इन सभी बिरोधताओं से 'मानस' का यह प्रसंग अत्यधिक आकर्षक हो गया है।

(३२) राम-विवाह—परशुराम-विवाद के सकुशल समाप्त हो जाने के पश्चात् जनक राम और सीता के विवाह को नियमित एवं वैधानिक रूप देने के लिए तथा वैशम्पयन आदि एवं लोकेश्वर आदि के विवाह के लिए विरामिन्त की-आशा से बरन को गुणना और निर्मलन भेजते हैं।^४

राम की कुपयता और विवाह के समाचार से क्षिणित प्रसन्न होकर बरन द्वारा सबकुछ तुरन्त मिथिला के लिये प्रस्थान करते हैं।^५ मार्ग में उन्हें अनेक

१ आन रामायण ४।८१

२ रामकथा पृष्ठ ११

३ हनुमत्क १।५८

४ मानस १।२८१-२८३

५ मानस १।२९०-२९८

कुम धकृण होते हैं ।^१ बारात के उत्कार के लिए जनक, मार्ग में अनेक स्थावों पर धोजन तथा आवास आदि का प्रबन्ध करते हैं और मिपिसा आने पर उस बारात को एक लम्बे जनबाते में टिका देते हैं ।^२ वहाँ सीता बारातियों की सेवा करने के लिए अपने दैवी प्रभाव से ऋद्धि-सिद्धियों को नियुक्त कर देती है ।^३

राजमन्त्र में बारात के आने पर मंगलाचार के साथ-साथ परप्लन^४ आरती^५ काण्ठि-माठ^६ अर्घ्य,^७ आसन < निछावर^८ तथा सामब^९ आदि के समस्त कृमाचार सम्पन्न होते हैं । सीता के मन्त्र मे आने पर दोनों ओर के कुल-गुरुजों के द्वारा गुरु गौरी और गणेश आदि की पूजा की जाती है जिसमें सब बैठता लोग प्रणत होकर अपना अपना कार्य करते हैं । वहाँ सूर्य अपना बंधाम्बबहार बतलाते हैं अग्नि देव आहूति लेते हैं और वेद विशेष में विवाह-विधि बतलाते हैं ।^{१०} इसके पश्चात् परियपदारन सासुरीकार, पाणिप्रहण कम्पादान गठव्ययन और तथा सोपमराई आदि^{११} का भी विस्तृत बर्णन किया गया है । राम विवाह के समान ही भरत, लक्ष्मण और लक्ष्मण के विवाहों के भी सम्पन्न होने का बर्णन यहाँ मिलता है ।^{१२}

विवाह के उपरान्त जनक, बरह, बाहन भी रात, दासी आदि के रूप में विविध दायज देते हैं ।^{१३} फिर ससियां सनी बरों तथा बधुओं को 'कोहबर'^{१४} में ले जाती हैं । वहाँ लहकौर के पश्चात् सब बधुयें दारज से आधीर्बाद सेने के लिए जनबाते' जाती हैं ।^{१५} फिर वहाँ से सोट कर 'जेदनार' होती है जिसमें बरहर के अनुकूल मानियां भी गाई जाती हैं ।^{१६} अन्त में विवा के दिन जनक सुसार' (भोजन सामग्री) और बहुत सा दायज पुन देते हैं ।^{१७} उनकी सानियां सोटा को बधुचित शिदा' देती हैं । उस समय जनक भी मोह-बल सीता को हृदय से लपाकर उन्हें सान्त्वना देते हुए नारी धर्म तथा कुल-रीति आदि समझाते हैं और फिर उन्हें विवा कर देते हैं ।^{१८}

बारात के बयोम्पा पहुँचने पर कौसल्या आदि सभी सानियां संवतगान, धारती, परिप्लन, निछावर और दान करती हैं तथा बसिष्ट के आदेश से फिर अन्य लोकाचार भी किए जाते हैं ।^{१९} सब बारातियों को सम्मान विवा करने के बाद विद्वानिद को भी वहाँ बड़े साकार और पूजा के साथ विदा किया जाता है ।^{२०}

तुलसी ने राम-विवाह' के प्रसंग का वर्णन इतने विस्तार से किया है कि उसमें उनके अरण्य और किष्किन्धा' दोनों वाक्य समा सकते हैं । निरधम ही तुलसी

१	मानस ११३०३	२	मानस ११३०४-३०६
३	" ११३०६-३०७	४-१०	११३१२-३२०
११	" ११३२३	१२	" ११३२४-३२५
१३	" ११३२६	१४-१७	" ११३२६-३२८
१८	" ११३३३	१८	" ११३३४-३३८
२०	" ११३४८ ३५३	२१	" ११३३२, ३६०

का मन इस वर्णन में अत्यधिक रमा है। अपने इष्टदेव के विवाहोत्सव के उत्साह में उन्होंने सर्वत्र राव्यों का 'अतिव्यय' ही प्रस्तुत किया है। मने ही इसके कारण उन्हें अत्यन्त भित्तव्यविता से काम लेना पड़ा था।

इस विवाह-वर्णन में तुलसी न बरिच एवं लौकिक सभी विधियों का समन्वय किया है। इनमें परछन भारतीय विद्यावार, साम्य पाँच-पञ्चारण मठवाहन शीवर, माँवनरई कोहूर सहकीर देवनार माधियाँ, गुसार और दायज आदि लौकिक विधियाँ हैं जो आज भी उत्तर प्रदेश के अधिकांश विवाहों में व्यवहृत होती हैं। इनके अतिरिक्त शांतिपाठ अर्घ्य आसन शाबोन्धार पाणिप्रहण और कन्यादान आदि विधियाँ वैदिक हैं जबकि वर्तमान प्रचलित प्रथाओं के अनुकूल हैं और उत्तर भारत के समग्र समस्त हिन्दू विवाहों में उनका उपयोग किया जाता है। इस प्रकार इस प्रसंग में तुलसी ने विवाह के लोक-वैवाचार दायज और शीतोपवेश आदि का विशेष रूप से वर्णन किया है। संस्कृत ग्रंथों में यह प्रसंग अनेक विभिन्न भाषाएँ रचता है।

(१९) लोक-वैवाचार—संस्कृत के ग्रंथों में लौकिक विधियों का न तो कोई उल्लेख किया गया है और न वहाँ उसके कोई अपेक्षा ही काम पड़ती है। 'शोदान' और 'कंकण-मोक्षण' का वर्णन दो-एक प्रसंगों में अथर्व-मिस्रता है। वैदिक विधियों में 'रामायण-मंजरी' में 'शाबोन्धार' का उल्लेख है जिसमें ब्रह्मा से लेकर यक्षरज तक के 'रामबंध' का वर्णन बहिष्कृत करते हैं और निमित्त से संकर अपने आप तक 'शीता बंध' का वर्णन स्वयं जनक करते हैं।^१ महावीर चरित में शतामन्द और बहिष्कृत दोनों कृतमुद्रों की अनुपस्थिति में उन दोनों की ओर से विश्वामित्र के द्वारा ही शीता आदि चारों कन्याओं के दान तथा 'ग्रहण करने का वर्णन किया गया है।^२ 'रामायण' के संस्कारों में 'पाणिप्रहण' होने का उल्लेख अनी किया जा चुका है।^३

(२०) दायज-वर्णन—'राजवीर' के दायज में अर्धरूप इष्य हाथो पोड़े पदादि, रज और १०० छठियों के देने का उल्लेख है।^४ 'उदाररायण' में रत्न हाथी पोड़े गाय बकरी दासी पाउकी गाड़ी देशमी पत्तों की पेटी कस्तूरी कपूर आदि सभी कृष्य दायज में दिया जाता है।^५ वहाँ कथापत्र अपनी पुत्रियों माँवकी और सुतकीर्ति के लिए अन्न से दायज देते हैं।^६

(२१) शीतोपवेश—'जानकी-हरण' में देवन जनक के द्वारा तथा 'राम-रामायण' में जनक और शतामन्द दोनों के द्वारा शीता को कपू-वर्म के उपवेश देने का उल्लेख किया गया है।

१ राजवीर ४१२	२ महावीर चरित २१०
३ राम मंजरी । राम १२३४-२४६	४ " " ११२८
५ प्रस्तुत निरूपण पृ० १४०	६ राजवीर ४१४
७-८ उदार रायण ३१११२	९ जानकी हरण १।१२
१० राम रामायण ४१४२-४४	

(१६) अन्य विशेषतायें—उदार-राज्य में दशरथ को किसी बृहत् भाषा में निमग्न न होने का वर्णन मिलता है किन्तु मुष्यत्र उसका सही-सही वर्णन समझ लेते हैं। वहीं उस काल में गुरु-पत्नी अरुणती, कौसल्या आदि रात्रियों, भेटियों और बेस्माजों आदि के भी सम्मिश्रित होकर मिथिला जाने का वर्णन किया गया है।^१

संस्कृत साहित्य में 'राम-विवाह के वर्णन को उतना महत्त्व या विस्तार नहीं मिला है जिसका उल्लेख 'मानस' में प्राप्त हुआ है। कथाक्रम के विचार से वहाँ इतना विस्तार अपेक्षित भी नहीं है किन्तु तुलसी ने अपने दृष्टिकोण की विशेषता के कारण ही अपनी पवित्र-शक्ति का अधिकतम सदुपयोग इसी प्रसंग में किया है। यह उनकी वर्णन-शैली की ही सरलता का परिणाम है कि पाठक कथा की प्रगति को और आगे ध्यान न देकर जहाँ 'एक प्रवाह' में निरन्तर मग्न बना रहता है।

२ अयोध्या-काण्ड

पिछले 'काण्ड' में राम के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। प्रस्तुत काण्ड में 'राम के राज्याभिषेक के संभार' से लेकर केकयी की बदमाश-याचना 'राम-वन-मनन', 'सीता-सदमन-अनुपमन', 'राम निपाद-मिलन' राम मुक्ति-मिसन' 'मुष्यत्र प्रत्यावर्तन' 'दशरथ-मरण', 'मरुत के अयोध्या-आगमन', चित्रकूट में राम भरत मिलन' और मरुत के लक्ष्मण प्रवास तक के प्रसंग वर्णित हुये हैं।

(१) राम-यौवराज्याभिषेक का संभार—राम के विवाह के परचाय् उनको सदा घोष्य और समर्थ देस कर एक ओर अयोध्या के नागरिक उनके यौवराज्य की कामना करते हैं।^२ तो दूसरी ओर दशरथ दर्शन में अपने केश को श्वेत देखकर अपनी बृद्धावस्था के अनुमान से राम को युवराज-पद पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।^३ गुरु बसिष्ठ की अनुमति^४ एवं नागरिकों की सहमति^५ के परचाय् अभिवेक-सामग्री एकत्र की जाती है जिसमें विविध शीशों के जल शोषण कण्डू, चामरचर्म अनेक बहन मणिमण आदि की व्यवस्था सम्मिलित है।^६ राम को 'यौवराज्य' की सूचना के साथ-साथ राजपत्र की प्रेषणा देने के लिये गुरु बसिष्ठ उनके अग्र में जाते हैं।^७ इन संवाचार से राम को 'भ्रातृप्रेम-वच यह ये' होता है कि सब भाइयों के एक प्रकार समान होने पर भी केवल आमु

१ उदार राज्य ३।१००-१०७

२ मानस २।१

४ " २।४

६ " २।६

३ मानस २।२

५ " २।५

७ ' २।६-१०

में सबत बढ़े जाने के कारण ही उन्हें यह 'राज्यभार दिया जा रहा है। इस प्रकार इस प्रसंग में तुलसी ने 'बधरथ के श्वेत-केस' अभियेक-सञ्ज्ञा^१ 'राज-सर्वोपदेश' और 'राम के श्वेत' आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया है। संस्कृत-साहित्य में इसका बर्णन विभिन्न रूप से प्राप्त होता है।

(२) वधरथ के श्वेत-केस—'रघुवंश'^२ 'राघवीय'^३ 'त्रिसंवात'^४ आदि में भी 'श्वेत केस' के दर्शन वधरथ के द्वारा अपनी बृद्धता के अनुमान का उल्लेख है। अन्य ग्रन्थों में वधरथ अपने को स्वतः बृद्ध मान कर भी राम को अभियेक के योग्य समझ कर सचिवों तथा पुरोहितों की अनुमति से उनके 'वीरराज्य' का विचार करते हैं। 'महावीर चरित'^५ तथा अक्षय रावण^६ में वे मिथिला में ही 'परशुराम-विजयोत्सव' के साथ-साथ 'रामाभियेकोत्सव' भी मनाने का आदेश देते हैं। महावीर चरित में तो स्वयं भय और उनके मामा युवाजिप् ही उनसे रामाभियेक के लिए प्रार्थना करते हैं।^७

(३) अभियेक-सञ्ज्ञा—महामारुत^८ और राजायणमञ्जरी^९ में इस अभियेक के लिए 'पुष्प-नक्षत्र' निश्चित किये जाने का उल्लेख है। उदार रावण में अभियेकोत्सव के लिए सभी समूहों गवियों और घोषरों के जल से पूर्ण कमल प्रस्तुत किए जाते हैं। शीपियाँ कैसर और गन्ध जल से चिक्त की जाती हैं। सभी स्नानों पर मोतियों की झालरें बटफाई जाती हैं। मणिमण्डित तोरण बनाए जाते हैं। ढंके-ढंके बांसों पर रंग बिरंगे बरतन लाने जाते हैं। बेणु काहुक लंब तथा तुलसीका मानक कुन्दुभि आदि बाद्य बजाए जाते हैं। नायकिक-यज्ञ अपने अपने सजाते हैं और बेधवार्य अपने शरीर।^{१०} 'प्रतिमा नाटक में अभियेक के लिए व्यञ्जन छत्र मण्डि पट्टा घटासन कुल-कुमुम-संयुक्त तीर्थजस और पुष्परथ आदि की व्यवस्था की जाती है।^{११}

(४) राजसर्वोपदेश—मानस के बहिष्कृत के स्थान पर 'रामायण मञ्जरी'^{१२} में वधरथ और उदार रावण^{१३} में सुमन्त्र के द्वारा राम को उपदेश^{१४} दिए जाने का बर्णन मिलता है।

(५) राम का श्वेत—मानस में राम का यह रंग केवल भारमथ है

- | | |
|-----------------------------|----------------------------------|
| १ रघुवंश १२।२ | २ राघवीय ३।११ |
| ३ त्रिसंवात ४।१-३ | |
| ४ महावीर चरित ४।४७ | ५ अक्षयरावण ४।६५ के बाद |
| ६ ४।४५ | ७ महामारुत । ब. १२७७।१३ |
| ८ रा० मञ्जरी । अयोध्या १६५० | ९ उदार रावण ४।४-१० |
| १० प्रतिमा १।१ | ११ रा० मञ्जरी । अयोध्या १६५१-६५५ |
| १२ उदार रावण ४।१२-१५ | |

जबकि 'उदार राम' में वे अपने अभियेक का पौर विरोध करते हैं और सुमन्य के सामने उसके विषय में अनेक शर्तों की प्रस्तुत करते हैं, किन्तु सुमन्य उन्हें किसी प्रकार समझा बुझा कर अन्त में मना लेते हैं।^१ अन्य ग्रन्थों में इस लेख का कोई विश्वरूप नहीं मिलता है।

इस प्रसंग में तुलसी ने राम को 'सुवराज बनामै' में सहायक उन सभी संभव विशारों का समन्वय किया है, जो संस्कृत-ग्रन्थों में प्राप्त थे। नागरिकों की उत्कट अनिच्छा या श्वेत-नेत्र-वर्जन से बचरण की वृद्धता, पुत्र वशिष्ठ के आशीर्वाद और सखियों तथा मानसिकों आदि की सहमति आदि अमरुत साधनों का एकमात्र साम्य 'रामाभियेक' ही है। वहाँ वशिष्ठ के वस्तुतः गुरुत्व की सिद्धि के लिए उनके द्वारा ही राम को अर्धोपदेश दिया कर उनके महत्त्व को निरूपित किया गया है। इसके साथ ही राम के मानसिक वेद का उत्प्रेषण करके तुलसी ने उनके आदर्श चरित्र की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है, जो अमरुत संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध नहीं है।

(६) केकयी की बरदान-याचना—'मानस के अनुसार राम के अभियेक में विघ्न करने वाले केवल देवगण हैं। निश्चरमाता के रूप में अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए वे अरुणवती की सहायता से केकयी की दासी मन्थरा की बुद्धि इस प्रकार अन्ध करवा देते हैं कि नगर की अभियेक-राज्या से सम्पन्न होकर केकयी से सौतिषा बाह को एक ब्रह्म उभार देती है।^२ भरत की अनुपस्थिति में राम के अभियेक की कौशल्या का एक चातक पट्टयन्त्र^३ बतला कर और अनेक उपलब्धी-कष्टों का आतंकपूर्ण विश्व करके वह केकयी से आग्रह करती है कि वह बधिर के पास सुरसिद्ध अपने दोनों बरों को माँव करके एक से राम के स्वाम पर भरत को राजा बना से और हमारे से राम को १४ वर्ष के लिए बन्धन भेज दे, ताकि भरत निष्कण्ठक राज्य कर सके।^४ तीस्र कार्य-सिद्धि के लिये वह उसे कवेय धारण करके कोप भवन में जाने का परावर्षा भी देती है। राजा बधिर इस परिस्थिति से बहुत चबड़ा जाते हैं और वे 'पति-गुणम स्वभाव' से उसे सब प्रभार से मनाते भी हैं।^५ उसी समय केकयी उनसे अपने बरदान माँव लेती है। 'मरताभियेक' के लिए ही बधिर सुरसुत प्रस्तुत हो जाते हैं।^६ किन्तु 'राम निर्वोक्त' की अपने जीवन-मरण का प्रश्न बतला कर ये उनके बदले में अपना सर्वस्व तक देने को वस्तुतः हो जाते हैं किन्तु उसकी हृदयमिता से उन्हें अन्त में पौर निराशा होती है।^७ इस प्रकार इस प्रसंग में तुलसी ने देव-मन्त्रयन्त्र मन्थरा प्रयास, केकयी

१ उदार राम ५११-२४

२ मानस ११२-११

४ " २११-२२

६-७ " २११-१७

३ मानस २१७-१८

५ " २१२-२७

के कोप-वचन-प्रवेश और उसकी हृद्यमिता आदि का विधेय रूप से वर्णन किया गया है जो मस्तुत के छन्दों में विभिन्न प्रकार से प्राप्त होता है ।

(७) वैव-पद्म्यन्त्र—यह तुलसी की बहुत ही सोहेव्य योजना है । 'रामायन-मञ्जरी' १ और 'अग्नि-पुराण' २ की मन्वरा तो राम के किसी पूर्व जन्मावत से लुम्प और उसके प्रतिकार के लिए ही वह उनके निर्वासन का पदग्रहण करती है जबकि 'राम-कथा' ३ मन्वरा दुम्भिसि पम्भवी का अवतार है, जो वैव-कार्य की सिद्धि के लिये ब्रह्मा के आदेश से केकयी के पास ही नियुक्त है और अपने सब की प्रति के लिए इस प्रकार सक्रिय है ।

(८) मन्वरा के प्रयत्न—मस्तुत के अनेक छन्दों में मन्वरा के प्रयत्नों का विस्तर रूप से उल्लेख किया गया है । 'रामायन-मञ्जरी' का यह वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत साम्य रखता है ।^१ उदार रायव का वर्णन भी पर्याप्त विस्तृत है । वही मन्वरा बहुत तेज है । वह स्वयं ही जाकर दशरथ को केकयी के पास बुला जाती है और उसके सम्बन्धन में रहने पर दोनों बरदान माँग लेती है ।^२ 'राजवीर' की मन्वरा केकयी की आज्ञा से दशरथ को केकस बुला जाने का कार्य करती है ।^३ 'प्रतिमा' नाटक में दशरथ को कोप-वचन तक भी नहीं जाना पड़ता है । वही अविप्रेक-भूमि में ही मन्वरा उनके काम में 'कल' कह देती है जिससे सारा समारोह स्वगित हो जाता है ।^४ 'प्रसन्न रायव' में स्वयं केकयी ही वहाँ जाकर पर-याचना कर लेती है ।^५

'बाम रामायण' नाटक की मन्वरा मकली है । वही दशरथ और केकयी की अनपेक्षित में मायाभव रासस सूर्पकला और उसकी एक दासी भ्रमस दशरथ केकयी और मन्वरा का रूप ग्रहण करके 'राम-निर्वासन' का पदग्रहण करने हैं और उसमें सफल होते हैं ।^६ 'महावीर चरित' में स्वयं सूर्पकला ही मन्वरा का रूप धार कर 'राम विवाह' के समय विजिला में केकयी का बामी बरदान-याचना वन लेकर पहुँच जाती है ।^७ 'अनर्घ रायव' में उपर्युक्त सारा पदग्रहण शकरी करती है ।

(९) केकयी का कोप-वचन-प्रवेश—'रामायणमञ्जरी के कोप-वचन का वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत साम्य रखता है । वही भी केकयी के दुर्वेद्य से

१ रा० मञ्जरी । अधोष्ठा । ११७

२ अग्निपुराण १।८

३ रामकथा पृष्ठ ७

४ रा० मञ्जरी । अधोष्ठा । १११-१००

५ उदार रायव १७।४३-२२

६ राजवीर १२३२

७ प्रतिमा १।७

८ प्रसन्न रायव २।४

९ बाम रामायण १। विष्णुकाण्ड

१० महावीर चरित ४।४० के बाव

प्रबिष्ट होने का संकेत मिलता है।^१ 'महाभारत' के कोप भवन में केकयी कुबेयिनी नहीं बगती है, किन्तु सबभय कर और एकान्त में राजा दशरथ से अत्यधिक प्रेम दिखता कर अपने बर प्राप्त कर लेती है।^२ संस्कृत के भाग्य ग्रन्थों में 'कोपभवन' का भवन नहीं प्राप्त होता है।

(१०) केकयी की हठ प्रतिष्ठा—संस्कृत के लगभग समस्त ग्रंथों में राम निर्दोष के लिए केकयी के दुराग्रह और क्रूर निरभय का उमान वर्णन मिलता है। दशरथ के लक्षों के उत्तर में वह सर्वत्र अपने भी सबम ठक प्रस्तुत करती है और उन्हें 'सत्य-यामन' के लिए निरवध कर देती है। मंत्ररा को जमाव में भी उसकी क्रूरता का पूर्ण परिचय 'हनुमत्गाठक' में मिलता है वहाँ वह 'ठापस-ठाप' के कारण उत्पन्न महोत्पातों का सम्बन्ध सीता के साथ जोड़कर उन्हें 'अर्मगती बन्धु' के रूप में विख्यात करती है और राम से कुछ मास्तरिक द्वेष होने के कारण वह उन्हें 'निष्कृतांगार-भूति' आदि कहती हुई दशरथ से उनके और सीता के निर्वाचन की प्रार्थना करती है ताकि मरत अयोध्या पर शान्तिपूर्वक राज्य कर सकें।^३

कुछ ग्रंथों में, केकयी की केवल क्रूरता और कठोरता को ही न दिखलाकर उसकी कोमलता बत्सलता और निर्दोषता का भी उल्लेख किया गया है। पूर्वोक्त बातसामायन, 'महावीर-चरित' और 'अनर्चरायन' आदि नाटकों में केकयी को निर्दोष सिद्ध करने के लिए ही लक्ष्मी मन्थराओं के प्रयत्नों का आयोजन है। 'प्रतिमा नाटक' में केकयी दशरथ को 'ठापस-ठाप' से पीछे मुक्ति दिलाने के सद्बिचार से बलिष्ठ आदि के परामर्श क अनुसार राम का १४ दिन का वनवास माँगना चाहती है, किन्तु सबकाहट में १४ वर्ष कह जाती है।^४ इस प्रकार वहाँ केकयी की ऊपरी अशासकानी दिखता कर उसके हृदय की पून सुदृढता का संकेत किया गया है। इसी प्रकार रामायण-मंजरी में ब्राह्मण-शासक के कारण उसकी बुद्धि के फिर जाने का संकेत करके उसकी निर्दोषता सिद्ध की गई है।^५

तुमसी ने 'मानस' में केकयी के चरित्र का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है। उसे निर्दोष सिद्ध करने के लिए उन्होंने कोई प्रयत्न ठीक नहीं समझा प्रयुक्त अपने 'इष्टदेव' के निर्वाचन के अपराध के कारण उन्होंने उसको अपनी प्त्तानि प्रगट करने का भी कोई अवसर नहीं दिया। इसके अतिरिक्त 'ठापस घाप'^६ और 'बातसत्यन'

१ रा० मंजरी। अयोध्या। ७०९-७०७

२ महाभारत। वन। २७७। १९, २६ ३ हनुमत्गाठक। ३। ३

४ प्रतिमा ६। १२ के बाद

५ केकैया ब्राह्मण पूर्व मूर्खों वास्ये विदम्बित।

उत्पन्नपावमपउत्पा मठि कीठिपराहमुसी। रा० मंजरी। अयोध्या ७०३

६ मानस २। १२५

की मविष्यवाणी^१ से 'राम-जन-ममन' की अनिवार्यता बतला कर भी तुलसी ने 'माघस' के किसी पात्र के द्वारा न तो कैकयी को निर्दोष कहसाया और न उसके प्रति किसी को धोड़ी छी भी छद्मानुभूति व्यक्त करने का अवसर दिया। मग्यप के विष-ममन से प्रभावित कैकयी की क्रूरता के निरूपण से तुलसी ने राजमहर्षों के पदग्रन्' और 'स्त्री हठ' आदि का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है।

(११) राम-जन-गमन और सीता-जदमग्न-अनुगमन—कैकयी की वर माचना से मुख्य माघस' के दशरथ रात भर मर्मन्तिक द्विविधा में पड़े रहते हैं। श्रावण-काम बढ़ी देर तक उतका बर्तन न पाकर उनके मन्त्री सुपुत्र 'कैकयी ममन में ही उनके पास पहुँच जाते हैं और वहाँ उन्हें अचेत और मग्नवस्तिव देख कर वे कैकयी की आज्ञा से राम को वहीं पर सीमा बुला लाते हैं। राम के पुछने पर कैकयी जब उन्हें सब स्पष्ट बतला देती हैं तब वे माता पिता की आज्ञा को सर्वमाग्य बतला कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं।^२ उसी समय दशरथ अचेत होकर राम को हृदय से सभा सेते हैं किन्तु वे मुँह से कुछ भी नहीं बोलते हैं और मन ही मन यह ममाते हैं कि राम किसी प्रकार बच न जाये।^३ राम उन्हें समझा-बुझा कर माता कीसत्या के पास आज्ञा मांगने बसे जाते हैं। बगदाय की बर्षा से पहले वे अत्यन्त दुःखी होती हैं किन्तु माता (बिभावा भी) और पिता की सम्मिलित आज्ञा को सर्वोपरि बतला कर वे उन्हें आज्ञा में स्वीकृति दे ही देती हैं।^४

उसी समय इस अग्रिम समाचार को सुनकर सीता भी नहीं भा जाती हैं उनके कुछ न कहने पर भी कीसत्या उनकी मनोबधा समझ कर राम से कहती हैं कि सीता भी उनके साथ जनममन के लिए अत्यन्त परतुक हैं। यह सुनकर राम बच के अनेक भीमक वद्यों का उल्लेख करके सीता को वहीं रहने का परामर्श देते हैं,^५ किन्तु जब वे पति-विद्योय के वद्यों को दुःसह बतला कर बच में भी पति-संयोग के आकर्षक आनन्द का अविद्योय बर्चन करती हैं और अनुममन में लिए अत्यधिक आग्रह करती हैं, तब राम विवश हो जाते हैं।^६ इसके पश्चात् जब लक्ष्मण राम के वर बकड़ करके उनसे अपने अनुममन के लिए मूक प्रार्थना करते हैं तब अयोध्या की मुरारा के विचार से राम उन्हें वहीं छोड़ देना चाहते हैं किन्तु उनकी अनग्य बलि देस कर वे उन्हें सर्वप्रथम माता मुमिषा से अनुपपति प्राप्त करने का परामर्श देते हैं।^७ अन्त में सीता और लक्ष्मण के साथ बच जाने के लिए प्रस्तुत राम जब दशरथ के पास अन्तिम आज्ञा के लिए जाते हैं तब वे उनके ईश्वरत्व का उल्लेख करके 'कर्म की विविध गति पर परचाठाप करते हैं जिसके कारण उनके अंपराप पर उन्हें

१ मानस २।१०२

२ मानस २।१७-४१

४ " २।११-१७

६ " २।१४-१५

३ मानस २।४४-४२

५ " २।१७-१९

७ " २।७०-७२

(राय को) बन जागा पड़ रहा है।^१ वहाँ केकयी राम आदि की बिदा में अति विभक्त होकर अत्यन्त दुःखित हो जाती है और मुनि-अनोचित वस्त्रादि साकर राम को दे देती है। उसका आचम्य समझकर राम भीष्ट ही मुनि वेश बनाकर वहाँ से चले देते हैं। बाहर आकर वे ब्राह्मणों को विविध दान देकर अपने दास-दासियों को युक्त बलिष्ठ के घरों में छोड़ देते हैं।^२ उसी समय सुमन्त्र दशरथ की आज्ञा से एक रत्न लेकर उनके पास पहुँच जाते हैं, जिस पर बैठकर वे तीनों बान के लिए प्रस्थान कर देते हैं।^३

इस प्रकार इस प्रसंग में सुमन्त्री ने 'सुमन्त्र की विद्वत्ता', दशरथ की विद्वत्ता कीवस्था की प्रतिक्रिया सीता के आग्रह सवमण के आग्रह, लक्ष्मण की सुमित्रा की अनुमति राम के संप्रतिबन्ध और सुमन्त्र के साथ बान प्रस्थान आदि का विशेष रूप से वर्णन किया है। संस्कृत के ग्रन्थों में इस प्रसंग को विस्तार में बड़ी विविधताएँ हैं।

(१२) सुमन्त्र की विद्वत्ता—'रामायण-संज्ञरी' में भी सुमन्त्र के द्वारा बन्ध-पुर में जाने और केकयी तथा दशरथ की सम्मिलित आज्ञा से राम को बुलावाने का वर्णन मिलता है।^४ उदार-रायण में बन्ध-पुर में जाने से पहले ही सुमन्त्र को राम-निर्वासन का पता लग जाता है और उसी की पुष्टि के लिये वे वहाँ जाते हैं तथा केकयी की आज्ञा से राम को वहीं ले भी जाते हैं। उस समय 'संघरा' का नाम लेकर जब केकयी मौन हो जाती है तब बलिष्ठ, जो वहाँ पहले से उपस्थित है राम को सारा खस्य बतला देते हैं।^५ 'रायणीय' में दशरथ-व्रत के समय सुमन्त्र भी उपस्थित रहते हैं और वे उसे इस कृत्रिमता के लिए रोकते भी हैं। वहाँ राम माता-पिता की पर-आश्रयता के लिये स्वयमेव वहाँ पहुँच जाते हैं और केकयी से 'सब कुछ जान लेते हैं।^६ 'बन्धु-रामायण' में कबल दशरथ की आज्ञा से ही सुमन्त्र जब राम को बुला जाते हैं तब केकयी इनको सारी घटना बतला देती है।^७ इस अवसर पर केकयी को समझाते हुए सुमन्त्र उसकी आज्ञा के भी दुराग्रह की एक कथा का वर्णन करते हैं।^८

(१३) दशरथ की विद्वत्ता—केकयी के बन्ध-पुर में राम को सामने आते देखकर 'रामायण-संज्ञरी' के दशरथ रोते हुए उन्हें केवल 'पुत्र' कह कर भीष्ट ही सज्जावय मोन हो जाते हैं।^९ राम-वन-गमन के समय भी वे केवल एक ही बात बहते हैं कि अयोध्या की सारी सेना और सम्पत्ति राम को छोड़ दी जाए, ताकि

१ मानस २।७६-७८

२ " २।८१-८३

३ उदार रायण १।१२७-३६

४ बन्धु-रामायण २।२३-२८

५ रा० संज्ञरी । अयोध्या । ८०४

६ मानस २।७६-८०

७ रा० संज्ञरी । अयोध्या । ७६४-८११

८ रायणीय । १।२६१ २४

९ बन्धु-रामायण २।१४ के बाद

एक उबड़े राम्य पर राज करें।^१ 'बम्पू रामायण' के दशरथ भी राम को इस तरह पर उपरिच्छर' (देवकों के साथ) जाने का आदेश देते हैं।^२ 'राजवीर' के दशरथ तो मोन बापीबाँह के अतिरिक्त मूँह से एक बरस भी नहीं बोल पाते हैं।^३ उदार राजव में वे राम के सामने ही बड़ा बिलाप और प्रसाप करते हैं। वहाँ वे कभी राम की होमप्रता और निर्योपता का वर्धन करते हैं, तो कभी केकयी को समाते और फटकारते भी हैं। कभी अपने कलंक और अपमान की विस्तृत कल्पना करते हैं और कभी राम तथा सशयन से बहू-पूर्वक राम्य-ग्रहण करने की प्रार्थना तक करते हैं।^४ 'अग्निपुराण के दशरथ भी केकयी को 'आप-निश्चया' सर्वसोकामिव परिधी और काम राधि' आदि कह कर राम से बस प्रयोग करने का आग्रह करते हैं।^५

(१४) कौसल्या की प्रतिक्रिया—रामायण-मंजरी' की कौसल्या इस तरह पर अपने एक-मुक्ता' और 'स्त्री-जीवन' को ही बार-बार विस्कारती है।^६ 'बम्पू रामायण' में वे राम के हाथ में अग्निदेवार्क बंधे हुए मंगलसुत्र का उल्लस करके बहुत बिलाप करती हैं और उनके साथ बन जाने की इच्छा भी व्यक्त करती हैं।^७ 'महानाटक' में वे राम को रोक कर पहले दशरथ से स्पष्टीकरण कराना चाहती हैं क्योंकि उनके विचार से बूढ़ और दुर्मर व्यक्ति के बचनों का कोई ठिकाना नहीं होता है।^८ 'राजवीर' में वे राम को केबल बापीबाँह' देकर ही रह जाती हैं।^९ 'उदार राजव' की कौसल्या इस समय पर दशरथ की कामातुरता को ही धन जननों का मूक बतलाती हैं और राम को बन प्रवासकाल में सर्वक व्यवहार करने के लिये आवश्यक निर्वेक भी विस्तारपूर्वक देती हैं।^{१०}

(१५) सीता का आग्रह—संस्कृत के सभी ग्रंथों में इस प्रसंग का बड़ा विस्तृत वर्धन किया गया है क्योंकि इसके द्वारा कवियों को 'पति-महूरव' का निरूपण करने के लिए एक पुष्ट आधार प्राप्त हो जाता है। 'रामायण-मंजरी' के राम जब सीता को कौसल्यादि की सेवा के लिए अयोध्या में रहने और भरत को 'श्रुतिप्रद' राजा मानकर उन्हें कुछ भी कटु-वचन न कहने का परामर्श देते हैं तब वे कुपित हुए उनसे अपने स्वाम को सर्वथा अनृषित बससमाती हैं और पति को 'प्राणामिक' तथा 'सर्वस्व' आदि कह कर अपने अनुपमन का बड़ा निश्चय भी व्यक्त करती हैं।^{११}

१ राम मंजरी । अयोध्या । ८८६	२ बम्पूरामायण । २।३६ के बाव
३ राजवीर १।४७ ७७	४ उदार राजव ४।८० ११०
५ अग्निपुराण १।२५ २६	६ राम मंजरी । अयोध्या
७ बम्पूरामायण २।२८ ३०	८ ८२८-८३६
८ महानाटक ३।११	९ राजवीर १।८०
१० उदार राजव १।६४-८१	११ रामायण मंजरी । अयोध्या ।
	८६८-८७८

'राजकीय' १ और 'बाल रामायण' २ की सीता भी पति-संयोग के सुखों का वर्णन करके राम से अनुगमन की प्रार्थना करती है। 'अम्बु-रामायण' में भी सीता का दुःख निदबध देख कर राम उन्हें अनुमति दे देते हैं।^१ उबार राजक की सीता को क्रोध से घेर पटकती काँपती रोती और धम्मय हँसती हुई राम से कहती हैं - "सर्प की तरह विषबमन मठ करो मुझे सबमण के हाथों में छोड़ते तुम्हें बज्रा नहीं जाती, इसीलिए क्या पिता जनक ने मुझ तुमको दिया था कि बनाप छोड़ कर स्वर्ग बन जैसे जाना। वहाँ वे यह भी बतलाती हैं कि उम्हारे इतनी रामायण सुनी है किन्तु किसी के भी राम सीता को बनेसी छोड़ कर बन नहीं जात है।" इसके अतिरिक्त वे साथ न सै जान की दसा में विपारि से धारणहूया तक कर सने की बमकी भी राम का बेठी है।^२ विषय में गृणार-शय्या को अंपार-शय्या और संयोग में अंनार शय्या को भी गृणार-शय्या बतला कर वे बत के कष्टों को स्वयं गृह के समान कहती हैं और स्वर्ग को सुख-दुख मित्र' कह कर वे राम के साथ बन जाने का संकल्प आपह करती हैं।^३

भट्टिकाव्य^४, महावीर चरित^५ और बनय राजक^६ आदि में केकयी के बरवानों में ही राम के साथ सीता और लक्ष्मण के भी बन वनन की माचना का उल्लेख है, इसलिये वहाँ उनके आपह का प्रश्न ही नहीं उठता है।

(१६) लक्ष्मण का आपह—संस्कृत के ग्रन्थों में इस प्रसंग में लक्ष्मण के शोक का विस्तृत उल्लेख मिलता है जो मानस में बंभित नहीं है, किन्तु उतकी कद्रु बाणी का संकेत उनके 'सुमन्त्र-संवाद' में अवश्य मिलता है।^७ यद्यपि उतका भी कोई बिबरन वहाँ नहीं दिया गया है। 'रामायण-मञ्जरी' के लक्ष्मण बरारण को 'स्यसनी बृद्ध और स्त्रीबन्ध' आदि कह कर किसी भी कारण से 'रामायणिक' का उचरण नहीं चाहते हैं। वे तो भरत के भी पदमन्त्र में लिप्त होने की सम्भावना करके उनका सामना तक करते के लिए अनुपवाण लेकर प्रस्तुत हो जाते हैं।^८ 'बाल रामायण' में वे बरारण को 'त्यागयोग्य' तक कह देते हैं।^९ और 'राजकीय' में वे उनके कष्टोद्धार का भी विचार व्यक्त करते हैं।^{१०} उबार राजक' में वे बरारण और केकयी के निरोध के साथ-साथ भरत का भी समुपनाशन करके राम का भी प्रतिघीम ही

१ राजकीय ५।६१-६२

२ अम्बु रामायण २।३२ के बाद

३ उबार राजक ५।५२

४ भट्टिकाव्य ३।६

५ बनय राजक ७।६६

६ मानस २।१६

७ बाल रामायण ६।१७

८ बाल रामायण ६।१६

९ उबार राजक ५।४२-४८

१० " ५।५४-६०

११ महावीर चरित ५।४१

१२ रा० मञ्जरी । अवाप्या । ८३८-८४२

१३ राजकीय ५।७२

अभिवेक कर वाक्या चाहते हैं।^१ 'बम्बू रामायण' के सप्तम केकयी की 'लोकनिन्दित और बधरव को 'अराध्यान्त' तथा 'कुर्यात्कुर्य-विवेक-सूक्त' आदि कह कर राम से उनके 'राज्यत्याग' को अनुचित बतवाते हैं और क्षत्रिय धर्म की बुराई देकर उनके ब्रह्म-प्रयोग के लिए स्वयं आज्ञा भी माँगते हैं।^२ 'प्रतिमा' नाटक के सप्तम केकयी से क्रुपित होकर सारे संसार को ही 'स्त्री-रहित' कर देना चाहते हैं। उन्हें राम के राज्य से बन्धित हो जाने से बड़ कर, उनके निर्वासन का अधिक खोम होता है।^३ इन सभी प्रश्नों में राम के उपदेशों से ही सप्तम का यह श्लेष छान्त हो जाता है। फिर वे सबसे अधिक आग्रह करके, वन में साध जाने के लिए उनकी अनुमति प्राप्त कर लेते हैं।

'मट्टि-काव्य' 'यहाबीर चरित' और 'अनर्घ राघव' आदि में केकयी के वरदारों में ही सप्तम के भी वन-जमन की याचना का उल्लेख किया जा चुका है^४, इसलिए वहाँ उनके आग्रह का उल्लेख नहीं है।

(१७) सुमित्रा की अनुमति—संस्कृत के ग्रन्थों में सुमित्रा के चरित चित्रण की बड़ी उपेक्षा मिलती है। वहाँ 'सप्तम जग' के बधरव को छोड़ कर अन्यत्र कहीं उसका नामोल्लेख भी नहीं किया गया है। 'मानस' में छत्तम को वन-जमन की अनुमति देने की वास्तविक अधिकारिणी के रूप में सुमित्रा का चित्रण करके तुलसी ने उसके साथ पूर्ण श्याम किया है। यही नहीं, उसके द्वारा सप्तम को 'रामभक्ति' का उपदेश दिला कर उन्होंने उसके चरित्र को धीरे धीरे ऊँचा उठा दिया है। इस प्रकार यह प्रसंग तुलसी की एक मौलिक योजना है, जिसके दर्शन अन्यत्र नहीं होते हैं।

(१८) राम का सम्पत्ति-दान—इस प्रसंग का वर्णन संस्कृत के अनेक ग्रन्थों में मिलता है। 'रामायण-मंजरी' के राम सुयज्ञ और विजय आदि ब्राह्मणों में अपना समस्त वन बाँट देते हैं।^५ 'उदार राघव' में सुयज्ञ की बहिष्णु का पुत्र बतलाया गया है। वहाँ राम उन्हें सब बहुमूल्य वस्तुओं दे जाते हैं। शैव धर्म और पशु-धर्म को वे अन्य ब्राह्मणों तथा याचकों में वितरित कर देते हैं। वहाँ सुयज्ञ की पत्नी भी सीता से उनके वस्त्र और रत्न आदि दान में प्राप्त कर लेती है।^६

(१९) सुमन्त्र के साथ वन प्रस्थान—संस्कृत के सभी ग्रन्थों में इस प्रसंग का विस्तृत उल्लेख मिलता है। 'मानस' में जब राम आदि ममर की सीमा पार कर लेते हैं तब उन्हें सुमन्त्र रथ के दर्शन होते हैं^७ किन्तु रामायण

१ उदार राघव १।२३-३१

२ बम्बू रामायण २।२८-२९

३ प्रतिमा १।१८-२३

४ प्रस्तुत निबन्ध, पृष्ठ १३७

५ पृ० मंजरी। अयोध्या। ८८१-८८२

६ उदार राघव १।८३-८४

७ मानस २।८२

मञ्जरी^१, रावबीर^२, उदार-रावब^३, चम्पू रामायण^४ आदि में वे सब मुफ्त के साथ रथ पर बैठ कर ही मवन से बाहर जाते हैं ।

(२०) अन्य विशेषतायें—'महाबीर-चरित'^५ और हनुमन्नाटक^६ में 'राम-वन-गमन' के समय भरत की उपस्थिति और उनकी विकलता का विस्तृत वर्णन मिलता है । रामायण-मञ्जरी^७, रावबीर^८ उदार-रावब^९, और चम्पू रामायण^{१०} आदि ग्रन्थों में राम के द्वारा जबते समय वस्त्रादि से जाने का उल्लेख किया गया है । 'पद्मपुराण' में 'वन-गमन' के लिए राम के वीर्य रथपर हो जाने के कारणों में 'सत्यपातन' के साथ-साथ 'रावण-वध सम्बन्धी उनकी इच्छा का भी संकेत है ।^{११} वहीं एक 'पुरातन रामायण' में ब्यारथ के पूछने पर वसिष्ठ 'राम-वन-गमन' का अधिक्य भी उन्हें बतलाते हैं कि राक्षसवध शंकर-पूजन, सीता-विशोग कपि-सेना-संगठन और रावण-वध की गटनाओं के परभाव राम अयोध्या लौट कर राज्य मंत्र और पुत्र आदि भी प्राप्त करेंगे ।^{१२}

जमिना का उल्लेख इस अवसर पर न तो 'मानस' में मिलता है और न संस्कृत के किसी ग्रंथ में । केवल 'बास-रामायण नाटक' में यह संकेत है कि जब जमिना लक्ष्मण के साथ 'वन-गमन' की कृष्ण संसृक्ता प्रवृत्त करती है, तब वे मुद्गरों की उपस्थिति के कारण उसे अपने 'सखिदमल और बन्ध-भुङ्कटि' से उसे शीघ्र ही रोक देते हैं ।^{१३}

'मानस' के इस प्रसंग में तुमरी ने बड़े संयम और विवेक से काम लिया है जबकि संस्कृत साहित्य में पारिवारिक मर्यादा और भारतीय संस्कृति की सुरक्षा की ओर कवियों का विशेष ध्यान प्रदर्शित नहीं होता है । 'मानस' में ब्यारथ और केरवी की 'कहामुनी के समय कोई तीव्र व्यक्ति न तो वही उपस्थित रहता है और न उन दोनों से एक अदर माप में कहा जा सकता है । केरवी की फटकारना तो बुरा यहाँ मुफ्त बरके सामने सदा नतमस्तक रहते हैं । वही राम के सामने ब्यारथ कोई बिनाप या प्रताप नहीं करते हैं । कीवस्था भी वहाँ केरवी के प्रति कोई बुर्बाव व्यक्त नहीं करती है । वहाँ 'राम-जीता संवाद' में तो बहुत अधिक घालीमला है जहाँ वे दोनों कीवस्था के समय परस्पर बात करने में भी लज्जा का अनुभव करत हैं । वहाँ लक्ष्मण के प्राब का भी कोई संकेत नहीं है । इसके अतिरिक्त मुमिना की प्रतिक्रिया में वहाँ उसके सौहार्द का उल्लेख करके तुमरी ने एक बड़े अभाव की वृत्ति की है क्योंकि राम की दो विमाताओं में केवल केरवी का

- | | |
|------------------------------|-----------------------------|
| १ रा० मञ्जरी । अयोध्या । ८१३ | २ रावबीर १।८८ |
| ३ उदार रावब १।६१ | ४ चम्पू रामायण २।४१ के बाद |
| ५ महाबीर चरित ४।३१ के बाद | ६ हनुमन्नाटक १।३ |
| ७ रा० मञ्जरी । अयोध्या । ८८० | ८ रावबीर १।८६ |
| ९ उदार रावब १।८६-९० | १० चम्पू रामायण २।१६ के बाद |
| ११ पद्य । उत्तर १२४२-१८७ | १२ पद्य । पाताल ११११-२०-२२ |
| १३ बास रामायण १।२३ | |

ही चरित्र-चित्रण वहाँ सभी रंगों में विभक्त है वहाँ सुमित्रा के सम्बन्ध में के सब यौन हैं। 'मानसकार' ने एक ओर अपने पुत्र के मुख के लिए राय को निर्वासित करने वाली और दूसरी ओर राम के साथ अपने पुत्र को भी मन में सख्त भेद देने वाली दोनों विमाताओं की परस्पर विरोधी भावनाओं का वर्णन करके वहाँ सुमित्रा के प्रति सम्मान भावना का विस्फोट किया है, वहाँ अग्रपद्य रूप से केकयी के प्रति विवकार भावना संकेत भी किया है।

(२१) राम-निपाद-मिलान—अयोध्या-स्वाय के पश्चात् 'अन-यात्रा' के आरम्भ में ही गंगा-तट पर स्थिति श्रु पहेरपुर पहुँचने पर राम की सर्व प्रथम भेंट निपादराज गृह से होती है जो स्वागत के पश्चात् उन्हें अपने नगर में ले जाना चाहता है किन्तु अपने मुनिवत ना संकेत करके राम उसे रोक बैठे हैं।^१ राम 'निर्वासन' की इस कल्प स्थिति पर जब गृह अधिक शून्य होता है तब स्वयंसेवक राय के ईश्वरत्व का उल्लेख करते हुए उसको आध्यात्मिक ज्ञान देकर आशस्त करते हैं।^२ गुमान को वहीं बिदा करके जब राम 'गंगा-पार-व्रजन' के लिये गृह से नाव नौकावाते हैं तब वह भक्ति-वचन उनके चरणों की धोने की कामना से उनमें धातुप काटि-मूर्ति होने का बहाना करता है और महत्त्वा के समान ही अपनी नाव के भी स्त्री बन जाने की आशंका व्यक्त करता है।^३ उसका आदेश समझ कर राम उसके चरण धुलवा कर ही नाव द्वारा गंगा पार करते हैं। सीता गृह को पारिधमिक रूप में अपनी 'मणिमुद्रिका' देना चाहती है किन्तु वह अज्ञात कथ नहीं मिला है।^४ फिर राम जब उसे भिरा करना चाहते हैं तब वह 'मार्ग प्रवर्तन' का आग्रह करके गङ्गी के बाय लव जाता है और उनके विवकार में निश्चित वचन देने के बाद ही लपट कोटता है।^५ इस वर्जन से तुलसी ने गृह की आरपीयता अस्मन्तोपदेश शान्तीकरण मूल, गृह पारिधमिक आदि का विरोध रूप से ज्ञेय किया है जिसकी तुलना में संस्कृत साहित्य में अनेक नई बातें मिलती हैं।

(२२) गृह आरपीयता—अयोध्या महाभारत, रघुवंश-जानकी-राज, और प्रथम रायस आदि में गृह का कोई नामोस्मरण नहीं है जबकि रायवीर^६ रामायण अञ्जरी^७ में गृह की ऐसी ही आरपीयता का संक्षिप्त संकेत है। 'उदार-रायस' में गृह राम को अयोध्या का निष्कण्टक राज्य निम्नाने के लिए अपनी और से उन्हें वैयक्तिक सहायता भी देना चाहता है। उनके विश्वास के लिए वह अपनी विद्या देना का विवरण भी उन्हें देता है।^८ अन्तु रामायण में वह उन्हें अपना समृद्ध राज्य देकर १४ वर्षों तक उनको वहीं रोक रखना चाहता है।^९

१ मानस २।२४

२ " २।२२-१०१

३ " २।१४२

४ रा० अञ्जरी । अयोध्या । २०१-२०३

५ अन्तु रामायण २।४८ के बाद

६ मानस २।१०-११

७ २।२०२

८ रायवीर २।११-१४

९ उदार रायस १।२४-३२

(२३) अक्षय्योपदेश—यह वर्णन संस्कृत के किसी भी आलोच्य ग्रंथ में प्राप्त नहीं होता है। हम इसे बड़ी सरसता से तुलसी की मौखिक योजना कह सकते थे यदि वह 'अप्याय-रामायण' में भी नहीं होता।^१

(१४) मानुषीकरण मूल—इस प्रसंग पर 'महानाटक' का बहुत आभार है। वहाँ की बृहत्ता और काष्ठ में विशेष अंतर न होने का उल्लेख करके राम के चरण बोलने का आग्रह करता है।^२ तुलसी ने उसके इस आग्रह में भक्ति का समर्थन कर दिया है।^३

(२३) गृह पारिमर्शिक—'अनर्थ राघव' में राम क द्वारा गृह को पारिमर्शिक के रूप में 'सम्पन्न-मित्रता' के देने का उल्लेख किया गया है।^४ इसके अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य में कहीं भी इसका संकेत नहीं है। इस दृष्टिकोण से तुलसी की यह योजना निताम्न मौखिक है। इसमें छोटा की 'भवि-मुद्रिका' का उल्लेख करके तुलसी ने अधिक आरतीयता की आलोचना की है।

(२६) अन्य विशेषतायें—संस्कृत के नाटकों में इस प्रसंग की कुछ अन्य विशेषतायें भी मिलती हैं। 'बाण-रामायण' का गृह उदमण का मित्र और पूर्व परिचित है।^५ 'महावीर चरित' में वह उदमण को विराय के अभावात्तों की विस्तृत सूचना देता है।^६ 'अनर्थ राघव' का गृह पदवी की सहायता से राघव के निर्वासन का साथ सहाकार उनके आगमन के पूर्व ही आम जाता है। वहाँ कश्यप के साथ उसके आशान्त होने पर जब उदमण उठकी रक्षा करते हैं तब वह उनको हनुमान् द्वारा प्राप्त और सुवीर द्वारा प्रेषित सोता का उत्तरीय देता है^७ और सुवीर का मेघी-सन्देश देकर वह उनसे सुवीर और हनुमान् का परिचय भी बाद में करवाता है।^८

इस छोटे से प्रसंग में भी तुलसीनाथ ने उद्देश्य की अनुपूर्ति के निमित्त भक्ति विचक्षण को सम्मिश्रित कर दिया है। इस अक्षर पर गृह को मुनाई गई 'उदमण पीठा' का अर्थ महत्व है। साथ ही 'मानुषीकरण मूल' की चर्चा से वहाँ गृह की सरस-विरस भक्ति का भी बड़ा सरस विचक्षण किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इस प्रसंग को कोई महत्व नहीं प्राप्त हुआ है, जबकि तुलसी ने अपनी विशेष प्रतिभा के बल से इसमें भी अतिशय चमत्कार का समावेश कर दिया है।

१ अप्याय रामायण अयोध्या १११-१५

२ महानाटक ३१२५

४ अनर्थ राघव ३१२

५ महावीर चरित १०२८ के बाद

६ अनर्थ राघव ३११ के बाद

७ नागध ३१२-१३

१ मानस २१००

२ काम रामायण ६१७ के बाद

३ अनर्थ राघव ३१२३ के बाद

४ अनर्थ राघव ३१२० के बाद

(२७) राम-मुनि-मिलन—गृह के छाप गंगा पार करते ही प्रयाग में राम की सर्वप्रथम भेंट भरद्वाज मुनि से होती है जो उनके विविधत्व स्वागत करते हैं और उनसे भक्ति का बरदान भी माँग लेते हैं।^१ आगे चलकर राम की दूसरी भेंट एक सन्ध्यास और तेजपुत्र्य तापस से होती है, जिसके दृष्टवत् करने पर राम उसे हृदय से लगा लेते हैं। फिर वह तापस सक्रमण और सीता के भी चरणस्पर्श करता है।^२ इस 'तापस' की विद्या का वहाँ आगे कोई उल्लेख नहीं मिलता है। राम की तीसरी भेंट वास्मीकि मुनि से होती है। जब राम उनसे अपने निवास-योग्य स्थल पृच्छते हैं तब वे उनके ईश्वरत्व का उल्लेख करके उनसे १४ प्रकार के भक्तों के हृदयों में निवास करने की प्रार्थना करते हैं और अन्त में उनको 'त्रिकूट प्रवास' का सुझाव देते हैं।^३ इस प्रकार मानस के इस प्रसंग में भरद्वाज आदि केवल तीन मुनियों का ही वर्णन है जबकि संस्कृत साहित्य में इस प्रकार का वर्णन नहीं मिलता है। वहाँ 'रघुवंश' महाभारत 'वास-रामायण' 'बनर्षे रावण' 'प्रसन्न-रावण' 'महाधीर चरित', आदि अनेक ग्रंथों में तो यह प्रसंग विस्तृत नहीं है।

(२८) भरद्वाज-मिलन—रामायण-मंजरी,^४ रावणोद,^५ जानकी-हरण^६ चम्पू रामायण^७ आदि में केवल भरद्वाज मुनि का ही उल्लेख है और जहाँ के परामर्श से राम त्रिकूट पर प्रवास करते हैं।

(२९) सन्ध्यास-तापस-मिलन—यह प्रसंग संस्कृत के किसी भी ग्रंथ में नहीं मिलता है। जब वह तुलसी की अपनी विविध मोक्षना है किन्तु इसमें अपूर्णता के साथ-साथ एक अस्पष्टता भी है और यह अयोध्याकाण्ड की 'सुख-योगना' में एक कम ग्रंथ भी उपस्थित करता है।

(३०) वास्मीकि-मिलन—केवल 'उदार रावण' में वास्मीकि मुनि का उल्लेख है। वहाँ उनके संकेत से राम त्रिकूट भी जाते हैं किन्तु भक्ति-वर्धन का वहाँ सर्वथा अभाव है।^८ अध्यात्म रामायण में वास्मीकि-मिलन और तपसा-भक्ति का वर्णन इस प्रसंग में अवश्य है।^९ किन्तु वह अपना आसौध्य ग्रंथ नहीं है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के किसी भी ग्रंथ में यह प्रसंग नहीं है।

'मानस' में इन मुनियों के अतिरिक्त धार्य के अनेक आश्रमों में राम के द्वारा अन्य मुनियों से मिलने का भी उल्लेख किया गया है। इस वर्णन में तुलसी

१ मानस २।१०१-१०७

२ , २।१२१-११२

३ तापसीय ३।१२

४ चम्पू रामायण । अयोध्या । ३१ के बाद

५ प्रस्तुत ग्रंथ पृष्ठ ४३४

६ अध्यात्म रामायण । अयोध्या । १।३४-१३

७ मानस २।११०-१११

८ रा० मंजरी । अयोध्या । १०९

९ जानकी हरण १०।३१

१० उदार रावण १।७४-७६

राम की मुनिमूर्ति के निरूपण के साथ-साथ एक पवित्र वातावरण की सृष्टि भी करना चाहते हैं।

(३१) सुमन्त्र प्रत्यावर्त्तन—'भरद्वाज मिलन' से पूर्व गंगा-तट पर ही जब राम सुमन्त्र को बिना करने छूटते हैं तब वह उन्हें बधरथ के सम्बोध का 'पुर्बाय' सुनाकर उन सबसे अयोध्या भौट बलने का आग्रह करता है।^१ उस समय राम शिव दधीच, हरिश्चन्द्र, रश्मिदेव और बलि आदि का उवाहरण देकर उसके समक्ष अपने 'सद्य पासन' पर बस बैठे हैं और उसके प्रस्ताव को अस्वीकार करके अपने विद्या के लिए प्रतिसंधेय भी बैठे हैं।^२ सदमय इस अवसर पर जब कृष्ण कटु वचन भी कहते हैं तब राम उन्हें रोकते हैं और सुमन्त्र से अपयपूर्वक आग्रह करते हैं कि वे बधरथ से उधका अस्सेय कदापि न करें।^३ इसके पश्चात् सुमन्त्र उस सम्बोध का 'उत्तरार्थ' सुनाकर सीता से भौट बलने की प्रार्थना करता है। किन्तु वे पति-संयोग के सुखों का वर्णन करती हुई उनकी तुलना में वनवास के कष्टों को गण्य बतसा कर अयोध्या भौटने से स्पष्ट मना कर देती हैं।^४ फिर राम सुमन्त्र को 'बरबस' बिना करके गंगा पार बने जाते हैं।^५ इसके पश्चात् सुमन्त्र निराश होकर वहीं पर तब तक पड़ा रहता है जब तक गृह राम की चिमकूट पहुँचा कर वापस नहीं आ जाता है। वन्य में गृह सुमन्त्र को समझा बुझा कर अपने चार सेवकों के साथ अयोध्या भेज देता है।^६ वहाँ वह बड़ी ब्यथा और आरामगानि के साथ रात्रि के उपन अंश कर में अयोध्या में प्रवेश करके सीने बधरथ के प्रासाद में पहुँचता है और उनके पूरने पर वह अपनी 'वनयाथा' का अविस्तार वर्णन करता है।^७

मानस' के इस प्रसंग बधरथ-सम्बोध राम-सम्बोध तथा सदमय-कटु-वचन का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है, किन्तु संस्कृत के रपुर्बधा, महामारत जानकी हरण महावीर-चरित प्रसन्न-रायब अनर्थ-रायब आदि अनेक ग्रंथों में इस अवसर पर सुमन्त्र का नामोल्लेख तक नहीं है जबकि अन्य ग्रंथों में उसके विस्तार में बड़ी विभिन्नताएँ हैं।

(३२) बरारथ-सन्देश—यह तुलसी की मौलिक योजना है। संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ में इसका उल्लेख नहीं मिलता है। बस्तुतः बरारथ के चरित्र को पूर्ण उवाच एवं राम-अप विव्रित करने के लिए ही 'मानसकार' का यह विधाय प्रवास है।

(३३) राम-सन्देश—'मानस' में 'राम-सन्देश' के दो उवाहरण हैं। पहला

१ मानस २।८१-८२, १४-१५

२ मानस २।६६

३ " २।१००

४ " २।१४४-१५१

५ मानस २।११-१६

६ मानस २।६६-६८

७ " २।१४२-१४३

'राम-सुमन्त्र-संवाह'^१ में है और दूसरा 'सुमन्त्र-दशरथ-संवाह'^२ में। पहले से दूसरा अधिक विस्तृत है। उसमें भरत के लिए भी एक संश्लेष है। संस्कृत में 'उदार-राज्य' का अर्थ है इस विधा में 'मानस' के वर्णन से बहुत साम्य रहता है, किन्तु वह राम के द्वारा माता-पिता के प्राण-त्याग की कल्पना के कारण अर्मममजक भी हो गया है।^३ 'रामायण-मंजरी' के संक्षिप्त संश्लेष में राम दशरथ से यह प्रार्थना करते हैं कि वे भरत के प्रति अपने वात्सल्य को कभी कम नहीं करें।^४ 'मानस' में राम या दशरथ की ऐसी संकृषित मनोवृत्ति का संकेत भी नहीं है। 'अम्बू-रामायण' के सुमन्त्र राम की केवल दिनचर्या का ही वर्णन करते हैं वहाँ कोई संश्लेष नहीं है।^५ 'राजवीर'^६ और 'मट्टिकाव्य'^७ में राम-सुमन्त्र संवाह होने पर भी किसी 'संश्लेष' का संकेत नहीं है, जबकि 'प्रतिमा' के राम शोक से पया रुक जाने के कारण सुमन्त्र को कुछ भी संश्लेष नहीं वे पाते हैं।^८

(१४) अदम्य-कटु वचन—इस प्रसंग का उल्लेख केवल 'रामायण-मंजरी' में है। वहाँ लक्ष्मण सुमन्त्र से कहते हैं कि विश्वामिनि के समान गुण वाले पुत्र (राम) का त्याग करके राजा (दशरथ) ने अपने व्यसन का परिषय दिया है और अपने परिवार के सुख को समाप्त कर दिया है।^९ तुलसी ने इस प्रकार के विवरण को अशुभिकर एवं अज्वाजक समझ कर 'मानस' में कोई स्थान नहीं दिया है।

(१५) अन्य बिरोपहार्ये—'मानस' के समान ही संस्कृत के समय सभी प्रसंगों में सुमन्त्र के गंगा-तट से ही विदा हो जाने का वर्णन मिलता है। केवल बाल रामायण में वह राम के साथ 'गंगा के तट' तक जाता है मर वहीं वह अपने विवरण में 'अव्यक्त-नासन' तक की घटनाओं का उल्लेख करता है।^{१०} 'अम्बू-रामायण' का सुमन्त्र गंगा-तट पर कई दिन तक इसी भाषा में पढ़ रहते हैं कि संभवतः राम वन के कष्टों से घबड़ा कर घीघ्र हो सोट जायें और उनसे अयोध्या वापस से आने का आग्रह करें किन्तु अन्त में उसे निराश होना पड़ता है।^{११}

तुलसी ने इस प्रसंग के वर्णन में बड़े संतुलन और सुम्यवस्था से काम लिया है। 'राम-संश्लेष' के पूर्व पद्य में 'दशरथ-संश्लेष' को रखकर उन्होंने उसे एक पुष्ट आधार दिया है अथवा वह राम की अहम्यता का प्रतीक हो जाता। इसी तरह

१ मानस २।१२-१६

२ मानस २।१२१-१२२

३ उदार राज्य ६।२५ २६ ७।३७-४०

४ रा० मंजरी। अयोध्या। ९२३

५ अम्बू रामायण २।२२ के बाद-२६

६ राजवीर २।१४

७ मट्टिकाव्य ३।१२-२०

८ प्रतिमा २।१७

९ विश्वामिनिपुत्रं पुत्रं त्यजता वरं भ्रूयात्।

कुल स्वयमसनेनैव यद्यो नीतं वरिष्ठताम् ॥ रा० मंजरी। अयोध्या। १२२

१० बाल रामायण ६।३८ ३९

११ अम्बू रामायण २।२२ के बाद

कल्पक के 'कट्ट बचनों' का विवरण न देकर उन्होंने इस प्रसंग की यथार्थता को बयुध्य रहने दिया है।

(१६) दशरथ-भरथ-सुमन्त्र से 'राम-बन-व्रत' का समस्त विवरण सुन कर बुढ़ी और निरपेक्ष बरथरथ बरथरथ बिलाप करते हैं। वे कीसस्मा को 'मन्त्र-शापस पाप' की यह कथा सुनाते हैं, जिसका परिणाम, उनके विचार से, यही 'पुत्र बियोग' हो सकता है। फिर वे राम राम रटते हुये मर जाते हैं।^१ इसके पश्चात् बसिष्ठ विक्रम और सप्तपथ परिवार को किसी तरह शांत करते हुये बरथरथ के शव को मरुत के आश्रम तक एक 'तेज-आश' में सुरक्षित रखवा देते हैं।^२ इस प्रसंग में 'मन्त्र-शापस-पाप' 'राम-नाम-स्मरण' और 'तेज-आश' आदि का विशेष बर्णन है। संस्कृत के ग्रंथों में इस बर्णन में अधिक समानता है।

(१७) अन्ध-शापस-शाप-रघुबंध^३, रामबीर^४, बन्धु-रामायण^५, रामयण-मञ्जरी^६ आदि अनेक ग्रंथों में इस प्रसंग का विस्तृत उल्लेख है। 'उदार राम' में 'दशरथ-सुमन्त्र-वर्णन' के अन्तर्गत यद्यपि इस शाप का भी विवरण दे दिया गया है^७, तो भी बरथरथ के द्वारा मरते समय बरथरथ के स्मरण का बड़ा कोई उल्लेख नहीं है।^८

(१८) राम-नाम-स्मरण—यह तुमसी की मौलिक मूल है संस्कृत के किसी भी ग्रंथ में ऐसी योजना नहीं है। राम-राम रट कर मर जाने में एक तो बरथरथ के वात्सल्य की पराकाष्ठा है, जिससे प्रभावित होकर तुमसी ने 'उदाररथ' में ही अपनी बन्धना की है।^९ दूसरे ऐसी मृत्यु में परिवार के सभी लोग अल्पिम अथ तक पूर्ण उल्लेख करते हैं। रामायण-मञ्जरी^{१०} 'उदार-राम'^{११} और बलि-पुराण^{१२} के अनुसार बरथरथ की मृत्यु उनकी अनेकता के महाशयन में ही हो जाती है और सब लोग बड़ी बेर तक अन्न में ही पड़े रहते हैं। 'महाभारत'^{१३}, 'पद्म-पुराण'^{१४}, 'महावीर बलि'^{१५} आदि में 'राम-बन-व्रत' के समय ही 'दशरथ-भरथ' का बर्णन किया गया है। इसके बरथरथ के वात्सल्य का परिचय तो मिलता है, किन्तु उनकी उस अंतर्दली

- | | | | |
|----|-----------------------------------|----|---------------------------|
| १ | भागवत २।१११-११५ | २ | भागवत २।११६-११७ |
| ३ | रघुबंध १२।१० | ४ | रामबीर ६।३० |
| ५ | बन्धु रामायण २।१७ | | |
| ६ | रामायण मञ्जरी । अयोध्या । १३६-१७५ | | |
| ७ | उदार राम १।१०० | ८ | उदार राम ७।४४ |
| ९ | भागवत १।१६ | | |
| १० | पद्म-पुराण । अयोध्या । १८०-१८१ | | |
| ११ | उदार राम ७।४४-४७ | १२ | बलिपुराण ६।१७-४४ |
| १३ | महाभारत । वन । २७७।३० | १४ | पद्म । उत्तर । २।४२ । १८० |
| १५ | महावीर बलि ७।११ के बाद | | |

बाधा के बर्तन नहीं होते हैं जिसके आचार पर वे सुमनस के प्रत्यायमन तक बीते रहे। बास-रामायण, अनर्घ-राघव प्रथम राघव भाषि में बहरण की मूर्य का संकेत तो है, किन्तु उसका कोई विवरण नहीं है। 'मदित्काम्य' में मूर्य के पूर्व बहरण की विरक्ति और उपचार आदि का विस्तृत बर्णन किया गया है किन्तु राम-नाम के स्मरण का वहाँ संकेत नहीं है।^१ 'प्रतिमा' के अनुसार बहरण को मरते समय विभीषण मूर् और अन्न आदि पूर्वजों के बर्तन होते हैं और वे उनके समीप जाने का संकेत करते हुए मर जाते हैं।^२

(३९) सेख-नाव-इसका बर्णन रामायण-मञ्जरी^३ उदार-राघव^४ मदित्काम्य^५ अग्नि-पुराण^६ आदि संस्कृत के ग्रन्थों में 'मानस' के बर्णन के समान ही प्राप्त होता है। वहाँ कोई विशेषता नहीं है।

इस कथन प्रसंग में तुलसी ने राम मत्त का समावेश बड़ी सतर्कता के साथ कर दिया है। प्रसंग के अर्थ विस्तार मूल कथा के प्रमुख अंग हैं इसलिए वे सर्वत्र समान रूप में प्राप्त होते हैं। तुलसी ने उसमें भी नवीनता और मौलिकता आने के लिये ही बहरण के वास्तव्य का अल्पगत मर्मस्पर्शी निरूपण किया है।

(४०) मरुत का अयोध्या-आगमन—'बहरण-मरण' के पश्चात् भरत को उनके मातुल्यवृह से बुलाने के लिये हमर मुख बहिष्कृत दुर्गों को भेजते हैं उपर भरत को भी रात में अनेक दुस्वप्न दिखलाई देते हैं। प्रातःकाल होते ही वे द्रुत गद्दी पहुँच जाते हैं और भरत उनके साथ तुरन्त अयोध्या के लिये चल देते हैं।^७ इनकी आठे देस कर केकयी उनके स्वागतार्थ आरती उवा कर चौड़ती है किन्तु उन्हें उवाच देख कर बहु दुःखिम दुःख के साथ उन्हें बहरण-मरण और राम-जन-जनन का समाचार देती है।^८ उस समय भरत स्वयं को सब जन्यों का मूस समझकर बड़ी आरमम्भानि ब्यक्त करते हैं और वे केकयी को 'पापिनी', 'कुसनायिनी' और 'कुमति आदि कहते हुये बड़ी बुमा के साथ उसे फटकारते भी हैं।^९ इसके बाद राम-निर्वासन में अपनी अक्षिप्ता और निर्दोषता सिद्ध करने के लिये जब वे कोसल्या के पास जाकर अपनी स्थिति स्पष्ट ब्यक्त करते हैं तब वे उन्हें सात्वता देती हैं और बिबाटा को ही उस अनर्घ के लिये बोपी ठहराती हैं।^{१०} फिर भी भरत अनेक पाठकों और उपपाठकों का सविस्तार बर्णन करके, उन्हें भोगने में अपनी सतर्कता दिखलाने हैं यदि राम के निर्वासन में उनकी योड़ी सी भी सहमति रही हो।^{११} इस प्रकार इस प्रसंग में

१	मदित्काम्य ३।२०-२२	२	प्रतिमा २।२१
३	रा० मञ्जरी। अयोध्या ।९८७	४	उदार राघव ७।४८
५	मदित्काम्य ३।२३	६	अग्नि पुराण ६।४२
७	मानस २।१२७	८	मानस २।१२९-१९०
९	' २।१९१-१९२	१०	' २।१९४-९५
११	" २।१९७-१९८		

'मरुत के दुस्वप्न', 'मरुत के शोम' और 'कौसुमा के वात्सल्य' आदि का सुन्दर विषय किया गया है। संस्कृत के ग्रन्थों में इसमें बड़ा अन्तर मिलता है।

(४१) **भरत के दुस्वप्न**—'मानस' में भरत के दुस्वप्नों का विवरण नहीं दिया गया है, जबकि 'रामायण-मञ्जरी' के भरत समुद्र को निर्वासन, बग्गुमा को आकाश से पतित और जयोष्मा नगर की अन्धकार से व्याप्त देखते हैं। वे बरख को पर्वत-चिखर से मिरते हुये, अंजलि से तेस पीते हुये, स्वेत वस्त्र पहने हुये, काबी पीसी स्त्रियों से घिरे हुये सर रज पर बैठे हुए मास मासा और सेप पारण किए हुए तथा बशिष्य पिशा की ओर जाते हुये भी देखते हैं।^१ 'मट्टिकाव्य' के भरत-स्वप्न में तो सूर्य के आकाश से मिर कर पृथ्वी पर जसने का उल्लेख किया गया है।^२

(४२) भरत का शोम—संस्कृत के सभी ग्रन्थों में इसका वर्णन बड़े विस्तार प्राप्त किया गया है। 'रामायण-मञ्जरी' के भरत केकयी से छाप बलात मुक्त कर अपने को 'बाष्पासी-युग' का मानते हैं और उसे बहुत भिन्नकारते हुये कहते हैं कि बहने अपने स्नेहपाचार से उनके बंध और धस को कसंकित करके उन्हें महा-मर्त्य में डाल दिया है। वे उसे 'माताओं में अपवाद' और 'निर्संजवा' तक कहते हुए फूट फूट कर रोने लगते हैं।^३ 'बम्पू-रामायण' में वे उसे 'जमाठा और अकीर्तिकारिणी' कह कर उधते मूंह फेर लेते हैं और रामुष्ण से बात करते हुये केकयी के लिए आघय को या जाने वाली आम पिता की प्राणबायु पी जाने वाली नागिन, और नीच बुद्धि वाली राससी आदि विशेषणों का प्रयोग करते हैं।^४ 'मट्टिकाव्य' में भरत द्वारा केकयी को बरुमुकुटि और रौद्रबुष्टि से डैलने तथा कोधने का उल्लेख मिलता है। वहाँ वे दुष्प से पृथ्वी पर मोट-मोट कर वहीं सैकड़ों रुपये भी खाते हैं कि राम निर्वासन के उध कहतय में उनकी कोई सहमति नहीं है।^५ 'रायशोम' और 'उदार रायक'^६ के भरत अपने 'अपुष्प' और अमाय को छोड़ कर रोने लगते हैं। 'प्रतिमा' नाटक में वे केकयी को आपिनी और बरगुहया आदि कह कर बहुत भिन्नकारते हैं। तथा पिता से मोह करने के कारण उसे वे माता भी नहीं मानते हैं।^७ 'महामारुत' में भी भरत के हाथ केकयी को नृसंवा, पतिपातिनी, कुसोत्साविनी वनमुष्णा अयलकरी और कुनपासंता' आदि कई जाने का वर्णन मिलता है।^८ 'दुनुमभाटक' में एक ही श्लोक में प्रस्तोत्तर के रूप में 'भरत-केकयी संवाद' है जिसमें भरत में भरत अपने

- | | |
|------------------------------|----------------------|
| १ रा० मञ्जरी । अरण्य । ३-६ | २ मट्टिकाव्य ३।२४ |
| ३ रा० मञ्जरी । अरण्य । १२-२३ | |
| ४ बम्पू रामायण २।१९-७० | ५ मट्टिकाव्य ३।३०-३२ |
| ६ रायशोम १।१७ | ७ उदार रायक ७।२३ |
| ८ प्रतिमा ३।१६-२२ | |
| ९ महामारुत । वन । २७७।३१-३४ | |

ब्रह्माय को कोस कर रह जाते हैं।^१ 'प्रसन्नराज्य' में वही वहीक 'सरयू-संवा-संवा' में प्रयुक्त हुआ है।^२ महावीर चरित^३ में वहाँ भरत के सामने ही केकयी के हाथ 'बरयाचना' का बर्चन किया गया है, वहाँ वे दुःख होकर अपने मामा युधायित् को (जो वहाँ उपस्थित हैं) उनके बंध-व्यवहार के लिये फटकारने लगते हैं। वहाँ वे राम के साथ जन-गमन के लिए तत्पर भी हो जाते हैं, किन्तु राम उन्हें वृद्धे बरवान की पृति के लिये नहीं छोड़ जाते हैं।^४

(४३) कौसल्या का वात्सल्य—संस्कृत के अनेक ग्रंथों में इस व्यवहार पर भरत और कौसल्या के संवाद का संक्षिप्त बर्चन तो मिलता है, किन्तु वह 'मानस' के समान वात्सल्य से अति प्रोत नहीं है। 'रामायण-मञ्जरी'^५ की कौसल्या भरत से कहती है कि केकयी भय है क्योंकि उसकी इच्छा पूरी हो गई है। वहाँ वे भरत को राज्य भोगने की आज्ञा देकर स्वयं सुमित्रा सहित वन जाने की इच्छा व्यक्त करती हैं। वहाँ जब भरत उनके समक्ष अनेक 'पापों' की शपथ छाकर 'राम-निर्वासन' में अपनी अकिण्ठता बतलाते हैं तब वे कुछ लज्जित होकर उन्हें क्षामु एवं निर्दोष कहती हैं।^६ 'प्रतिमा'^७ नाटक की कौसल्या अमिवादन के समय भरत को 'निस्संताप' होने का आशीर्वाद देती है जिसमें छिपे हुए आश्रय का भरत अनुभव भी करते हैं।^८ 'वन्द्य रामायण' में कौसल्या का वात्सल्य तो दूर, छसटे भरत ही उनको संकड़ों शपथें खिला कर सती होने से रोकते हैं।^९

इस प्रसंग में तुमसी ने भरत के उदात्त क्रोध खीम और आत्ममानि का बड़ा मनोयोग से बर्चन किया है। इसके फलस्वरूप भरत के गौरव की प्रतिष्ठा के साथ-साथ उन्होंने उनके परिवार में सभी प्रकार की संकाशों और आशंकाओं को निर्मूल करके एक पवित्र सम्भावना-शील वातावरण के निर्माण का भी सफल प्रयत्न किया है जो संस्कृत साहित्य में प्राप्त नहीं होता है।

(४४) विप्रकूट में राम भरत मिलन—दशरथ की अल्पेष्टि के पश्चात् जब बुढ़ बसिष्ठ भरत से 'राज्य-ग्रहण' का अनुरोध करते हैं और कौसल्या भी उसका समर्थन करती हैं तब भरत उसका विरोध करते हुए अपने अपराध-क्षमापन के लिए राम के समीप पीडन जाने का निश्चय व्यक्त करते हैं।^{१०} वृद्धे दिन अपने विद्वत्स शैबकों को ब्रह्म्या की रसा का भार सीप कर वे वहाँ से प्रस्थान करते हैं उनके साथ तिलक सामग्री लिए हुए सचिबयन बसिष्ठ बरुमती विप्रदाग नागरिक-बुद्ध और कौसल्या आदि मातायें भी चलती हैं।^{११} गृह्यवेदपुर पहुँचने पर

१ हनुमन्नाटक ३।८

३ महावीर चरित ४।२१ के बाद

२ प्रतिमा ३।१२ के बाद-१८

७ मानस २।१७०-१८३

२ प्रसन्न राज्य ३।१८

४ रा० मञ्जरी। अरण्य ३२-६४

६ वन्द्य रामायण २।७१ के बाद

८ मानस ३।३८६-१८७

भरत के स्वभाव पर संदेह करके मुहू जनका विरोध करने के लिए छिपे छिपे बड़ी रमणिया करता है, किन्तु सहसा भाई और 'छींक' हो जाने से यह रुक जाता है और भरत के शीत को जानने के लिए बनेक उपहार लेकर उनसे मिलता है।^१ जब भरत उसे 'राम-सखा' जान कर हृदय से सना लेते हैं तब यह बड़ी प्रसन्नता से उन्हें समस्त 'राम-वृत्तान्त' बतला देता है। इसके पश्चात् यंगा पार करके जब भरत बरखाव भूमि से मिलते हैं, तब वे देव-पर्यन्त का संकेत करके, केन्द्री को निर्दोष बतलाते हुए भरत को आत्मगतानि से रोकते हैं।^२ फिर वे भरत का विधि बत् सरकार करने के लिये 'शुद्धि-सिद्धियों' की सहायता से बनेक विषय भोगों को बूटा बैठे हैं किन्तु भरत जनका स्वर्ण तक नहीं करते हैं।^३ भरत के वहाँ से जागे प्रस्थान करने पर मुरकार्य में बाधा की आशंका से इन्द्र उन्हें रोकने के लिए जब बुद्धस्वति से प्रार्थना करते हैं तब वे उन्हें राम और भरत का शीक समझा कर वापस करते हैं।^४

कोत किरातों से भरत के उत्तम पित्रकूट-आगमन का समाचार पाकर राम को बड़े संकोच का अनुभव करते हैं^५ किन्तु सतमन क्रुद्ध हो जाते हैं और वे राम से भरत के कृतिमत्त्व तथा राजमद का विस्तृत उन्मेष करके उनकी युद्ध में समाप्त कर देने के लिए उनसे (राम से) आज्ञा माँगते हैं।^६ उन्ही समय एक आकाशवाणी होती है जिसमें सतमन की शक्ति का विघ्न बर्जित करते हुए उनसे विवेक-पूर्वक कार्य करने की प्रार्थना की जाती है। फिर राम भी सतमन से भरत के पुत्रहीनता का विस्तृत निरूपण करते हुए उनकी (भरत को) राजपर स संबंधा असंपृक्त बतलाते हैं।^७ उसी समय कैवल्य सन्मुख तथा गृह को साय लेकर भरत राम के आश्रम में पहुँच जाते हैं और उनके सामने 'पाद्मि पाद्मि' कहते हुए जब वे पृथ्वी पर 'सकुटबत्' गिर पड़ते हैं, तब राम बड़ी अधीरता से बोझकर उन्हें उठा लेते हैं और अपने हृदय से लबा लेते हैं।^८ भरत से मिलने के बाद मुहू के बधन से सारे परिवार की आशा हुआ जानकर राम और सतमन वहाँ आकर सबसे पहले मुहू बधित से मिलते हैं, फिर राम उन्ही पुरजनों से एक पल में ही मिलकर के माताओं में सर्वप्रथम केन्द्री की आशवात करते हैं।^९ इसके पश्चात् बधित से दत्तारय के मरण का समाचार सुनकर राम निर्जस बत पोरण करके उनकी वैदिक विवाह करते हैं।^{१०} वहाँ सीता अपनी माया से बनेक वैद्य बना कर प्रत्येक शास की जलप-मसग देवा करती है।

- १ " २१०६-१०७
- २ भाग २१२१-२१२
- ३ " २१२२०
- ४ " २१२३१-२३३
- ५ " २१२४१-२४४

- ६ " २१२०६
- ७ भाग २१२१०-२२०
- ८ भाग २१२२०-२३०
- ९ " २१२४०
- १० " २१२४०-२४४

केवल राम ही उनकी इस माया को समझ पाते हैं ।^१ इन्हीं केकयी, राम भादि की शरणागत ब्रह्मण्डल आरम्भानि से पञ्चदशी हुई अपनी मृत्यु तक की कामना करने सबकी है और उन्हीं राम को अयोध्या लौटाने से बचने की चिन्ता में भरत की मृत्यु, प्यास और नींद भी समाप्त हो जाती है ।^२ इस अवसर पर बसिष्ठ ऋषि को परामर्श देते हैं कि वे और शत्रुघ्न दोनों ही राम भादि के स्वाम पर बने बने जायें जिसे वे सहर्ष मान लेंगे हैं ।^३ फिर राम के पास जाकर बहुत बड़ी मुमिका के परचात भरत उनसे अयोध्या लौटने की प्रार्थना करते हुए उनके सामने तीन विकल्प^४ रखते हैं कि या तो वे (भरत) और शत्रुघ्न दोनों बने बने जायें और वे तीनों (राम भादि) अयोध्या लौट जायें, या उनके (भरत के) साथ शत्रुघ्न और सत्सम भी बने बने जायें तथा वे (राम) और सीता लौट जायें या सत्सम के स्वाम पर बने जाने से वे (भरत) उनके सहयात्री हो जायें । इन विकल्पों से राम को बड़ा संकोच होता है । उसी समय जनक के आग्रह की सुचना से यह प्रथम सभा स्थगित हो जाती है ।^५

जनक के आ जाने पर उनकी रानी कीसल्या के समस्त मातृवस्व की भविष्यवाणी का संस्मरण करते राम के बने-गमने सुरकार्य-साधन और अयोध्या शासन भादि की अनिवार्यता बतलाती है ।^६ इसके परचात जनक, बसिष्ठ और भरत के प्रयत्न से फिर सभा पुनः होती है जिसमें बसिष्ठ भरत की प्रार्थना मान लेने के लिए जब राम से अनुरोध करते हैं तब वे शपथपूर्वक बत देते हुए उन्हीं पर और जनक पर अन्तिम निर्णय छोड़ देते हैं, जिसके फलस्वरूप वे दोनों शत्रुघ्नकर एकत्र ही बने हो जाते हैं ।^७ उस समय भरत अपने मोह और मज्जन का विस्तृत उल्लेख करते इन्हीं राम से आभाषाचता करते हैं < और उन्हीं द्वारा अपनी देवमाया से भरत, जनक बसिष्ठ और सुमन्त्र भादि बड़े मोहों को छोड़कर शेष व्यक्तियों के मन का उच्छादन कर देते हैं । फिर राम भरत को धर्म और राजनीति का उपदेश देकर 'रघुकुल' के मूल धर्म शरयपालन पर बत देते हैं और उन्हें अयोध्या जाकर राज्य करने का परामर्श देते हैं ।^८ राम की प्रार्थना पर अन्ति के संकित से यह 'अभियेक-जल' एक कृष्ण में ठाम दिया जाता है जिसका नाम बाद में भरत-कृष्ण ही पड़ जाता है ।^९ इसके बाद भरत बड़ा ३ दिन और २ रात कर जब अयोध्या लौटने के लिए राम से आज्ञा माँगते हैं तब उन्हें अपनी पादुकार्यें दे देते हैं जिन्हें लेकर वे सब (भरतदि) अयोध्या लौट जाते हैं ।^{१०}

१ मानस २।२३२	२ मानस २।२३२
३ " २।२५६	४ " २।२६५
५ मानस २।२७०-२७२	६ मानस २।२७३
७ " २।२९६	८ " २।२९७-३०१
९ " २।३०२-३०६	१० " २।३०७-३१०
११ " २।३१२-३१६	

'मानस' के इस प्रसंग में गृह की रणसज्जा, भरत-भरतद्वारा मिलन, इन्द्र-बृहस्पति-संवाद, महामय-श्लेष-वसिष्ठादि स्वायत्त, शीता-माया, प्रथम-त्रिक्रुट-समा-बन्ध-आयमन, इन्द्र-शंका, याज्ञवल्क्य-मन्त्रिप्यवाची, द्वितीय-त्रिक्रुट-समा, इन्द्रमाया-भरतकृप-और-राम-नादुका-दान-आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इस वर्णन में अनेक विभिन्नताएँ मिलती हैं।

(४२) गृह की रण-सज्जा—'रामायण-मंजरी' में गृह की इस आराधना का उल्लेख है कि सेना के साथ जाने वाले भरत 'राज्यसोभी' काज पढ़ते हैं और सम्भवतः वे राम का वचन करने के लिये ही वन आ रहे हैं। फिर वह भेट लेकर उनसे मिलता है और उनका 'रामनिवर्तनसंकल्प' जान लेता है।^१ यहाँ पर भरत से मिलने के पूर्व या पश्चात् गृह की किसी भी प्रतिक्रिया का वर्णन नहीं है, जबकि 'मानस' का गृह-रामरक्षि के कारण अपने प्राचीन के रहते हुए भरत की संगीत-पार-न-जाने-लेने का कुछ संकल्प करता है। 'अध्यात्म-रामायण'^२ में भी यह वर्णन मिलता है, किन्तु वह अपना आलोच्य नहीं है। 'राजसोभी'^३ उदार-राज्य'^४ 'अभ्यु-रामायण'^५ आदि ग्रन्थों में गृह का अत्यन्त-साधारण उल्लेख है जबकि अल्प-उसकी-वर्षा का नहीं संकेत भी नहीं है।

(४६) भरत-भरतद्वारा मिलन—'मानस' में इस अवसर पर अमित-भरत के विराग का संकेत संस्कृत श्लोकों में नहीं मिलता है। 'रामायण-मंजरी' में भरतद्वारा महामय-बहुवचन ही भरत की पञ्चवर्ष-श्रीत और अष्टराज्य-आदि विषय-सोपानों की प्राप्ति होती है और यहाँ उनमें उनकी प्रसन्नता का वर्णन भी मिलता है।^६ 'अध्यात्म-रामायण' में भी भरतद्वारा के द्वारा कामधेनु की सहायता से भरत के लिये अनेक विषय-सोपानों के मुटाने का वर्णन किया गया है।^७ 'अभ्यु-रामायण' में भरतद्वारा के 'विषय-संस्कार' को देवदुर्लभ-वस्तु माना गया है।^८ 'महिटकाव्य' में भरतद्वारा अपने योगबल के द्वारा अल्पबुद्ध की सहायता से विषय-राज्य-पदाधीन और योग्य-सोपानों को प्रपट कर देते हैं। उनकी आज्ञा से बहो-विभोतमा-आदि-अष्टराज्य-गीत, वाय, नृत्य और विनास-आदि से सबकी समान (भरत की नी) सेवा भी करती है।^९

(४७) इन्द्र-बृहस्पति-संवाद—यह तुमसी की मौखिक योजना है, जिसका संकेत किसी संस्कृत श्लोक में प्राप्त नहीं होता है। इसका मुख्य-वर्णन पाठक को वह

१ रा० मंजरी । अरण्य १९६-१०१

२ अध्यात्म रामायण । अयोध्या । ८।१२-२१

३ राजसोभी १।४७

४ उदार राज्य ७।२७

५ अभ्यु रामायण २।७२ के बाद

६ रा० मंजरी । अरण्य १९०२-११२

७ अध्यात्म रामायण । अयोध्या ८।१२-२७

८ अभ्यु रामायण २।७६

९ महिटकाव्य १।४०-४२

बारम्बार स्मरण कराता है कि राम बड़ा ही बीर जनका जबतार प्रमुख रूप से 'सुरकार्य-शामन' के लिए ही हुआ है।

(४५) सखमख कोप—'रामायण मञ्जरी' का यह प्रसंग 'मानस' के प्रसंग से बहुत साम्य रखता है। वहाँ भी भरत को उस ग्य दैखकर मरमन उनके कपटा चार' की बीसी ही मार्शका करते हैं और जब वे उनसे मुक्त करने के लिए अपने भागों को भी संभाम लेते हैं तब राम भरत की सदाचारिता और आह्लाकारिता का उल्लेख करके उन्हें शांत करते हैं।^१ भट्टिकाव्य के उसमय उस घेना को देख कर जब संभाम के सिने उत्तर हो जाते हैं तब राम उन सबको खेठ बरुन बारन किए हुए, मरुन स्वामे हुए पैदस भाते हुए और रोते हुए देखकर उनके शोक की सही संभावना करते हैं।^२ वहाँ लक्ष्मण का कोप भरत से सम्बन्ध नहीं है वह केवल बजाव मार्शका से है। अन्य प्रसंगों में इस कोप' का कोई संकेत नहीं है। 'मानस' में इस प्रसंग में बनिठ देवताओं की आकाशनामी का उल्लेख भी किसी संस्कृत ग्रंथ में नहीं मिलता है। यह तुलसी की मौलिक कल्पना है। उसका उद्देश्य अप्रत्यक्ष रूप से भरत के पीरव की स्थापना करना है। बाप ही उससे वहाँ 'रामोपदेश' के लिए एक नुमिका भी प्रस्तुत हो जाती है। 'रामायण-मञ्जरी' के 'रामोपदेश' में राम भरत को बलिष्ठानु, विद्वबाधय बीर सव्वुठ त्यागी और आह्लाकारी कहकर उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं और उन्हें केवल बर्सेनार्थ जामा हुआ बरुना कर लक्ष्मण को उनके लिए कटुवचनों के प्रयोग से रोकते भी हैं।^३

इस प्रकार तुलसी ने इस प्रसंग में अनेक मौलिक उद्भावनाओं की आविष्कार की है और प्रायः परम्परा में भी पर्याप्त उदात्तीकरण का समावेश किया है जो संस्कृत के ग्रन्थों में सर्वथा दुर्लभ है।

(४६) बसिष्ठारि का स्वागत—'रामायण-मञ्जरी' के राम बसिष्ठ और माताओं को प्रणाम करते समय अपना नाम लेते हैं। इस अवसर पर वहाँ कौसल्या और नुमिका के बारवस्व का भी सलिल्ल बर्षन विप्रता है।^४ किन्तु कैकयी का नामोल्लेख तक नहीं है जबकि मानस के राम कैकयी से ही सर्वप्रथम भेंट करते हैं। 'बम्पू रामायण' में राम आदि को रोते हुए देखकर बसिष्ठ के द्वारा केवल उनके आबवस्त किए जाने का उल्लेख तो है।^५ किन्तु वहाँ बसिष्ठारि में स्वागत का कोई बर्षन नहीं है। 'राजकीय' में राम के द्वारा केवल बसिष्ठ को बलिष्ठारन करने और

१ रा० मञ्जरी। अरण्य। ११५-११८

२ शुभमोक्षरासंगमूठो विद्यस्वाम्याहै तर्नैपपठत समम्भुनम्।

बीहृष्ट ताम्बीठविदुडुदोम्बिबन्धिवृष्टारवि स्वबर्ष्यान् ॥ भट्टिकाव्य ३।४८

३ रा० मञ्जरी। अरण्य। १११-११८

४ रा० मञ्जरी। अरण्य। २२१-२२३

५ बम्पू रामायण ३।८०

उसके आशीय प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है,^१ वहाँ माताओं का संकेत नहीं है। 'यद्भारत'^२ और 'उदार-राज्य'^३ में वसिष्ठ और माताओं के चित्रकृत बाने का वर्णन तो है किन्तु उनके स्वागत की खर्चा नहीं है। 'मट्टिकाय्य'^४ और 'पद्म-पुराण' में भरत के किसी भी सहयात्री का न ही नामोत्कीर्ण है और न किसी के स्वागत का ही संकेत है।

तुलसी के 'मानस' के इस वर्णन में राम के 'दशप्रणाम' में लौकिक सिद्धा-चार का और 'पल भर में सबसे मिल होने में' उनके बौद्धिक व्यवहार का विशेष रूप से सम्बन्ध दिया है। केवली के राम की सर्वप्रथम भेंट का उल्लेख करके तुलसी ने उनकी महत्ता और उदारता का सुन्दर प्रतिपादन किया है। संस्कृत के साहित्य कारों की दृष्टि इस 'अपूर्व मिलन' का न तो महत्त्व बल्कि लकी और न उसकी महर्षि का ही स्पर्श कर सकी।

(१०) सीता-माया—यह तुलसी की भौतिक योजना है। इसका उद्देश्य सीता के मायात्मक और राम के मामापरित्यक्त का निर्वेद्य करना है। संस्कृत साहित्य में इस अवसर पर इसका कहीं उल्लेख नहीं है।

(११) प्रथम चित्रकृत-सभा—यह तुलसी की एक अन्य भौतिक योजना है। इसमें वर्णित भरत के विद्युत्सों का उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। सरमण के स्थान पर स्वयंसेवक राम के साथ रहने का उनका आग्रह तो रायबीर्य,^५ प्रतिभा^६ आदि ग्रंथों में प्राप्त होता है किन्तु उनके अन्य विकल्पों की खर्चा कहीं नहीं है। भरत सत्याग्रह का उल्लेख 'रामायण-मन्त्रालय' में है, वहाँ के राम के सामने कुलहल्या विद्याकर मीमांसा निराहार, निरासक्त और निराश्रय रहने को घोषणा करते हुये उनके स्थान पर स्वयं बनवास-व्रत-मासन का प्रस्ताव करते हैं।^७

'मानस' में इतने विकल्पों का एकमात्र यही उद्देश्य है कि राम के लिए कपोप्या सीट बनाने की प्रत्येक सम्भावना की योजना हो सके। इसके साथ-साथ तुलसी यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि राम के सुख के लिए सर्वस्व त्याग करने में, भरत आदि सीमां जाह्यों को किसी प्रकार की भी हिचकिचाहट नहीं है और वे उन्हें लिए एकदम समया समेकण सभी प्रकार से प्रस्तुत हैं।

१ रायबीर्य १।२३

२ महाभारत । वन । २७७।३१-३८

३ उदार राज्य ७।१७

४ मट्टिकाय्य ३।४१-४१

५ पद्म । उत्तर । २४२।१९०

नियुज्यमानो भरतस्तस्मिन्नाज्ये स मन्त्रिमि ।

मैत्र्युज्यमानो स खर्चाका तीमन्त्रमनुहरीयम् ॥

बनवासव्य कापुरूपमयावद्भारतं तव ॥

६ रायबीर्य १।१६

७ प्रतिभा ७।२४

८ रा० मन्त्रालय । अरण्य । ११०-११३

(२२) जनक-आगमन—यह तुलसी की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म-बुद्धि का ही परिणाम है कि उन्होंने इस अवसर पर जनक को चित्रकूट में उपस्थित कर दिया। संस्कृत के किसी भी ग्रंथ में जनक की ऐसी प्रतिक्रिया का कोई संकेत नहीं मिलता है। इसके साथ ही समा के मध्य में उनके आगमन की सूचना देने का उद्देश्य यह भी है कि भरत के विरक्तियों पर सुविधापूर्वक विचार करने के लिये सबको पर्याप्त समय भी प्राप्त हो जाय।

(२३) इन्द्र-रांफा—यह भी तुलसी की मौलिक योजना है। भरत की प्रार्थना पर राम के विचलित होने के स्वल्प अनुमान-मात्र से देवताओं में खलबली मच जाती है। इसीलिए देवराज इन्द्र अधिक व्यग्र होकर अपने मुख बृहस्पति से इस सम्बन्ध में बारम्बार परामर्श करते हैं और वे राम की बुद्धता का उल्लेख करके उन्हें सारबना वे देते हैं। यह यही उल्लेख इस विधिष्ट योजना का मुख्य उद्देश्य है।

(२४) याज्ञवल्क्य-मविष्यवाणी—यह भी तुलसी की एक श्रेष्ठ मौलिक योजना है। इसका मुख्य उद्देश्य राम-जन-यमन की अनिवार्यता बतसा कर कैकयी को कर्त्तक से बचाना है और इस प्रकार परिवार में पारस्परिक मनोमात्तियम को मिटाते हुये सहृदयता के भव्य वातावरण का निर्माण करता है।

(२५) द्वितीय चित्रकूट—समा—बस्तुतः जनक के आगमन से 'पूर्व समा' स्पष्ट हो गई थी। यह समा सही का उपसंहार है। संस्कृत-साहित्य में 'जनक-आगमन' का संकेत न होने के कारण एक ही समा का वर्णन मिलता है। 'रामायण मञ्जरी' की समा इस दिशा में मानस' से बहुत साम्य रखती है। उसमें भी भरत के आग्रह को न मानते हुये राम 'सरयुपासन' पर अधिक बस बैठे हैं। वही आवाजि मुनि का संवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है।^१ भौतिकता की तुहाई देकर वे राम से राज्य-ग्रहण की प्रार्थना करते हैं और जब राम उसका तर्कसम्मत उत्तर देते हैं तब बसिष्ठ यह स्वीकार कर लेते हैं कि आवाजि का यह प्रयत्न ठात्विक नहीं वा किम्बु बाल्यस्य के बनीभूत वा। वही भरत के सरयाग्रह करने पर राम उन्हें धर्म और नीति का उपदेश देकर रघुकुल के परम्परागत षट् 'सरयुपासन' का महत्त्व समझाते हैं और उनसे अपेक्षा पाकर राज्य-ग्रहण करने का अनुरोध करते हैं जिसे वे भी प्र ही मान भी लेते हैं।^२ रामवीर्य^३ उदार-राज्य^४ मर्दितकाम्य^५ जम्बू-रामायण^६ आदि ग्रंथों में समा का यह रूप नहीं है। वही अधिकतर राम-भरत-संवाद ही है।

१ राम. मञ्जरी। अरण्य। २२९-२७१

२ राम. मञ्जरी। अरण्य। २९०-३०६

३ रामवीर्य ६। १३-७१

४ उदार राजव ७। १७-६०

५ मर्दितकाम्य ३। ११-२६

६ जम्बू रामायण २। ५०-८३

(१६) इन्द्र माया—उपयुक्त 'इन्द्रांका' प्रसंग का उपसंहार इसमें बर्णित किया गया है। मार्गशर्क के चित्रकूट से उल्काघटन के लिए इस माया का प्रयोग वस्तुतः प्रशंसनीय है। इन्द्र यह चाहते भी थे कि सब लोग घीम्र ही बयाध्या लीट जाय और राम वन की ओर प्रस्थान करके 'सुरकार्य' करें। इसी विधेय उद्देश्य के लिये वही इन्द्र की माया का प्रयोग किया गया है।

(१७) भरतसूय—मह भी तुससी की एक मशौन योजना है। वह युयुजस' इसी उद्देश्य से चित्रकूट से आया गया था कि वही पर राम का अभिषेक उसके सम्भव हो जायया किंतु राम के संबंधा वस्तीकार करने पर उस व्यर्थ जस का भी सबुजयोग करके तुससी में भरत-यस' का एक अद्वितीय स्मारक प्रस्तुत कर दिया है। श्रविया नाटक में भरत के द्वारा इसी वज से राम की पादुकाओं का अभिषेक करने का उस्तेख मिमता है^१ किन्तु इसल भरत की कीर्ति को स्थायी करने की कोई योजना नहीं पन पायी है।

(१८) पादुका-दान—संस्तुत के लपमप सत्री प्रसों में इन पादुकाओं का विधेय और किस्तुत बयन मिमता है। 'रामायण-मञ्जरी'^२ में भरत बसिष्ठ की प्रेरणा से 'महावीर चरित'^३ में पुषाकित की प्रेरणा से और 'राजबीय'^४, 'रघुवंश'^५ 'उदार रायव'^६ प्रतिमा^७, 'अनर्ष-रायव'^८ आदि में स्वयं अपनी धारया की प्रेरणा से ही राम से उनकी पादुकाओं को माँग लेते हैं किन्तु 'अट्टिकाय्य'^९ और 'बाज रामायण'^{१०} के राम 'मानस' के राम के समान अपनी इच्छा से उन्हें पदुकायें दे बैठे हैं। इन सभी प्रसों में 'मानस' के समान ही राम-पादुकाओं के मिहासन पर स्थापित किए जाने और उनके प्ररणा प्राप्त करते हुए भरत के द्वारा बयोध्या की राग्य-व्यवस्था करने का उस्तेख मिमता है।

(१९) भरत का नन्दि ग्राम-प्रवास—बयोध्या आकर 'मानस' के भरत राम की पादुकाओं को राजर्षिहासन पर प्रतिष्ठा करते हैं। जनक वही कुछ दिन रह कर और राग्य का दासन सम्भ्राम कर फिर भिविसा लीट जाते हैं। इनके बाद भरत लक्ष्मों की राग्य-सेवा तथा गजुज को मादु-मुबा चीन कर स्वयं बसिष्ठ की आज्ञा से नन्दिग्राम जले जाते हैं। वही में जटाकूट एवं मुनिवसन पारण करके श्चि धर्म का पालन करने लगते हैं।^{११}

- | | | | |
|----|-------------------------|----|------------------------|
| १ | प्रतिमा ४१२६ के बाह | २ | रा० मञ्जरी। बरव्य। ३०१ |
| ३ | महावीर चरित १७१३ के बाह | ४ | राजबीय १५२ |
| ५ | रघुवंश १२।१३ | ६ | उदार रायव ७।६० |
| ७ | प्रतिमा ४१२३ | ८ | अनर्ष रायव २।२ के बाह |
| ९ | अट्टिकाय्य ३।२६ | १० | बाज रामायण १।३३ के बाह |
| ११ | माजव २।३२१-३२६ | | |

कर्म-धर-वीर्य' होकर सीता के पीन पयोधरों' में 'महसत' करने का वर्णन है, जिसमें उसके कुबिचार का स्पष्ट संकेत है।^१

(४) सीक बाण—संस्कृत के सभी ग्रंथों में इस अवसर पर राम के 'शी काश' का वर्णन किया गया है। तुलसी ने उसे 'मग्न प्रेरित ब्रह्मसर' बतला कर उसमें और अमस्कार प्रस्तुत कर दिया है।

(५) इन्द्र आदि की असमर्थता—मानस' का यह वर्णन 'पद्यपुराण' से बहुत प्रभावित है। वहाँ भी अमल तीनों लोकों में क्रुमता हुआ ब्रह्मा, इन्द्र एवं यम और बहण आदि सब देवताओं के समीप निराश होकर हैं और अन्त में ब्रह्मा उसे राम की सरथ में जाने की प्रेरणा देते हैं। वहाँ राम उसे पूर्व 'अमयदान' दे देते हैं।^२ 'रामायण-मञ्जरी' में भी अमल के तीनों लोकों में मटकने और कहीं भी धरन न जाने का उल्लेख मिलता है।^३

(६) अन्य विशेषतायें—बास रामायण^४ अथर्व राघव^५ तथा अम्य रामायण^६ आदि ग्रंथों में इस काक का नाम 'बादापर' बतलाया गया है। 'पृथ्वीराज बिजय' के अनुसार अमल के एकास होते ही घारी काक-जाति उसी समय से एकास हो गई है।^७ 'अम्य रामायण' में उसी समय से काक-जाति के चिरबीबी हो जाने का वर्णन मिलता है।^८ अथर्व राघव^९ रघुवीर चरित^{१०} में इस 'काक-प्रहार' को एक बड़ा असकृत बतला कर राम के ऊपर निकट भविष्य में ही किसी महान् विपत्ति की आशंका का उल्लेख किया गया है।

इस घटना के वर्णन में तुलसी का एकमात्र उद्देश्य राम के सर्वसामर्थ्य सम्पन्न ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करना है। राम के अम-प्रवास की यह प्रथम दुर्घटना है, जिसमें कोई व्यक्ति भले ही वह इन्द्रपुत्र हो उनकी बल परीक्षा के लिए उसके सम्मान पर आक्रमण करता है। उस छापनेपी अमल को अपनी शक्ति का पर्यं तो रहा ही होगा साथ ही उसे अपने पिता इन्द्र तथा अन्य बड़े देवताओं ब्रह्मा विष्णु आदि की भी पृष्ठ-शोषकता का अभिमान भी होगा। ऐसे आक्रामक की सर्वथा पराजय और इन्द्र आदि की भी असामर्थ्य का विस्तृत वर्णन करके तुलसी ने राम की सर्वोपरि सत्ता' का प्रमाण प्रस्तुत किया है और साथ ही भविष्य में भी अन्य आक्रमणकर्तियों की भारी दुर्घति का अनुमान भी स्पष्टित कर दिया है।

(७) अग्नि मिलान—चित्रकूट श्याम के पश्चात् राम की प्रथम भेंट अग्निमुनि

१	पद्म । उदार । २४२।११९	२	पद्म । उदार । २४२।११९ २११
३	रा० मंजरी । अरघ्य । १४७-१४८	४	बास रामायण ६।४२ के बाद
५	अथर्व राघव ५।२ के बाद	६	अम्य रामायण ५।३४ के बाद
७	पृथ्वीराज बिजय १।१६०	८	" ५।३५
९	अथर्व राघव ५।२ के बाद	१०	रघुवीर चरित १।४४

है होती है। राम उन्हें बख्खव् प्रणाम करते हैं और वे उनके ईश्वरत्व का जलोज करते हुए उनकी स्तुति करते हैं।^१ उनकी पत्नी बनसूया सीता को 'दिव्यनरनाभूपन डेठी है और बलिब्रताओं के लक्षण बतसायी हुई उन्हें मारी-बर्म का उपदेय भी रेठी है।^२

'रामायण-मञ्जरी' का वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत दिकता है, किन्तु वहाँ 'बलि-महत्त्व' का वर्णन अधिक किया गया है। वहाँ बनसूया के पुछने पर सीता अपनी 'रम्य-रुपा' में 'मेनका' को अपनी वास्तविक माता बतसाती है।^३ 'उदार राम' से अग्नि के द्वारा स्वायत और बनसूया के द्वारा सीता को प्रदत्त दिव्य ब्रह्मण का विस्तृत वर्णन है। वहाँ अग्नि पक्षों का भय बतला कर राम को जाने वन में जाने से रोकते भी है।^४ 'राजवीर' 'बभ्रुरामायण' 'पद्मपुराण' में भी ऐसा ही वर्णन है, किन्तु यह अति संक्षिप्त है। 'मद्विदकाम्य' में केवल अग्नि के स्वागत का संकेत है और रघुवंश में केवल बनसूया के बभ्रुराय देने का बयन है।^५ भार्गव-बृहामणि में बनसूया के द्वारा सीता को दिये गये एक बरदान का भी उल्लेख है कि राम को देखते ही वे (सीता) स्वल्प एवं पुष्पमंडित हो जायेंगी।^६ वहाँ यही बरदान सीता को उस समय आप के समान सिद्ध हो जाता है जब राजन-बध के पश्चात् राम के प्रथम दर्शन से वे पूर्ण स्वल्प एवं बर्जित हो जाती हैं क्योंकि वनका यह बकस्मात् स्वास्थ्य-परिवर्तन देखकर सभी लोग भ्रम में पड़ जाते हैं।^७

तुपसी ने वर्णनों के विस्तार से बचकर उसकी उपयोक्ता का ही अधिक ध्यान रखा है, इसीलिए प्रसंगानुक्रम वहाँ केवल मारी बर्म का उपदेय प्रस्तुत कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'अग्नि-स्तुति' की पुठभूमि में उनकी यह मूल मानना से काय कर रही है, जो राम की ईश्वरत्व प्रतिष्ठा से सम्बन्धित है।

(=) विराय-बध—'मानस' में यह वर्णन अति संक्षिप्त है। मार्ग में जाते हुए राम से विराय की घेंट हो जाती है और वे उसे पीछे गार डालते हैं फिर इसके अतिरिक्त रूप प्राप्त करने पर वे उसे बुझी देखकर 'निबधाय' भेज देते हैं।^८

संस्कृत के शर्षों में इस वर्णन में अधिक विस्तार है। 'रामायण मञ्जरी' का विराय सीता का हृतन करके राम और सद्यस को बहुत पमकाठा है और राम के बाध प्रहार करने पर वह जून से सद्यस पर आनमन भी करता है। जब राम

१ मानस ३१३-५

२ रा० मञ्जरी । अरण्य १३२६-३३४

३ राजवीर ७१३३-३८

४ बभ्रु । उत्तर । २४३१२ (३-२२०)

५ रघुवंश १२१२७

६ भार्गव बृहामणि ७१३ १८ के बाध

७ मानस ३१३

४ उदार राम ८१६-१७

५ बभ्रुरामायण २१८३

८ मद्विदकाम्य ५१६

९ भार्गव बृहामणि २१४

१० मानस ३१७

उसके शूद्र के शो टुकड़े करके उसे मार डालते हैं, तब वह मरते समय अपने परिचय में स्वयं को 'सप्तहृदा का पुत्र तुम्बुद मन्वर्ष बतसा कर अपने 'रम्भापोह' और कुनेर-शाय' का उल्लेख करता है। अन्त में वह राम से प्रार्थना करता है कि वे उसके शरीर को 'जबट' (गर्त) में फेंक दें और तपस्यात् शरभंग से विन शर्षे।^१ 'शूल' और 'जबट' की जर्षा को छोड़कर 'रामायन-मन्वरी' का शेष वर्जन 'राजबीय' के समान है।^२ 'रघुवंश' में केवल शीता के हरण और विराय के गर्त में फेंक दिए जाने का उल्लेख मिलता है।^३ 'जम्पु रामायण' में विराय पहले शीता का हरण करता है, फिर राम के बाध बनाने पर जब वह शीता को छोड़ कर राज-नवमय दोनों का अपहरण करता है, तब वे दोनों उसके हाथों को काट डालते हैं। शेष वर्जन 'रामायण-मन्वरी' के समान है।^४ 'उदार-राजव' का विराय उन तीनों का एक साथ अपहरण करता है और राम के द्वारा पुछे जाने पर वह अपनी मृत्यु का उपाय भी उन्हें बतसा देता है। वहाँ उसके गन्वर्ष-जन्म का विवरण नहीं है।^५ 'मदितकाम्य' में भी वह तीनों का अपहरण करता है। वहाँ उसकी रचना विविध है जिसमें उसके पैर ऊपर हैं और मस्तक नीचे है। राम वहाँ उसके हाथ तोड़ कर उसे पृथ्वी में बसा देते हैं।^६

कथा की परम्परा के कारण ही तुलसी ने विराय का उल्लेख 'मानस' में कर दिया है किन्तु उसके विराय को सज्जाजनक एवं अस्विकर समझकर उन्होंने उसे वहाँ खान नहीं दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने राम के द्वारा उसे निजघाम बिलना कर उनके ईश्वरत्व का विमिष्ट संकेत भी कर दिया है।

(२) शरभङ्ग-सिद्धन—'विराय-जब' के बाद 'मानस' के राम की घेंट 'शरभंग मुनि' से होती है जो उनसे त्रिक का वरदान प्राप्त करके अपने शरीर को गोपाभि से भर कर देते हैं और अकृष्ट जैसे खाते हैं।^७ वहीं पर जाने बस कर राम एक 'अस्विसमूह' देसकर और उसे रासाओं का अत्याचार जान कर समस्त रासाओं के बच की प्रतिज्ञा भी करते हैं।^८

संस्कृत के रामायण-मन्वरी^१ उदार-राजव^२, जम्पु रामायण^३, राजबीय^४

१ रामायण मन्वरी। अरण्य। ३६०-३८३

२ राजबीय ७।३८-२२

३ रघुवंश १२।२८-३०

४ जम्पु रामायण ३।१ के बाद-६

५ उदार राजव ८।३२-४०

६ मदितकाम्य ४।२-३

७ मानस ३।७-८

८ मानस ३।८

९ रा० मन्वरी। अरण्य। ३२४-४१२

१० उदार राजव ८।४३-४४

११ जम्पु रामायण ३।६-७ के बाद

१२ राजबीय ७।३८-६४

महावीर-परिच्छि^१, अट्टिकाव्य^२ आदि में 'सरजंग-मिसन' का वर्णन 'मामस' के वर्णन के समान ही है। 'महाभारत'^३ में उनके केवल साकार का धीर 'पद्मपुराण' में उनके केवल 'ब्रह्मलोक-प्रवास' का ही उल्लेख मिलता है। 'राम की प्रतिष्ठा' का वर्णन केवल 'रामायण-मञ्जरी' में है किन्तु वहाँ यह एक तो केवल एक निरूपण के रूप में है^४ और दूसरे अतिव्यक्तपूह^५ का उल्लेख न होने से यह असावगिक भी लगता है। तुमसी ने अपने वर्णन में इन सब बातों का पूरा ध्यान रखा है।

(१०) सुतीक्ष्ण-मिसन—सरजंग के बाद राम सुतीक्ष्ण के आग्रह की ओर जाते हैं जो उनका परम भक्त है। इसीलिए वह उनके दर्शन की सासना से डगमग होकर कभी पावता-माता है, कभी आये-नीछे होइता है और कभी यह मार्ग के बीचो-बीच में अटक होकर बैठ जाता है। राम के द्वारा 'अतुर्मुखक्य' शिक्षामान पर वह हीड़ कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करता है और उनको अपने आग्रह में से जाकर उनकी विविध पूजा और स्तुति करके इनसे अद्विगत भक्ति का बरदान भी प्राप्त कर लेता है।^६

संस्कृत के रावणिय^७, उदार रायव^८, अमूरामायण^९ पद्मपुराण^{१०} महावीर परिच्छि^{११} आदि ग्रन्थों में इस प्रसंग का अतिउल्लिखित उल्लेख है। 'अट्टिकाव्य' में 'मिसन' की कथा नहीं है, केवल समीप की पर्वकुटी में रहने का उल्लेख है।^{१२} 'रामायण-मञ्जरी' में सुतीक्ष्ण का आठिण्य स्वीकार करके राम वहाँ केवल एक रात रहते हैं, जबकि वास में ही 'इमकिर्न-सरोवर' के आग्रह में वे १३ वर्ष बिठा बैठे हैं। फिर सुतीक्ष्ण की प्रार्थना पर वे वहाँ से अवस्थाश्रम चले जाते हैं।^{१३}

तुमसी ने 'सुतीक्ष्ण विद्वान्' के इस प्रसंग में सुतीक्ष्ण भक्ति और राम के 'अतुर्मुख-क्य' का उल्लेख करके एक अद्वितीय समतुल्य का सुजन कर दिया है जिसके फलस्वरूप यह साधारण प्रसंग सहज ही असाधारण बन गया है।

(११) अगस्त्य-मिसन—सुतीक्ष्ण से मिलने के पश्चात् राम उनके मुख अगाय मृगि के मिलते हैं। वहाँ वे उनके अपने मन-आग्रह का उद्देश्य 'राजसक्य' स्पष्टरूप से बतला देते हैं। फिर अगस्त्य राम के ईश्वरत्व का वर्णन करते हुए उनकी स्तुति करते हैं और उनके अद्विगत भक्ति का बरदान भी प्राप्त कर

१ महावीर परिच्छि १।८-९

२ अट्टिकाव्य ४४४-६

४ पद्म । उदार । १४२ । २११-२२२

६ मामस ३।१०-११

८ उदार रायव ४।४४

१० पद्म । उदार । १४२-१२२

१२ अट्टिकाव्य ४४४

३ महाभारत । वन । २७।४०-४१

५ रा० मञ्जरी । अरण्य । ४११

७ रावणिय ७।६१

८ अमूरामायण । ३।७ के बाद

११ महावीर परिच्छि १।६

१३ रा० मञ्जरी । अरण्य । ४१३-४४३

लेते हैं। वहाँ अवस्य के संकेत से ही राम इष्टकवन में स्थित पञ्चवटी-आश्रम में प्रवास करते हैं।^१

संस्कृत के ग्रंथों में इस वर्णन में अनेक विभिन्नताएँ हैं। रघुवंश^२, महावीर चरित^३, अमर्य रामचर^४, पद्म-पुराण^५ आदि में अवस्य के उत्कार और पञ्चवटी प्रवास^६ के लिए द्विप मय उनके निर्देश का केवल संक्षिप्त संकेत-मात्र है। 'रामवीथ'^७ 'वम्पूरामायण'^८ 'रामायण-मञ्जरी'^९ आदि में अवस्यमुनि के प्रताप का क्रमशः अतिविस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें उनके विविध-विजय समुद्र-दान, बाठापि-वाचन आदि का विवरण उल्लेख किया गया है। वहाँ से राम की श्रेष्ठतम धनुष ब्रह्म-दान, इन्द्र-सुधीर और स्वर्ण-आर्य भी लेते हैं। 'रामायण-मञ्जरी' में वे उन्हें इन्द्र का अनेक कवच भी देते हैं और वन में बड़ी सजर्जतासे रहने के लिए सावधान भी करते हैं। 'अस्त्रदान' को छोड़कर अवस्य के प्रताप का विस्तृत वर्णन उदार रामच^{१०} में ही मिलता है।^{११}

'मानस' में तुलसी ने न तो अवस्य के प्रताप का वर्णन किया और न उनके अस्त्रदान का ही प्रत्युत उनके द्वारा राम की स्तुति करवाई और अरि का वरदान भी संभववाया। इसके मूल में तुलसी का विवेक ही उत्पन्न है, क्योंकि वे अच्छी तरह समझते हैं कि उनके वर्ण्य राम हैं न कि अवस्य। संस्कृत के कवियों ने इस विषय में अधिकतर परम्परा का ही पालन किया है।

(१२) शूर्पणखा-विरूपण—इस प्रसंग में राम के पञ्चवटी प्रवास-काल में उनके पास रावण की बहिन शूर्पणखा के जाने और कामपीडा से विकल होकर उनसे प्रणय-निवेदन करने का उल्लेख किया गया है। वहाँ राम अपने विवाहित होने का संकेत करके उसे लज्जित के पास भेज देते हैं जो अपनी पराधीनता का उल्लेख करते उसको पुनः राम के पास भौट जाने का परामर्श देते हैं। अन्त में शूर्पणखा क्रुद्ध होकर अपना भयंकर रासली-रूप प्रगट करती है, जिससे सीता के मन में भी भय उत्पन्न होकर राम के आदेश से उसके गाल फाट डामते हैं।

उ के लगभग सभी ग्रंथों में यह प्रसंग कुछ अन्तर के साथ इसी रूप में प्राप्त हो जाता है। इसमें शूर्पणखा के प्रणय-निवेदन और उसके अंगमन का वर्णन विधायकता अस्सेसनीय है।

(१३) शूर्पणखा-प्रणय-निवेदन—'रामायण-मञ्जरी' की शूर्पणखा राम

१ मानस ३।१२-१३
 २ रघुवंश १२।३१
 ३ महावीर चरित १।९ के बाद
 ४ अमर्य रामच ३।४
 ५ पद्म पुराण । उत्तर । २४२।२२३
 ६ रामवीथ ७।६६-६९
 ७ वम्पूरामायण ३।७-१२ के बाद
 ८ रामायण-मञ्जरी ३।१४४-४५१
 ९ उदार रामच २।४७-६४
 १० मानस ३।१७

से उनका परिचय पृष्ठ कर फिर, उनको अपना सच्चा परिचय भी देती है। वहाँ वह उनसे 'सीता-रूप' की प्रार्थना करती हुई उन्हें अपने साथ रमण करने का आमन्त्रण भी देती है।^१ 'पराशर' में वह 'सीताराम' के स्वान पर 'सीतामन्त्र' की प्रार्थना करती है।^२ 'उदार राम' में वह स्वयं को राम से पूर्व परिचित बतला कर उनके जन्म से लेकर जन ज्ञानमन तक की समस्त कथा का वर्णन करती है। वहाँ वह अपना सच्चा परिचय देकर सूर्यवध तथा पुनस्तम बंध को परस्पर सम्बन्ध जोड़ बतलाती है और राम से गणधर्मे विवाह की प्रार्थना करती है। उसे वहाँ सीता को भी बिना नहीं है। वह राम से कहती है कि वे उन्हें बाहे रखें या छोड़ दें। वहाँ तो वह उनकी दासी बनने तथा उषा मातृवीय-रूप में ही रहने की प्रतिज्ञा करती है और उनको रावण आदि की सहायता का प्रकोपन भी देती है।^३ 'राक्षसी' की शूर्पणखा तो अत्यन्त मुग़्ध ही बन कर और राम के समीप जाकर जब उनकी प्रणाम करती है, तब वे पहले उसका परिचय पूछते हैं और फिर अपना परिचय भी देते हैं। वहाँ शूर्पणखा उन्हें 'काम' और अपने को 'रति' कहकर उनसे अपनी 'मन-मन्त्र' झूठ करती है।^४ 'रघुबंध', 'जम्पुरामायण', 'महावीर चरित' और 'अनर्प राम' आदि में भी शूर्पणखा की ऐसी ही काम-नीड़ा का उल्लेख मिलता है।

इस प्रसंग में, जहाँ तक राम और लक्ष्मण की प्रतिष्ठा का सम्बन्ध है, संसृत के सभी प्रसंगों में, राम के द्वारा अपने विवाह और मुक्तिरथ तथा लक्ष्मण के द्वारा अपने पराधीनत्व और मनित्रय का उन्मूलन करके पुनश्च जाते ही सीता सुझाने का वर्णन मिलता है। 'मदितकाम्य' में शूर्पणखा पहले लक्ष्मण के पास जाती है, अतः वे उससे राम का सुचान करके उसे वहीं भेज देते हैं।^५ 'रघुबंध' और 'उदार-राम' में वे जहाँ वह पशुन राम के पास जाती है, वहाँ लक्ष्मण इती गते से उसको 'पुण्य' बतलाकर उसे अपने लिए रक्षण भी समझते हैं। इसके अतिरिक्त उदार राम में वे जहाँ १४ वर्ष तक प्रतीक्षा करने का परामर्श भी देते हैं।

(१४) शूर्पणखा का अज्ञ-मज्ञ-^६ 'रामायण-मञ्जरी',^७ आरभ्यं भूशामि १३

१ रामायण मञ्जरी । अरभ्य । ११८-१२६

२ पद्म । उत्तर । २४२ । २९७-२४९

३ उदार राम ६।७६-६१

४ रघुबंध १२।३२

५ महावीर चरित १।११

६ मदितकाम्य ४।२१-२७

७ उदार राम ६।६८-१००

८ आरभ्यं भूशामि १।१३

४ राक्षसी ८।१-२१

५ जम्पुरामायण ३।१२

६ अनर्पराम १।४ के बाह

७ रघुबंध १२।३२

८ राम । मञ्जरी । अरभ्य । १४१

'रघुवीर-चरित',^१ 'पद्मपुराण',^२ और 'अग्निपुराण'^३ में 'मानस' के वर्णन के समान ही कूर्पणसा के नाक और कान दोनों काट लिए जाने का वर्णन किया गया है, किन्तु 'प्रसन्न राघव',^४ 'भट्टिकाव्य',^५ 'बाण रामायण',^६ 'बम्भूरामायण'^७ और 'महा नाटक'^८ में उसकी केवल नाक 'राघवीय'^९ उदार-राघव'^{१०} 'महावीर चरित'^{११} और 'कर्ण-राघव'^{१२} आदि में उसके नाक कान और मोठ तथा 'राघ कपा'^{१३} में उसके स्तनों के भी काट लिये जाने का वर्णन मिलता है।

(१५) अन्य विशेषतायें—भागवत'^{१४} और पद्मपुराण'^{१५} के अनुसार सङ्गम के स्थान पर राम ही कूर्पणसा का विकल्प करते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कूर्पणसा के 'नर-वग्म' का भी उल्लेख मिलता है। वहाँ वह राम से निरास होकर उन्हें 'पत्नीहरण' का वाप देती है और जलते अग्नि में उनको पति रूप में पाने के लिए वह पुनः पुनः कठिन तपस्या भी करती है। इसके फलस्वरूप 'हापर' में वह ब्रह्मा से बरदान प्राप्त करके कुम्भा के रूप में अग्नि लेती है और 'दृष्ण' को अपना पति बनाने में सफल होती है।^{१६}

'मानस' में इस प्रसंग के वर्णन में तुलसी बड़े सावधान रहे हैं। स्त्री-जाति के स्वाभाविक कामुकत्व का संकेत करके उन्होंने कूर्पणसा को चैट्टाओं का पयार्थ वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त उसके विकल्प को रावण के लिए चुनौती-स्वरूप कह कर उन्होंने आने की कथा का भी संकेत कर दिया है।

(१६) नर-दूयत्यादि-वध—सदमम से विकल्पित होकर 'मानस' की कूर्पणसा धरदुश्मन आदि अपने समीपस्थ भाइयों को राम से कुछ करने के लिए प्रेरित करती है। राम उस राघव-सेना को देखकर सोठा के भयभीत होने की भावना से उनकी सुरक्षा के निमित्त उन्हें गिरि-कन्दरा में ले जाने के लिए सदमम को आदेश देते हैं और स्वयं युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं।^{१७} राघवों के माया-मुक्त करने पर वे भी ऐसी भावा करते हैं कि सब राघव एक दूतरे को राम समझ कर बापवध में ही

१ रघुवीर चरित ४६०

२ अग्निपुराण ७१५

३ भट्टिकाव्य ४१३१

४ बम्भूरामायण ३१२८

५ राघवीय ८५५४

६ महावीर चरित १५१२

७ रामकथा पृष्ठ १९

८ पद्म १ उत्तर १२४२, १२४४

९ राघव ३१२०

२ पद्म १ उत्तर १२४२, १२४४

८ प्रसन्न राघव १५१३ के बाद

६ बाण रामायण ३१०८ के बाद

७ महानाटक ३१४८

१० उदार राघव १११०६

१२ कर्ण राघव ३१४ के बाद

१४ भागवत ६।१०।८

१६ ब्रह्मवैवर्त १ वीरुण अग्नि

१२।४४.३३

सङ्ग कर मर जाते हैं।^१ इस प्रकार इस प्रसंग में सीता की सुरक्षा और 'राम माया' का विशेष वर्णन मिलता है, जो सम्बन्ध साहित्य में विविध रूप से उल्लिखित हुआ है।

(१७) सीता की सुरक्षा—मानस' का यह वर्णन अध्यात्म रामायण'^२ के अनुसार पर है जो अपना जालोच्य नहीं है। 'रामायण-सम्बन्धी' और 'राज-बोध'^३ के अनुसार राम छर के मेजे हुए केवल १४ राक्षसों को पहले समाप्त कर देते हैं, फिर पूरी सत्ता के भा जाने पर वे सीता को लक्ष्मण की देख रेख में बहो छोड़ कर युद्ध के लिए जाये बड़ जाते हैं। रघुवंश^४ 'धर्मुरामायण'^५ प्रथम राक्षस^६ भाषि में भी राम के द्वारा सीता को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़ जाने का उल्लेख है किन्तु वहाँ किसी निश्चित स्थान का उल्लेख नहीं है।

(१८) राम-माया—'रघुवंश' में राम एक होने पर भी राक्षसों की संख्या के समान ही अनेक रूप धारण कर लेते हैं।^७ जबकि रामायण सम्बन्धी के अनुसार राक्षसों को मारते समय राम के अनेक रूप के वर्णन होते हैं।^८ अन्य प्रयोगों में इस राम-माया का कोई वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

'मानस' में यह प्रसंग न तो उल्लिखित है और न यति उल्लिखित। संस्कृत क कवियों का ध्यान वहाँ अधिकतर युद्ध वर्णन के विस्तार में ही समाना रहा है जबकि तुलसी ने सर-मोह और राम-माया का वर्णन करके इन प्रसंग में राम की बलौकिक सुन्दरता और शक्ति का विस्तृत निरूपण किया है। इसके साथ ही राम नाम के उच्चारणमान से राक्षसों की मूर्ति का संकट करके उन्होंने राम के ईश्वरत्व का भी मुबारक रूप से प्रतिपादन किया है।

(१९) सीता द्वारा—छर दूषण-वध से निरास 'मानस' की कूर्णवता रावण के समीप आकर उसको राम से बदला लेने के लिए प्रेरित करती है।^९ वहाँ रावण कावान् के दिना छर की अवस्था सोचकर अपनी मूर्ति की नामता से ही राम से बदला लेने का प्रयत्न रचता है और मारीच की स्वयमय बनने के लिए कार्य करता है। मारीच के उपदेश देने पर जब वह उसे बच की समझी देता है तब मारीच राम के हाथों से मरने में अपनी मूर्ति का निरूपण करके 'लक्ष्मण-मृग' बन जाता है।^{१०} इसपर लक्ष्मण की अनुपस्थिति में राम 'मर-नीला' क्रमे के विचार से

- | | |
|-----------------------------------|----------------------------------|
| १ मानस ३।२० | २ अध्यात्म रामायण । अरण्य । ३।३० |
| ३ रा० सम्बन्धी । अरण्य । ३।४८ ३३३ | ४ राजकीय ८।१२-१८ |
| ५ रघुवंश १२।४४ | ६ धर्मुरामायण ३।१६ के बाद |
| ७ प्रथम राक्षस ३।३४ के बाद | ८ रघुवंश १२।४३ |
| ९ रा० सम्बन्धी । अरण्य । ३।८० | |
| १० मानस ३।२१-२२ | ११ मानस ३।२४-२६ |

राजसों के बिनाय तक सीता को अग्नि में निवास करने तथा साय में केवल प्रति-
बिम्ब रूप में रहने का आदेश देते हैं ।^१ फिर मारीच के स्वर्णमृग बनकर आशम के
समीप आ जाने पर वे सीता के आग्रह से उसका पीछा करते हैं और उनको लक्ष्मण
की देखरेख में छोड़ जाते हैं ।^२ राम के बाध से मरते समय मारीच सत्सय का
नाम होकर पुकारता है और फिर 'राम-नाम' का स्मरण करता है जिससे प्रथम
होकर राम उसे मोक्ष दे देते हैं ।^३ उधर सीता 'सक्षमण' शब्द सुनकर राम पर
विपत्ति की भावना से सत्सय को उनकी सहायता के लिए जाने का आदेश देती हैं
और उनके द्वारा उपेक्षा दिखाने पर वे उन्हें 'मर्म-बचन' कहकर जाने के लिए
बिचर कर देती हैं ।^४ इसी बीच में रावण 'यति-वैश' में सीता के सम्मुख उपस्थित
होता है और 'राजनीति भय तथा प्रीति' बिलसा कर उनसे प्रणय-निवेदन करता
है । सीता के द्वारा फटकारे जाने पर वह अपना बखली रूप प्रकट करके उनको
अपना नाम भी बतलाता है और बिराहा से मूढ़ होकर किन्तु साय ही उनके चरनों
की मन ही मन में बगना भी करके वह उन्हें अपने आकाशवासी रज में बिठाकर
बस देता है ।^५ इस प्रसंग में इस प्रकार तुलसी ने रावण की मुक्ति-कामना, मारीच
परामर्श सीता प्रतिबिम्ब मारीच-बचन सीता-मर्मबचन और रावण-यज्ञयज्ञ आदि
का विरोध रूप से वर्णन किया है । संस्कृत साहित्य में इस सम्बन्ध में अनेक विभिन्न-
तायें मिलती हैं ।

(२०) रावण-मुक्तिकामना—'राम-तापनीयोपनिषद्' में इस बखतर पर
रावण का उद्देश्य 'स्वनिवृत्ति' बतलाया गया है ।^६ 'पद्मपुराण' का रावण भी अपने
बच की इच्छा से ही 'सीताहरण' करता है ।^७ अन्य ग्रंथों में इस विषय में कोई
बस्तोका नहीं मिलता है ।

(२१) मारीच-परामर्श—'रामायण-मञ्जरी' का यह वर्णन अत्यन्त
विस्तृत है । वहाँ मारीच 'बण्डकारण्य' में राम से प्राप्त एक अग्य पत्राग्य का भी
उल्लेख करता है जिसमें उसके सब साथी मार जाने पर वे ।^८ वहाँ वह 'रा' वर्ण
जाने राग्य राजि रामा राम, राजा और राजि आदि शब्दों से अपने भय का
उल्लेख करके अपने ऊपर राम के आशंक की पराधाप्य व्यक्त करता है ।^९ वह
रावण से यह भी स्पष्ट कह देता है कि राम के हाथों से मरना उसके हाथों से
मरने से कहीं अधिक बख्ता है ।^{१०} 'रावणीय' का मारीच राम की भक्ति प्राप्त

१ मानस । ३।२४

४ " ३।२८

६ रामतापनीयोपनिषद् ४।१७

८ रा० मञ्जरी । अरण्य । १९८७-१९९९

१० " " ७।९

२३ मानस ३।२७

५ " ३।२८

७ पद्म । उत्तर । २४२।१५१

९ रा० मञ्जरी । अरण्य ।

७०२-७०३

करने का इच्छुक भी जान पड़ता है।^१ 'हनुमन्नाटक'^२ और 'महानाटक'^३ में मारीच के केवल उही निरक्षय का उल्लेख है कि यदि दोनों प्रकार से मरना है तो राक्षस की अपेक्षा राम के हाथों से मरना ही अधिक धेयस्कर है।

(२२) सीता प्रतिबिम्ब—'मानस' का वर्णन 'अध्यात्म रामायण'^४ के वर्णन से बहुत मिलता है किन्तु यह अपना मासोप्य ग्रन्थ नहीं है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में भी उसका उल्लेख है। वहाँ सद्यम्ब की अनुपस्थिति में विप्रवेदाक्षरी अग्निदेव, राम से समुद्रतट पर मिसकर सीताहरण की भविष्यवाणी करते हुए उनसे वास्तविक सीता को ले देने और 'दाया सीता' को अपने पास रखने की प्रार्थना करते हैं।^५ वहाँ वे 'रावण बध' के पदवाच 'सीता-मुक्ति' के अवसर पर 'दाया सीता' को वापस लेकर राम को वास्तविक सीता सोटास भी देते हैं।^६ उस 'दाया-सीता' के वहाँ पूर्व जन्म में वेदवती तथा परजन्म में 'शोपदी' होने का भी उल्लेख दिया गया है।^७

(२३) मारीच-बचना—'मट्टिकाव्य' ८ 'आश्वर्य-ब्रह्ममणि' ९ 'राघवीय' १० 'रामायण-मञ्जरी' ११ 'अभ्यु रामायण' १२ आदि में मानस के वर्णन के समान ही मारीच के द्वारा एक तो 'रवर्णमूग' बनने और दूसरे मरते समय सद्यम्ब का नाम पुकारने का उल्लेख करके उसकी दो बचनार्थों का बणन मिस्रता है। 'रघुवंश' १३ 'पद्मपुराण' १४ 'महावीर चरित' १५ 'अनर्ष राघव' १६ आदि ग्रन्थों में उसकी केवल प्रथम बचना है। महाभारत में उसकी हीसरी बचना भी है जहाँ वह सीता का भी नाम लेकर पुकारता है।^{१७} 'आश्वर्य-ब्रह्ममणि' में उसकी चौथी बचना है, जहाँ वह मरते समय राम का रूप धारण करके सद्यम्ब को भी बचित करता है। वहाँ उसके रूप साक्ष्य से सद्यम्ब इतने अधिक प्रीति हो जाते हैं कि राम को सामने देखकर वे उन्हें राघव समझ लेते हैं और उन पर आक्रमण का विचार करते हैं किन्तु राम की 'आश्वर्य-मुद्रिका' से मारीच के स्वरूप प्राप्त कर लेने पर वे वास्तविकता समझ कर बड़ दुःख होते हैं।^{१८} राम के द्वारा मारीच के मीस प्राप्त करने का वर्णन किसी भी संस्कृत-ग्रन्थ में नहीं है। यह मानसकार की अती मायता है, जिसके

- | | |
|-----------------------------------|-------------------------------------|
| १ राघवीय १।३६-३६ | २ हनुमन्नाटक ३।२४ |
| ३ महानाटक ३।२३ | ४ अध्यात्म रामायण । अरण्य ७।१३ |
| ५ ब्रह्मवैवर्त । प्रकृति १४।२८-३२ | ६-७ ब्रह्मवैवर्त । प्रकृति १४।४२-४४ |
| ८ मट्टिकाव्य ३।४९-५२ | ९ आश्वर्यब्रह्ममणि । ३।१२।१३ |
| १० राघवीय १।६४-६६ | १० के बाद |
| ११ रा० मञ्जरी । अरण्य १७।४२-७२६ | १२ अभ्यु रामायण ३।२६ |
| १३ रघुवंश १२।३३ | १४ पद्म । उत्तर । २४।१३४ |
| १५ महावीर चरित ३।१६ | १५ अनर्ष राघव ३।७ |
| १६ महाभारत । वन । २७।२३ | १८ आश्वर्यब्रह्ममणि ३।३७-३८ |

आधार पर बहु सर्वत्र राम के ईश्वरत्व का प्रतिपादन करता बहता है ।

(२४) सीता मर्षबन्धन—'मानस' में इन मम-बन्धनों का कोई विवरण नहीं है किन्तु 'रामायण-मञ्जरी' में सीता सवे नार्द्रि को स्वामाविष्क उचु बतलाकर लक्ष्मण के भ्रातृ प्रेम को पोसा कहती हैं और उन्हें 'पापबुद्धि' तथा 'व्युचित बुद्धि' आदि कहकर फटकारती भी हैं । साथ ही वे अपने पतिव्रता-धर्म का उत्सोय करके लक्ष्मण की 'कृदिन आशा' पर व्यस्य भी करती हैं ।^१ 'महामारठ'^२ की सीता लक्ष्मण को कामी कह कर विनकारती हैं और लक्ष्मणापात या पर्वत पतन या क्षण प्रवेश से आश्रयहरया कर लेने किन्तु राम को छोड़ कर इनको (लक्ष्मण को) पति न बनाने का निश्चय भी व्यक्त करती हैं ।^३ मद्दिटकाम्य^४ में सीता लक्ष्मण को कामुक और अपनी पत्नी बनाने को उत्सुक बतलाती हैं ।^५ 'आश्रय' बुद्धामणि^६ की सीता किन्नर लक्ष्मी को ही परपति-प्राप्ति^७ कहकर अपने पतिव्रत्य का संकल्प करती हैं । वे लक्ष्मण को बमकी भी देती हैं कि वे उनके सामने ही आत्महत्या करके उन्हें मिराज कर देवी ।^८

(२५) रावण्य पश्यन्त्र—'मानस' में रावण के प्रति-रूप और राजनीति-धर्म प्रीति के बन्धनों का कोई विवरण नहीं है किन्तु मद्दिटकाम्य^९ 'रामायण मञ्जरी'^{१०} 'ज्ञानकी-हरण'^{११} 'रावण्य'^{१२} 'महामारठ'^{१३} और 'प्रतिमा'^{१४} आदि ग्रंथों में उसका विस्तार से वर्णन किया गया है । 'मानस' में राम और लक्ष्मण के साथ रावण के किसी भी संबंध का उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु 'प्रतिमा' में राम से और 'अनर्प रावण' में लक्ष्मण से रावण का पर्याप्त आदर्शागत होता है यद्यपि यह अपना सही परिचय नहीं भी नहीं देता है । 'प्रतिमा' नाटक में रावण अपने को कामपप बोधीय प्राज्ञान कहकर स्वर्ण को पानोपान बेह श्रेष्ठत आश्रयण आदि का विज्ञान भी बतलाता है । यहां दशरथ के ध्याय के लिये उत्सुक राम के द्वारा पूछे जाने पर वह उन्हें कुछ ठिल कलाय महाउपर भी या लक्ष्मणम् का अधिन पारबन्धु की व्यवस्था देता है । इसी समय बंते हो मूम (मारीच) के प्रपट होने पर वह उसे इच्छित करके उन्हें 'बन्धुधाम्य' भी कहता है । फिर राम उसकी सेवा के लिये तीव्र

१ रा० मञ्जरी । अरण्य । ७७१-७७४

२ अप्यहं रात्रमाशाय ह्यामात्मानमात्मना ।

पत्न्यं विदित्वा मातुं वा विशेषं वा हुताद्यतम् ।

रामे सत्परिभूतसुखे न त्वहं त्वां कर्मचरम् ॥ महामारठ । अण । २७५।२७-२८

३ मद्दिटकाम्य ५।२६

४ आश्रय'बुद्धामणि ३।२८ के बाद

५ " २।६१-६१ ८।६२

६ रा० मञ्जरी । अरण्य । ७८३-

७ ज्ञानकी हरण १।१६६-८६

८ रावण्य २।६६-७३

९ मद्दिटकाम्य । २।७ के बाद, १६-१७

१० महामारठ । अण । २७५।३२ ३६

को आधा दकर उस मग के पीछे भस जाते हैं। सदमग वहाँ पहुँचे से ही आधम के किसी कुसपति के स्वागसाध जैसे जाने के कारण अनुपस्थित हैं। राधम इस अवसर का लाभ उठा कर 'सीता-हरण' में समर्थ हो जाता है।^१ 'धनर्षराधम' में वह राम की अनुपस्थिति में उनके धायम में आकर सवमग से मिलता है और अपने को 'विशेष-वटन्दी-परिष्ठ' तथा 'जपविजयाभिमायो' बतला कर राम से सहाय्य करने की इच्छा भी व्यक्त करता है। वह स्वयं को 'वर्षाविज्ञासध' कह कर अपने पावछम स सदमग को बखित करता है और मिटा का बहाना करके वहाँ स भसा जाता है।^२ 'आधमर्षबुधामपि' में पणित राधम के प'पग' का उस्तध क्रिया या बुका है।^३ 'प्रवरा राधम नाटक' में अनुया क आसीर्वाद के प्रभाव से सीता के चारों ओर एक 'अभिषम' बसता रहता है जिसे बरम-मग्य स बुसा का राधम उनके हरण म सफल हो जाता है।^४ 'हनुमनाटक'^५ और 'महानाटक'^६ में सीता की कृती के चारों ओर सदमग के धनुय से लिखी हुई एक रेखा का उल्लेख है जिस राधम बार नही कर पाता है किन्तु सीता के उस रेखा से बाहर जाते ही वह उन्हें ग्रहण कर लेता है।

मानस के इस प्रसंग में राधम के हठवर में मुक्ति-नायना और सीता हरण के समय उनके द्वारा उनकी पर-बहना का उस्तध करके तुससी ने राधम के चरित का एक विचित्र पद्य प्रणयित किया है। सीता को 'वरपुत्र-स्वय' के कर्मक से बचाने के लिए ही उगुने 'सीता-प्रतिबिम्ब' की योजना स्वीकृत की है। इसके अति रिक्त सीता के मर्मबचनों तथा राधम की शरीरियों को मनापसक और अनुचित समा कर ही उगुने उनका वहाँ कोई बिबरण नहीं दिया है। इस प्रकार इस प्रसंग के विचारों में तुससी ने अपने विवेक का बड़ी सफलता क वाप प्रयोग किया है।

(२६) अटायु-मरया—सीता के हरण के समय उनकी आर्त वुकार सुन कर गुधराज अटायु को राम से वृष परिधित है उनको रखा के लिए बोझता है और राधम को पटकारता हुआ उसके केश पकड़ कर उसे पृथ्वी पर पटक देता है तथा सीता का मुक्त भी कर लेता है किन्तु राधम शीघ्र ही संभस कर अपने हुगाम से उसके पय काट देता है और सीता को अपने रय पर फिर बिठा कर वहाँ से सीम भसा जाता है।^७ 'मृदबम' के परवान् राम तथा सरमय आधम में लौटकर और सीता को म पाकर उन्हें घोडे हुए जब बाह्य अटायु से मिलते हैं तब वह राधम के द्वारा सीता हरण का धारा बुताम्ब उनको दहताता है। उसकी मृतशाय दया हैत कर राम उससे जीवित रहने का आग्रह करते हैं किन्तु मृद मति का होकर मृत्यु के समय उनकी

- | | |
|----------------------------|--------------------------|
| १ अजिमा ११८ के बा-२१ | २ अनर्ष राधम १११ के बा-७ |
| ३ अटायु विदग्ध पृष्ठ ८०-८१ | ४ प्रवरा राधम ११८४-४१ |
| ५ हनुमनाटक ४६ | ६ महानाटक ३६१ |
| ७ मानस ३१९ | |

उपस्थिति के मुखबसर को त्याग करके फिर बीना ही नहीं चाहता है। उसका यह निश्चय जान कर राम उससे अनुरोध करते हैं कि वह स्वयं में जाकर दधरथ से 'सीता-हरण' की खर्चा न करे। वे फिर उससे बलपूर्वक कहते हैं कि यदि वे सचमुच राम हैं तो कुछ विनों में ही स्वयं रावण सपरिवार यहाँ (स्वर्ग) जाकर जगजे सभ कृष्ण बतला देया।^१

इसके पश्चात् अटायु युद्ध-बैहू त्याग कर सहसा हरिरूप ग्रहण कर सीता है और उसके अनुकूल अनेक आभूषण, पीतवट स्वाम टपीर और चार भुजायें भी धारण करता है। अन्त में वह राम की बिरतुत स्तुति करके तथा जगजे अद्विरल भक्ति का बरदान प्राप्त करके 'हरिधाम' जमा जाता है और राम अपने हाथों से ही उसकी यथोचित वाहकिया करते हैं—

पीत वैहू तत्रि बरि हरि रूपा । भूपत बहू पट पीत अनूपा ॥

स्वाम मात बिसाम भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥

दो० अद्विरल भवति मायि बर नीप गयत हरिधाम ।

वैहू की क्रिया यथोचित भिज कर कीहू राम ॥३।३२

इस प्रकार इस प्रसंग में तुलसी ने अटायु के राम से पूर्व परिचय अटायु रावण-युद्ध, अटायु राम-मिशन, अटायु के हरिरूप-धारण आदि का विधेय रूप से उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इसके विभिन्न रूप मिलते हैं।

(२०) अटायु का राम से पूर्व परिचय—संस्कृत के राजवीर^२, भद्रिकाव्य^३, महाभारत^४, रामायण-मञ्जरी^५, रघुवीर चरित^६, प्रतिमा^७, बाल रामायण^८, रघुवंश^९, अम्पूरामायण^{१०} आदि ग्रन्थों में दधरथ के साम अटायु की मित्रता का उल्लेख मिलता है जिसके कारण वह सीता की रक्षा करने के लिये अपनी प्राणों की बाजी लगा देता है। महावीर चरित^{११} 'अनर्पराधव'^{१२} 'पद्मपुराण'^{१३} में भी राम के प्रति अटायु की बरसलता का पूर्व संकेत मिलता है, किन्तु इसके कारण का वहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। रामायण-मञ्जरी में कोई पूर्व-परिचय न होने के कारण राम उसको प्रथम मिलन में रासस समझ कर उस पर प्रहार भी करना चाहते हैं।^{१४}

१ मानस ३।३०-३१

२ राजवीर १।७४

३ महाभारत । वन । २७।१।

४ रघुवीर चरित ३।६६

५ बाल रामायण ६।२७

६ अम्पूरामायण ३।१३

७ अनर्पराधव २।६ के बाद

८ रा० मञ्जरी । अरण्य १४८४

९ भद्रिकाव्य ६।४२

१० रा० मञ्जरी । अरण्य १०५०

११ प्रतिमा ६।२ के बाद

१२ रघुवंश १२।३४

१३ महावीर चरित ३।१३ के बाद

१४ पद्म । उत्तर । २४२।२५६

(२८) अटायु-रावण-मुद्ग-संस्कृत के लगभग सभी प्रयोगों में इस युद्ध का विस्तृत वर्णन मिलता है। 'बाल-रामायण' में अटायु अनेक युद्धों को लेकर रावण के साथ युद्ध करता है। वहाँ 'वज्रहास' (रावण के घडन) के टूट जाने पर रावण उसके कण्ठ में घासा घुंसेड़ कर उसे मार डालता है।^१ लगभग सभी प्रयोगों में रावण और अटायु का विस्तृत संवाद भी प्राप्त होता है। 'मानस' के संवाद पर 'हनुमत्पाठक' के संवाद का बहुत प्रभाव है।^२

(२९) अटायु-राम मिलन-संस्कृत के पाठकों में इसका वर्णन नहीं मिलता है। रावणोप^३, अंबु-रामायण^४ और पद्मपुराण^५ आदि काव्यों का वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान है किन्तु 'रामायण-मञ्जरी'^६, 'अद्वैतकाम्य'^७, महाभारत^८ 'रघुवीर चरित'^९ आदि काव्यों में राम आहत अटायु को ही सीता-माती समझ कर उस पर पहले प्रहार करने का विचार करते हैं।

(३०) अटायु का इरिरूप-धारण-पद्मपुराण में भी अटायु के द्वारा मरते समय 'हरि' के सामान्य रूप धारण करने और मूर्ति प्राप्त करने का उल्लेख है।^{१०} तुलसी ने इस 'सामान्य रूप' का विद्विष्ट विस्तार कर दिया है। इस दिशा में वे 'मायवत' से प्रभावित आत होते हैं, जहाँ 'वज्रह' के द्वारा 'पीठ-भट' और 'अतुर्भूज' रूप धारण करके भगवद्रूप प्राप्त करने का विवरण दिया गया है।^{११}

इस प्रसंग में तुलसी की मौलिकता उनके विवेकपूर्ण समन्वय में है जिसके आचार पर उन्होंने 'रसनिष्पत्ति' और मक्ति-सिद्धान्त के दृष्टिकोणों से गुप्त की विशेष स्तुति और 'साक्यमुक्ति' का वर्णन प्राप्त कर लिया है।

(३१) कथञ्च-वध-अटायु मिलन के परचाठ सीता की छोज में भट कते हुये राम की अँट कबन्ध राघव से हो जाती है और वे उसे देखते ही तुरन्त मार डालते हैं।^{१२} राम के हाथों से मृत्यु पाकर कबन्ध मुक्त हो जाती है और जब वह बाह्य-निररकार के फलरूप अपने 'दुर्वासा-शाप' की कथा सुनाता है, तब राम उसे उपदेष्टा होते हुए बाह्य कति पर विशेष बात देते हैं।^{१३} 'मानस' के इस प्रसंग में कबन्ध-मृत्यु 'दुर्वासा-शाप' और 'रामोपदेष्ट' की ही महत्वपूर्ण योजना है। संस्कृत के प्रयोगों में इस प्रसंग का यह रूप नहीं मिलता है।

- | | |
|----------------------------------|----------------------------|
| १ बाल रामायण १।१९-७१ | २ हनुमत्पाठक ४।७-१० |
| ३ रावणोप १०।१०-१२ | ४ अंबुरामायण ३।४१ के बाद |
| ५ पद्म । उत्तर २४२।२६०-२६३ | |
| ६ रा० मञ्जरी । अरण्य । १०४२-१०४६ | |
| ७ अद्वैतकाम्य १।४१ | ८ महाभारत । वन । २०६।१८-१९ |
| ८ रघुवीर चरित ३।६६ | ९ पद्म । उत्तर । २४३।२६६ |
| ११ मायवत ३।४-६ | |
| १२ मानस ३।३३ | १३ मानस ३।३४ |

(३२) कथम्—मृत्यु—रामायण-मञ्जरी^१ रामवीर^२, अंपूरामायण^३, अट्टिकाव्य^४ महाभारत^५ आदि ग्रन्थों में कब्र पर राम और मरुपन को अपनी सम्पत्ति-सम्पत्ति भुजाओं से पकड़ कर खींच लेता है और जब वह उन्हें धागा बाँधता है तब वे दोनों मिल कर उसके दोनों हाथ काट टाकते हैं। 'रामवीर' में वे उसके शरीर को एक गड्ढे में डाल कर मिट्टी से पूर भी देते हैं जबकि 'अंपूरामायण' और 'रामायण-मञ्जरी' में वे उसके अग्नि-संस्कार का भी प्रबन्ध करते हैं। 'महावीर-चरित' में कब्र पर जब जन प्रदेग में दाबरी पर आक्रमण करता है तब उसकी पुकार पर दौड़ कर सदमल कब्र पर जा कर देते हैं और दाबरी को रत्ना करते हैं।^६ उस समय कब्र पर दिव्य-पुष्प होकर राम के सामने अपना परिचय देता हुआ अपनी को 'श्रीपुत्र दत्त' वतताता है और दाप के कारण अपनी गदसदा तथा इन्द्रवज्र के कारण अपनी वयम्बता का उल्लेख करता है। इसके अतिरिक्त वहाँ यह मात्स्यवान् के पञ्चमण्डल का उद्घाटन करता हुआ राम से कहता है कि मात्स्यवान् की आज्ञा से ही वह जन पर आक्रमण करने के लिए वहाँ नियुक्त किया गया था तथा उसी (मात्स्यवान्) की आज्ञा से कालि भी उनके (राम के) शरीर की पात में गया हुआ है।^७

(३३) हुआमा-शाप—'रामायण-मञ्जरी'^८ 'अंपूरामायण'^९ आदि में दुर्वासा के स्वाम पर स्पृशितरा मुनि के शाप का वर्णन है। 'अट्टिकाव्य' में कालि मुनि का नामोत्सीस नहीं है।^{१०} 'महाभारत' में केवल 'शाकुन-शाप' का वर्णन है।^{११} और 'रामवीर' में दाप के केवल कारण (कब्र के दुर्वासा) का ही उल्लेख है।^{१२} 'रामवीर'^{१३} 'महावीर-चरित'^{१४} और 'रामायण-मञ्जरी'^{१५} में इन्द्र के शपथपात से प्राप्त उसकी कब्रगता का वर्णन भी मिलता है। कुछ ग्रन्थों में कब्र के पूर्वजन्म का भी उल्लेख है। यथा रामायण-मञ्जरी^{१६} और महावीर चरित^{१७} में बहू भरणे का श्री का पुत्र दत्त अट्टिकाव्य^{१८} में केवल श्रीपुत्र

- | | | | |
|----|--------------------------------|----|---------------------------|
| १ | रा० मञ्जरी । अरण्य । १०७१-१०८० | | |
| २ | रामवीर १०११-१० | ३ | अंपूरामायण १।६२ के बाद-४३ |
| ४ | अट्टिकाव्य १।४५-६६ | ५ | महाभारत । वन । २०६।२०-३६ |
| ६ | महावीर चरित १।२० | ७ | महावीर चरित ५ १४-१५ |
| ८ | रा० मञ्जरी । अरण्य । १०८२ | | |
| ९ | अंपूरामायण १।४२ के बाद | १० | अट्टिकाव्य १।४६ |
| ११ | महाभारत । वन । २०९।४२ | १२ | रामवीर १०।१५ |
| १३ | रामवीर १०।१५ | १४ | महावीर चरित १।३६ |
| १५ | रा० मञ्जरी । अरण्य । १०८४ | | |
| १६ | " " । १०८० | | |
| १७ | महावीर चरित १।३४ | १८ | अट्टिकाव्य १।४९ |

'रावधीप'^१ और 'अंपूरामायण'^२ में केवल वनू और 'महामारत'^३ में बिरवावपु नृप' की बतलाता है।

(१४) रामोपदेश—इस प्रसंग में ब्राह्मणभक्ति-सम्बन्धी रामोपदेश की योजना तुलसी की मौलिक कल्पना है। बहुत सम्भव है कि 'महामारत' में इस अवसर पर उल्लिखित 'ब्राह्मण-नाप' के उपसंहार के रूप में तुलसी ने इसको आभो वित किया हो। इस दृष्टिकोण से उनकी यह तथीन उद्भावना बस्तुतः अत्यन्त प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है।

भावस में इस प्रसंग का एकनाम उद्देश्य ब्राह्मण भक्ति का बचन करना है। ब्राह्मण-नाप के कारण कवचपता-प्राप्त इस मन्वर्ष से राम का यह कहना कि अन्य देवताओं के साथ वे भी ब्राह्मण भक्ति के सहज बश में रहते हैं। उनकी ब्राह्मण भक्ति का समर्थ परिचामक तो है ही, साथ ही वह सोच में भी ब्राह्मण भक्ति को ईश्वर भक्ति से अधिक उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करता है।

(१५) शायरी-मिहान—कवच-बध के परभाव 'मानस' के राम जब शबरी के आश्रम पर पहुँचते हैं तब वह उनका स्वागत करती है। उस समय वे उसे 'नवपामक्ति का उपदेश देते हैं।^४ फिर सीता के सम्बन्ध में पूछे जाने पर शबरी राम से 'अप्यासर जाकर सुधीव-सौत्री करने का अनुरोध करती है'^५ और तत्पश्चात् वह योगाग्नि में प्रविष्ट होकर 'हरिपद' में लीन हो जाती है।^६ इस प्रकार इस प्रसंग में राम के द्वारा नवपामक्ति का उपदेश, शबरी के द्वारा सुधीव-सौत्री का अनुरोध और उसके योगाग्नि-प्रवेश एवं 'हरिपद-प्राप्ति' का विशेष उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इसमें अनेक विभिन्नताएँ हैं।

(१६) नवपामक्ति का उपदेश—'मानस' के समान ही इस अवसर पर नवपामक्ति का वर्णन 'अप्यासरामायण'^७ में भी मिलता है, किन्तु वह अपना आलोच्य प्रथम नहीं है। अन्य ग्रन्थों में यह प्रसंग वहीं भी प्राप्त नहीं होता है।

(१७) सुधीव-सौत्री का अनुरोध—केवल 'मट्टिकाव्य' की शबरी राम के सामने सुधीव-मित्रता और सीतादर्शन की यत्नियवाणी करती है।^८ वहाँ कोई अनुरोध नहीं है। अन्य ग्रन्थों में यह वर्णन कहीं नहीं मिलता है। इसमें 'अप्यासरामायण' उल्लिखित नहीं है। महाभारत चरित की शबरी सुधीव की सक्रिय सहायिका है। वह सुधीव के पास से ही विभीषण का यह पत्र साकर राम को

१ रावधीप १०।१२

२ अंपूरामायण ३।४३

४ मानस ३।३४-३५

७ अप्यासरामायण। अरण्य। १०।२२-२३

८ मट्टिकाव्य ६।७२

९ अप्यासर रामायण। अरण्य। १०।३५-३६

३ महामारत। वन। २७।१४२

५-६ मानस ३।३५-३६

बेटी है^१ और उनको सुवीर के पास भे जाती हुई वह मार्ग में 'बुलुभि-बंकास' और 'बासि' के दर्शन कराती है।^२ इसके पश्चात् वह कर्मण से सुवीर का परिचय कराती है और इती वीर में रामकठ बालिवध' की सूचना भी सबको देती है।^३ बासि की मृत्यु पर वह मास्यवान् के पञ्चपत्र का उदघाटन भी करती है कि उसी में राम पर साक्ष्य करने के लिए बासि को वहाँ नियुक्त किया था।^४ अनर्थ राघव की पत्नी बालिवध सच्य है। वह सुवीर की सेवा के लिए बालवान की आज्ञा से 'अरपुर प्रवेश-विद्या' के द्वारा मन्वरा के शरीर में प्रवेश करती है और केकयी का जाली पत्र बना कर 'राम निर्वासन' के पञ्चपत्र में सफल भी होती है।^५

(३८) योगाम्नि प्रवेश और हरिपत्र प्राप्ति—राघवीय में पत्नी के केकय 'योगाम्नि प्रवेश' का बचन है^६ जबकि 'रामायण-मञ्जरी' में उसके द्वारा 'तनोमय पत्र' भी प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है।^७

(३९) नारद मिशन—'पत्नी-निमन' के पश्चात् आगे बढ़ने पर 'मानस' काय को स्वीकार करके इस प्रकार बम में बनेक पुत्रों को सह रहे हैं इतीसि के उगते पुत्रों हैं कि उगहोने उस बरसर पर बिम्बमोहिनी से विवाह करने; उगहें (नारद को) क्यों रोका था जिसके कारण ही यह सब अनर्थ हुआ है।^८ इसके उत्तर में स्त्री-वर्त्म की विस्तार से लिखा करते हुए उगहें समझाते हैं कि उनको स्त्री-वर्त्मक से बचाने के लिए ही उगहोने वह प्रयत्न किया था।^९ फिर नारद के द्वारा पुत्रों के लिए पर राम उनके समय 'सप्त-राघव' का विस्तृत वर्णन करते हैं जिसके पश्चात् नारद उनकी स्तुति करते हुए वहाँ से बहुराज्य बसे जाते हैं।^{१०}

यह प्रसंग भी तुमसी की एक मौलिक योजना है। संस्कृत के ग्रंथों में यह कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। तुमसी ने सम्भवतः 'बासिकाण्ड' में पाए हुए नारद काय की कथा के उपसंहार के रूप में इस प्रसंग को यहाँ प्रस्तुत कर दिया है। इसमें तुमसी का प्रमुख उद्देश्य 'स्त्री-निमन' और 'सप्तमहाल' का विस्तार से वर्णन करना है और उनके लिए उगहोने अत्यन्त उपयुक्त बरसर का चुनाव भी किया है जब राम स्वयं 'स्त्री-विद्योत' के कारण दुःखी हैं। तुमसी तो मानों ऐसे तुमहमे बरसरी की ताक में रहते हैं और उनका सर्वत्र पूरा-पूरा ताज भी उठाते हैं।

१ महावीर चरित १।१०
 २ " १।१४ के बाद
 ३ अनर्थ राघव १।१४ के बाद १।१ के पूर्व, ४।६२ के बाद
 ४ मानस १।१३७

५ महावीर चरित १।१८ ४४
 ६ " १।१८ के बाद
 ७ राघवीय १।१२४
 ८ रा० मञ्जरी। अरण्य १।११८
 ९ मानस १।४१-४३
 १० " १।४२-४६

४ विजिज्या काण्ड

विजिजे काण्ड में 'सीता हरण' की मुख्य घटना का वर्णन किया गया है। वहाँ राम को जटायु से सीता के हरण-कर्ता का नाम और नाम साठ हो जाता है। फिर जटायु से उन्हें सुग्रीव-मन्त्री की प्रशंसा भी मिलती है। इसीलिए वे सबसे मियाने के लिए 'विजिज्या' पसो जाते हैं जहाँ उसकी पुत्र्याया मुनकर उषके भाई, किन्तु मनु 'बाति का बच कहते हैं। इसके परभाव सुग्रीव 'सीता-सोप' के छिने बानर वृत्तों को पारों और भेज देता है। इस प्रकार इस काण्ड में राम-सुग्रीव-मन्त्री 'बाति-बच' और 'सीता-सोप' के प्रयत्नों का ही वर्णन किया गया है।

(१) राम-सुग्रीव-मन्त्री—राम और सद्मम को बन में भटकते देख कर सुग्रीव को उनके 'बाति-दूत' होने की आशंका हो जाती है। इसीलिए उनका सम्बन्ध पता लगाने के लिए वह अपने सचिव हनुमान को उनके पास भेजता है।^१ हनुमान् विप्रवेश बनाकर उनका पास जाते हैं और उनके 'बिदव' या 'नरनारायण' भादि होने का प्रम करते हैं।^२ किन्तु राम जब उन्हें अपना परिचय देते हैं, तब हनुमान उन्हें खाताय् मयकान् पहिचान कर उनके चरणों में गिर पड़ते हैं और उनकी स्तुति करते हुए वे उन्हें अपनी पीठ पर बिटाकर सुग्रीव के पास ले जाते हैं और उन दानों की सम्मिखाधी मिश्रता भी सम्पन्न करा देते हैं।^३ इसके बाद सुग्रीव राम से 'सीताहरण' का खीतों देखा वर्णन करता हुआ उनको सीता का एक 'पद' भी 'निराका' देता है जिसे पाकर राम बड़े दुःख होते हैं।^४ फिर सुग्रीव अपने 'बाति-बिग्रह' की विस्तृत कथा बतला कर उन्हें 'सुमुनि कर्काव' और 'सुन्द-नास' भादि दिखता है जिसे राय बड़ी चरसता से गिरा देते हैं। इससे सुग्रीव को राम की शक्ति में पूर्ण बिदवाय हो जाता है।^५ और राम को प्रशंसा से बहु बाति से दग्ध युद्ध करने के लिए पना पाता है।^६ इस प्रकार 'उ' प्रसंग में 'राम हनुमान् मिलन', 'सम्मिखाधी-मिश्रता' और राम की 'बाति-मरीछा' भादि का विस्तृत निरूपण किया गया है जिससे तुमना में संशुद्ध साहित्य में बनेक विभिन्नतायें प्राप्त हाठी है।

(२) राम हनुमान् मिलन—संशुद्ध के सगजय सभी काव्यों में सुग्रीव के द्वारा राम और सद्मम का देखने और उन्हें 'बाति-दूत' सम्पन्न कर भयभीत होने तथा हनुमान् को उनके पास भेजने का समान बचन मिलता है। 'रामायण-संजरी'^७ में हनुमान् 'बाति-दूत' बन कर, किन्तु 'रायभीय' 'बाति-दूत' और 'बाति-दूत',^८

१-२' ४१

४ मागस ४१३

६ ४१६-७

७ रा० संजरी। विजिज्या १३

८ पशुपतायण ४१६ के बा'

३ , ४१२-६

२ मागस ४१६-७

५ रायभीय २०१३

८० भदिदकाम्य ६१६२

में मिस्र बनकर राम-भक्तमग के समीप जाते हैं। 'रामायण-संज्ञरी'^१ में वे उन दोनों के सूर्यचन्द्र, इन्द्रोपेन्द्र तथा मरमारामय 'बम्पूरामायण'^२ में दो देव, दो ब्रह्म कल्पवृक्ष तथा सूर्यचन्द्र और 'राजबीय'^३ में भी सूर्यचन्द्र तथा इन्द्रोपेन्द्र धारि होने का उल्लेख करते हैं। 'राजबीय' में वे उनको योमियों के सम्बन्धमें कहकर और भगवान् के रूप में पहचान कर बलिपूर्वक उनके चरणों में विर भी पड़ते हैं।^४ 'रामायण-संज्ञरी' के लक्ष्मण परिचय के पश्चात् हनुमान् से वह भी कहते हैं कि कल्याण के आग्रह से ही, सोक को धरन और इन्द्र को बधय देने वाले राम जब सुग्रीव की धरन में आए हुए हैं।^५ 'राजबीय' के राम सुग्रीव को ब्रह्म-युद्ध होने के कारण अपना समीप भाई बचला कर उससे मिलने की उम्मीद व्यक्त करते हैं।^६

गाठकों में केवल 'हनुमन्नाटक' में ही इस मिश्रण का वर्णन है। वहाँ हनुमान् को 'रोहस्तावतार' बतलाया गया है।^७ 'राजबीय' में उन्हें 'शक्य विद्या में सूर्य चिप्य' और 'सर्ववीरामधार से अधिक' कहा गया है।^८ 'हनुमन्नाटक' में परिचय के पश्चात् हनुमान् ही उन्हें सीता के 'बामुपल' विषयमें पूछते हैं, जिससे अधिक रितग्व होकर राम सुग्रीव से मित्रता करने के लिये उनके पास घीघ्र चल देते हैं।^९

(३) अग्निसाक्षी मित्रता—'मानस' के समान ही 'राजबीय'^{१०} मद्दिट्काम्य,^{११} बम्पूरामायण,^{१२} 'हनुमन्नाटक'^{१३} और रामकथा^{१४} आदि में इस प्रसंग का वर्णन मिलता है, जबकि 'रामायण-संज्ञरी'^{१५} में और 'महावीरचरित'^{१६} में राम और सुग्रीव के 'वाग्निवीर्य' का भी उल्लेख है किन्तु 'महावीर चरित' में यह मित्रता वासि के आदेश से सम्पन्न होती है। वहाँ वासि अपनी मृत्यु के समय सुग्रीव को बुलाकर राम के हाथों में तोप देता है और उसे राम का बामरस निज बतने के लिये आदेश देता है।^{१७} अनर्ष रामयण से भी 'वाग्नि-वध' के पश्चात् राम-सुग्रीव मित्रता का वर्णन है।^{१८} किन्तु वहाँ सुग्रीव पहले से ही राम का गुलामुरागी है और

१ रा० संज्ञरी । किष्किण्य । १२

२ बम्पूरामायण ४१६ के बाद

३ राजबीय १०१४७

४ राजबीय १०१४८, २२

५ रा० संज्ञरी । किष्किण्य । १२-१४

६ राजबीय १०१४९-६०

७ किष्किण्यकी रोहस्तावतारं बुद्ध्या रानी माधति वाचसुधे ।

सीता नीता येनचित्तवाति बुद्ध्या हृष्टः कष्टं संहरन्नाह वीरः ॥

हनुमन्नाटक ५१३३

८ राजबीय १०१४५

९ हनुमन्नाटक ५१३४-४०

१० राजबीय १०१६३

११ मद्दिट्काम्य ७१०४

१२ बम्पूरामायण ४१८ के बाद

१३ हनुमन्नाटक ५१४०

१४ रामकथा पृष्ठ २६

१५ रा० संज्ञरी किष्किण्य । २३-२४

१६ महावीर चरित ५१६०

१७ महावीर चरित ५१५८ के बाद

१८ अनर्ष रामयण ५१५३ के बाद

इसीमिथ बहु बुद्ध को पहले ही उनके पास भेज कर उनसे मित्रता की प्रार्थना भी करता है।^१

(४) राम की शक्ति परीक्षा—'मानस' में राम की शक्ति का केवल प्रदर्शन बर्णित है, किन्तु संस्कृत के ग्रन्थों में उस परीक्षा का रूप दे दिया गया है। 'रामायण-मंजरी' में राम की शक्ति में सशिव सुधीय उनसे 'दुग्धुभि-कपाल' को फेंकने की प्रार्थना करता है। फिर उसे भी अपर्याप्त समझ कर वह उनसे 'सप्त ताल भेद करने का आग्रह करता है। इन दोनों परीक्षाओं में राम के सफल होने पर अपनी धृष्टता पर बड़ा लज्जित भी होता है।^२ 'भट्टिकाव्य' 'रायवीय' 'बभ्रु रामायण' आदि में भी इसी प्रकार 'शक्ति-परीक्षा का बर्णन मिलता है। 'अभिषेक' नाटक^३ में केवल 'सप्तताल भेद' का उल्लेख है। 'महावीर चरित' और 'अनर्ष' रामायण^४ में ये घटनाएँ राम की शक्ति-परीक्षा से सम्बन्ध नहीं हैं। वहाँ राम 'दुग्धुभि कपाल' का पौं हो पंर के अंगूठे से पीक देते हैं और उनका बाण बालि के हृदय के पास ही सप्ततालों को भी एक साथ भेद देता है। अनर्ष रामायण में 'दुग्धुभि-कपाल' को लक्ष्मण फेंकते हैं और 'सप्तताल भेद' राम के बाण से ही 'बालि वध के कुछ पूर्व घटित होता है। 'दुग्धुमाटक'^५ और 'महानाटक'^६ में ये सप्त-ताल घनीय है और वे बालि की आत्मा से राम से मुक्त करने के लिए बब आये बढ़ते हैं, तब राम उन्हें एक ही बाण से समाप्त कर देते हैं क्योंकि वहाँ लक्ष्मण के अनुहार सप्ततालों के भेद में यदि पहला बाण अयफल हो जाता है तो वे सप्तताल आनामक को ही मार सकते हैं। 'द्विसप्तान' में सुधीय लक्ष्मण से कोटि-धिला उठवा कर उनकी शक्ति-परीक्षा लेता है और उसी से राम की शक्ति का अनुमान कर लेता है।^७

मुनशी ने इस धंय में 'राम-दुग्धुमान् संबाध' में शक्ति का जो सरस और आक-र्षक प्रतिपादन किया है, वह अत्यन्त कही भी प्राप्त नहीं होता है। इसके साथ ही राम की शक्ति का प्रभावशाली बर्णन करके भी जगहोंसे उसे परीक्षा की प्रार्थना से बचा कर, राम और सुधीय दोनों के चरित्र को और भी उत्कृष्ट चित्रित कर दिया है।

- | | |
|--|-------------------------------|
| १ अनर्ष रामायण १।११ के बाद | २ उ० मंजरी । द्विक्रिया ८७-९८ |
| ३ भट्टिकाव्य १।११४-११८ | ४ रामवीय १०।६९ |
| ५ बभ्रु रामायण ४।१२ के बाद | ६ अभिषेक १।१ |
| ७ महावीर चरित १।३८ के बाद
१।३४ के बाद | ८ अनर्ष रामायण १।२१ २२ |
| १० महानाटक ३।१९ ३१ | ९ दुग्धुमाटक ४।४४-४० |
| | ११ द्विसप्तान १।२।४४ |

(२) बालि-वध—राम को 'ममू पहचान कर 'मानस' का सुधीव जब लौकिक आकर्षणों से विरक्त होकर उनकी शक्ति करना चाहता है, तब राम उसको अपने ही प्रयास से समझा हुआ कर उसे बालि के पास मुक्त करने के लिए भेज देते हैं। सुधीव की सलकार से राम बालि के पीछे पर उसकी पत्नी द्वारा उसे रोकती है और उसके राम तथा मरुतम के बल का उत्सोह करती है। उस समय बालि, राम को 'समझाई कह कर उन्हें पुष्ट से निरपेक्ष बतधाता है तथा उनके हाथों से अपनी मृत्यु में मुक्ति का संकेत भी करता है।^१ बालि-सुधीव-मुक्त से सुधीव के हार कर मानस पर राम उसे पुष्पहार पहना कर खुशारा प्रेरित करते हैं। फिर भी सुधीव को हारते देखकर वे एक बाण से बालि को मृतप्राय कर देने हैं।^२ बालि के द्वारा मरने बच का कारण पूछे जाने पर राम उसको 'बभ्रुव-वपु-दूरन' का दोषी और अपने माधित सुधीव का द्वेषी बतलाते हैं। बालि के सभी भाव लेने पर राम उससे भीरु रहने का आग्रह करते हैं पर वह मृत्यु के समय उनके दर्शन को महत्वपूर्ण बतसा कर बाकि पीना नहीं चाहता है। इसके पश्चात् वह अपने पुत्र अंबद को राम के चरणों में सौंप कर प्राणत्याग कर देता है और राम उसे मित्र धाम भेज देते हैं।^३ वसुपुत्र द्वारा को 'पतिमरुत' से श्याकुल लेकर राम उसे शापोपदेश देकर शांत करते हैं और मरुतम के द्वारा सुधीव की राज्य और अंबद को वीरपुत्र्य दिलवा कर उनकी समिपेक भी करवा देते हैं।^४ इस प्रसंग में तुलसी ने बालि की मुक्ति-बाधना सुधीव-बालि-मुक्त राम बालि-संवाद और बालि की हरिप्राण प्राप्ति आदि का विशेष वर्णन किया है।

(६) बालि की मुक्ति माया—अध्यात्म समाप्त का बालि राम की मुक्त-निरपेक्षता और ईश्वरता का उत्सोह तो ठारा से करता है किन्तु उनके हाथों से अपनी मृत्यु की कल्पना भी नहीं करता है। वह तो राम का त्याग करके उनके जाने का हार में जाने की योजना बनाता है।^५ मृत्यु के समय वह राम से अपनी मुक्ति का संकेत अंतरण करता है।^६ तुलसी ने इन दोनों बातों को एकत्र समन्वित करके उसमें नीतिकता का संसार दिया है। इसके अतिरिक्त वह वर्णन अत्यन्त कहीं नहीं मिलता है।

(७) सुधीव-बालि-मुक्त—रामायण-मन्त्रो ७ * 'अटिटाव्य' ८,

१ मानस ४७

२ मानस ४८

३ , ४९-१०

४ " ४९१

५ अश्वाम रामायण । विष्णुवा

६ अध्यात्म रामायण । विष्णुवा

२१४-१७

२१४ २७

७ रा० मन्त्रो । विष्णुवा । १०१-१२६

'पञ्चुरामायण'^१, 'राघवीय'^२, 'महाभारत'^३, 'अभियेक'^४ आदि का वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत समानता रखता है। 'हनुमन्नाटक'^५ 'महावीर चरित'^६ और 'मनपरायण'^७ आदि में तो केवल राम और बालि के युद्ध का उल्लेख किया गया है। 'हनुमन्नाटक' में वारा सुपीक की पत्नी है और इसीलिए वह 'बालि-वध' के लिए अधिक उत्सुक है।^८ ये दोनों नाटकों में वारा का नामोल्लेख नहीं है। उसके मायह का वर्णन केवल 'महाभारत' और 'रामायण-संस्मरणी' में मिलता है। 'महाभारत' की वारा 'सर्वभूतस्तत्रा' (सब प्राणियों की माया मानने वाली) है, इसीलिए वह सुपीक की पत्नी से ही यह जान लेती है कि उसे राम की रूपा प्राप्त हो गई है।^९ 'रामायण-संस्मरणी' में उसके यह ज्ञान अंगद की सूचना पर व्यापारित है।^{१०}

(८) राम बालि-संवाद-संस्कृत के ग्रंथों का बालि राम को बहुत गरी-साटी मुनाता है। 'रामायण-संस्मरणी' में वह राम को बर्षोंका विध्वंसी सवाचार हीन सर्वभूतपक्षारी विषप्रपाती प्रच्छन्नपाती शम्भुज्ज मिथ्याबिनीत आदि बहता है।^{११} 'मट्टिकाव्य'^{१२} में वह उनको भूपाहनिर्वाची छत्रम तापस मन्थगासकपाठी बद्ध-हरया-पावी वारकृपा किञ्च आदि कह कर सम्बोधित करता है।^{१३} 'हनुमन्नाटक'^{१४} और 'रामायण-संस्मरणी'^{१५} का बालि राम से यह भी कहता है कि राघव तो उसके जरा में रह चुका है अतः वह उसको विवश करके उन्हें सीता को सीध दिना सज्जा का। वहीं भी उसके द्वारा बूढ़े जाने पर राम उसके बध का कारण भ्रातृ-जाया रति और (दाया) सुगत बतलाते हैं।^{१६} 'मट्टिकाव्य'^{१७}, 'राघवीय'^{१८} 'अभियेक'^{१९} 'महानाटक'^{२०} आदि में है अतः शक्यत्व का भी उल्लेख करते हैं। 'अभियेक' का बालि 'घातुजावाभजन' को भजना जाति-धर्म

१ पंचुरामायण ४।१३ क बाद

२ राघवीय १।१००-८२

४ अभियेक १।१०-१६

६ महावीर चरित ३।१०-१३

५ हनुमन्नाटक ३।११

१० रा० संस्मरणी। किरिग्या। ११२-१४६

११ ' ' ' । १९९-१९६

१२ मट्टिकाव्य ६।१२६-१३६ १३ हनुमन्नाटक ३।१६

१४ रा संस्मरणी। किरिग्या। १००-१०२

१५ ' ' ' । १००-१०५

१६ मट्टिकाव्य ६।१३५-१३६ १७ राघवीय

१८ अभियेक १।१६ १९ महानाटक ४।१०

बतलाता है और उसके अर्चन होने पर वह सुग्रीव को भी समान अपराधी कहता है। इस पर राम कैवल बड़े माई लो ही हब विसा में अपराधी बतलाते हैं।^१

(९) शान्ति की हरिधाम प्राप्ति—पद्मपुराण में शान्ति के द्वारा अपनी मृत्यु के समय राम के ईश्वरत्व का वर्णन करते और उनके 'सद्गति देने की प्रार्थना' करने का उल्लेख है। मग्य ग्रंथों में इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

इस अर्थ में सुग्रीव ने अपने उद्देश्य विधेय के कारण सुग्रीव के विराय शान्ति की मूर्ति-भावना और उनकी 'हरिधाम प्राप्ति' आदि की मौलिक योजना प्रस्तुत करके विधेय चमत्कार का सुझाव कर दिया है जो संशुद्ध अर्थों में सुलभ नहीं है।

(१०) सीता-शोच—सुग्रीव के राक्षसविधेय के परभाव राम अविरम्य हो जाने के कारण सीता-शोच में विवश होकर समीप के ही प्रवर्षण-वर्षत पर प्रयास करते हैं। वर्षाकाळ के बाद भी सुग्रीव को निरस्तोद्योग जानकर वे बहुत दुःख होते हैं और लक्ष्मण को भेज कर उसे बुलावाते हैं।^२ इसपर सुग्रीव को प्रयास-शुद्ध रेष कर हनुमान उसे धामादि उपार्थों से समझाते हैं तथा बानर-भूतों को बुझाने की व्यवस्था भी करते हैं और उपर लक्ष्मण को कूट होकर आते देख कर वे उन्हें मनाते हैं। फिर सुग्रीव उसके साथ राम से लचीप जाकर उनसे समा मांय मेला है और बानर-भूतों को बुझा कर उन्हें सीता-शोच के लिये चारों ओर जाने और अधिक से अधिक एक मास में ही लौट जाने का आदेश देता है।^३ उसके अन्त में वह हनुमान् अंपर जन नील और आमकन्त आदि को बुझा कर दक्षिण दिशा में भेजता है। उन्ही समय राम हनुमान् को अपनी मुद्रिका देकर उन्हें सीता से मिलने और आह्वान करने के लिए समझाते हैं।^४ मार्ग में व्यास से विकल होकर बानर-भूत एक पर्वत-विबर में प्रवेश करते हैं जहाँ उन्हें एक उपस्थिती स्त्री के दर्शन होते हैं। वह उनका स्थापन करके उन्हें सीता प्राप्ति की सात्त्वना देती है और उनसे अपनी आर्ति बन्ध करके बाहर जाने जाने का अनुरोध भी करती है।^५ इसपर बाहर आते ही वे सब बानर-भूत समूह को सामन रेष कर बिलामल हो जाते हैं और उपर वह उपस्थिती राम के पाव जाकर जननी स्तुति करती है और उनसे अनपापिनी भक्ति का बरदाय पाकर बहतीबन बनी जाती है।^६ समुद्र-उद पर बानरों का कोलाहल गुण बटावु का बड़ा बरि सम्पाति अपनी पर्वतगुण से बाहर निकल कर बर्गु देखाता है और अपना आहार समन कर बड़ा प्रसन्न होता है।^७

१ अजिपेक १।११ के बाद-२१

२ मानस ४।१८

३ " ४।२३

४ " ४।२६

५ पद्य १ पाठाल १।१६।३० के बाद

६ मानस ४।११-१२

७ " ४।२४-२५

८ " ४।२७

किन्तु अंततः से उदाय-कथा सुनकर वह खिम हो जाता है और उन सबको अन्ततः दान देकर अपने और उदाय के प्रावृत्त तथा सूर्य अभिमान आदि के सम्मुख में बगलाता है। वह अन्ततः मृग की उत भविष्यवाणी का जो उल्लेख करता है कि राम दुर्ग के दर्शन से उने नये पंखों की प्राप्ति होगी, जिससे उरम विद्ध होने पर वह उन सबको उका में स्थित छोटा का पठा बतसाता है और दागर-पार करके वहाँ जाने का पत्र मन्त्र देकर जाता जाता है।^१ इस प्रकार इस प्रसंग में सुधीव-प्रमाद वातरुत-अपम, उपस्थिती-भिसन और सम्प्राति-विस्तन का विवेचन यथार्थ किया गया है। संस्कृत साहित्य में इसकी मनेक कथा दर्शनीय है।

(११) सुधीव-प्रमाद—संस्कृत काव्यों में इसका वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। 'राम-चरित' महाकाव्य का आरम्भ ही इसी से होता है। वही सप्तम सुधीव के प्रमाद का उल्लेख करते हुए उसे धर्म करने के लिए अब राम से किङ्किण्य जाने की आज्ञा माँघते हैं तब राम सुधीव के प्रति निराशा व्यक्त करते हैं। फिर भी उदाय और कश्यप के बचनों का उल्लेख करके वे सप्तम से कहते हैं कि उन्हें उनके स्वर्ग आवमन की प्रतीक्षा करनी चाहिए।^२ वहाँ सुधीव के जाने पर राम उतकी सहायता वस्तीकार कर देते हैं और अब वे उतसे लौट जाने का अनुरोध करते हैं, तब सुधीव अपने प्रमाद के लिए क्षमा माँघ लेता है।^३

'रामायण-संज्ञी' के राम सुधीव की कार्यपराङ्मुख स्वार्थ परिच्छिन्न दुःखता आदि बतना कर पहले सप्तम को आदेश देते हैं कि वे सुधीव से यह स्पष्ट कह दें कि यदि वह उनको भोगा करेगा तो वे उसे क्षान्ति की उच्छ समाप्त कर देंगे।^४ फिर उन्हें रोक कर वे सुधीव से मन्त्र व्यह्वार ही करने के लिए उनसे अनुरोध करते हैं।^५ वहाँ उरम कुछ सप्तम से यह भी कहती है कि उनके लिए सुधीव राम के समान ही युग्म है।^६ 'महाभारत' के भी राम सुधीव का साम्यपरमप्रमत्त, स्वार्थ परिच्छिन्न दुःखता कश्यप, वातराजस्य, आदि मान कर सप्तम को आदेश देते हैं कि वे किङ्किण्य आकर उसे यदि भोगाच्छ पावें तो उसे वही समाप्त कर दें, अन्यथा उसे उनके पाव बलावें। वहाँ सप्तम के जाने पर सुधीव स्वर्ग को अह्वयन मान कर अपनी लारी यात्रायें उनको बतसाता है कि उतने दुर्ग को एक माग की प्रथम देकर वहाँ वार पहुँचे ही भिन्न किया है।^७ 'किङ्किण्य' में भी राम सुधीव के लिए यथार्थ (स्वर्ग) प्रमत्त गृहस्थापुत्र स्त्रीवत्याक, स्त्रीसुधुधाक आदि विवेचनीय प्रयोग करते हुए सप्तम से कहते हैं कि वह प्रमाद सुधीव भी उच्छवद क्षान्ति की

१ मातस्य ४।२०-२१

२ रामचरित १।२०-११

३ रामचरित १।२१-१०

४ राम संज्ञी। किङ्किण्य। ११-०१

५ राम संज्ञी। किङ्किण्य। १०१-०२

६ " " " " १।११-१२

७ महाभारत। वन। २०२।२।२२

उन्हें उनके हाथों से मरना चाहता है। 'अमूरामायण' 'अग्निपुराण' और 'राघवीय' में भी राम-सौम का ऐसा ही उल्लेख मिलता है।

तुलसी ने इस प्रसंग के विस्तार में बड़े संयम से काम लिया है। संस्कृत काव्यों की परम्परा के अनुसार वे राम के 'मानवोचित' श्लेष का वर्णन करते हैं और सीम ही उसे अरुन्धती कह कर उल्लेखनीयता का सम्पादन भी कर देते हैं। अस्मय के श्लेष का संकेत करते हुए भी वे सुग्रीव की मर्यादा की रक्षा के लिए उसे व्यक्त नहीं होने देते हैं, जबकि संस्कृत ग्रन्थों के अरुन्धती प्रायः सर्वत्र अपनी सीमा का उल्लंघन कर जाते हैं।

(१२) वानर-दूत प्रेषण—'रामायण-मंजरी' में वानर-दूतों का बड़े विस्तार से नामोस्तेज किया गया है। वहाँ पूर्व दिशा में विनत दक्षिण दिशा में आम्बवान् पश्चिम दिशा में सुपेय और उत्तर दिशा में उतकलि के प्रमुख दूत बन कर जाने का उल्लेख किया गया है।^१ वहाँ सुग्रीव उन्हें चारों दिशाओं की तरफों, पर्वतों, देवों और उनके निवासियों का पूर्ण विवरण देकर उनको बड़ी उत्कण्ठा के साथ अपने अपने श्लेष में सीता-श्लेष करने के लिए आदेश देता है। राम के वृद्धने पर सुग्रीव अपने इस विस्तृत भौतिक ज्ञान का कारण 'मानि नम' बतलाया है जिससे आर्तकृत होकर मटकते रहने के कारण उसे देह का इतना अधिक परिचय प्राप्त हो गया है।^२ वहाँ पूर्व पश्चिम और उत्तर के नायकों के निरास सीट जाने के पश्चात् ही दक्षिण दक्ष के श्लेष जाने का उल्लेख है। 'अमूरामायण', 'राघवीय' 'मट्टिकाव्य' आदि में भी विनत आदि के इन्हीं दिशाओं में विपुल विज्ञान का वर्णन है किन्तु वहाँ भौतिक विवरण नहीं मिलता है और अन्तिम दो श्लेषों में विनत आदि के सीटने का उल्लेख भी नहीं है। 'महामारत' में भी विनय आदि का नामोस्तेज नहीं है किन्तु श्लेष वर्णन मया है।^३

'रामचरित' में यह वर्णन अति विस्तृत है। वहाँ सुग्रीव राम के समय सभी वानर-सेना-पठियों का परिचय देता है और उतकलि सुपेय और विनत की पूर्वोक्त दिशाओं का निवासी तथा केशरी तार नवास दक्षिण अम्बवान नर कमरवान् मीन द्विविद वनत, आम्बवान् नर नील हनुमान् आदि की सर्वव्यापी

- | | |
|------------------------------|----------------------------------|
| १ मट्टिकाव्य ७।१६-१८ | २ अमूरामायण। किरिण्डा। १४ के बाद |
| ३ अग्निपुराण ६।३-७ | ४ राघवीय १।१७-१९ |
| ५ रामचरित। किरिण्डा। १०१-१६२ | ६ रामचरित। किरिण्डा। १२१६-१२४४ |
| ७ " " " १२४५-४७ | ७ अमूरामायण। ११८ |
| ८ राघवीय १।१६६-७० | ८ मट्टिकाव्य ७।१३-१९ |
| ९ महामारत। वन। २८२।२३-२४ | |

कह कर जब उनसे ही इन बातों की नियुक्ति की प्रार्थना करता है।^१ तब राम सीता की मृत्यु की कल्पना करके सुवीच से मोट माने का आग्रह करते हैं और कहते कि यदि वे वातर-दूध कही सीता को दूध भी जैसे तो भी परिचय के अभाव में वे उन्हें पहचान नहीं सकेंगे।^२ फिर सुवीच के अनुरोध पर वे सीता के रूप गुणों, मूच्छ और मकट मुंदादों आदि का विवरण देकर उनके रक्त चरम कुट्यनमन सम्मिश्र अक्षर और चूड़ामणि आदि की विशेष पहचान भी बतलाते हैं।^३ वहाँ दूधों को भेजते समय किसी के लिए किसी दिशा विशेष का संकेत नहीं किया गया है। वहाँ हनुमान् की प्रस्थान के लिये उद्यत देख कर राम उनको रोक लेते हैं और समस्त सीता के रूप और गुण का पुनः अत्यन्त विस्तृत वर्णन करके अपनी पहचान के लिए उन्हें अपनी मुद्रिका और सीता का नमिनूपुर तथा स्तमोत्तरीय भी दे देते हैं। इसके पश्चात् वे उन्हें परिचय और अभिज्ञान हेतु सिद्धांशे हुए 'सीताहरण' के पश्चात् 'वातरदूध प्रपञ्च' से सम्बन्धित अपने उद्योगों 'दिसीर' से लेकर 'वत्सरण तक अपने बन्ध के पूर्वजों' और 'अम्ब-राजस प्राप्त से लेकर अपने अन्न विवाह निर्वातन और विमकट प्रवास' तक की बटनाओं का समस्त विवरण भी देते हैं। इसके साथ ही वे अपने अपना बस-वर्णन भी करते हैं।^४ वहाँ हनुमान् आदि एक माद्य तक वहाँ ठहर कर अन्ध विश्वासी के सभी दूधों के निराश सीट माने पर ही वहाँ से प्रस्थान करते हैं।^५ इन दूधों के विवरण के माध्यम से लेखक ने वहाँ भारत से दक्षिणापथ का उत्काशीन भौगोलिक विवर्णन विस्तार से प्रस्तुत कर दिया है।^६

रामायण-सम्बन्धी, रामबीम^७ मट्टिकाप्य^८ हनुमत्पाठक^९ आदि में भी इस अवसर पर हनुमान् के साथ राम के सम्बन्ध तथा मुद्रिका-दान का बयान किया गया है। रघुवंश^{१०}, अम्बु रामायण^{११} अग्निपुराण^{१२} प्रसन्न रामयण^{१३} आदि में संवाद न होने पर भी मुद्रिका का उल्लेख 'सीता-हनुमान्-संवाद' में अवश्य मिलता है किन्तु महाभारत^{१४} और पद्मपुराण^{१५} में मुद्रिका का भी कोई उल्लेख नहीं है।

मुमची ने इस वर्णन में अपनी मनोवैज्ञानिक मूल्यान्वय का बड़ा महत्त्वा परिचय

१	रामचरित ६।२-८६	२	रामचरित ७।२६-२२
३	७।३८-८०	४	८।१-२३
५	८।२४-३९	६	८।४०-२३
७	८।३४-६३	८	१०।१०९
९	१०।११-१०३	१०	रा० संखरी । क्रिष्णधा १२४३ ३४६
११	रामबीम १।१०१-७४	१२	मट्टिकाराम्य ७।४७-३०
१३	हनुमत्पाठक ९।७	१४	रघुवंश १।१।६२
१५	अम्बु रामायण ५।३०	१६	अग्निपुराण ८।११, ९।६
१७	प्रसन्नरामयण १।१८	१८	महाभारत । वन । २८२ । ६२-७१
१९	१५ । उच्छर । २४२ । २९०		

दिया है। संस्कृत के वर्णनों में न तो उतनी हादिकता है और न आरभीयता। 'रामचरित' के अनावश्यक विस्तार को ही संस्कृत के ही अन्य ग्रंथों में कहीं समर्पण प्राप्त नहीं हुआ है। संस्कृत के कवि इस अवसर पर अपने शैथिलिक ज्ञान के प्रदर्शन में प्रवृत्त होकर राम के बिरही हृदय के तीव्र स्पर्शन को प्रायः विस्तृत मूक मये। बिरहकाल में जब एक क्षण मूक सा झटील हो रहा हो तब इतना बड़ा विस्तार प्रस्तुत कर देना कवि के महाकवित्व का परिचायक धर्म ही हो। उसके कवि हृदय का प्रमाण नहीं देता है। तुमही ने इस प्रसंग में संक्षेप के प्रयोग से एक मार्मिक प्रभाव उत्पन्न कर दिया है।

(१३) उपस्वनी-मिज्ञान—'मानस' में 'उपरिबनी' का कोई नाम नहीं दिया गया है, किन्तु 'रामायण-मञ्जरी' में उसका नाम 'स्वयंप्रभा' बतसाया गया है। वहाँ उसके शीघ्र्य और आनन्दों के साथ उसके संसार का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। वे हृत्पथ यहाँ एक मास तक आनन्द करते हैं फिर स्वयंप्रभा उनकी बाँसों बन्द करा के उन्हें मुख से बाहर समुद्र-तट पर पहुँचा देती है। 'रामचरित' में मुख में प्रवेश करते ही आनन्दों की पहली भेंट 'दुर्लभ' नामक राखस से होती है, जिसे अंततः समाप्त करते हैं। वहाँ पर एक आनंदी हनुमान से दो बार प्रेम प्रस्ताव करती है और तिरस्कृत होती है, फिर स्वयंप्रभा के आते ही वह अक्षुब्ध हो जाती है। वहाँ भी स्वयंप्रभा के शीघ्र्य और उसके अग्नि-वृत्तान्त का विस्तृत वर्णन किया गया है। 'अट्टिकाव्य' 'राखसीय', 'अभू रामायण' आदि में भी स्वयंप्रभा के द्वारा आनन्दों के स्वागत तथा उन्हें समुद्रतट तक पहुँचाने का ऐसा ही समान वर्णन मिलता है। 'महाभारत' में उस उपस्वनी का नाम प्रभावती है और वहाँ उसके द्वारा किये गये आनन्दों के केवल स्वागत का ही उल्लेख है। 'अग्निपुराण' के अनुसार उसका नाम सुप्रभा है। वहाँ स्वागत आदि का कोई उल्लेख नहीं है।

तुमही ने इस प्रसंग को भी आवश्यकता के अनुसार संक्षिप्त करके अपनी शुद्धि का प्रमाण दिया है। इसके साथ ही अपने सिद्धांत-विरोध के अनुरोध से उन्होंने स्वयंप्रभा को 'रामचरित' का विचार वर्णन करके सारे प्रसंग में एक नवीनता का सृजन कर दिया है।

(१४) सम्पाति-मिज्ञान—'रामायण मञ्जरी' का वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत साम्य रखता है। वहाँ सम्पाति अंत से सब कुछ जानकर राखस के बप

१ रा० मञ्जरी। कल्पिता १३२७-३३२

२ रामचरित १११४-११४ से ११३३

३ अट्टिकाव्य ७।१२-७०

४ रामसीय ११७७

५ अभू रामायण ४।१६ के बाद

६ महाभारत। वन १२८२-४१-४५

७ अग्निपुराण ८।११

करने की इच्छा व्यक्त करता है, किन्तु बूढ़ता के कारण अपने को असमर्थ बतलाता है। वह अपने और बटायु के 'सूर्य-अभियान' का वर्णन करता हुआ 'निष्कार' मृत्ति को कपा और उनके बरवान का भी उल्लेख करता है।^१ 'रामचरित' का सम्पाति अपने और बटायु के मेघ हिमालय ध्रुवद्वय, सूर्य आदि के अभिधानों का उल्लेख करता है। वहाँ निष्कार मृत्ति के बरवान का उल्लेख 'मानस' के वर्णन के समान ही है।^२ इन दोनों ग्रंथों में सम्पाति के और उसके पुत्र सुपाशर्ष के सीता रक्षा के लिए किये गये उपयोगों का भी विस्तार निरूपण मिलता है।^३ बम्पू रामायण राम कथा 'अग्निपुराण' 'रामवीथ' आदि में भी इसी प्रकार सम्पाति के द्वारा पराप्ति तथा 'सीता की प्रकृति' बतलाने का वर्णन किया गया है। महाभारत^४ और मद्रिदकाम्य^५ में उसको 'पदप्राप्ति' का उल्लेख नहीं है। रघुवंश में केवल एक पंक्ति में ही 'सीता प्रकृति' का उल्लेख किया गया है।^६

'मानस' के इस प्रसंग में लक्ष्मी ने परम्परा से प्राप्त कथा को बढ़-कीचड़ से संक्षेप में समन्वित किया है। अन्त में सम्पाति के मुख से रामचरित के महत्त्व का निरूपण करा के उन्होंने उसमें असीकिक भङ्गा का पूट दे दिया है, जो अल्प संक्षेप ग्रंथों में दुर्लभ है।

५ सुन्दर काण्ड

विद्यमे काण्ड में सम्पाति के उल्लेख से हनुमान् आदि को सीता के संका में होने का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। इसके पश्चात् इस काण्ड में हनुमान् समुद्र-संघन^७ 'हनुमान् विभीषण-मिलन' 'हनुमान्-सीता-मिलन' 'संका-बहन' विभीषण की करणागति और 'समुद्र घाटन' आदि का विशेष वर्णन किया गया है। संस्कृत के ग्रंथों में इन प्रसंगों में अनेक विभिन्नतायें प्राप्त होती हैं।

(१) हनुमान समुद्र-संघन—'सीता-बहन' के लिये संका पहुंचने के विचार से 'मानस' के हनुमान् जब समुद्र-संघन करने समर्थ हैं तब समुद्र उनके राम-पुत्र होने के नाते उनका विधायन और सहायता देने के लिए समुद्र 'मैनाक' को भेजता है। हनुमान् उसे बनाबदक बढ़ कर छाहर बिधा कर बैठे हैं।^८ फिर नागमाता गुरता देवताओं की प्रेरणा से उनको दस बुद्धि बरीला के लिए उनके पास आकर

- | | | | |
|----|-----------------------------------|----|--------------------------|
| १ | रा० मन्त्ररी । किष्किण्या १११-४१४ | | |
| २ | रामचरित १४।१६-३० | ३ | मानस निरूपण, पृष्ठ ८, १४ |
| ४ | बम्पूरामायण । किष्किण्या । ४०-४१ | ५ | रामकथा, पृष्ठ ३० |
| ६ | अग्निपुराण ८।१३-१४ | ७ | रामवीथ ११।३८-३९ |
| ८ | महाभारत । वन । २८२।४७-४७ | ९ | मद्रिदकाम्य ७।७१-१०१ |
| १० | रघुवंश । १।२।६० | ११ | मानस २।१ |

उन्हें जाने का विचार प्रकट करती हैं। हनुमान उसे समझाते हैं, किन्तु उसके न मानने और अपना मुँह 'एक योजन' चौड़ा बना लेने पर वे भी अपने मुँह को 'दो योजन' का बना लेते हैं। फिर उसके 'दोसह योजन' का मुँह बना लेने पर वे 'बत्तीस योजन' का मुँह बना लेते हैं। वे उसके मुख विस्तार के उत्तर में अपने मुख विस्तार को बराबर बुनुमा रखते हुए अन्त में उसके 'सो योजन' कर लेने पर स्वयं 'अति अनुकूप चारण करके उसके मुख में प्रवेश करके घीस ही बाहर निकल जाते हैं और उससे विदा माँगते हैं। हनुमान भी वह दृष्टा देखकर सुरसा उन्हें रामकार्य सम्पन्न करने का आशीर्वाद भी दे देती है।^१

वहाँ सुरसा के बाद हनुमान की भेंट एक छाया-प्राहिणी निरचरी से होती है, जिसे मार कर वे समुद्र के पार पहुँच जाते हैं।^२ वहाँ उनके द्वारा 'मन्त्रक रूप' चारण करके संका में प्रवेश करने पर भी अन्धभी राखती बन्हीं पकड़ लेती हैं। जब हनुमान उसके मुक्ति वाले के लिए उस पर मुष्टि प्रहार करते हैं तब वह उनसे बह्या के बचनों का उत्सीख करती हुई निघाचर नाथ की अबिष्यवाणी करती है और उन्हें 'अंका-प्रवेश' की अनुमति दे देती है।^३

'रामायण-मन्त्ररी' का यह वर्णन 'मानस' के वर्णन के समान होने पर भी अधिक विस्तृत है। वहाँ समुद्र की घेरना के बाप-ठाप बापु के उपकार का परमा चुकाने के लिये भी मैनाक बापु-पुत्र हनुमान की सहायता करना चाहता है। 'सुरसा-वर्णन' में वहाँ सुरसा के राक्षस-रूप चारण करने और उस योजन का मुँह बपाने का वर्णन है। वहाँ भी उसके 'सो योजन' का मुँह कर लेने पर हनुमान अमुष्ट-मात्र होकर उसके मुँह में प्रवेश करते और बाहर निकलते हैं। वहाँ उसके आधीर्वाह का संकेत नहीं है।^४ छाया प्राहिणी निरचरी का नाम वहाँ राहुपाठा सिद्धिका है जिसके द्वारा रोके जाने पर हनुमान उसके मुँह में प्रवेश करके तथा उसका बलस्थल फाड़ करके बाहर निकल जाते हैं।^५ 'रामचरित' में नाममाता सुरसा के रवाना पर देवदाता सरमा का वर्णन है। वहाँ वे दोनों (हनुमान और सुरसा) एक हृदये को वराचित करने के लिये आकाश में अपने शरीर का विस्तार करते हैं। अन्त में हनुमान वहाँ 'अनुकूप' होकर उसकी स्तुति करते हैं और विदा माँद लेते हैं। वहाँ सरमा के बाद मनाक का वर्णन है फिर हनुमान और सिद्धिका का

१ मानस १।२

२ मानस १।३

३ " १।४-२

४ रा० मन्त्ररी । किष्किपा । १४१-१४३

५ रा० मन्त्ररी । विविग्धा । १४८-१५०

६ " " १६०-१४

७ रामचरित १।४१ ८९

विरतुत संवाद भी है। 'मट्टिकाय्य', 'राक्षसीय', 'बम्पू रामायण' आदि में भी मीनाक बायु के उपकार का संकेत करता है। मट्टिकाय्य में 'मीनाक-मिलन' से पूर्व हनुमान की चोंट एक बग्य राक्षसी से बलिष्ठ हुई जिसके मुख में घुस कर और उसका पेट फाड़ कर वे बाहर निकलते हैं। इसके बाद वे ब्रह्म में स्थित हो योगन के मुख वाली किसी दूसरी राक्षसी के मुख में बज्जु बनकर प्रवेश करते हैं और बाहर आ जाते हैं। 'राक्षसीय' और 'बम्पू रामायण' में भी मागमाता सुरसा का वर्णन है। 'राक्षसीय' में उसके आघातों का भी उल्लेख मिलता है। इन दोनों ग्रंथों में 'सिंहिका' का वर्णन भी 'मानस' के वर्णन के समान है।

संस्कृत के ग्रंथों में इन तीनों बाबाओं के जन्म और संख्या में भी बड़ा अंतर मिलता है। बम्पू रामायण, राक्षसीय और रामायण मध्यजरी में 'मानस' के समान ही मीनाक सुरसा और सिंहिका का क्रम है। 'रामचरित' में सुरसा मीनाक और सिंहिका हैं तो मट्टिकाय्य में सिंहिका, मीनाक और सुरसा हैं। 'वशावतार चरित' में केवल दो बाबायें हैं सिंहिका और मीनाक। 'अग्निपुराण' में पहले मीनाक है फिर सिंहिका और 'रघुवीर चरित' में पहले सुरसा है फिर सिंहिका। 'हनुमत्प्राटक' में केवल मीनाक है और 'महाभारत' में केवल जल-राक्षसी है। 'सकिनी' का वर्णन केवल 'बम्पू रामायण' में है। वहाँ उसे 'संक्रामि-वेवता' कहा गया है। 'अध्यात्म रामायण' की लंकिनी हनुमान को अशोकवाटिका में स्थित सीता का पता भी बतलाती है।

संस्कृत ग्रंथों से परम्परा प्राप्त इतने वर्णन को 'मानस' में यथोचित स्थान देकर तुलसी ने उसमें भी 'रामभक्ति' के समन्वय से एक विशेष अमरकार उत्पन्न कर दिया है।

(२) हनुमान् विभीषण-मिलन—संका में प्रवेश करने के पश्चात् हनुमान् सीता को प्रतिभवन योजकें हुए, विभीषण के द्वार पर पहुँच जाते हैं। वहाँ उसे 'रामाशुप' से अंकित और 'गुरुसीशुप' से शोभित देखकर उन्हें आश्चर्य होता है। उसी समय विभीषण के आगने और राम नाम के उच्चारण करने पर उनकी उसकी

१ रामचरित ११।८१-११०

२ राक्षसीय १२।२१-२२

३ मट्टिकाय्य ८।१-२४

४ बम्पू रामायण १।७-८

५ अग्निपुराण १।३

६ हनुमत्प्राटक १।११

७ बम्पूरामायण १।१२ के बाद

८ मट्टिकाय्य ८।८, १४

९ बम्पू रामायण १।३

१० राक्षसीय १२।३६-४३

११ वशावतार चरित ७।१८२-१८०

१२ रघुवीर चरित १।१४६, २०

१३ महाभारत । वन । २८२।२९

१४ अध्यात्म रामायण । गुह्य

‘राममत्त’ होने का निश्चय हो जाता है और वे उससे परिचय करते हुए अपनी सारी कथा बतलाते हैं। जब वे उससे सीता का पता पूछते हैं, तब वह उन्हें पता के साथ-साथ उनसे मिलने की सारी सुविधा भी बतला देता है।^१

यह प्रसंग तुलसी की मौखिक कल्पना है क्योंकि यह संस्कृत के किसी भी ग्रंथ में प्राप्त नहीं होता है। संस्कृत साहित्य में रावण और विभीषण के सम्बन्धों में कोई बाह्य अन्तर नहीं दिखाया गया है। इसीलिये हनुमान वहाँ दोनों में तपान रूप से ही शोध करते हैं। तुलसी ने विभीषण के राममत्त होने के नाते उसके अन्त में सीता-शोध को अनुचित समझ करके उसे एक पुष्कल रूप दे दिया है और विभीषण के मुँह से हनुमान को सीता की प्रशंसा कहना करके उन्होंने राम मित्र के रूप में ही विभीषण को सक्रिय राममत्त का स्पष्ट प्रमाण भी दे दिया है।

(१) हनुमान्-सीता मिलन—विभीषण के संकेत से हनुमान अशोक बाटिका में सीता के प्रथम दर्शन करके जब उनसे मिलने का विचार करते हैं तभी रावण अनेक स्थितियों के सामने आ जाता है। वह सीता की साम बादि सभी अपायों से बहुत समझाता है और अन्त में केवल एक बार देव सेने को कृपा करने पर वह उनके समय मगधोदरी जावि अपनी सब राशियों को उनकी राती तक बना देने का निश्चय व्यक्त करता है। रावण के इस हठ पर सीता उसे बहुत फटकारती है और उसको राम के पराक्रम का पुनः स्मरण कराती है। जब रावण सीता की इस उपेक्षा को अपना अपमान समझ कर उनका फिर काट जानने की धमकी देकर बीड़ता है तब मगधोदरी उस रोक सेती है। फिर वह सीता को एक मास की मर्यादा देकर और राशियों को उन्हें बस्त करने का आदेश देकर चला जाता है।^२ इसके बाद वहाँ मित्रता से राशियों को अपना एक स्वप्न सुनाती है। मित्रों से संकाशाह, रासनास रावण-दुरता और विभीषण-राज्यप्राप्ति आदि का संकेत है।^३ उस स्वप्न को सुनते ही राशियों के भाग जाने पर सीता मित्रता से राम-विरह को बसझ बतला कर उनसे बिठा बनाने और माप लाने की प्रार्थना करती है, किन्तु वह रात में भाग को दुर्लभ बतला कर वहाँ से चली जाती है। फिर सीता जब अशोक वृक्ष से प्रार्थना करती है कि वह अपना नाम सार्पक करने के लिये उन्हें कुछ अग्निद्वय प्रदान करदे तब वहाँ पर जिनो हुए हनुमान ‘राम-मुद्रिका’ मिला देते हैं। सीता के वरिष्ठ होने पर वे राम के मुख परसे हुए आदि से अन्त तक सब कथा सुनाते हैं और अपना वरिष्ठ्य देकर उस मुद्रिका को राम की चेंद बतलाते हैं।^४ सीता के द्वारा पूछे जाने पर वे राम के विरह का वर्णन करते हुए उनका लक्ष्य भी उन्हें देते हैं और उनको आश्वासित करते हैं।^५ हनुमान के लघु रूप को देखकर सीता

१ मातृ १।८

२ " १।११

३ " १।१४-१५

४ मातृ १।१०

५ " १।१२-१३

जब उनकी शक्ति में संका प्रयत्न करती है, तब हनुमान अपना 'कमकमूषकाकार' शरीर उनको दिखानाते हैं और उनका बाधीबाध प्राप्त करते हैं। उका-बाहू के पश्चात् हनुमान सीता से दुबारा मिलते हैं और 'ब्रह्ममणि' तथा 'ब्रह्म-रूपा' को प्रत्यभिज्ञान के रूप में लेकर समुद्र के इस पार आ जाते हैं।^१

इस प्रकार इस प्रसंग में रावण-सीता-संवाद 'त्रिजटास्वप्न' हनुमान सीता-संवाद, 'प्रत्यभिज्ञान-दान' आदि का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। संस्कृत साहित्य में इस प्रसंग में अनेक स्थलों पर उल्लेखनीय अन्तर प्राप्त होता है।

(४) रावण-सीता संवाद—संस्कृत के काव्यों में 'रामायण मञ्जरी' में सीता को लिए गए रावण के प्रलोभनों का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसके उत्तर में सीता 'मानस' की सीता के समान हो तुल्य की ओट से उसे बहुत पिनकारती है। वहाँ रावण केवल काम प्रभाव' ही उनको व्यथ्य बतलाता है और उन्हें वो मास की भवधि लेकर जमा जाता है।^२ 'रापनीय' का रावण सीता से अप्रसन्न होकर जब उनको हत्या के लिए आने बद्धता है तब उसके साथ की स्त्रियाँ उसे रोक लेती हैं। वहाँ हनुमान के द्वारा उसको भ्रूवपूर्वक देखते रहने का भी संकेत है।^३ 'रामपरित' में भी रावण की स्त्रियाँ उसको सीता-वच से रोक लेती हैं किन्तु वहाँ 'सीता-तुल्य ग्रहण' और 'भवधि' आदि का संकेत नहीं है। वहाँ सीता गुणार्थ के सम्मुख स्वयं की गई रावण की दीनता का उससे उल्लेख करती है और स्वयं को 'रावण-कुमघय-कामराशि' बतला कर उसे 'संभाव्य और 'सपरिवार-भरण' का पाप भी देती है। वहाँ भी रावण द्वारा सीता को प्राप्त देने के समय उसका सामना करने के लिए हनुमान के सतर्कतापूर्वक विप्रे-विप्रे आम बड़ने और उसके सीट जाने पर उनको भी घाउ हो जाने का वर्णन किया गया है।^४ 'मट्टिकाव्य' का रावण सीता को घमकी देकर फिर स्वयमेव पक जाता है। वहाँ तुल्य-वर्णन नहीं है किन्तु 'भवधि' 'मानस' के समान केवल एक मास ही है।^५ 'बभ्रुवामायण' का रावण अविच्छेद मोह ही रहता है। वहाँ सीता तुल्य की ओट से बानसी हुई उससे स्वयं को पश्चानी पहुँचा देने की प्रार्थना करती है। वहाँ केवल एक दिन की ही 'भवधि' का संकेत है। 'महाभारत' में रावण के हर्ष और प्रलोभन आदि का विस्तृत वर्णन है। वहाँ भी सीता तप की ओट से उसका पककारती है। वहाँ रावण के द्वारा भवधि-दान का कोई संकेत नहीं है।^६

१ मानस १।१६

२ मानस १।२७

३ रा० मञ्जरी । गुग्गुलु । २०३-२६६

४ रापनीय १३।१३-४३

५ रामपरित ११।६७-६७

६ मट्टिकाव्य ८।७४-६३

७ बभ्रुवामायण १।२० के बाद

८ महाभारत । वन । ७८।१३-१०

संस्कृत के नाटकों में से 'प्रसन्न राजव' के संवाद का 'मानस' के इस संवाद पर असरस प्रभाव है। वहाँ की विद्यामयी के इन्द्रवास (माया नाटक) में (जिसे राम और लक्ष्मण भी देख रहे हैं) इस प्रसंग का अभिनय किया गया है। वहाँ रामन सीता को ममकाने के लिए पहले अपने लड्ग 'बन्धुहास' का प्रयोग करता है, फिर वह उनके 'रक्तनाम' की कामता से एक कपाक माँगता है, उसी समय बबोक वृक्ष पर बैठे हुए हनुमान् वहीं से बम्ब का कटा हुआ धिर उसके हाथों में फेंक देते हैं जिससे धिर और ऊँड होकर वह वहाँ से तुरन्त चला जाता है। 'मारवर्ध' 'बुडामनि' का राजन तो सीता के चरणों पर अपना धिर तक रख देता है, जिसे वे ठाकाठ टुकड़ा देती हैं। वहाँ रामन के फूँड होने पर मन्दीवटी उसे रोक देती है। 'बभिवेक' की सीता अपने 'पाठिष्ठ तेज' के प्रभाव से अब रामन को क्षय देने का प्रयत्न करती है, तब वह उनके तेज की हँसी उड़ाता है। वहाँ हनुमान रामन को देख कर पहले उसके बप का बिचार करते हैं किन्तु पराक्रम की भावना से बक जाते हैं। 'हनुमनाटक' और 'महानाटक' का राजन सीता को बन्धित करने के लिए राम और लक्ष्मण के लकड़ी कटे हुए धिरों को उनके सामने रख कर उनकी अपने त्रेया-जाप और प्रलोभन से आदराठ करना चाहता है किन्तु वेद लुप्त जाने पर वह भाग जाता है और और हुआप अपने ही लकड़ी कटे हुए बस धिरों को लेकर वह राम-बेन में सीता के सम्मुख उपस्थित होता है। सीता उसे राम समझ कर मिलने के लिए अब बीड़ती है तब वह एक पाप के कारण लतीब होकर भाग जाता है। वहाँ सीता सरमा से राजन के इन पदपत्नों के रहस्य को जान करके बहुत वेद प्रपट करती है।

इस प्रसंग में तुमसी की भोलिपुता उनके सम्मुख में है। विभिन्न बर्णों से भावभयक परम्परा और सामग्री का बयन करके उगुने मानस के इस बर्णन की प्रबधिपुता प्रदान की है। इस बिबा में उगुँ कहीं से भी भाव-बर्ध पर इतीक और सृज्य प्रह्व करने में भी कोई द्विबकिबाहूट नहीं हुई है।

(५) त्रिजटा-रवपन—'रामायण-मंजरी और 'महामाण्ड में इस स्वप्न का बिस्तृत बर्णन किया गया है। वहाँ बबन प्रण में राम और लक्ष्मण के द्वारा रवेठ बरन, मास्य और मेव घोमिठ होकर निब आकाशवामी रूप पर बीठने, सीता के द्वारा समुद्र से बिरे हुए रवेठ पर्वत पर चढ़ कर राम के लान लंका में प्रवेध करने, राम और लक्ष्मण के द्वारा पुष्पक पर चढ़ कर लंका जाने सीता के द्वारा 'बहायज' पर बीठ कर सूर्य और चन्द्र का हाप से स्पर्श करने, राजन के द्वारा पुष्पक से गिरने, रक्तान्धर और भुण्डित होकर भुज्य त्रिजनों के द्वारा पूष्पी पर बसीटे जाने

१ प्रसन्न राजव ६।२६-३१

२ मारवर्धबुडामनि १।२०-३२ के बाद

३ बभिवेक २।१४-१८

४ हनुमनाटक १।११-२२

५ महानाटक ८।२६-३४

नाम माता और सेव से युक्त होकर उसके इतिहास में जाने, योग्य के तात्पर्य में प्रवेश करने और काली देवी के द्वारा उसे में बाँध कर बाँधे जाने संका के बल कर सगुह में बुद्धने, कुम्भकर्पादि पाषाणों के भी योग्य के तात्पर्य में घँसने तथा विभीषण के श्वेतपर्वत पर चढ़ कर बुद्धने का उल्लेख मिलता है।^१ द्वितीय प्रप में रावण के सेल से अभिषिक्त होने मुखिल होकर कीचड़ में घँसने और धर-रथ पर नाचने कुम्भकर्पादि के नग्न और मुग्ध होने, विभीषण के द्वारा श्वेत पगड़ी धारण करने और राम के द्वारा बासमुख पृथ्वी की रक्षा करके मह प्राप्त करने का वर्णन किया गया है।^२ 'मट्टिकाय्य' में केवल सीता के हाथ सुये और चण्ड क स्पर्श का वर्णन मिलता है।^३

'मानस' का स्वप्न स्वप्न कम है और भविष्यवाणी अधिक। संस्कृत के कवि इस प्रसंग में वहाँ स्वप्नधात्मक का विश्लेषण करने में प्रवृत्त रहे हैं वहाँ तुलसी का प्यान समय प्रभाव की ओर ही एकाग्र रहा है। इस दृष्टिकोण से तुलसी का यह 'स्वप्नवर्णन' अधिक सफल और प्रभावशाली है।

(९) हनुमान्-सीता-संबाद—'समायथ-मञ्जरी' की सीता हनुमान को रावण की माया जानकर पहले भयभीत होती है किन्तु उनके परिचय और 'राम मुद्रिका' देने के बाद वे 'विग्न्य' राजस की सूचना का उल्लेख करके 'राम-मुषीय' पित्रता के समाचार से अपना परिचय बतलाती है। वहाँ जब हनुमान उसको कर्ण पर बिछा कर रावण के समीप से जाने का विचार व्यक्त करते हैं तब वे उनकी शक्ति पर सन्देह प्रकट करती हैं। उध समय हनुमान अपना विद्याम रूप दिखा करके उन्हें समुष्ट करते हैं। फिर भी सीता मार्ग में गिर जाने के समय वे और धर-पुरण के स्पर्श की आशा से उसके साथ जाना अस्वीकार कर देती हैं। 'बधूरायायथ' का वर्णन भी देखा ही है किन्तु वहाँ 'विग्न्य राजस' का उल्लेख नहीं है।^४ 'मट्टिकाय्य' में हनुमान् के विद्याम रूप का भी उल्लेख नहीं है।^५ 'रावणीय' में हनुमान सीता को स्वयमेव अपना विद्याम रूप दिसता कर उन्हें 'वानर-पाल' का विशेष परिचय देते हैं।^६ 'रामचरित' की सीता हनुमान से बिबला और विभीषण के संकाओं की प्रार्थना करती हैं। वहाँ इस प्रसंग क कति। विस्तृत होने पर भी हनुमान के विद्याम रूप-वारण और विग्न्य राजस की सूचना का कोई वर्णन नहीं है।^७

१ रा० मञ्जरी। मुद्रर। २८१-२९६

२ महाभारत। वन। २८०। १४-७१

४ रा० मञ्जरी। मुद्रर। ३०६-३७३

५ बधूरायायथ ३। २६-३६

७ रावणीय १। ३। ७७-७९

३ मट्टिकाय्य ८। १००

६ मट्टिकाय्य ८। १०२-१२३

८ रामचरित २। १। २-७७

संस्कृत के लगभग सभी ग्रंथों में इस अवसर पर राम के द्वारा विभीषण का विद्वक करने और उसे सँका का राज्य देने की प्रतिज्ञा करने का उल्लेख उपासक रूप से मिलता है।

तुलसी ने इस प्रसंग में राम के ईश्वरत्व का और उनकी बसबद्धता को विशेषताओं का विस्तृत उल्लेख करके एक बलीकृता का सूजन कर दिया है।

(१७) समुद्र-सासन—विभीषण के मिसल के पश्चात् राम जब उससे समुद्र-तरण का उपाय पूछते हैं तब वह समुद्र को उसका 'कुलपुङ्गव' बतका कर उनकी उसकी उपासना का परामर्श देता है। सङ्घर्ष के विरोध करने पर भी राम तीन दिन तक समुद्र की कृपा की स्मरण प्रतीक्षा करते हैं। फिर उनके 'परसंचाल करते ही जब समुद्र से सपटें उठने लगती हैं और बलजगु बजने लगते हैं तब समुद्र स्वयं नवगीत होकर और विप्रवेश में आकर उन्हें यत्नेक उपहार देता है और क्षमा माँग लेता है। वहाँ वह अस्तरपात्रि पंचतरुओं की सहक बड़ और उन्हीं (राम) की माया से उत्पन्न बतका कर वह उनसे कृपा की प्रार्थना करता है और 'पारपमन के लिए नम और नील को प्राप्त श्रुतियों के बासीबादि का उल्लेख करता है।' इस प्रसंग में 'राम की समुद्रोपासना राम कोप और नल-नील की उपयोगिता का विशेष उल्लेख हुआ है जो संस्कृत ग्रंथों में भी कुछ अन्तर से प्राप्त हो जाता है।

(१८) राम की समुद्रोपासना—'मानस की तरह रामायण-मन्त्ररी' 'राजवीर,' 'वन्द्युरामायण' आदि में भी विभीषण के परामर्श से ही राम समुद्र की उपासना करते हैं। 'हनुमन्नाटक' और 'महाभारत' में वे स्वयं ही यह उपासना करते हैं। इन ग्रंथों में सङ्घर्ष के विरोध का उल्लेख नहीं है प्रसुत 'रामायण मन्त्ररी के सङ्घर्ष उल्लेख उपर्युक्त करते हैं और 'महाभारत में वे राम के राम स्वयं उपासना भी करते हैं।'

तुलसी ने इस अवसर पर सङ्घर्ष के शोच का वर्णन करके एक ही उनकी सहक उपासना का स्वाभाविक विषय किया है और दूसरे उनकी उपासनों के बाध्य से मान्यवाकियों किन्तु अक्षरार्थों के लिए एक विज्ञा की व्यवस्था भी की है।

(१९) राम-कोप-संस्कृत के लगभग सभी ग्रंथों में इस अवसर पर राम के कोप का वर्णन मिलता है। रामायण मन्त्ररी, 'वन्द्युरामायण,' 'राजवीर,' 'महावीरचरित'

- | | |
|----------------------------------|----------------------------------|
| १ मानस १।१०-१० | २ रा० मन्त्ररी । मुद्र । १०१-२०। |
| ३ राजवीर १।१२-१ | ४ वन्द्युरामायण १।२० के बाद |
| ५ हनुमन्नाटक ७।१२ | ६ महाभारत । वन । २५१।१० |
| ७ रामायण मन्त्ररी । मुद्र । २०७ | ८ महाभारत । वन । २५१।१२ |
| ९ रा० मन्त्ररी । मुद्र । ११०-२१७ | १० वन्द्युरामायण १।२४ |
| ११ राजवीर १।१।१-२१ | १२ महावीर । १५ |

और भट्टिकाव्य^१ में रामकोप के फलस्वरूप समुद्र के क्षोभ का भी विस्तृत विवरण दिया गया है। 'पद्मपुराण' में तो समुद्र सूख ही जाता है, फिर राम उसकी प्रार्थना पर उसे ब्रह्मास्त्र से भर देते हैं।^२ 'रामायण-मञ्जरी',^३ 'भट्टिकाव्य',^४ 'बासुरामायण'^५ आदि में समुद्र रक्षा-अमुना के साथ प्रगट होता है। अग्यब वह अकेला ही राम के सम्मुख आकर उनकी स्तुति करता है। 'महामारत' में वह स्वप्न में आकर राम को 'सेतुबन्ध का उपाय बतसाता'^६ है और 'अभिषेक' में वह ब्रह्म-रूप में स्वयं उपस्थित हो जाता है।^७ 'रामचरित' में जब राम और सङ्गम दोनों समुद्र पर अपने अग्नि बाण का प्रयोग करना चाहते हैं, तब सुग्रीव उसे अनावश्यक बतला कर रात भर में ही सेतु निर्माण कर देने के लिए नम को आज्ञा देता है।^८ 'रामायण-मञ्जरी' का समुद्र इस अवसर पर अपनी दृष्टरस-मिश्रता और एक मास के अयोध्या प्रवास का भी राम से उल्लेख करता है।^९

सुग्रीव यहाँ अनावश्यक विस्तार से बचकर राम के ईश्वरत्व का ही अधिक बर्णन करते हैं और इस प्रकार इस प्रसंग में अधिक व्यक्तार का आयोजन करते हैं।

(२०) नल और नील की उपयोगिता—संस्कृत के अग्रिम सभी ग्रन्थों में इस प्रसंग में केवल नल के ही 'सेतुबन्ध' में समर्पण होने का उल्लेख किया गया है। वहाँ श्रद्धि के आशीर्वाद का कोई संकेत नहीं है। 'भट्टिकाव्य'^१ और 'भागवत'^२ में नल का नामोन्मुख तक नहीं है। वहाँ सभी जानर मिलकर सेतु का निर्माण कर लेते हैं।

सुग्रीव की समन्वयशीलता का सहज परिणय यहाँ भी मिल जाता है। अनेक ग्रंथों से विविध उपकरण संकलित करके उन्होंने यहाँ अपनी सुशक्ति को ही प्राण मिकता की है। बगिच विस्तारों में भी इसी रहस्य का प्रभाव दर्शनीय है।

६. लका काण्ड

विद्युत् काण्ड में सेतुबन्ध की भूमिका का उल्लेख किया जा चुका है। इस काण्ड में सेतुबन्ध अंगद-बोलेय लटमल-भूर्छा, बुद्धमकर्म बध मैपनार बध, रायज-जय, विभीषण-अभिषेक सीता-मुक्ति और राम के अथय-मुनरागमन आदि के प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। संस्कृत साहित्य में बर्णित प्रसंगों से इनकी तुलना करने पर अनेक विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं।

- १ भट्टिकाव्य ११३-४
- २ रा० मञ्जरी । मुद्र । २२८-२४०
- ३ बसि रामायण ७।१४
- ४ अभिषेक ४।१९ के बाद
- ५ रा० मञ्जरी । मुद्र । २४४ २४६
- ६ भागवत १।१०।१२-१९

- ७ पद्म । उत्तर । २४२।२६७-२६८
- ८ भट्टिकाव्य । १।१२-१४
- ९ महामारत । बम । २८३।१४-४२
- १० रामचरित २।१।२०-१२
- ११ भट्टिकाव्य । १।१।१२

(१) सेतुबन्ध—समुद्र के संकेत के अनुसार राम के आदेश से नल और नील सेतु रचना में प्रवृत्त होते हैं। 'सेतु' की प्रसिद्धि के लिए राम वहाँ पर धम्पू स्थापना करते हैं। फिर सारी पावन-सेना उस सेतु से सीधे ही समुद्र पार करके लंका में प्रविष्ट हो जाती है। मावी अलिप्त की मार्गका से सुबह होकर मन्वोदरी रावण को 'सीतार्पण' के लिए बहुत धमसाती है किन्तु वह उसकी उपेक्षा करके अपने 'मन्नाड़' में जाकर रासरंज में व्यस्त हो जाता है। राम उसके इस अतिमान को दूर करने के लिए एक ही बाण से उसके मूकूट आदि को नष्ट करके जब उसका 'रसरंज' कर देते हैं तब मन्वोदरी अरपन्त विव्रज होकर उसे पुन धमसाती है किन्तु रावण अपने हठ पर दृढ़ रहता है।^१ इस प्रकार इस प्रसंग में सेतु-निर्माण धम्पूस्थापना, मन्वोदरी-उपदेश रावण-रसरंज आदि का वर्णन किया गया है। संस्कृत के ग्रंथों में इसमें अनेक विविधताएँ मिलती हैं।

(२) सेतु निर्माण—'रामायण-मन्वरी' में नल के मध्यवसाय से ६ दिन में इस योजना चौड़ा और छोटी योजना लम्बा सेतु तैयार हो जाता है।^२ 'महामारण्य' में भी सेतु के इसी विस्तार का वर्णन है। वहीं उसका नाम ही 'नलसेतु' पड़ जाता है।^३ 'मद्विद्वाम्य' रावणोप' रामचरित' चम्पूरामायण आदि में सेतुबन्ध के लिए साधे नये पर्वों के सोम्यं तथा समुद्र-व्रत में उनके फेकने से उत्पन्न तरंग रंज और नल-चर-क्षीम आदि का बड़ा रोचक और अमकारिक वर्णन किया गया है। 'आमरामायण' नाटक में मेघ हिमालय पार कर किसान लम्प्यावन अंजन विष्णु रोहण आदि पर्वों से साधे नये प्रस्तर खम्बों से सेतु निर्माण करने का अस्त्रोप मिलता है।^४ 'हनुमन्नाटक' और 'महानाटक' में इस सेतुनिर्माण का वेग समुद्र अमवा नल आदि को न देकर राम के प्रताप को ही दिया गया है। तुमसी में भी इसी का वर्णन करते हुए इस प्रसंग में असीकनता के उपादन का उचित प्रयास किया है।

(३) शम्पू-स्थापना—'पद्मपुराण' की पुण्यतन रामायण के अनुसार राम इस अवसर पर नल अत्रि की पुजा करते हैं तब वे प्रगट होकर उन्हें अपना पशुपत बरदान के रूप में दे देने हैं जिस पर बैठकर सभी लोग एक ही बार में समुद्र पार कर बैठते हैं।^५ फिर रावण-वध के पश्चात् राम अयोध्या लौटते समय उषी स्थान पर शिव प्रविष्ट करते हैं।^६ अम्पारामायण को छोड़कर (जो अपना आशोष्य नहीं है)

१ मानस १११-१६

२ महामारण्य । वन । २०३।४४

३ रावणोप ११।४३-४८

४ चम्पूरामायण १।२६-२८

५ हनुमन्नाटक ७।१६

६ पद्म । पाठान । ११६ पु० २०६

२ प० मन्वरी । पुत्र । २२२-२६४

४ मद्विद्वाम्य १३।१२-३०

५ रामचरित २६।२७-६२

६ आमरामायण ७।४७-६०

१० महानाटक १।८६

११ पद्म । पाठान ११६ पु० २०६

बन्धु संबंधों में इसका वर्तन नहीं मिलता है।

तुलसी ने 'मानस' में शिव के उपकार का संकेत न करके इस प्रसंग में राम की समर्पण निस्वार्थता और शिव-निष्ठा का ही प्रभावकारी परिणय दिया है।

(४) मन्वोदरी उपदेश—'हनुमत्पाठक' और 'महामाटक' में मन्वोदरी राजन से हनुमान के पराक्रम का उल्लेख करके उसके 'सीतार्पण' की बारम्बार प्रार्थना करती है, किन्तु राजन अपनी कर्बोच्छियों से उसे शांत कर देता है। 'हनुमत्पाठक' की मन्वोदरी राजन को सीता से विमुक्त करने के लिये उसे अपने पारिरीक सीम्वर्य से अपनी ओर आकृष्ट भी करना चाहती है। 'महावीर चरित' का राजन मन्वोदरी को 'मुग्ध बबसा कइ कर उसकी बातों को हँसी में उड़ा देता है।' 'राम चरित' की मन्वोदरी राजन से प्रार्थना करती है कि वह विभीषण को किसी तरह मनाकर से बाँधे और उसे राम से न मिलने दे। बड़ी बह उसे 'सीतार्पण' के लिए शाप्य भी नहीं करती है। इसके साथ ही वह उसको बेवशपी में एकत्व-बुद्धि का उपदेश देती हुई शिव के समान ही बिष्णु राम को भी उसके लिए पूज्य बतसाती है।^१ इस पर कामुक राजन उसे प्रसन्न करने और बहुमाने के लिये झूठ बोलता है कि वह अभी विभीषण को मगाने सीता को वापस करने राम से सन्धि करने, बाह्यों और देवताओं को क्षमयवान देने तथा स्वयं निष्काम होकर पूर्ण धार्मिक बनने के लिये बस अभी जा रहा है।^२

'मानस' में तुलसी ने इस प्रसंग में राम के ईश्वरत्व का विस्तृत उल्लेख करके शिव शरीरकता का समन्वय किया है, उसका निरूपण संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता है। 'मानस' की मन्वोदरी राम को 'कर्ता पासक और संहर्ता' जादि कहकर उसकी शरण जाने के लिये राजन से विशेष आग्रह करती है। इसके साथ ही वह नीति का उल्लेख करके बुढ़ावस्था के पुत्राभियेक और बालप्रसन्न पर बल देती हुई लोकिक बंधन के प्रति अपनी विरक्ति का संकेत भी करती है।^३ 'संस्कृत-साहित्य में मन्वोदरी के ऐसे सारिबक और धार्मिक उपदेश का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है जबकि 'मानस' में उसके एक दूसरे से अधिक प्रभावकारी चार उपदेश प्राप्त होते हैं। इसके लिये तुलसी का अपना अधिकतम दृष्टिकोण ही उत्तर दायी है, जिसके फलस्वरूप वे 'राममन-वर्जन के लिये धार्मिक धरहरों को आयोजित कर लेते हैं।

१ हनुमत्पाठक ११४-७

२ हनुमत्पाठक ११११

३ रामचरित २४१९-१११९

४ मानस ११७

२ महामाटक ४१२१-२२

४ महावीर चरित १११४

६ रामचरित २४११११-१२४

८ मानस २११६, २११७-७,

१४-१५, १५ १७

(३) रावण-रस-भङ्ग—रावण की य 'रामायण मञ्जरी' आदि में संका के चिह्न पर स्थित रावण के एक प्रासाद का उल्लेख मिलता है जहाँ से वह राम की सेना का निरीक्षण करके दूक और सारण से सबका परिचय प्राप्त कर सेवा है किन्तु वहाँ पर रावण रंग होने और रामबाण के द्वारा उसके भंग होने की घटना का वर्णन करता दुसरी की अपनी मौलिक कल्पना है जिसका वर्णन संस्कृत के ग्रंथों में कहीं नहीं है।

(६) अङ्गद दौत्य—संका-मुद्र क पूर्व राम अपने सचिवों से मन्त्रा करने के पश्चात् धाम्नि से ही कार्यसिद्धि के लिये बाम्बवान् के मत से अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजते हैं। वहाँ अंगद अपना परिचय लेकर और रावण के साथ अपने पिता (वासि) की भी मित्रता का उल्लेख करके स्वयं को उसका हितैषी बतलाता है। वह 'सीताहरण' को उसका महान् अपराध कह कर उससे सीता को वापस करने और राम की तरफ जाने का आग्रह भी करता है। जब रावण उसको पितृपातक राम का घेबक होने के कारण 'कुसुपालक' कह कर सम्बोधित करता है और दूतवच को नीतिबिद्य बतला कर उसके कठोर वचनों को धमा करने में अपनी नीतिमत्ता का उल्लेख करता है, तब अंगद उसकी परपत्नी के हरण करने और अपनी बहिन (सूर्यभक्षा) के बिक्रम का अपमान सहने क कारण उसकी नीति-मत्ता पर व्यंग करता है। फिर रावण जब राम-सेना में उसको दुर्बल और असमर्थ बतला कर केवल हनुमान को कुछ भीर कहता है तब अंगद उनको (हनुमान को) 'समुद्रत' बतला कर उसका उपहास करता है। वह उसकी पर्वोत्थियों पर व्यंग करते हुए उसके विजेताओं बलि सहस्रबाहु और वासि आदि का मानोऽलोच करता है। इसके बाद वह उसको बहुत पटकारता हुआ अपने दोनों हाथों को पृथ्वी पर नीचे पटक देता है, जिसे रावण सिंहासन से मुड़क पड़ता है और अंगद उसके कुछ मुकुटों को उठा कर उसी समय राम-सेना की ओर फेंक देता है।^१ इसके पश्चात् अंगद उसकी समा में पैर जमा कर यह शर्त लगाता है कि यदि उसे कोई हत्या देना तो वह हार जायगा। तब रावणों के असफल होने पर रावण स्वयं उठता है, तब अंगद उससे राम के चरण-ग्रहण का अनुरोध करके वहाँ से उड़कर 'राम सेना' में वापस छोट जाता है।^२ इस प्रकार इस प्रसंग में रावण संवाद रावण के मकुट-हरण और अंगद के पदारोपण का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है जो संस्कृत-साहित्य में विविध रूप से मिलता है।

(७) रावण-अङ्गद-संवाद—मानस के इस प्रसंग पर 'हनुमन्नाटक' और 'महा-नाटक' का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। कई स्थानों पर तो अक्षरशः अनुवाद प्राप्त होता

१ रामायण १६।१३-१६

२ मानस ६।१७-२२

४ " ६।२९-३२

२ रा० मञ्जरी। मुद्र। ३१३-३१४

४ मानस ६।२३-२४

६ " ६।३४-३३

है।' यहाँ राम के एक उद्देश का भी उल्लेख है जिसमें वे कहते हैं कि अज्ञान बंधन का भिमान से अपहृत सीता को रावण पीछे बापस कर दे अन्वया सतमन के बाग उसे सपरिवार समाप्त कर देंगे। वहाँ भी रावण के द्वारा राम-समा में सबको अक्षमर्ष तथा हनुमान का ही कृष्ण समर्प वतसाने पर अंगद हनुमान के 'दूतमात्र' होने की सूचना देकर उसकी हंसी उड़ाता है और उसी अनुपात से राम के बस का अनुमान करने के लिए वह उससे आग्रह करता है।' अब रावण त्रिवन्तुपयंग बालिबन्ध सामनाय सेतुबन्ध आदि पराक्रमों को सुश्रुत बतसा कर अपने कैंसासो घोरन और मूर्ख अग्र इग्र धम आदि पर अपनी विजय का सन्तर्न उल्लेख करता है।' अब अंगद बलि बालि सहस्रार्जुन आदि का नामोल्लेख करके उनके सामने उसकी परबधता बतसा कर उस पर अंगद करता है।' मानस' के समान ही वहाँ भी रावण के द्वारा अपने को 'धर्मगीत' बतसाने पर अंगद उसके परस्त्रीहरण' के कर्त्तक का उल्लेख करके उसकी हंसी उड़ाता है।' वहाँ यह उल्लेखनीय है कि अंगद 'पितृवैर' के कारण रावण को और 'पितृवय' के कारण राम को भी अपना धनु मानता है। वहाँ वह राम के बस के सिधे सन्तुष्ट होने पर भी पहले अपने दोनों के समान धनु रावण का नाम करना चाहता है और इनीदिय वह रावण को फटकारता हुआ राम क प्रति उसके श्लेष को उद्दीप्त करने का प्रयत्न करता है।' 'रामायण-मञ्जरी' में भी राम के एक उद्देश का उल्लेख है। वहाँ अंगद के उद्देश से कृष्ण रावण के संकेत स कृष्ण राघव अब उसकी पकड़ लेते हैं, अब वह उनके साथ लेकर आकाश में उड़ जाता है और उन्हें पृथ्वी पर पटक कर राम के पास सोट जाता है।' 'अम्पुरामायण' 'राघवीय' 'महाभारत' आदि में भी राम के उद्देश और राघवों के परामर्श का इसी प्रकार वर्णन किया गया है। 'महावीर चरित' में प्रह्लाद अंगद के दूतत्व का उल्लेख करके उन राघवों को अंगद पर आक्रमण करने से रोक देता है।" वहाँ अंगद रावण को मार टालने की धमकी भी देता है किन्तु राम की आज्ञा के अभाव के कारण उसके बध न करने में अपनी विवशता का संकेत करता है।"

'रामचरित का रावण अंगद को दूत के रूप पर करना मित्र समझता है

- | | | |
|----|--------------------------------------|-------------------------------|
| १ | हनुमन्नाटक ८१६, १ २२ २४ ३२ ३३, ४३ ४० | |
| २ | ८१२ | ३ हनुमन्नाटक ८१६-१, १२ १३ |
| ४ | " ८११, ११, २१, ३३ | |
| ५ | " ८१४ ३२ | ६ " ८१२२ |
| ७ | ८१३ | ८ रा० मञ्जरी । मुद्र। १८६-४०३ |
| ८ | अम्पुरामायण १।३३ के बाद-३८ | |
| १० | राघवीय १७।२८-३४ | ११ महाभारत । वन । १८४।७-२२ |
| १२ | महावीर चरित १।१९ के बाद | १३ महावीर चरित १।२२ |

और उसके राम से सड़ कर अपने पक्ष में जाने की सम्भावना करता है। वहाँ जब अर्जुन उससे सीता को वापस करने, बिभीषण का अभियेक करने जाननों को प्रणाम करने और राम को सर्वस्व समर्पण करने का आग्रह करता है तब वह तीन चर्तों रखता है कि राम बिभीषण तथा सुपीन का भव करें सेना का विघटन करें और राक्षसों को प्रणाम करके शीघ्र सौट जाय।^१ वहाँ भी अर्जुन के क्रोध और घमण्डी का समान उल्लेख मिलता है।^२ 'मद्भुत-दर्पण' में सख्तम अंगद शैल्य के प्रस्ताव पर ही राम का विरोध करते हैं और उसके लिए उन पर बहुत आरोप भी करते हैं।^३ जबकि 'भूतांगद' में वे स्वयं ही 'अनद-वीर्य' का प्रस्ताव रखते हैं।^४ रघुवंश, अद्वैतकाव्य पद्मपुराण प्रमथ-रावण अनर्घराज्य आदि ग्रंथों में यह प्रसंग प्राप्त नहीं होता है।

तुलसी ने इस प्रसंग का मानस^५ में बितने बड़े विस्तार से वर्णन किया है उठना विस्तार हनुमत्प्राटक और महाकाटक के अतिरिक्त कहीं भी दिखलाई नहीं सकता है। वहाँ उनको राम के ईश्वरत्व का वर्णन करने और रावण को समझाने तथा पटकारने के लिए एक स्वनिर्म बबसर मिल गया है जिसका उद्देश्य पूरा पूरा साम भी उठाया है।

(=) रावण-मुकुट-हरण—हनुमत्प्राटक में अर्जुन के द्वारा क्रोध से पृथ्वी पर हाथ पटकने का वर्णन मिलता है।^६ किन्तु उसके प्रभाव से रावण के मुड़कने का संकेत नहीं है। रावणीय 'अभूरापायण' 'रामरक्षा आदि में सुपीन के द्वारा प्रथम वर्णन पर ही नम्रण कर उसके मुकुट छीन माने का वर्णन किया गया है। बहुत सम्भव है कि तुलसी ने सुपीन के इस आग्रह को उसके लिए अनुचित समझ कर उसे अनद के साथ दृग प्रहार जोड़ दिया हो। जो क्रोध भी हो तुलसी की यह एक विशिष्ट कल्पना है और उनके प्रसक्त विवेक का पुष्ट प्रमाण प्राप्त करती है।

(२) अज्ञान का पदारोपण—यह प्रसंग भी संस्कृत के किसी ग्रंथ में नहीं प्राप्त होता है, अतः तुलसी की मौलिक योजना है। किसी बात पर अधिक बल देने के लिए पदारोपण की यह पद्धति अस्तुतः अत्यन्त प्रभावशाली है। संस्कृत के ग्रंथों में अंगद पर राक्षसों के टट पड़ने और उसके द्वारा उनको पृथ्वी पर बटक कर सौट जाने का वर्णन अभी किया जा चुका है। इस बटका से अनद के शीर्ष की प्रतिष्ठा ता होयी है किन्तु सम्मान की प्रतिष्ठा नहीं होयी है। 'मानस' में वर्णित 'पदारोपण' की पटना से राक्षसों में निरपणा का जानी है और उनके हृदयों पर अनद की पाक

१ रामचरित २८।८४-१०१

२ मद्भुत दर्पण १।१०-१३

३ हनुमत्प्राटक ८।१६ के बाद

४ अभूरापायण ९।१३

५ रामचरित २८।१०३-१०६

६ भूतांगद। ६ के बाद

७ रावणीय १०।२४-२७

८ रामरक्षा पृष्ठ ४२

इतनी अधिक बल जाती है कि फिर उनमें अपना राजस में उसको छेदने का साहस ही नहीं होता है। इस दृष्टि से वह बलन सचमुच अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(१०) सप्तम्य-मूर्त्तौ—अणु-धीर्य के असफल हो जाने के परचात् युद्ध अनिवार्य हो जाता है जिसमें अंश और हनुमान के द्वारा राक्षसों के सेनापतियों को मार-मार कर राम के पास लौटने तथा राम के द्वारा उनको अपना स्मरण—बैर भाव ही रही सही—करने का कारण निजबान भेज देने का बर्जम क्रिया गया है।^१ वही राक्षसों की माया से जब धारों और बाधकार का प्रसार हो जाता है तब राम अपने श्वाकाम्ना से पुन प्रहास कर देते हैं।^२ मायावी मेरुनाद जब आकाश से अंभार, ध्विर, पत्पर और धूलि आदि को वर्षा करता है तब राम एक ही बाण से उसकी सारी माया समाप्त कर देते हैं।^३ फिर मेरुनाद सप्तम्य पर शक्ति से आक्रमण करके उन्हें अश्वेत करके भाग जाता है। जाम्बवान के कहने से हनुमान उनी समय सुपण बैध को संज्ञा से भवन समेत उग्र साते हैं और उसके द्वारा शीपथि तथा पशु का नाम बतलाने पर उसे सामे के लिए वे प्रस्थान करते हैं।^४ रात्रय पद समाचार पाकर उनके मात में बापा पहुँचाने के लिये कासिनैमि को नियुक्त कर देता है, जो मुनि रूप पारण करके माय में आश्रम बनाकर बस जाता है और हनुमान के आते ही राम-गुण गाता हुआ उन्हें आशोपदेश और दीक्षा देने की शान्तरता व्यक्त करता है। हनुमान् के बल माँगने पर वह पास के तालाब की ओर संकेत करता है जिसमें प्रवेश करते ही उनके पैर से द्य कर एक मकरी मुक्ति प्राप्त करती है जो उन्हें कासिनैमि का सारा पदव्यग्र बतना देती है।^५ फिर हनुमान् कासिनैमि की मार कर उड़ते हुए शीघ्र उम पर्वत पर पहुँच जाते हैं किन्तु शीपथि न पहिपात्र सन्ने के कारण वे सारा पर्वत ही उखाड़ कर बल देने हैं।^६ मार्ग में अयोध्या के ऊपर आने पर भरत जब उन्हें राक्षस समझ कर एक बाम से नीचे गिरा सते हैं तब हनुमान उन्हें सारी घटनाएँ बतलाते हैं जिसे गुणहर भरत को पढ़ा परचाठान होता है और वे उनको अपने बाध पर पर्वत समग्र बैठ कर वहाँ से शीघ्र जाने के लिए उनसे मापह करते हैं। हनुमान राम प्रभाव की बताना करते भरत से इस बल पर विश्वास करते हैं और वहाँ से स्वयमेव बल देने हैं।^७ दशर सप्तम्य को बरामर अश्वेत देख कर राम कृष्ण-विभाष करते हैं और उच्चर उसी समय हनुमान वहाँ आ जाते हैं। बैध के उपाय से सप्तम्य के हरण होने पर हनुमान उग्र ही संज्ञा में अवात्पान पहुँचा आते हैं।^८

१ मानस ६।४४-६२

२ मानस ६।४८-४२

३ मानस ६।५१-५७

४ मानस ६।५८

५ मानस ६।६१-६२

२ मानस ६।४६-४७

४ मानस ६।५४-५५

६ मानस ६।५८

८ मानस ६।६०

तुलसी ने इस प्रसंग में इस प्रकार मेघनाद के माया-मुद्ग और शक्ति-प्रयोग, हनुमान द्वारा औपमि-ध्यानयन कालगेमि-बद्ध और हनुमान मरत-मितम आदि का महारूपमें उल्लेख किया है। संस्कृत साहित्य में इस प्रसंग में अनेक विभिन्नताएँ मिलती हैं।

(११) मेघनाद का माया-मुद्ग और शक्ति प्रयोग—रामायण-मञ्जरी,^१ पद्मपुराण^२ रामकथा^३ मट्टिकाव्य^४ बम्पूरामायण^५ रावबीय^६ रामचरित महाभारत^७ आदि में मेघनाद के माया-मुद्ग का विस्तार से वर्णन किया गया है, किन्तु उसकी शक्ति से लक्ष्मण के या किसी अन्य के मूर्च्छित होने का उल्लेख नहीं मिलता है। वहीं इन मुद्गों में मेघनाद आकाश में छिपकर राम सेना पर घोर बाण-भूटि करता है और अपनी माया से सभी बीरों को पराजित करके तथा राम और लक्ष्मण को माणपाद-बद्ध करके सीट जाता है।

संस्कृत की काव्य परम्परा से सर्वथा पृथक् यह तुलसी का मौलिक प्रयास है। वहीं लक्ष्मण सभी प्रसंगों में लक्ष्मण के साथ ही मेघनाद के मुद्ग और उनके द्वारा ही उसके बध का वर्णन किया गया है, इतना तुलसी को भी स्वीकार्य है किन्तु मेघनाद के द्वारा समस्त बाण-सेना और राम-लक्ष्मण तक की पराजय की कल्पना तुलसी को सहा नहीं है। माणपाद की घटना का वर्णन भी उन्होंने परम्पराबद्ध और राम के ईश्वरत्व के निरूपण के लिये ही किया है। वहीं उन्होंने मेघनाद की सरयण का योग्य प्रतिबोधी चित्रित करने के लिए ही उसकी प्रजापिताली 'शक्ति का संकेत किया है।

(१२) हनुमान् द्वारा औपमि ध्यानयन—संस्कृत के प्रसंगों में मेघनाद के स्थान पर रावण की 'शक्ति' के प्रहार से लक्ष्मण के मूर्च्छित होने का वर्णन मिलता है। बम्पूरामायण^८ रामचरित^९ और रावबीय^{१०} में रावण लक्ष्मण पर दो बार शक्ति प्रहार करता है। प्रथम प्रहार में 'मानस के लक्ष्मण के समान ही' वहीं भी लक्ष्मण स्वयं संकेत हो जाते हैं किन्तु द्वितीय प्रहार में वहीं भी तथा रामायण-मञ्जरी^{११}

- | | | | |
|----|--------------------------------------|----|-----------------------------|
| १ | रा० मञ्जरी । मुद्रा ४२६-४७६ | २ | पद्म । उत्तर १२४२।३०१-३०२ |
| ३ | रावकथा मुद्रा ४३ | ४ | मट्टिकाव्य १४४४-४७ |
| ५ | बम्पूरामायण ६।४२-४३ | ६ | रावबीय १०।३५ ३६ |
| ७ | रामचरित ३०।७९-८६ ३१।१-४१ | | |
| ८ | महाभारत । वन १२८।८-२६, २८।१ | | |
| ९ | बम्पूरामायण ६।४६ के बाद ७६ के बाद-८२ | | |
| १० | रामचरित ३३।८८-९० ४४।१०-१४ | | |
| ११ | रावबीय १।२२-२३, १।२२-३० | | |
| १२ | मानस ६।८३-८४ | १३ | रा० मञ्जरी । मुद्रा १२२६-२७ |

मट्टिकाव्य', महावीर चरित' रघुवंश' पद्मपुराण' और हनुमत्प्राटक' आदि ग्रन्थों में वे हनुमान् के द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त श्लोक के प्रयोग से ही स्वस्थ होते हैं। पद्मपुराण', रामकथा' रामबीज', मट्टिकाव्य', 'बम्भूरामायण', 'रामायण-मञ्जरी' और रामचरित' आदि ग्रन्थों में हनुमान के द्वारा बुधारा बह्नी श्लोक' उसी प्रकार से माने का उल्लेख उस समय मिलता है जब वेपनाद अपने बाण प्रहार से समस्त जानर-सेना को क्षत-निहत करके पसा जाता है।

मानस' में केवल एक बार ही हनुमान के इस असाधारण प्रयास का वर्णन किया गया है क्योंकि उसकी पुनरावृत्ति से प्रथम भटना के अथमूर्खता तथा हनुमान की 'शक्ति' के अनाशयक ज्ञान की आशंका से तुमसी पूर्वतया परिचित हैं। यही तो उनका विवेक है।

(११) हनुमान् द्वारा फालनेमि-बध—संस्कृत के ग्रंथों में यद्यपि हनुमान के द्वारा अनेक बार द्विष्योपनि माने का वर्णन है, किन्तु मार्ग में उन्हें किसी प्रकार की भी बाधा प्राप्त होने का कोई संकेत नहीं मिला किया गया है। केवल 'हनुमत्प्राटक' में उनके द्वारा 'मायामहृषियों के बध का संकेत है किन्तु किसी का नामोस्मरण नहीं है। वहीं पर उनके द्वारा कम्बकासी राक्षसी (मकरी) तथा अग्य राक्षसों के बध करने और कोटि गम्बलों को पराश्रित करने का भी वर्णन किया गया है। " 'फालनेमि प्रसंग' का विस्तृत वर्णन केवल अम्भारमरामायण में मिलता है", परन्तु वह अपनी आभाष्य संघ नहीं है।

तुमसी ने रामायण-वर्णन और रावण प्रबोध का एक और अवसर प्राप्त करने के लिए 'फालनेमि' को माध्यम को स्वीकार किया है। इसके साथ ही उसमें हनुमान की दयाला और भीरुता का प्रमाण भी प्राप्त हो जाता है।

(१४) हनुमान्-भरत मिहान—'महावीर चरित', द्विसंख्यान' और हनुमत्प्राटक' के अतिरिक्त इस मितन का कहीं संकेत भी नहीं मिलता है।

१ मट्टिकाव्य १७।१४	२ महावीर चरित १।११-१२
३ रघुवंश १२।७८	४ पद्म । उत्तर । २४२।११२
५ हनुमत्प्राटक १।१५-१७ २० २१-१८	
६ पद्म । उत्तर । २४२।१०४	७ रामकथा पृष्ठ ४६
८ रामबीज १८।६७	९ मट्टिकाव्य १।१।१०७
१० बम्भूरामायण १।१६	११ रा० मञ्जरी । मूठ । १८७ १००४
१२ रामचरित १।१।११-१११	१३ हनुमत्प्राटक १।१३२
१४ अम्भारमरामायण । मूठ १। १६-११ ७।१-११	
१५ महावीर चरित ७।८ के बा	१६ द्विसंख्यान १७।१०
१७ हनुमत्प्राटक १।१२४-१०	

'हनुमत्पाठक' में इस अवसर पर हनुमान के मन में बचोप्या जाने और वहाँ की कुमदता माने का विचार पहले से ही विद्यमान है वे वहाँ अकरमाठ ही नहीं पहुँच पाते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ मुनिबा के एक रूप का भी उल्लेख किया गया है जिसमें वह अपने बायें हाथ की एक उँगु से उसा हुआ बैद्यती हैं। उस दु स्वप्न की छाँटि के लिए वहाँ भरत और बसिष्ठ एक पत्र करते हैं, जिसकी पूर्वावृत्ति के समय ही हनुमान के बर्चन होने पर भरत उन्हें बिष्णु सपन्न कर एक बाण से ही नीचे गिरा लेते हैं।^१ वहाँ भरत उठी 'पर्वतोपधि' से हनुमान को स्वस्व भी कर लेते हैं। अब हनुमान भरत पर श्लेष से और उनकी कृत्ति के विज्ञासा भाव से अपनी पका बट झाल करते हुए उनके ही पर्वत से जागे वा जापह करते हैं। तब भरत उनके पर्वत सहित अपने बाण पर बिठा कर उसे छोड़ने का उपक्रम करते हैं। फिर हनुमान उस बाण से उठर कर उनके दाया माँप लेते हैं और स्वस्व होकर स्वयमेव चले जाते हैं।^२

तुलसी ने मरिचयाम में भरत की स्थिति का ध्यान रख करके इस प्रसंग में मुनिबा आदि का उल्लेख नहीं किया। वहाँ हनुमान को स्वस्व करने के लिए उन्होंने 'पर्वतोपधि' के स्थान पर भरत के 'हनुमाब' का बर्चन करके उनके चारिषिष्ठ उरुर्ध्व की और अधिक विवक्षित कर दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भरत की छाँटि-परीक्षा और हनुमान के रोप तथा मर्बापहार दोनों को अनुचित समझ कर उल्लेख नहीं भी लकित नहीं किया है।

(१२) कुम्भकर्ण-वध—मरमल के पुन स्वस्व होने के समाचार से बिष्णु रावण कुम्भकर्ण को युद्ध में भेजने के लिए बड़े प्रयत्नों से जपवाता है, और उनके युद्ध के सारे विवरण के सूचित करता है जिसे सुनकर कुम्भकर्ण राम के ईश्वरत्व का अस्मेल करके सीता-हरण तथा 'राजविरोध' के लिये उसको फटकारता है और सब सब उपायों को ध्वंस बतला कर वह युद्ध भूमि के लिए स्वयं प्रस्थान करता है।^३ वहाँ विनीयम के दिग्गने पर उसे राम मण्ड के लिए पम्पदाव देता है और स्वयं को कालकल बतला कर युद्ध में प्रवृत्त हो जाता है। जब वह अत्यन्त कूट होकर मान-सेना का महालाप करने लगता है और राम के ऊपर भी एक पर्वतच्छत्र लेकर खड़ा है, तब राम उनके दोनों हाथ काट डालते हैं। फिर भी उसके खड़ेने पर वे एक बाण से उसके तनाप्य कर देते हैं। वहाँ कुम्भकर्ण के मरते ही उसका शत्रु राम के युद्ध में पना जाता है और राम उसे निरवाम भेज देते हैं। इस प्रकार इस प्रसंग में कुम्भकर्ण का अन्तर्ण हीयन युद्ध तथा निरवाम प्राप्ति आदि का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है। सरकृत बाह्य में इसके विविध रूप मिलते हैं।

१ हनुमत्पाठक [११२१-२४]

३ मालत ६।१२-१३

२ हनुमत्पाठक [११२० २६-३०]

४ मालत ६।१०-०१

(१६) कुम्भकर्ण आरारण्य—'रामायण-मञ्जरी' में कुम्भकर्ण को जयाने के लिए उसके बल स्वयं पर हजारों राक्षस रथ हाथी और घोड़े बीड़ाये हैं एवं पदा, मुद्गर और तीर आदि से ध्वंस प्रहार करते हैं। अन्त में वह देवताओं और अम्बुओं आदि की शिवियों के वीरमूढन के स्वर्ग से ही जायता है। 'राक्षसीय' में उसके बल पर 'पद्मद' केंबे जाते हैं, सैकड़ों पक्षे पानी आका जाता है, सभी जंगों में छाँवों में उड़ाया जाता है हाथी बीड़ाये जाते हैं और गर्म साँड़े के पत्तों से कूटा जाता है परन्तु वह अन्त में स्वेच्छा से ही जायता है। इसी प्रकार 'महिष्काम्य' और 'आम रामायण' में भी वह स्वेच्छा से जायता है, यद्यपि प्रथम पद्य में उसके केश उखाड़े जाते हैं उसे मक्षालों से जमाया जाता है और उसके शरीर में गाड़ूनों बाँतों तथा मूत्रों को चूसाया जाता है। और द्वितीय प्रप में उसकाचि १८ छवों, विष्णुवाचि पर्वतों विम्बुओं तथा सपरिवार अंकर' का भी प्रबोध किया जाता है।

इन विविध विवरणों को हास्यास्पद कथायतिरोपक और अनापयक जान कर तुलसी ने जबकी मानस में कोई स्थान नहीं दिया है, जब कि संस्कृत के कवि इनके विस्तारों में ही बड़ा रस लेते रहे हैं।

(१७) कुम्भकर्ण—मुद्ग—'रामायण-मञ्जरी' 'महाभारत' 'अग्निपुराण' 'महिष्काम्य' 'अम्बुपामायण' 'रामचरित' 'राक्षसीय' आदि सभी ग्रन्थों में कुम्भकर्ण के पर्वताकार शरीर और विविध पराक्रम का विमल चित्रण मया है। अनर्घरायण' और 'प्रसन्नरायण' नाटकों में कुम्भकर्ण को कोई भी मरुत्य नहीं मिला है। वहाँ प्रथम प्रप में एक दृश्य और द्वितीय प्रप में आये ही दृश्य में उसका समस्त उल्लेख समा गया है। 'रघुवंश' में मेघनाद के परबात् और 'पद्मपुराण' में राक्षस के परबात् उसके बल का बयन किया गया है जो मानस के कर्म से विरहीत है। 'महाभारत' में कुम्भकर्ण बल का श्रेय राम के स्थाव पर सर्वप्रथम को दिया गया है।

तुलसी ने इस प्रसंग को पर्याप्त विस्तार और बहुरूप दिया है तथा बर्णनों में अधिकतर परम्परा का ही पालन किया है।

(१८) कुम्भकर्ण की निज धाम-प्राप्ति—यह तुलसी की शैलिक योजना

१	रा० मंजरी । मुद्र । ७१२-७४०	२	राक्षसीय १७।४६-६०
३	महिष्काम्य ११।२-३	४	आमरामायण ८।२१-३४
५	रा० मंजरी । मुद्र । ७६३-८७८	६	महाभारत । वन । २८७।१-१९
७	अग्नि । १०।११-१३	८	महिष्काम्य १३।२१-७०
९	अम्बुपामायण ६।२४-२६ के पाठ	१०	रामचरित ३।१।१०-२४
११	राक्षसीय १७।२२-६०	१२	अनर्घरायण ६।२०
१३	प्रसन्नरायण ७।२४	१४	रघुवंश १२।७९-८१
१५	वप । पाठान । ११९ वृ० ३७६	१६	महाभारत । वन । २८७।१२-१८

है। इसका मुख्य उद्देश्य राम के ईश्वरत्व का निर्वहन करना है और गीता^१ के उक्त भक्ति-सिद्धान्त का सुस्पष्ट प्रतिपादन करना है, जिसका राम यहाँ स्वयं उल्लेख करते हैं कि और भाव से भी इनका स्मरण करने पर रास-सोम मुक्ति के लिये सर्वथा अधिकारी है —

..... " और भाव मोहि सुमिरत निरचर ॥

वेहि परमपति सो जिय जानी । ॥१४४३

(१६) मेघनाद-वध—कम्बुकर्म की मृत्यु से क्षुब्ध रावण को साम्बना देकर 'मानस' का मेघनाद स्वयं मुठमूमि में जाता है और वह एक मायामय रथ पर बैठ कर बद्ध होकर और आकाश में उड़ कर वातर सेना पर धृति ब्रह्म, कृपाण आदि की वर्षा करके जब राम को नापपात से बाबद्ध करके जाता है तब नारद के द्वारा प्रेषित गरुड़ वहाँ आकर सब मामा-नागों को खा जाता है और राम स्वस्थ हो जाते हैं। जब मेघनाद विजय प्राप्ति के लिए एक युद्ध में आकर यज्ञ करने लगता है तब विभीषण से उसकी सूचना पाकर राम, लक्ष्मण को यज्ञ पर्वत तथा मेघनाद के वध के लिए वहाँ भेज देते हैं।^२ नागों के द्वारा यज्ञ विध्वंस कर देने पर लक्ष्मण उसे एक बाण से ही समाप्त कर देते हैं। इस प्रसंग में राम की नाग-नाश-बद्धता मेघनाद के यज्ञ और लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-वध का मुख्यतया उल्लेख किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इसमें कुछ विनिघ्नताएँ हैं।

(१७) राम की नाग-नाश-बद्धता—राजशीघ्र 'जम्बूरामायण' पद्यपुराण^३ मट्टिकाय्य^४ रामचरित महाभारत^५ आदि सभी ग्रन्थों में मेघनाद के नागनाश से राम के शाप छत्रवण के भी बाबद्ध होने का वर्णन मिलता है। उस नागनाश से उनकी मुक्ति के लिये रामायण-मञ्जरी^६ में नारद स्वयं आकर राम की स्तुति करते हैं और उनसे गरुड़ का स्मरण करने के लिये अनुरोध करते हैं, जिसके फलस्वरूप गरुड़ आकर अपने करस्पर्श से राम और लक्ष्मण को स्वस्थ कर देता है।^७ 'मट्टिकाय्य'^८ में यह अनुरोध विभीषण करते हैं। वहाँ गरुड़ को देखते ही सब नाम समुद्र में घुस जाते हैं। 'जम्बूरामायण'^९, 'रामकथा'^{१०}, 'पद्यपुराण'^{११} 'राजशीघ्र'^{१२} आदि में

१ 'ये यथा वा प्रसज्ये तास्तत्र च जाम्बवद् ॥ गीता ४।११

२ मानस १।७४-७५

३ राजशीघ्र १।३१-३६

४ जम्बूरामायण १।४४-४५

५ पद्य। उत्तर। २४२।३०१

६ मट्टिकाय्य १।४।४४-४७

७ रामचरित ३।७६-७६

८ महाभारत। वन। २८६।१

९ रा० मञ्जरी। मुठ। ३३१-३६३

१० मट्टिकाय्य १।४।६३-६६

११ जम्बूरामायण १।४६

१२ रामकथा पृष्ठ ४४

१३ पद्य। उत्तर। १५२।३०२

१४ राजशीघ्र १।३।६६-६७

पद्म के स्वयमेव जाने का उत्सोह किया गया है। 'राजवीम' और 'रामचरित' में गङ्ग राव के ईश्वरत्व का वर्णन करके स्वर्ग को उनका सहायक बतलाता है और मेघनाद को बिये पमे ब्रह्मा के उस बरवान का भी उत्सोह करता है, जिससे वह उनको मायना-बन्ध करने में सफल हो सका है। इसके साथ ही वह उनकी मुक्ति के लिये ब्रह्मा के द्वारा की गई अपनी नियुक्ति का भी संकेत करता है। 'महाभारत' में विभीषण के द्वारा 'प्रभास' से राम-सदमथ के प्रबोधित किए जाने और सुग्रीव से द्वारा दिव्य-भग्न से अधिपित महापथि के प्रयास से उनके स्वस्य हाथे का वर्णन किया गया है।

तुलसी ने इस प्रसंग में परम्परा-यासन और राम के ईश्वरत्व प्रतिपादन के लिए ही 'पद्म' का प्रयोग किया है और इसके अपसंहार के रूप में उन्होंने 'गङ्ग मोह' और 'पद्म-काष्ठ-संवाह' के प्रसंगों की भी सफल योजना की है। संस्कृत के प्रसंगों में ऐसी विशेषता कहीं नहीं है।

(२१) मेघनाद मग्न—'रामायण मञ्जरी' में मेघनाद के द्वारा तिरहुमिता में मग्न करने का वर्णन किया गया है। वहाँ पर उस मग्न के पूर्व होन की दशा में मेघनाद के अज्ञेय होने तथा अपुत्र होने की दशा में 'ब्रह्म बर्ग-कर्ता' के द्वारा ही उसके बध करने का भी उत्सोह किया गया है। 'रामचरित' में उस मग्न से सारथि कबच, अस्य अस्य और ध्वज के साथ विविष्ट रथ की प्राप्ति हो जाने पर मेघनाद की अज्ञेयता का संकेत मिलता है। 'मट्टिकाव्य' में 'ब्रह्माक्षिरा' अस्त्र की प्राप्ति की सम्भावना की गई है। 'राजवाप', 'अग्निपुराण', 'बभ्रुरामायण' में भी मेघनाद के तिरहुमिता-मग्न का संक्षिप्त वर्णन है। संस्कृत के इन सभी प्रसंगों में इस मग्न के पूर्व मेघनाद के द्वारा 'माया-सीता' के बध का वर्णन मिलता है, जिससे जानर सेना में छोड़ छा जाने और राम के कबच विभाव करने का उत्सोह किया गया है। उसी समय मेघनाद को निश्चित होकर मग्न करने का आदर मिल जाता है।

तुलसी ने इस पुण्डरीक को अनुचित धमका कर उसके स्थान पर मेघनाद की वराज्य और लज्जा का ही वर्णन किया है जिसके पदवात् वह जल प्राप्त करने के उद्देश्य से ही मेघनाद मग्न में प्रभूत होता है। इन प्रसंगों की यह नवीन योजना तुलसी की अपनी विशेषता है।

१	राजवीम १७।१८-१७	२	रामचरित ११।१६६ १७५, १२१ १११
३	महाभारत १।१२८२।१-७	४	मानस ७।१८-१९२
५	रा० मञ्जरी। पृष्ठ १ ११००-११०१	६	मट्टिकाव्य १७।२१-२७
७	रामचरित ४।१।१०-२२	८	अग्नि १।०।२०-२१
९	राजवीम १।५।७१-७२		
१०	बभ्रुरामायण १।७० के बाद		

है। इसका मुख्य अर्थ राम के ईश्वरत्व का निर्वचन करना है और भीता^१ के उस भक्ति-सिद्धान्त का सुस्पष्ट प्रतिपादन करना है जिसका राम यही स्वयं उल्लेख करते हैं, कि बीर भाव से भी उनका स्मरण करने पर राक्षस-शोक मुक्ति के द्वारे सर्वथा अधिकारी है —

----- बीर भाव मोहि सुनिरस निरुचर ॥

बेहि परमगति सो जिय जानी । ----- ॥६१४३

(१६) मेघनाद-बध—कृष्णकर्ण की मृत्यु से कृष्ण राजा को साम्बना देकर 'मानस'^२ का मेघनाद स्वयं युद्धभूमि में जाता है और वह एक पापामय रूप पर बैठ कर, अवृष्य होकर और आकाश में उड़ कर बानर सेना पर सक्ति सुख लक्ष्य, कपास आदि की वर्षा करके जब राम को नागपाश से बाध करके जला जाता है तब मारुत के द्वारा प्रेषित गरुड़ वहाँ आकर सब माया नामों को खा जाता है और राम स्वस्थ हो जाते हैं। जब मेघनाद विजय प्राप्ति के लिए एक गुफा में आकर पन्न करने लगता है, तब विभीषण से उसकी सूचना पाकर राम, लक्ष्मण को पन्न स्थल तथा मेघनाद के बध के लिए वहाँ भेज देते हैं।^३ बानरों के द्वारा पन्न विध्वंस कर देने पर लक्ष्मण उसे एक बाण से ही समाप्त कर देते हैं। इस प्रसंग में राम की नाग-बाध-बद्धता मेघनाद के पन्न और लक्ष्मण द्वारा मेघनाद-बध का मुख्यतया उल्लेख किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इसमें कुछ विभिन्नताएँ हैं।

(२०) राम की नागपाश-बद्धता—राजबीर^४ बम्पुरामायण पद्यपुराण^५ मट्टिकाय्य^६ रामचरित महाभारत^७ आदि सभी ग्रन्थों में मेघनाद के नागपाश से राम के साथ लक्ष्मण के भी बाध होने का वर्णन मिलता है। उस नागपाश से उनकी मुक्ति के लिये 'रामायण-मञ्जरी'^८ में मारुत स्वयं आकर राम की स्तुति करते हैं और उनसे गरुड़ का स्मरण करने के लिये अनुरोध करते हैं, जिसके फलस्वरूप गरुड़ आकर अपने करस्पर्श से राम और लक्ष्मण को स्वस्थ कर देता है।^९ मट्टिकाय्य^{१०} में यह अनुरोध विभीषण करते हैं। वहाँ गरुड़ को देखते ही तब नाग समुद्र में बुझ जाते हैं। बम्पुरामायण^{११}, 'रामकथा'^{१२} पद्यपुराण^{१३} राजबीर^{१४} आदि में

१ ये मया का प्रपञ्चते तास्तर्ष्व भवाम्यहम् ॥ भीता ४।११

२ मानस ६।७४-७५

३ राजबीर १७।११-१६

४ पद्य । उच्छर । २४२।१०१

५ रामचरित ३।७६-८६

६ रा० मञ्जरी । युद्ध । १११-११३

७ बम्पुरामायण ६।४६

८ पद्य । उच्छर । २४२।१०२

४ बम्पुरामायण ६।४४-४५

६ मट्टिकाय्य १।४४-४७

७ महाभारत । वन । २८।११

८ मट्टिकाय्य १।६१-६६

९ रामकथा पृष्ठ ४४

१४ राजबीर १७।६६-६७

मरु के स्वयमेव जाने का उल्लेख किया गया है। 'रामवीथ' और 'रामचरित' में मरु राम के ईश्वरत्व का वर्णन करके स्वर्ग को उनका सहायक बतलाता है और मेघनाद का विधि यज्ञ ब्रह्मा के उस बरवान का भी उल्लेख करता है, जिससे वह उनको नागवास-बद्ध करने में सफल हो सका है। इसके साथ ही वह धनवी भुक्ति के विधि ब्रह्मा के द्वारा की गई अपनी भियुक्ति का भी संकेत करता है। 'महाभारत' में विभीषण के द्वारा 'प्रजास्य' से राम-मदमय के प्रभावित किए जाने और सुग्रीव से द्वारा विष्व-मण्य से अग्निविष्ट महोपमि के प्रभाव से उनके स्वल्प होने का वर्णन किया गया है।

तुलसी ने इस प्रसंग में परम्परा-आगत और राम के ईश्वरत्व प्रतिपादन के लिए ही 'मरु' का प्रयोग किया है और इसके उपसंहार के रूप में उन्होंने 'मरु मोह' और 'बद्ध-काष्ठ-संवाद' के प्रसंगों की भी सफल योजना की है। संस्कृत के ग्रन्थों में ऐसी विशेषता कहीं नहीं है।

(२१) मेघनाद यज्ञ—'रामायण पञ्चमी' में मेघनाद के द्वारा त्रिभुमिका में यज्ञ करने का वर्णन किया गया है। वहाँ पर इस यज्ञ के पूर्ण होने की दशा में मेघनाद के अज्ञेय होने तथा अपूर्ण होने की दशा में 'यज्ञ भंग-कर्ता' के द्वारा ही उसके बध करने का भी उल्लेख किया गया है। 'रामचरित' में उस यज्ञ से शार्पि, कश्यप अरुण, वासु और धन्व के साथ विशिष्ट रत्न की प्राप्ति हो जाने पर मेघनाद को अज्ञेयता का संकेत मिलता है। 'मट्टिकाव्य' में 'ब्रह्मातिरा' अस्त्र की प्राप्ति की सम्भावना की गई है। 'राववीथ', 'अग्निपुराण', 'बभ्रुरामायण' में भी मेघनाद के त्रिभुमिका-यज्ञ का संक्षिप्त वर्णन है। संस्कृत के इन सभी ग्रन्थों में इस यज्ञ के पूर्व मेघनाद के द्वारा 'माया-सीता' के बध का वर्णन मिलता है, जिससे जानर पैता में शोक छा जाने और रात के कष्टन निवारण करने का उल्लेख किया गया है। उसी समय मेघनाद को निश्चिन्त होकर यज्ञ करने का अवसर मिल जाता है।

तुलसी ने इस दृष्टिकोण को अनिश्चित यामन कर उसके स्थान पर मेघनाद की पराजय और मर्त्या का ही वर्णन किया है, जिसके बरबाद वह बल प्राप्त करने के उद्देश्य से ही मेघनाद यज्ञ में बधुत होता है। इन प्रसंगों की यह तबीयत योजना तुलसी की अपनी विशेषता है।

- | | |
|--------------------------------|--------------------------------|
| १ रामवीथ १७।६८-७० | २ रामचरित ३।१।१६६ १७२, ३२३ १११ |
| ३ महाभारत १।१२८-१।१३-७ | ४ मानस ७।३८-१२३ |
| ५ राम-मरुपी। मुद्रा १।१००-११०३ | |
| ६ रामचरित ४।१।१७-१२ | ७ मट्टिकाव्य १७।२३-२७ |
| ८ रामवीथ १७।७३-७५ | ९ अग्नि १।०।१०-२१ |
| १० बभ्रुरामायण १।७० के बाद | |

(२२) छहमख छाग मेघनाद-वध—'रामायण-मन्जरी' में जब मेघनाद बाणर-सेना को भूषण करके विभीषण पर 'यमास्त्र' का प्रयोग करता है तब सङ्गम कृबेरास्त्र से उसे काट बैठे हैं और राम का नाम लेकर 'रीडमहास्त्र' से मेघनाद को समाप्त भी कर बैठे हैं । 'अम्पुरामायण' में यह कुछ तीन दिन तक चलता है । वहीं सङ्गम विभीषण पर प्रयुक्त मेघनाद की शक्ति को अपने 'अर्धबाण बाण' से काट कर ऐन्द्रास्त्र से उसका वध कर देते हैं । 'मट्टिकाव्य' में मेघनाद सङ्गम के 'बाणवास्त्र' को अपने 'पादुपतास्त्र' से रोक कर उस पर बासुरास्त्र से प्रहार करता है, जिसे सङ्गम 'महेश्वरास्त्र' से काट बैठे हैं और रीडमहेश्वरास्त्र से उसे मार डालते हैं । 'राजचरित' में भी तीन दिन के युद्ध का बर्णन है जिसमें मेघनाद के 'शिखिदैवतास्त्र' को सङ्गम 'बाणवास्त्र' से काटते हैं और फिर राम का स्मरण करके 'रीडमर्धबाण बाण' से उसका 'शिरच्छेद' कर देते हैं । 'नालरामायण' नाटक के सङ्गम मेघनाद के 'आग्नेयास्त्र' को 'बाणवास्त्र' से 'तामिनास्त्र' की 'शंखास्त्र' से 'राजवीणास्त्र' को 'वैष्णवास्त्र' से और 'मघनास्त्र' को 'आम्बपरशवास्त्र' से काट बैठे हैं और फिर एक बाण से उसे भस्म कर देते हैं ।

मानस' के इस प्रसंग में तुलसी ने अनावरणक विस्तार छोड़ कर सङ्गम की उस प्रतिष्ठा का उल्लेख किया है जिसमें य मेघनाद के उसी दिन वध करने का निश्चय व्यक्त करते हैं भले ही सेकड़ों लंकर उसके सहायक हों । इस प्रकार यही सङ्गम का जो चरित्रोत्कर्ष प्रस्तुत किया गया है वह संस्कृत के ग्रंथों में अप्राप्य है ।

(२३) राजघा-वध—मेघनाद की मृत्यु के पश्चात् राजघ स्वयं युद्धभूमि के लिए प्रस्थान करता है । वहीं भयानक युद्ध करके वह ब्रह्मा की ही हुई शक्ति से सङ्गम को आहत कर देता है और अपनी विजय के लिए एक पक्ष करण बसा जाता है । कुछ समय पश्चात् वह शक्ति सङ्गम के शरीर से स्वयमेव निकल कर आकाश में बसी जाती है और वे स्वस्व हो जाते हैं । इसी बीच में विभीषण से राजघ के पक्ष का समाचार पाकर के राम उसके ध्वंस के लिए हनुमान् जादि बाणों को बाँधते हैं । पक्ष मंग से कुछ होकर राजघ भयानक युद्ध आरम्भ कर देता है । युद्धभूमि में राम को रणहीन देखकर इन्द्र अपने 'छारणि' के छाप एक रज उनके पास भेज देते हैं । अपने 'मामायुद्ध' में जब राजघ अनेक राम-भद्रमूर्तियों को चरान कर देता है तब राम एक बाण से उस माया को नष्ट कर देते हैं । उस युद्ध में राम अपने बाणों से ज्यों ज्यों राजघ के शिर काटते हैं त्यों त्यों ब्रह्मा के बरदान के प्रभाव से उसके नये नये शिर निकल आते हैं । फिर राजघ जब विभीषण को देख

१ रा० मन्जरी । युद्ध । ११२७-११२२

२ अम्पुरामायण ६।७२-७६

३ मट्टिकाव्य १७।१२-४६

४ राजचरित ४।१२३-६२

५ नाल रामायण ८।४६-८६

६ मानस ६।७९-८४

७ मानस ६।८६-८८

८ मानस ६।८६

कर उस पर शक्ति-प्रहार करता है, तब राम विभीषण को चीख हटाकर उस शक्ति को अपने बंध पर सह लेते हैं।^१ इसके बाद रावण अपनी माया से अब अनेक रावणों की प्रकट कर देता है। तब राम एक क्षण से उस माया को भी नष्ट कर देते हैं।^१ वहाँ रावण के बंध में बिसम्भ देखकर सीता के बददाने पर विजटा उन्हें समझाती है कि रावण के हृदय में उनका बाध है और उनके हृदय में राम का बाध है जिसमें सारे लोक बसे हुए हैं। अब राम विश्वरक्षा के विचार से ही रावण का बंध नहीं कर पा रहे हैं।^१ अन्त में राम के द्वारा पुछे जाने पर विभीषण उन्हें रावण की मृत्यु का रहस्य बतलाता है कि रावण की नाभिकूप में अमृत मरा हुआ है जिसके समाप्त होने पर ही वह मर सकेगा। फिर तो राम ३१ बाणों का एकसाथ प्रयोग करके उसकी नाभि वस शिरो तथा बीस बाहुओं को अपना लक्ष्य बनाते हैं और उसको मार डालते हैं। राम के ये बाण रावण के शिरो और बाहुओं को मन्दी करी के सामने रखकर पुनः उनके शरद्व में प्रविष्ट हो जाते हैं। मरते समय रावण का शत्रु राम के मूल में समा जाता है और राम उसे श्री 'निजधाम भज बैठे हैं।'^१ इस प्रकार इस प्रसंग में रावण-मर-रथ इन्द्र रथ रावण राम-मुंड विभीषण पर शक्ति-प्रहार सीता विजटा संवाद रावण की नाभि कूप में अमृत और उसकी निजधाम प्राप्ति का विरोध रूप से उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इस वर्णन में अनेक विविधताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(२४) रावण-मर-रथ—अध्यात्म रामायण^१ का यह वर्णन 'मानस' के वर्णन से बहुत साम्य रखता है किन्तु यह अमृत बाणोप्य नहीं है। 'पद्मपुराण'^२ में रावण को द्वारा एक अनिचारानक मज किये जाने और वानरों के द्वारा उसके विरुद्ध होने का संक्षिप्त उल्लेख है। इस प्रसंग के मूल में तुमसी का उद्देश्य रावण के शिरस्कार के अतिरिक्त अनुचित उर वन जाने ऐसे मन्विक्रमों की निरर्थकता का भी प्रतिपादन करना है।

(२५) इन्द्र रथ—इसका उल्लेख संस्कृत के तत्काल सभी ग्रंथों में प्राप्त होता है। पद्मपुराण, प्रह्लाद रावण^३ और महावीर चरित^४ में कैवल रथ और सारथि का ही वर्णन मिलता है। अमृत रामायण^५ और रघुवंश^६ में उसके अतिरिक्त कबच अदिनाभ^७ में अरुणादि रामायण-अम्बरी^८ में बधय और धरम दोनों का उल्लेख

१ मानस १।६०-६४	२ मानस १।६१-६७
३ ' १।६६	४ १।६०२
५ " १।६०३-६०४	६ अध्यात्म रामायण । मुंड ।
७ पद्म । अरण । २४२ । १३१३-१३४	८ १।६०-६३
९ पद्मपुराण । अरण । १४२ । ११३-११९	९ प्रह्लाद रावण ७।३० के बाद
१० महावीर चरित ६।३० के बाद	११ अमृत रामायण ६।६२ के बाद
१२ रघुवंश १।२।५४-५६	१३ अदिनाभ १।७।६७
१४ रथ मन्विक्रम । मुंड । १।३११-३७	

किया गया है। वहाँ उस रथ में एक सहस्र बस्त्र जुटे हुए हैं। 'रघुवंश' में उन बस्त्रों का रंग यदि कपिल है तो 'रामचरित' में नीला है। वहाँ धुवीय तथा विभीषण के अधिक आग्रह करने पर ही राम उस रथ को स्वीकार करते हैं। 'महामारत' के राम उस रथ को रावण-माया समझते हैं। हनुमन्नाटक में वे रथ में बैठने के पूर्व हनुमान की उसकी ध्वजा में स्थापित कर देते हैं। महावीर चरित' के अनुसार इन्द्र और मन्वन्तराज दोनों आकाश से 'राम-रावण युद्ध' देखते हैं। उसी समय राम को रथहीन देख कर इन्द्र मन्वन्तराज के रथ में बैठ जाते हैं और अपना रथ राम के लिए भेज देते हैं। 'बाणरामायण' का रावण इन्द्र के इस पक्षपात से उत पर क्रुपित भी हो जाता है।

'मानस' का यह प्रसंग परम्परामुक्त ही है फिर भी उसमें छारग्रहण के फलस्वरूप अधिक स्वाभाविकता आ गई है जब कि संस्कृत के ग्रंथों में अनावस्मक विस्तार मिळता है।

(२९) रावण का माया-मुद्र—'रामायण-मन्वन्तरी' में रावण व्याघ्र सिंह और हाथी के मुँह वाले बालों से सब दिशाओं को आन्ध्रारित कर देता है। वहाँ राम उसके 'आस्त्र' को 'गन्धर्वास्त्र' से और 'गागास्त्र' को 'सपर्वास्त्र' से काट देते हैं। 'रामचरित' के राम उसके 'औरपास्त्र' को 'बाण्वास्त्र' से 'ज्वलनदेवतास्त्र' को 'बाण्वास्त्र' से तथा 'शक्ति' को 'क्षुरमुक्क' से काट देते हैं और उसके त्रिदूल-प्रहार करने पर वे उसे ब्रह्मास्त्र से मार डालते हैं। 'अट्टिकाव्य' में राम-रावण के 'आसुरास्त्र' को पादकास्त्र से 'रोज्जास्त्र' को 'गन्धर्वास्त्र' से और 'वायुपतास्त्र' को 'इन्द्रास्त्र' से नष्ट करते हैं। 'बम्पूरामायण' में यह कुछ घात दिन तक चमत्ता है जिसमें अनेक बस्त्रों के परस्पर काटे जाने का वर्णन है किन्तु उनके प्रयोक्तारों का वहाँ नामोस्मैर नहीं है। 'महाभारत' में भी कूल मुख, परसु शक्ति धूर, घतघ्नी आदि के प्रयोग का वर्णन किया गया है। वहाँ रावण कभी अपने शरीर से सहस्रों घस्रक रासाओं को प्रगट कर देता है और कभी स्वयं राम और सतमम का रूप धारण करके उन पर आक्रमण कर देता है। 'अनर्नरायण नाटक' में भी इन

१ रघुवंश १२।५४ २ रामचरित ३६।६ ४७।३६-३८

३ महामारत । वन । ३६०।१२-१७

४ निर्दम्बाधिकारसंज्ञानगर. सोमिधिसंजीवना—

पोस्ताटीपविषर्बतश्च मरुत पुत्रो ध्वजे वर्तते ॥ हनुमन्नाटक १४।३

५ महावीर चरित ६।३० के बाद ६ बाण रामायण ६।२१-२३

७ रा० मन्वन्तरी । मुद्र । १२१२-१२१४ १२३९

८ रामचरित ३६।३३-३६ ४७।५६-५६

९ अट्टिकाव्य १७।५६-६८

१० बम्पूरामायण ६।५६ के बाद

११ महाभारत । वन । २६०।३-२४

मायास्त्रों का विभिन्न वर्णन मिलता है । 'अवभृत्-वर्णन' का उल्लेख अपनी माया से होने रावणों को उत्पन्न कर देता है कि प्रत्येक मात्र को चार, सेनापति को पाँच, सुवीर का सात, अंश को आठ, महामय को एक ही तथा राम की असंख्य रावण भेद लेते हैं । वहाँ राम भी अपने 'महामाग्न्यास्त्र' से उन असंख्य रावणों के लिए असंख्य रामों को प्रगट कर देते हैं । 'बाह्य-रामायण' में राम रावण के 'दग्ध-युद्ध' का वर्णन किया गया है । वहाँ दशरथ और इन्द्र दोनों ही आकाश से यह युद्ध देख रहे हैं । दशरथ, वात्सल्यवश, राम की सहायता के लिए जब-जब उस युद्ध में कुछ हस्तक्षेप करना चाहते हैं तब-तब इन्द्र उसको 'अधर्म' बतला कर उन्हें बीच-बीच रोकते भी चाहते हैं । वहाँ भी राम के 'आग्नेयास्त्र' की रावण 'वायव्यास्त्र' से वे उसको 'जलधारास्त्र' से, वह उसको 'सामुद्रास्त्र' से और अन्त में वे उसको 'अपस्त्रास्त्र' से काट देते हैं ।

तुमही ने 'मानस' के इस प्रसंग में राम के मायायुद्ध का वर्णन न करके उनकी युद्धा सुराति रची है । इसके साथ ही रावण की माया को भी एक ही रावण में नष्ट करने वाली राम की शक्ति का उल्लेख करके जगहोंमें उनके सर्वशक्तिमान और मायापति स्वरूप का आश्चर्य निरूपण किया है ।

(२७) रावण का विभीषण पर शक्ति-प्रहार— रामायण-मन्त्ररी^१, 'रावणोप'^२ 'वदित्काम्य'^३ आदि में इस प्रसंग का उल्लेख किया गया है । वहाँ प्रथम प्रसंग में उस शक्ति को राम अपने बाण से बीच में ही काट देते हैं किन्तु अन्त प्रसंगों में यह काम महामय करते हैं । 'मानस' में शक्ति को काटने के स्थान पर राम के द्वारा उसको स्वयं अपने वश पर लाने का वर्णन करके तुमही ने राम की उच्च मंडितीय धारणावतलक्षणा का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया है, जिसमें उन्हें अपने प्राणों की भी विमता नहीं रहती है । राम के चरित्र की यह विशेषता संस्कृत पंथों में कहीं भी विद्यमान नहीं पड़ती है ।

प्रसन्नराज्य के विद्यमान संसार में इन प्रसंग का संकेत देना या सफ़टा है, वहाँ रावण के उसी समय तक सङ्कुचन रह लेने का उल्लेख किया गया है जब तक राम उसके हृदय में सीता के निवास का ध्यान करके उसका वध नहीं कर देते हैं । 'दनुमहाटम का वर्णन 'मानस' से अक्षरशः मिलता है किन्तु वहाँ यह सम्वाद के

- | | |
|----------------------------------|-----------------------|
| १ अन्तर्प रावण १।७४ के बाद | २ अद्भुत वर्णन १।१-४ |
| ३ बाह्य रामायण २।२२ के बाद | ४ बाह्यरामायण २।२६-३६ |
| ५ रा० मन्त्ररी । युद्ध । १२।५-१६ | ६ रावणोप १।१२०-२१ |
| ७ वदित्काम्य १।३।६०-६१ | |
| ८ अर्थ तावदावउहति मुहमुहचैरंउमुप | |
- विनीतस्मिन्नेवी अनकवतिपुत्री निवसति ॥ प्रसन्नराज्य ७।४६

के रूप में न होकर राम के भाषण के रूप में प्रस्तुत किया गया है।^१ राम के विराट् रूपत्व को निदर्शन करने के लिए ही तुलसी ने इस प्रसंग का वर्णन किया है, किन्तु उसे राम की परोक्षिक के रूप में अनुचित मान कर उन्होंने उचित पात्रों के उपाय के माध्यम से उसे ध्यस्त कर दिया है। तुलसी का यही विवेक उन्हें अन्य कवियों से पूरक करके एक सम्पादन पर सुसोभित कर देता है।

(२६) रावण की नाभि-कुण्ड में अमृत—केवल 'अध्यात्म रामायण' में यह प्रसंग मिलता है किन्तु वह अपना आसोध्य नहीं है। वहाँ अमृत के लपट हो जाने के बाद भी रावण तक तक बराबर लड़ता रहता है जब तक राम मातलि के संकेत से ब्रह्मात्म के द्वारा उसे देवताओं के निश्चित समय में ही मार नहीं जायते हैं।^२ 'पद्मपुराण' में भी विभीषण से प्राप्त रावण के शरीर में किसी निश्चित स्थान के संकेत का उल्लेख मिलता है जहाँ पर प्रहार करके राम उसे मार जायते हैं।^३ किन्तु 'अमृत-कुण्ड' की वहाँ कोई जगह नहीं है। अन्य ग्रन्थों में यह प्रसंग नहीं मिलता है। तुलसी ने 'अमृतकुण्ड' के महत्व को समझ कर 'मानस' में उसके सूख जाने के तुरन्त बाद ही रावण की मृत्यु का वर्णन कर दिया है। इस प्रकार यह प्रसंग अधिक रोचक और जमत्कारपूर्ण बन गया है। संस्कृत ग्रन्थों में इसके बजाय से इसकी यहाँ मौलिकता स्वयं सिद्ध है।

(३०) रावण की निजघाम प्राप्ति—इसका उल्लेख केवल 'अध्यात्म रामायण' में है। वहाँ देवताओं के आचर्य प्रसंग करने पर नारद राजन की इस सायुष्यमुक्ति के कारणों में उसके द्वारा बहूनिग राम के ध्यान और राम के हाथों से ही उसके वध को बतलाते हैं। अन्य ग्रन्थों में यह प्रसंग नहीं मिलता है। तुलसी ने यहाँ पर देवताओं की लंका के स्थान पर उनकी प्रसन्नता वा उल्लेख करके 'सायुष्यमुक्ति' के सिद्धान्त को उनके द्वारा भाग्य बतलाया है और इस प्रकार राम यक्ति का विरोध महत्वपूर्ण निरूपण किया है।

(३१) विभीषण शिक्षक—रावण की मृत्यु के पश्चात् विभीषण जब भागे डरी भादि उसकी रागियों के विनाश को देखकर दुःख हो जाता है तब राम की आज्ञा से लक्ष्मण उसे सान्त्वना देते हैं और उसके द्वारा रावण की विधिवत् क्रिया सम्पन्न हो जाने के पश्चात् वे उसका शिक्षक भी कर देते हैं।^४ इस प्रकार यहाँ विभीषण से 'शोक' और 'अभिवेक' का ही वर्णन किया गया है। संस्कृत-साहित्य में भी उसका निकरपण प्रायः सर्वत्र मिलता है।

१ हृषयस्य प्रतिवाचरं वसति सा तस्मात्सर्वं रावणो

मय्यास्ते भुवनावली विजयिता हीरे धर्म सन्निधिः ॥ हनुमन्नाटक १४२६

२ अध्यात्मरामायण । मूढ । ११।५३-७२

३ पद्म । पाताल । ११६।४८ के बाद

४ अध्यात्मरामायण । मूढ । ११।७५-८६ ५ मानस ६।१०४-१०६

(१२) विभीषण-शोक— 'जम्पू रामायण' और 'मट्टिकाव्य' में विभीषण के विलाप का विस्तार से वर्णन किया गया है। वहाँ प्रथम प्रश्न से वह अपने को कुछ भाग्यहीन कुसुमायकारक, कूटधर्मों कलक्री आदि कह कर स्वयं को फटकारता है और कर्मकर्म को ही रावण का शक्य भाई मानता है। वहाँ रावण की रातियाँ भी उसे पिबकारती हैं।^१ द्वितीय प्रश्न में विभीषण अपने 'सहोदर' भाई की मृत्यु से व्यथित दुःख होकर बहुत विलाप और प्रसाप करता है और पिछली घाटी बट नामों का स्मरण करके वह देवताओं की वर्तमान प्रसन्नता का भी संकेत करता है।^२ 'रामायण-मञ्जरी' के विभीषण को कोई शोक नहीं है। वह रावण को मूर्ख, कुठम्प, दुराचारी भूत और निर्लज्ज आदि पद कह उसकी छत्रिणा भी नहीं करना चाहता है।^३ 'आदर्श-बुद्धिमति' में विभीषण इस अवसर पर विरक्त हो जाता है और रावण की पापमयी जन्माशक्ति से अपना वैराग्य बतला कर केवल राम का ही आश्रय ग्रहण करना चाहता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रश्नों में विभीषण की प्रति शिवा का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। तुलसी ने मानस के इस प्रसंग में विभीषण के दूह 'राम भक्त' होने का विमर्श करके उसकी चारित्रिक उत्कृष्टता की स्थापना की है।^४

(१३) विभीषण अभिषेक— 'रामायण-मञ्जरी' में इसके लिए हेमरत्नपट सर्वोपनि पत्र और अष्टम आदि का उल्लेख किया गया है।^५ 'रायवीर' में केवल पुनर्जित का संकेत है और 'जम्पू रामायण' में सभी पुण्यपीठों के नाम लाने का वर्णन है। अन्य प्रश्नों में विभीषण के केवल सिंहासनासीन होने का ही संकेत मिलता है। तुलसी ने इस प्रसंग में राम के द्वारा 'नगर प्रवेश' न करने का उल्लेख करके राम के चरित्र की विशेषता का पुनः निरूपण कर दिया है।

(१४) सीता शुद्धि— विभीषण विषय के पश्चात् 'मानस' के राम सीता की कुशलता जानने के लिए हनुमान को अयोध्या-बाटिका में भेजते हैं। सीता के जाने पर वे उनके अग्नि में पूर्वस्थापित स्वरूप को उनको प्राप्य करने के लिए उगड़े कुछ दुर्जन बहते हैं। जिसको मुनकर सीता मध्यम से चिता-निर्माण करवाती है और स्वयं को मन-बचन-कर्म से राम की अलग सेविका बह कर अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है। उस समय उनके प्रतिविम्ब और लौकिक कसक के वहाँ जल जाने के पश्चात् अग्निदेव स्वयं प्रपट होकर उनको राम को समर्पित कर देते हैं।^६ फिर

१ जम्पू रामायण १। ८८ के बाद-७४ के बाद
 २ मट्टिकाव्य १७।११२-१८।१-१९-११-१२ १-१०
 ३ रा० मञ्जरी। संकोटर। २१-१२
 ४ आदर्श-बुद्धिमति ७।७
 ५ रायवीर ११।१३
 ६ मानस ६।१०७-१०८
 ७ जम्पू रामायण ६।१४ के बाद
 ८ मानस ६।१०२

द्विगम पुण्य बरसाते हुए उनका बलमान करने लगते हैं। इन्द्र तथा शिव उनकी स्तुति करते हैं और दशरथ उन्हें आशीर्वाद देते हैं।^१ इस प्रसंग में राम के दुर्बलन सीता का अग्निप्रवेष्ट अग्नि द्वारा समर्पण देवस्तुति, दशरथ आशीर्वाद का प्रमुख रूप से वर्णन किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इसके विनिष्ट विस्तार मिलते हैं।

(१३) राम के दुर्बलन—‘मानस’ में इसका कोई विस्तार नहीं है। किन्तु ‘रामायण-मञ्जरी’ में राम सीता को स्वेच्छायमन के लिए मुक्त करते हुए इनको ईश्वरों सुग्रीव विभीषण मन्वा देवास्तर में किसी के भी मन्त्र में बस जाने की स्वतन्त्रता दे देते हैं।^२ ‘तट्टिकाव्य’ में वे उनको उनमें से किसी के साथ विवाह करने की भी अनुमति भी देते हैं।^३ ‘महाभारत’ के राम उनको स्वावलीड हृषि कह कर स्वच्छन्द विवरण के लिए मुक्त कर देते हैं।^४ अभियेक के राम तो उनको वहीं संका में छोड़ जाता चाहते हैं।^५ ‘रामचरित’ के राम स्वयं मशोक-वाटिका तक जाते हैं। वहाँ उन्हें देखकर सीता निजटा से कहती है कि राम उनके संकाप्रवास के कर्मक से अवश्य लुब्ध होंगे। फिर वे अपनी अन्तरात्मा बापू अग्नि बाकाप और पुष्पी आदि को अपनी पवित्रता का साक्षी बतलाकर शेर भी प्रकट करती है कि वे सब उनकी पवित्रता की घोषणा क्यों नहीं करते हैं। अन्त में वे राम की लघापारणता का संकेत करके निजटा के समक्षाने पर भी शीघ्र ही अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं।^६ ‘भारतवर्षचूडामणि’ में जनसूया के बरदान से राम को देखते ही सीता स्वतः पुर्णमंडित हो जाती है। ‘विरहिणी’ का बहु सूक्तारिक रूप देख कर राम उनको अरिचहीन समझ लेते हैं। सुग्रीव, मन्मथ और हनुमान भी जब सीता को उस रूप में देखकर पहचान नहीं पाते हैं। जब सीता उस बरदान को घाय बतलाकर बहुत क्षुब्ध होती हैं। फिर राम जब क्रुद्ध होकर उनको छलिनगी दुर्बली आदि कहने लगते हैं और सुग्रीव उनके निर्वासन के लिए और लक्ष्मण तथा हनुमान उन्हें धार्मिक बन्ध देने के लिए राम को परामर्श देते हैं। जब सीता अग्नि प्रवेश की इच्छा व्यक्त करती हैं तबसे सुन कर वे सब शोक चर्च्य अनुमति दे देते हैं।^७ अद्भुत वर्षण में मय राजस राम की संका-विजय को व्यर्थ करने के लिये स्वयं राम बन जाता है और सीता को ‘दुहित कह कर तयाय देने का अभिनय करता है तबसे वे शोक और अपमान का अनुभव करके अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं।^८ इस प्रसंग में तुलसी ने राम के कटु बचनों का उत्प्रेषण न करके उहाँ केवल अर्थ ही रहने दिया है। जब कि संस्कृत के साहित्यकार इस विषय में अनेक लज्जाजनक उपायनामों में ही लिप्य रह कर

१ मानस १।११०-११३

२ तट्टिकाव्य २।२२-२३

३ अभियेक ६।२१ के बाद

४ भारतवर्षचूडामणि ७।१९

५ अद्भुत वर्षण १।१८

६ रामचरित ४।१०७-११

७ महाभारत । वन । २९।१०-११

८ रामचरित ४।२१-४२

९ भारतवर्षचूडामणि ७।१९-२० के बाद

तस्मात्मीन वातावरण को वह शुद्धता और पवित्रता नहीं प्रदान कर सके हैं, जो 'मानस' में सहज सुलभ है।

(१६) सीता का अग्नि-प्रवेश—'रामायण-मञ्जरी' की सीता सज्जा, बिस्मय, क्रोध, अपमान आदि का अनुभव करके तथा स्वयं को 'अनक-पुत्री', 'दत्तरथ-वधु' और 'राम-पत्नी' बतसा कर सदमय से बिठा बगवाठी हैं और अपने को मन-बचन-कर्म से पतिव्रता बतलाती हुई अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं। 'मट्टिकाव्य' में वे केवल पंच तरबों को अपना साधी बतसा कर अग्नि से प्रार्थना करती हैं कि यदि वे दूषित हो तो वह उन्हें जला दे। 'रामबीय' में वे अपने को स्वप्न में भी 'अस्थानित' बहती हुई चिंता से प्रवेश कर जाती हैं। 'हनुमन्नाटक' में भी वे अपने को मन-बचन-कर्म से पतिव्रता बतलाती हुई दूषित होने की अवस्था में ही अग्नि से स्वयं को बहम करने की प्रार्थना करती हैं। 'बास रामायण' में वे इस समय सवमी घररबती ख्यामी सावित्री तथा अपने कुम-वेदताओं का स्मरण करती हैं। 'आश्वर्य-चूडामणि' में वे बयोष्मा के गुदबनों और राम को प्रणाम करके सदमय आदि को अपने समान ही राम का आज्ञाकारी बनने का उपदेश देती हैं। 'पद्मपुराण' तथा 'रामकथा' में वे बिना कुछ कहे चुपचाप चिंता में प्रवेश करती हैं।

तुलसी ने 'मानस' के इस प्रसंग में सीता के लिए अग्नि के चन्दनवत् हो जाने और उद्यम उनके प्रतिबिम्ब जन जाने का उल्लेख करके वही एक दिव्य चमत्कार का सूत्रन कर लिया है जो संस्कृत-साहित्य में नहीं मिलता है।

(१७) अग्नि द्वारा समर्पण—'रामायण-मञ्जरी' 'मट्टिकाव्य' 'पद्मपुराण' 'अभिवेक' 'रामबीय' आदि सभी ग्रंथों में अग्निदेव के द्वारा प्रकट होकर सीता को जल बतसाने और उनको राम को समर्पण करने का वर्णन मिलता है। तुलसी ने 'मानस' में केवल समर्पण करने का ही उल्लेख किया है और शुद्धता की चर्चा को अनुचित एवं अनावश्यक जान कर छोड़ दिया है।

(८) देवस्तुति—'रामबीय' 'रामचरित' 'पद्मपुराण' 'मट्टिकाव्य' 'रामायण-मञ्जरी' आदि सभी ग्रंथों में ब्रह्मा विष्णु शंकर नारद आदि देवताओं के जाने और

- | | | | |
|----|-------------------------------|----|----------------------------|
| १ | रा० मञ्जरी। संकोत्तर। १३-१०४ | २ | मट्टिकाव्य २०।२७-३० |
| ३ | रावबीय १९।२२ | ४ | हनुमन्नाटक १४।१४ |
| ५ | बास रामायण १०।२ | ६ | आश्वर्यचूडामणि ७।१८ के बाद |
| ७ | पद्म। उत्तर। २४।१२६ | ८ | रामकथा पृष्ठ ३० |
| ९ | रा० मञ्जरी। संकोत्तर। ११७-११८ | १० | मट्टिकाव्य २१।१-१२ |
| ११ | पद्म। उत्तर। २४२।३४१-३४२ | १२ | अभिवेक ६।२७-२८ |
| १३ | रावबीय २०।११-१४ | १४ | रामबीय २०।१-३१ |
| १५ | रामचरित ४०।२०-२४ | १६ | पद्म। उत्तर। २४२।३३१ |
| १७ | मट्टिकाव्य २१।७-१८ | १८ | रा० मञ्जरी। ल |

राम के विष्णुत्व तथा सीता के सद्गीतत्व का विरूपण करने एवं सीता को कुछ बतसाकर राम से स्वीकार करने के आग्रह का भी वर्णन मिलता है। तुलसी ने इस प्रसंग में देवताओं के इस आग्रह का संकेत नहीं किया है क्योंकि वे अपने राम को उतना अल्पज और हठी नहीं समझते हैं कि उन्हें सीता की दिव्यता और निष्कलकता का भी परिचय न हो। इस अवसर पर राम की 'अग्नीमा' और 'लोकपद-समन्वय' का वर्णन करके मानसकार ने इस प्रसंग को और अधिक चमत्कारपूर्ण बना दिया है।

(१६) दशरथ आशीर्वाद—'रामायण-मन्जरी' में इस अवसर पर दशरथ राम संवाद का वर्णन मिलता है जिसमें दशरथ राम को देवताओं के द्वारा प्रबंधित देव कर बलरथ उम्हें वग्यवाद देते हैं और राम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे कैफ़ी तथा भरत के प्रति अपने क्रुमि को समाप्त कर दें। 'राजवीम' के दशरथ लज्जत और सीता के कर्तव्यों की प्रशंसा करते हुए राम को अयोध्या जाने और राज्य करने का अनुरोध करते हैं।^१ वहाँ से सुधीय हनुमान और बिभीषण की भी प्रशंसा करते हैं और अन्त में वे राम छदमज और सीता का आनिगन भी करते हैं।^२ 'महाभारत और अमृत-दर्वज' में भी दशरथ राम की वीर्य समीप्या जाने और वहाँ राज्य करने का आदेश देते हैं। 'अमृतमादन' और 'मट्टिकाव्य' आदि में भी दशरथ के द्वारा दक्षिण और आशीर्वाद दिए जाने का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। 'आर्यवर्ष ब्रह्ममणि' में राम को मनु से लेकर दशरथ तक सभी पिताओं के वर्णन वहाँ प्राप्त हो जाते हैं।^३

तुलसी ने यहाँ पर दशरथ-वर्णन के कारण-रूप में उनकी सगुणोपासकता और मोक्ष तितिता का उल्लेख करते उनके चरित्र का जो उदर्य प्रतिपादित किया है वह संस्कृत एम्बों में नहीं मिलता।

(४) राम का अर्का से प्रस्थान—सीता-इहण' के पश्चात् बनवास की अवधि को समाप्त होने जानकर राम जब मंदा मे प्रस्थान करने का विचार करते हैं तब बिभीषण उनके लिए उही समय पुष्पक विमान प्रस्तुत कर देता है। फिर राम जानर-सैना विचटित करके सीता सद्मण मुवीय अंवर, हनुमान जाम्बवान मल भीम और बिभीषण आदि को साथ लेकर उस विमान से अयोध्या की ओर चम बैठे हैं। मार्ग में वे सीता को कुछ भूमि समूह रामदेवर मन्दिर दण्डकवन अमस्त्याधम, शिखरू प्रयाग आदि स्वार्णों को दिव्यभाते हुए 'राम जब बिभीषी के पाध पहुँचते हैं तब भरत को सूचना देने के लिये हनुमान को वहाँ से भेजकर वे स्वयं ब्रह्मण के आधम में उनसे मिलने के लिये चले जाते हैं। फिर वे मुह से मिल कर अयोध्या की

१ राममन्जरी । लकीशारा १२१-१२८

२ राजवीय २०।४३-४६

३ अमृत-दर्वज १०।११ २१

४ मट्टिकाव्य २१।१०

२ राजवीय २०।१७-४२

४ महाभारत । पन । २१।१३६-१७

६ अमृत रामायण १।१८ के बाध

८ आर्यवर्ष ब्रह्ममणि ७।२६

झोर बढ़ते हैं।^१ इस प्रसंग में पुष्पक यात्रा और 'हनुमान-प्रेयण का ही विशेष वर्णन है, जो संस्कृत-ग्रंथों में विभिन्न रूपों में मिलता है।

(४१) पुष्पक-यात्रा—संस्कृत के सभी ग्रंथों में इस यात्रा का विविध वर्णन किया गया है। रामायण-मञ्जरी^२, 'राजकीय'^३ 'वम्बू रामायण'^४ 'पद्म पुराण'^५ 'महाभारत'^६ आदि ग्रंथों में इसका संक्षिप्त उल्लेख मिलता है जबकि 'रघुवंश'^७ में इसी परिचित माय का अति विस्तार से वर्णन किया गया है। अनर्घ राघव^८ 'बालरामायण'^९, 'महाबीरचरित'^{१०} आदि नाटकों के लेखकों को इसी बहाने से अपने समस्त भौतिक ज्ञान के प्रदर्शन का अवसर ही मानों हाथ भय गया है। यहाँ वे राम को हिमालय मन्दार, कैलाश मुनेश आदि पर्वतों का भ्रमण समाप्त कर उन्हें 'इन्द्रलोक' और 'सूर्यलोक' तक की सैर करवा देते हैं। यहाँ इस सम्बन्धी यात्रा से पुष्पक विमान का पुरा-नूरा काम उठाने की चेष्टा तो की गई है किन्तु राम की अयोध्या सम्बन्धी 'चिन्ता की एकदम उपेक्षा कर दी गई है। तुलसी ने इस यात्रा का अति संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करके राम के हृदय की गति के साथ ही मानों कथा की गति को भी जोड़ दिया है। भरत की चिन्ता में राम के हृदय की व्यथता का उद्भव अनुमान करके उन्होंने 'यात्रा-वर्णन' के व्यवधान को भी बीच में उपस्थित नहीं होने दिया क्योंकि संस्कृत के नाटककार उसे ही साध्य मान कर उसी के विचारों में रम गये।

(४२) हनुमान् प्रेयण—'भट्टिकाव्य'^{११} 'बालरामायण'^{१२} 'महाबीरचरित'^{१३} 'प्रमत्तराघव'^{१४}, 'अनर्घराघव'^{१५} आदि ग्रंथों के राम हनुमान को सका से ही अयोध्या भेज देते हैं। 'रामायण-मञ्जरी'^{१६} 'राजकीय'^{१७} 'पद्मपुराण'^{१८} आदि में वे 'भरद्वाज मित्र' के पशुपतु बनको भेजते हैं। 'महाभारत'^{१९} में वे अयोध्या की सीमा पर पहुँच कर उन्हें भेज देते हैं। यहाँ तुलसी का ध्यान समय की व्यस्तता और सद्गुण योगिता की ओर अधिक है, इभीलिए वे एक ओर हनुमान् को भेजते हैं और दूसरी ओर उसी समय में राम भरद्वाज मित्र का वर्णन करते हैं। यही तो तुलसी की सर्वोत्कृष्टता है।

- | | |
|------------------------------|---------------------------------|
| १ मानस १।११८-१२१ | २ रा० मञ्जरी । संकोत्तर १३८।१२७ |
| ३ राजकीय २०।३६-३६ | ४ वम्बुरामायण ६।६६-१०२ |
| ५ पद्म । उत्तर । २४२।३४४-३२० | ६ महाभारत । वन । २६।१२१-२१ |
| ७ रघुवंश १।१।१-६७ | ८ अनर्घराघव ७।१२-१३२ |
| ९ बाल रामायण १०।२२-६६ | १० महाबीरचरित ७।१३ २९ |
| ११ भट्टिकाव्य २।२।१-१७ | १२ बालरामायण १०।६६ |
| १३ महाबीर चरित ७।८ के बा | १४ प्रमत्तराघव ७।७२ के बा |
| १५ अनर्घराघव ७।११ | १६ रा० मञ्जरी । संकोत्तर १२६ |
| १७ राजकीय २०।३६ | १८ पद्म । उत्तर । २४२।३२१ |
| १९ महाभारत । वन । २६।१६१ | |

७ उत्तर काण्ड

विद्यते काण्ड में राम के द्वारा लंका से प्रस्थान करने का उल्लेख किया जा चुका है। इस काण्ड में राम के अयोध्या प्रत्यावर्तन और राज्याभिषेक के वर्णन के साथ मूल कथा समाप्त हो जाती है फिर उपसंहार भाग में काक-मन्त्र-संवाद के माध्यम से 'मच्छि सिंघान्त' का कुछ तात्त्विक निरूपण किया गया है। अन्त में कथा के अधिकारी और माहात्म्य वर्णन के साथ-साथ 'मानस' का यह अन्तिम काण्ड भी समाप्त ही जाता है।

(१) राम का अयोध्या प्रत्यावर्तन—हनुमान् से राम के आगमन का समाचार सुनकर 'मानस' के भरत मन्त्रिप्राम से अयोध्या जाकर सबको सूचित करते हैं तथा वहाँ राम के स्वागत की विषय व्यवस्था भी करते हैं। उसी समय पुष्पक विमान से नगर के समीप जाकर राम उस विमान को कुबेर के पास जाने की आज्ञा देते हैं और सबसे पहले गुरु बसिष्ठ से मिलते हैं। फिर वे शरणाँ पर गिप्टे हुए भरत को ढठा कर अपने हृदय से क्षमा लेते हैं। इसके बाद वे अशुभ से निवृत्त कर अनेक रूप प्रगट करते हैं और सभी पुरवासीयों से एक साथ भेंट कर लेते हैं।^१ उसके बाद वे कौसल्या, कैकयी और सुमित्रा से मिलते हैं। नगर प्रवेश करते ही विभीषण जाति मनुष्य रूप धारण कर लेते हैं और राम उनको बुझवा कर गुरु बसिष्ठ से उनका परिचय करवाते हैं। फिर वे कैकयी को उचित आग्रह से उससे पुन मिलते हैं।^२ इस प्रकार इस प्रसंग में पुष्पक विचर्जन राम पुरवासी-मिलन सुभीवादि-परिचय और कैकयी-संकोच का विशेष उल्लेख किया गया है। संस्कृत साहित्य में इसमें अनेक विनिश्चयताएँ हैं।

(२) पुष्पक-विसर्जन—'रामायण-मन्त्ररी'^३ और 'राजवीय'^४ का वर्णन मानस के वर्णन के समान है किन्तु 'रघुवंश'^५ महाभारत^६ और अनर्षराज^७ के परचात् पुष्पक को विदा करने का उल्लेख है। 'बाह रामायण' के स्वयं कुबेर ही उस समय जाकर अपने उस विमान को माँग से जाते हैं। 'मानस' में तुलसी ने विदा के समय पुष्पक के भी हृदय और शिरह का उल्लेख करके एक अलौकिक कमलकार उत्पन्न कर दिया है, जो संस्कृत ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता है।

(३) राम का पुरवासी-मिलन—यह तुलसी की मौखिक योजना है। इसमें उनका मुख्य उद्देश्य राम की लोकप्रियता के साथ साथ उनकी ईश्वरता का प्रतिपादन करना भी है। संस्कृत के ग्रंथों में इसका सर्वथा अभाव है।

(४) सुभीवादि परिचय—'मानस' की तरह 'रघुवंश' में भी सुभीवादि

१ मानस ७।१-६

३ रा० मन्त्ररी । संकोत्तर । १७१

५ रघुवंश १४।२०

७ अनर्षराज ७।१४६

२ मानस ७।७-१

४ राजवीय २०।७०

६ महाभारत वन । २६।१।९९

८ बाहुरामायण १०।१०३

मानव रूप धारण कर के सबसे मिसते हैं।' वहाँ राम सुधीव और विभीषण की क्रमशः 'दुर्जातबन्धु' और 'गुण मित्र' महावीर चरित में दुःखसागरपति और बर्षे मित्र' तथा 'बाल रामायण' में उन्हें 'सीता के देवर' खादि कहकर उनका परिचय कराते हैं। 'दृष्टीराज-विजय' तथा 'रामायण-मञ्जरी' में भरत के छात्र प्रेम को देखकर सुधीव और विभीषण के सञ्जित होने का भी संकेत मिलता है। भट्टिकाव्य' में केवल उन्हीं दोनों के बसोप्या जाने का वचन है जबकि अग्य सभी ढंषों में उनके साथ जाम्बवान सुवेध, लक्ष, नील खगद और हनुमान खादि का भी उस्सेस क्रिया गया है। 'अद्भुत-दर्पण' में तो सभी बानर और राक्षस उपलीक जाते हैं। वहाँ त्रिशटा और सरमा के भी जाने का बर्णन मिलता है।'

'मानस' के राम को काने दोनों मित्रों के सम्मान का बहुत ध्यान है। वे उन्हें 'समरसागर का देहा' और 'भरत से भी अधिक प्रिय' कहते हैं। इस प्रकार राम की भारतीपता और मित्र-प्रेम का यहाँ सर्वश्रेष्ठ निरूपण मिलता है जो अत्यन्त दुर्लभ है।

(५) केकयी-संकोच—महावीर चरित में इस अवसर पर अरुणशी 'सुपंचया-पदयन्त्र का संकेत करके केकयी स संकोच-रथाप' करने का अनुरोध करती है। 'अणु रामायण' की केकयी इस अवसर पर स्वयं अपने आचरण से ही व्यत्यस्त दुःखी हो जाती है।' तुलसी ने इस प्रसंग में स्वयं राम के ठारा केकयी के संकोच के अनुभव करने का उस्सेस करके उनके चरित की त्रिश विधेयता का प्रतिपादन किया है वह उनही मनोवैज्ञानिक सूत्र-बूझ का ही परिणाम है।

(६) राम का राव्यामिवेक—राम के पुत्र बसोप्या प्रागमन से अति प्रसन्न हुए बसिष्ठ उही दिन उनके अविषेक करने का निश्चय करते हैं। इस वाक्य के लिए नगर में सजावट होने और अनेक सांघनिक पदार्थों के एकत्र किए जाने का विस्तृत बर्णन किया गया है।' अमिवेक के लिए जब राम और सीता एक निष्प विहासन पर सुयोधित होते हैं तब गुरु बसिष्ठ उनका 'प्रथम तिष्ठक' करते हैं देवता कुन बरसाते हुए स्तुति करते हैं। गणबर्ष और किन्नर गुणगान करते हैं अप्सरायें नाचती हैं मुनि सोय प्रसन्न होते हैं और बर तथा विभ उनकी स्तुति करते हैं।' वहाँ राम सब बानरों की बिदा करने के समय सर्वप्रथम सुधीव को भरत के बसाये हुए बरत स्वयं अपने हाथों से पहनाते हैं फिर त्राही के संकेत से सटमय विभीषण

- | | | | |
|----|-------------------------|----|------------------------------|
| १ | रघुवंश १२।७४ | २ | रघुवंश १३।७२ |
| ३ | महावीर चरित ७।३२ | ४ | बालरामायण १।०।१०१ के बाद |
| ५ | दृष्टीराज विजय ११।९७ | ६ | रा० मञ्जरी। संकोचर। १७३ |
| ७ | भट्टिकाव्य २२।२१ | ८ | ददभूत दर्पण १।०।२७ के बाद-२३ |
| ९ | महावीर चरित ७।३३ के बाद | ९ | अणु रामायण ६।१०६ के बाद |
| ११ | मानस ७।१० | १२ | मानस ७।१२-१४ |

के बरतन पहनाते हैं। अंगद को राम बड़ी कठिनाई से बिदा कर पाते हैं और नुमान तो सुग्रीव से आज्ञा मांग कर जहाँ के पास रह जाते हैं।^१ इसके पश्चात् राम गूह को भी बस्त्रामुपन बेकर बिदा कर देते हैं।^२ और निश्चिन्त होकर अपने राज्य की सुम्भबस्था में सम जाते हैं।^३ इस प्रकार यहाँ अभियेक-समारोह, सुग्रीवादि दश और रामराज्य का विरोध रूप से वर्णन किया गया है। संसृष्ट साहित्य में भी राम ऐसाही समान वर्णन प्राप्त होता है।

(७) अभियेक समारोह—‘रामायण-मञ्जरी’ में सुग्रीव की आज्ञा से रामरमण स्वर्ण-बटों में चार समझों तथा एक ही मणियों का बल जाते हैं, फिर सिद्धार्थि मूनि बड़ी विधि से राम का अभियेक करते हैं। ‘रावधीय’ में बिल्वा-मन्त्र उनके पुत्र मधुच्छन्द जनक कुण्डल्य सतानन्द वास्वीकि जाबानि, मुमु, जस्त्य अयस्त्य और काम्य बाहि मुनियों के सम्मिलित होने का वर्णन किया गया है। यहाँ चार समझों के जल मंगाने सुग्रीवादि के द्वारा अन्न ग्रहण करने और भरत के भी यौवराज्याभियेक होने का भी उल्लेख मिलता है।^४ ‘मट्टिकाय्य’ में जेवन भरत के यौवराज्य का ही वर्णन है। उही से ‘राज्याभियेक’ का अनुमान-मात्र किया जा सकता है।^५ ‘जम्पुरामायण’ और ‘रघुवंश’ में भी इस बरतन पर ‘समुद्र बल और सनादि-ग्रहण का विरोध वर्णन किया गया है। ‘अभियेक’ नाटक में यह समारोह संका में ही ‘सीता-सृष्टि के पश्चात् ‘अग्निदेव के द्वारा सम्पन्न कर दिया जाता है।^६ ‘प्रतिमा’ नाटक में यह ‘जनस्थान’ में ही संपादित होता है।^७ ‘पद्मपुराण’ में इस अभियेक का सबसे अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है। यहाँ बसिष्ठ बामदेव जाबानि कश्यप मार्कण्डेय मोद्गस्य परीत और नारदमुनि भी अभियेक में संलग्न हैं और सुवर्ण कलश दिव्य रत्न तीर्थ-जल मंगल प्रभ्य आदि की विस्तृत व्यवस्था की गई है। यहाँ राम और सीता के विहासन पर बैठने के पश्चात् चारों ओर के वीज्य सूक्तों का उच्चारण किया जाता है। सुग्रीवादि अन्न चामर ग्रहण करते हैं। देवता यन्त्र और अप्सरामण अयज्यकार करते हैं तथा शिव राम की स्तुति करते हैं।^८ यहाँ राम अपना बिटाद् स्वरूप भी सबको दिखलाते हैं।^९ इस प्रसंग में तुलसी ‘पद्मपुराण’ से अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं। फिर भी उन्होंने उसके अन्य विस्तारों को अनावश्यक समझ कर स्वीकार नहीं किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने वेदों का माननीकरण करके यहाँ एक बसौकिकता का सूजन कर दिया है, जो अत्यन्त गद्दी है।

१ मानस ७।१७-१९	२ मानस ७।२०
३ ' ७।२१-२३	४ रा० मञ्जरी । अंकोत्तर । १७८-१७९
५ रावधीय २ । १७५-८५	६ मट्टिकाय्य २।२।११
७ जम्पुरामायण ६।१०७-१०९	८ रघुवंश १।४।७-११
९ अभियेक ६।११ के बाद-३४	१० प्रतिमा ७।७ के बाद-९
११ पद्म उत्तर । २४।१।१-४।१	१२ पद्म उत्तर । २४।१।२-४४

(८) सुभीवादि विदा—'रघुबंध' के राम, सुभीवादि की विदा करते समय सीता के द्वारा साईं पर्यं पूजा-सामग्री का उपयोग करते हैं। 'राघवीय' और 'राघवीय-मन्त्र' में सीता के द्वारा अपना कंठहार उतार कर सुभीय की पहना देने का वर्णन मिलता है। अन्य वानरों को वहाँ केवल सीमा नहीं, मणि, भूषण आदि से सम्पुष्ट कर दिया जाता है। इन्द्रप्रसादक में इस अवसर पर अंत के 'शेष' का उल्लेख किया गया है। वह वहाँ 'आभिरव' का बदला लेने के लिए राम को इन्द्र-मुक्त के लिए समकारता है किन्तु उसी समय एक आकाशवाणी के द्वारा 'कृष्णाक्षर' में शक्ति के प्रतिहार की बलिष्वाधी गुनकर वह प्रसन्न होता है और राम की स्तुति भी करने लगता है।

'मानस' के वर्णन में अधिक सरसता और आत्मीयता है। वहाँ प्रेमाधिक्य के कारण हनुमान के विदा न हो सकने के कारण में समस्त का जो उद्वेग मिलता है उसका शेषमात्र भी कहीं बुद्धिवश नहीं होता है।

(९) राम राज्य—'मानस' के अनुसार राम के राज्य संभालते ही विलोक्य में प्रेम और आत्मिक का विकास तथा और लोक एवं 'काम-कर्म-स्वभाव-कृत' समस्त दुःखों का विनाश हो जाता है। सभी मनुष्य वर्धापन ब्रह्म-वर्म-नामक श्रुतिनीति-रत, राम मत्त और एकपत्नीयत हो जाते हैं तथा सभी स्थिति पूर्ण बलिष्वाधी हो जाती है। ब्राह्मिक-शेष में भी बनस्पति अथवा और पशु-मत्तियों में सर्वत्र प्रसन्नता और सम्पत्ता की सहाय हो जाती है। 'मानस' के अनुसार जो राम की प्रजा स्वयं निरत वर्धापन पर्य-नामक और राम मत्त-पूर्ण हो जाती है। वहाँ राम के 'एक-पत्नीयत' से समस्त नागरिकों का भी प्रजा प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है। 'राघवीयपदीय' में आकाशों के शून्य-व्यादि-स्वाय का भी संकेत किया गया है। 'कृतमनोरथ' में पुनः शोक पति-शोक और अकालमृत्यु आदि के अभाव का वर्णन मिलता है। 'ब्रह्मपुराण' और 'पद्मपुराण' के पाठान्त अथवा में राम राज्य का अति विस्तृत वर्णन किया गया है। वहाँ भी अकालपरम, शोक, ईर्ष्या, मनुष्य अत्याचार और अज्ञान आदि की समाप्ति और सब नागरिकों के मन-शोध परिहार

१ रघुबंध १५१९

२ राघवीय २०१६-२७

३ रा० मन्त्र १। मन्त्र १२४-१२७

४ आकाशवाण्यमवदेवमहो स शाली दातो इन्द्रियति पुनर्ममुरावतारो।

धृत्वा विलोक्य रघुमन्थनानरामा कारणमभक्तिपुं स रवादिबुता ॥

इन्द्रप्रसादक १५७३

५ मानस ७।२०-२१

६ भाष्य १।१०११-१२

७ राघवीयपदीय १।११८

८ कृतमनोरथ १।११-१२

९ ब्रह्मपुराण २।१।१४३ १४४

१० पद्म। पाठान्त। ४।४८-४९

४।२२-४३

स्वास्थ्य बादि से सम्पन्न हो जाने का उल्लेख है। 'रामायण-मञ्जरी' में पूष्पी के स्वर्गोपम, मनुष्यों के देवोपम और बृहों के अस्मोपम हो जाने के उल्लेख से रामराज्य के ऐश्वर्य का संकेत कर दिया गया है।^१

मानस' के रामराज्य वर्णन में तुलसी ने बराबर प्रकृति के सर्वोत्कृष्ट विकास और राम के ईश्वरत्व का निरूपण करके उसमें विषय मात्र के बायोबन का सकल प्रयास किया है।

(१०) अपसंहार—मूलकथा की समाप्ति के पश्चात् रंग की समाप्ति तक के अल्प समय वर्णन 'अपसंहार' के रूप में है। इसमें बिब-पार्वती-संवाद के अन्तर्गत 'काक-मरुद-संवाद' की योजना है जिसका सम्बन्ध 'काकपुत्र' में बलिष्ठ मेवतार की नामपाद्य' वाली बटना से है।^२ वहाँ राम की 'गरलीला' से अपरिचित मरुद अपने को उनके अधिक शक्तिशाली समझ कर अहंकार प्रस्त हो जाता है और इस प्रकार वह राम के ईश्वरत्व में शंकापु हो जाता है।^३ फिर बह्या और शिव से भी अपनी शंका का समाधान न पाकर के वह उनके संकेत से काक मुमुक्षु के शरीर जाता है जो इस विद्या में स्वर्ण मुक्तमोगी है। फिर काकमुमुक्षु मरुद से अपनी विमत शंका का संकेत करके राम के विराट्-रूप-दर्शन का उल्लेख करता है। तुलसी ने यहाँ काकमुमुक्षु के 'पूर्वजन्म-वर्णन' के माध्यम से कल्पियुग का रोचक चित्रण प्रस्तुत किया है^४ और उसके ज्ञानोपदेश के द्वारा भक्ति-सिद्धान्तों का विस्तार से निरूपण कर दिया है। वस्तुतः 'मानस' का उत्तरकाण्ड कथा की दृष्टि से उतना उपयोगी नहीं है जितना सिद्धान्तों की दृष्टि से। अत्र पक्ति ज्ञान बादि का जो वर्णन उत्तरकाण्ड में मिलता है वह बार्हणिक दृष्टि से बड़े महत्व का है।^५

इस 'काक-मरुद-संवाद' के पश्चात् शिव के द्वारा 'राम-कथा' के अधिकारियों को सद्यज और उस कथा की माहारम्य का भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस प्रसंग में काक-मरुद-संवाद' कल्पियुग-वर्णन 'कथा के अधिकारी और 'माहारम्य वर्णन का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इस विद्या में कृष्ण विभिन्नतायें मिलती हैं।

(११) काक-मरुद-संवाद—संस्कृत के किसी भी आलोच्य ग्रन्थ में वह संवाद प्राप्त नहीं होता है। इसमें तुलसी का ज्ञेय एक ठो मरुद से शप-शप ज्ञान शंकालुओं की भी बीसी ही शंकाओं का समाधान करना है और दूसरे भक्ति-सिद्धान्तों का विचार रूप से निरूपण करना है। इस विद्या में वै पीता और अष्टात्म रामायण के बहुत साम्य हैं।

१ रा० मञ्जरी। अक्षर। १८९, १९१

२ मानस ६।७१-७४

३ मानस ७।१५

४ ७।७९-८८

५ " ७।१७-१०२

६ डा० सरनामविहृ धर्मा हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव प्रथम संस्करण पृष्ठ ४३

(१२) कलियुग-वर्णन—'मानस' का यह वर्णन धार्यवत, पद्मपुराण विष्णुपुराण और ब्रह्मपुराण आदि के वर्णनों से बहुत मिलता जुलता है। तुमसी ने सभी पुराणों से उचित सम्मेलन करके, इस प्रसंग को पर्याप्त विस्तार दिया है। पुराणों में यह 'कलिबर्धन' एक 'भविष्यवाणी' के रूप में है, किन्तु 'मानस' में उसे पूर्वजन्म की घटनाओं पर आधारित अवता कर उसे एक प्रायश्चित्तता भी बर्णित है। इसके अतिरिक्त पुराणों में इस काल्पनिक कलि-काल की सर्वत्र विद्या ही की गई है जबकि तुमसी ने 'मानस' में 'रामभक्ति' के समरकारी प्रभाव का वर्णन करके उस कलिकाल को सर्वश्रेष्ठ ठहराया है।^१

(१३) कथा के अधिकारी और कथा-माहात्म्य—संस्कृत के ग्रंथों, विशेषकर पुराणों में कथा के अधिकारियों के विस्तृत उल्लेख देने और कथा के माहात्म्य का वर्णन करने की एक प्राचीन परम्परा मिलती है जिसका एकमात्र पक्षी उदाहरण होता है कि उस संघ का पारम्य करने के पूर्व पाठक उसमें उल्लिखित निर्देशों के अनुसार अपने में आवश्यक योग्यता का सम्पादन कर सके और 'माहात्म्य' के लौकिक आकर्षणों से स्वयं प्रेरित हो तथा अपने सहयोगियों की सहायता भी निरन्तर बढ़ाता रहे। इस प्रकार इन दोनों वर्णनों का मूल लक्ष्य एक उचित वातावरण का निर्माण करना होता है जो ऐसे ग्रंथों के अध्ययन के लिये एक प्रकार से अनिवार्य माना जाता है।

इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर तुमसी ने भी 'मानस' की कथा के अधिकारियों की योग्यता का एक मापदण्ड प्रस्तुत कर दिया है^२ और अधिक से अधिक अनुकूल पाठकों को आकर्षित करने के लिए 'मानस' के माहात्म्य का भी स्पष्ट-स्पष्ट पर विस्तृत विवरण कर दिया है।^३

अपनी इस कुशल योजना में गोस्वामी तनसीनाथ ने आशाहीन सफलता भी प्राप्त की है। 'रामचरित-मानस' की लोकप्रियता इसका सबसे बड़ा प्रमाण है।

इस प्रकार इस अध्याय में 'मानस' और संस्कृत के ग्रंथों में प्राप्त 'राम कथा' के तुलनात्मक विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तुमसी ने अपने विद्वान्त-विरोध के अनुसार मूलकथा में अनेक छोटे-छोटे प्रयोगों की सफल योजना की है। विज्ञान-संस्कृत-साहित्य से यथ-यथ प्रयोग प्राप्त करते हुए भी उम्होंने अपने विवेक से सर्वत्र उचितता अपनायी थी जिसका ही निरूपण किया है। 'मूल कथा' के अतिरिक्त, भूमिका और उत्तरार्ध भाग में भी उम्होंने एक अनुकूल वातावरण के निर्माण की समर्थ चेष्टा की है जिसके परिणामस्वरूप साहित्यिक-वैदिक और आध्यात्मिक सभी दृष्टियों से 'मानस' एक महान गौरवशाली ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित हो सका है।

१ मानस १।१०३

२ मानस ७।१२८

३ " ७।१२६-१३०

तात्विक-विवेचन

किसी वस्तु की घुष्टि के पर्यवसोकन के लिए उसके तत्त्वों का ज्ञान ही आवश्यक नहीं है अपितु उनका उपयोग भी बहुत आवश्यक है। प्रत्येक तत्व का उपयोग उसकी स्थिति और मात्रा से भी सम्बन्धित होता है। यही बात काव्यतत्त्वों के सम्बन्ध में भी लागू होती है। प्रबन्ध काव्य (विशेष रूप से महाकाव्य) अपनी ऐतिहासिक विशेषताओं में पूर्णरूप से बलवित होता है। साहित्य-शास्त्रियों का कहना है कि वस्तु नेता और उस प्रबन्ध काव्य के प्रमुख तत्व हैं। वस्तु का सम्बन्ध उसके विविध रूपों से है जिनको दो वर्गों में विभक्त किया जाता है आधिकारिक तथा प्रासंगिक। वस्तु उस समय तक विम्वस्त नहीं हो सकती जब तक उसको धारण करने वाले न हों। इन्हीं को पात्र संज्ञा भी जाती है। अनेक पात्रों में प्रधान पात्र को कल का मोछा भी होता है नेता कहना सामक कहलाता है। इस प्रकार वस्तु के प्रसार में नायकादि पात्रों की उपयोगिता विशेष उल्लेखनीय होती है। उन पात्रों की क्रियाओं की रूप देने के लिए माया और सैवी की अपेक्षा होती है। इन सब में प्राणरूप से उस का संचार होना भी अनिवार्य है। भारतीय साहित्यकारों ने उसके बिना काव्यादि की स्थिति तक नहीं मानी है। अथ 'रामचरित-मानस' के ऐतिहासिक विवेचन के लिए उसके इन्हीं सब उरकरणां पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। आलोच्य विषय के अन्तर्गत यह विवेचना उस समय तक पूरी नहीं समझी जा सकती जब तक कि रामायणोत्तर संस्कृत ग्रन्थों के साथ उसको तुलनात्मक पीठिका न दी जाये। अतएव वस्तु नेता और उस के अन्तर्गत इस विवेचना का प्रसार अपेक्षित है।

१ वस्तु विवेचन

(१) वस्तु-मेद्-अपर यह कहा ही जा चुका है कि वस्तु के दो रूप आधिकारिक और प्रासंगिक होते हैं। 'आधिकारिक' वस्तु का सम्बन्ध कथा के मुख्य पात्र से और 'प्रासंगिक' वस्तु का सम्बन्ध अन्य पात्रों से होता है। इन अन्य पात्रों में कुछ अधिक महत्व के और कुछ ग्यून महत्व के होते हैं इसीलिए कुछ प्रासंगिक कथार्ये बड़ी और अधिक महत्वपूर्ण होती हैं जबकि अन्य कथार्ये उनकी अपेक्षा छोटी और कम महत्व की होती हैं। 'आधिकारिक' कथा के कलेवर और सीप्टब के विस्तार में ही इन प्रासंगिक कथाओं की उपयोगिता होती है। अथ किसी भी आधिकारिक कथा में आवश्यकतानुसार अनेक प्रासंगिक कथार्ये समाविष्ट करनी जाती हैं। इन सभी

कथाओं में मृतपदा सहित 'आधिकारिक' कथा की हो होती है और 'प्रासंगिक' कथायें शीघ्र खूटी हैं तथा उनकी योजना मेखरु की सीमव्यं बुद्धि पर ही अधिकतर निर्भर होती है।

(२) 'मानस' की आधिकारिक कथा— मानस के मुख्य पात्र 'राम' हैं। उक्त उतने सीमा सम्बन्ध रखते बानी कथा ही 'मानस' की 'आधिकारिक' कथा है, जिसमें रामकृत राम-विवाह राम-निर्वासन राम-वनप्रवास सीता-हरण सीता-शोष, सीता-प्राप्त और राम के अयोध्या प्रत्यागमन आदि की मुख्य घटनायें सम्मिलित हैं। इस कथा में विस्तार और सुबाहना की अतिबुद्धि के लिये अनेक प्रासंगिक कथायें भी आयाजित हैं जिनके नामक अल्प अनेक छोटे बड़े पात्र हैं। उनमें मुषीक, हनुमान् और विभीषण अधिक महत्वपूर्ण हैं अतः उनसे सम्बन्ध प्रासंगिक कथायें भी अधिक विस्तार एवं सी-व्यं से परिपूर्ण हैं जबकि परपुराम आदि उनकी अपेक्षा कम महत्व के पात्र हैं और इनीनिए उनकी प्रासंगिक कथायें भी अपेक्षाकृत संक्षिप्त और साधारण हैं। बड़ी प्रासंगिक कथायें जहाँ से आरम्भ होती हैं वहाँ से चल कर मुख्य कथा के फलितार्थ होने तक उसमें पूरा-पूरा सहयोग देती हैं किन्तु छोटी कथायें अपना स्थानीय और एन्वेषीय चमरकार दिखाने के लिये ही प्राप्त हो जाती हैं। इन्हीं बड़ी और छोटी कथाओं को साहित्य शास्त्रियों ने क्रमशः 'पताका' और 'प्रकरी' के विशेष नाम से अभिहित किया है।

यह ऊपर कहा ही जा चुका है कि मानस की आधिकारिक कथा 'रामकथ' से लेकर 'राम राग्य-वर्षण तक ही है। तुलसी ने आरम्भ के साथ ही उक्त आरम्भ न करके 'आर-काण्ड' के समथग आये भाग में उक्त आरम्भ किया है। इस कथा की समाप्ति भी इसी प्रकार ही के साथ न होकर 'उत्तर काण्ड' के समथग भाग भाग पर ही हो गई है। इस प्रकार 'मानस' में आधिकारिक कथा के पहले आयोजित 'आरकाण्ड' का पूर्वार्थ उक्त ही भूमिका के रूप में और कथा के परचात् आयोजित 'उत्तरकाण्ड' का उत्तरार्थ उसके उत्संहार के रूप में माना जा सकता है। 'भूमिका' और 'उत्संहार' भी यह योजना अनेक प्रासंगिक कथाओं से सम्मिलित है, अतः उक्त विश्लेषण भी उन्हीं के साथ किया जा रहा है।

यहाँ तक मानस की आधिकारिक कथा का प्रश्न है उक्त ही तुलसी में हमें संस्कृत-ग्रन्थों के तीन वर्ग प्राप्त होने हैं एक तो वह अल्प जिनकी आधिकारिक कथा 'मानस' में मिलती है दूसरे वे जिनकी कथा 'मानस' से बृहतर है और तीसरे वे अल्प जिनकी कथा 'मानस' से सपुनर है। 'बृहतर कथा' से हमारा तात्पर्य उक्त कथा से है जो मानस में बतिय रामकथा की अपेक्षा अधिक हो। यह अधिकता आदि में नहीं हो सकती क्योंकि 'रामकथ' ही कथा का आरम्भिक बिन्दु है और वह सभी अर्थों में प्रधान रूप से विमता है। 'उत्संहार-वर्षण' के रूप में यदि उन्हीं अर्थों

में कुछ 'आदि विस्तार' मिलता भी है तो वह सुमिका के रूप में ही भाग्य हो सकता है। अतः यह अधिकता केवल अन्त में ही उन प्रश्नों में प्राप्त हो सकती है, जिनमें 'रामराज्य' के पर्याय 'सीता-निर्वासन' और 'राम-स्वर्गरोहण' तक का वर्णन हो। इसी संदर्भ में 'कबू कबा' से हमारा अभिप्राय उस कथा से है जिसने 'मानस' से भी कम 'मूल कथा' का वर्णन किया गया हो। यह कभी 'आदि' में भी हो सकती है और अन्त में भी अथवा मादि और अन्त दोनों में भी हो सकती है। इस प्रकार 'आदि सधुतर' 'अन्त सधुतर' और 'आद्यन्त सधुतर' के माप से इनके तीन नेत्र किए जा सकते हैं।

(३) समान आधिकारिक कथा—मद्विकाम्य रामबीय धीर महाधारत (बन पर्व) में 'मानस' के समान ही 'रामराज्य' से लेकर 'रावराज्य' के वर्णन तक आधिकारिक कथा का समावेश किया गया है।

(४) बृहत्तर आधिकारिक कथा—रामायण-मञ्जरी रचुंछ राम चरित (सम्पादक नन्दी) 'रावबनेपबीय', 'हनुमन्नाटक' और 'महानाटक' की मूल कथा 'मानस' से अधिक है क्योंकि वहाँ 'रामराज्य' के पर्याय 'सीता-निर्वासन' तथा 'राम-स्वर्गरोहण' का भी वर्णन किया गया है। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि तुलसी ने अपनी कथा के स्रोत के रूप में 'वाल्मीकि रामायण' का नामोस्मरण करके भी उसके अनुकरण पर 'राम-स्वर्गरोहण' तक अपनी कथा का विस्तार नहीं किया जबकि पूर्वोक्त ग्रंथ इस दिशा में उस परम्परा का पालन करते हुए जात पड़ते हैं। इसके कई स्पष्ट कारण भी हैं। 'रामायण-मञ्जरी' तो स्वयं उसके लेखक के अनुसार 'वाल्मीकि रामायण' का कथाधार ही है। 'रचुंछ' ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें राम के 'पूर्वजों' और 'परजों' अनेक राजाओं की बीबनियाँ भी गई हैं। रामचरित और 'रावबनेपबीय' दोनों श्लेषकाव्य हैं। वहाँ 'रामकथा' मौल्य रूप से मूलीत हुई है, अतः उन प्रश्नों के मापकों की आवश्यक कथा के माप-साध 'राम-कथा' भी वहीं तक निबद्ध हो गई है। 'हनुमन्नाटक' और 'महानाटक' में एक तो प्रक्षिप्त 'बर्ष' समिक है दूसरे उनमें 'जाटकत्व' की अपेक्षा 'महाकाव्यत्व' की बहुलता है और तीसरे उनमें अन्त के केवल दो या तीन दृश्यों में ही बृहत्तर कथा का अतिरिक्त संकेत किया गया है जो अन्त वर्णनों के अनुपात में अपना नगम्य स्थान रखता है। यदि ये विषयताएँ न होती तो बहुत संभव था कि इन प्रश्नों में भी बृहत्तर कथावच को स्वीकार न करके 'मानस' के समान ही 'रामराज्य' तक आधिकारिक कथा बर्णित होती।

इन प्रश्नों के अतिरिक्त अग्निपुराण, वषपुराण ब्रह्मपुराण भागवत मादि में भी 'रामराज्य' से लेकर 'राम-स्वर्गरोहण' तक का प्रधानक मिलता है। पुराणों का मूल उद्देश्य ही ब्रह्मपरम्परा का वर्णन है अतः वहाँ राम के पूर्व और पर्याय के सभी ब्रह्मपर राजाओं का उल्लेख समस्त 'इक्ष्वाकुवंश' का विवरण दिया गया है। इस दृष्टिकोण से उनमें भी बृहत्तर कथावच का ग्रहण होना स्वभाव स्वाभाविक है।

(१) आदि सप्ततर आधिकारिक कथा—संस्कृत के महाकाव्यों में 'रघुबीर चरित' में रामजन्म से लेकर राम-निर्वाहन तक की कथा नहीं है, और राम चरित' में उसके आगे सीताहरण राम सुग्रीव-सौमि और बाण्डिष' आदि का भी वर्णन नहीं किया गया है। इन प्रकार प्रथम ग्रंथ में कथा का आरम्भ राम के बन प्रवास न और द्वितीय ग्रंथ में उनके 'प्रलयकाल पर्वत प्रवाल' से किया गया है। इन दोनों ग्रंथों में 'पूर्वकथा का विवरण देने के लिए राम-मुनि-संवाद सत्त्वक-सुग्रीव संवाद और राम इनुमान् संवाद आदि के माध्यम का सफल प्रयोग किया गया है। इन काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत के नाटकों में अधिक स्वतन्त्रता से काम लिया गया है। बहूँ रामजन्म का वर्णन तो क्विची भी नाटक में नहीं मिलता है। उसके अतिरिक्त 'अनर्पराजन में निरशामिन्-याचना महाबीर चरित' में विरवामिन् के माध्यम में राम-वदमन् की अवस्थिति बाणरामायण में 'राम-विवाह, 'प्रतिमा' में राम-निर्वाहन जानक्यंभूषामणि में सीता-हरण अभियेक में सीता-घोष' 'दुर्गावद' तथा अद्भुत-दर्शन' में संक्रा अभियान' से पूर्व की कथा नहीं है। इन नाटकों में विघनी कथा के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं मिलता है। आरम्भ की इन विभिन्नता के होते हुए भी इन सब नाटकों की समाप्त 'रामाभियेक के वर्णन के साथ ही होती है।

(२) अन्य सप्ततर आधिकारिक कथा—जानकी-हरण उदार राघव और वनुरामायण ये तीन ग्रंथ इस कोश में आते हैं। इनका आरम्भ तो 'राम जन्म' के वर्णन से होता है किन्तु अन्य विभिन्न है। जानकी हरण का लक्ष्य ही 'सीता हरण' के वर्णन तक प्रतीत होता है यद्यपि उसकी प्रतियों में 'रामाभियेक तक की कथा भी मिलती है। उदार-राघव में गुर्गणदा-वितरण और वनुरामायण में सीता घोष' तक की ही घटनाएँ बर्णित हैं। ये दोनों ग्रंथ बहुत मिलते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि द्वितीय ग्रंथ को पूर्ण करने के लिए अन्य दोहरों ने भी बड़ा भुगतन प्रदान किया है।

(३) आद्यन्त सप्ततर आधिकारिक कथा—इस ग्रंथ में केवल प्रथम-राघव ही एक एका ग्रंथ है क्योंकि उनके न तो आदि में राम जन्म है और न अन्त में रामाभियेक। इन दोनों के बीच में सीता-उदयकर से लेकर के 'राम तपोष्ठा ज्ञानमन तक की ही मूल कथा बहोँ प्राप्य होती है।

इस प्रकार एक ही आधिकारिक कथा के विभिन्न भागों से आरम्भ करते हुए संस्कृत के अनेक कवियों ने अपने राम काव्यों का निर्माण किया है। इस दिशा में मानस क भाट्ट' के मूल में तुलसी ने बड़ी दयाला और साधुपानी का चरित्र रखा है। इन्द्रोके मानस के आरम्भ में दशरथ-वर्षन को बनाकरचक्र विचार न देकर केवल दो बार पद्यों में ही प्रस्तुत कर दिया है और अन्त में भी अनेक महा काव्यों तथा नाटकों की सुरीयं परम्परा से अनुप्राणित होकर तथा 'राम राघव की

पाना में ही अनेक इहोव की परिच-उम्भगी चरम परिचति पा जाने के कारण होने उसी बिन्दु पर 'रामकथा' को परिचमाप्त कर दिया है।

'अभियेकोत्तर' कथा को विचारपूर्वक छोड़कर 'मानसकार' ने राम के विभिन्न उरुर्प की बड़ी रखा की है। अग्यथा

बेहिक देबिक भीतिक तापा ।

राम राज तहि काहुहि म्यापा ॥ ७ । २१

इ कर उम्भति 'रामराज्य' की विषय 'सर्वश्रेष्ठता' की स्थापना की है, बड़ ता के ही 'ताप' क उल्लेख से अक्षय सापभाव हा जाती। इसके साथ ही फिर 'सीता-प्रतिबिम्ब' की राजता का ही कोई महत्व रह पाता और न राम के साधारण व्यक्तित्व तथा ईश्वरत्व की ही कोई प्रतिष्ठा हो पाती।

(८) मानस की प्रासङ्गिक कथायें— मानस' की मूल कथा के अन्तर्गत छोटी ही अनेक प्रासङ्गिक कथायें हैं। इस मूल कथा' के आदि और अन्त में भूमिका' और अन्तहार' का उल्लेख किया जा चुका है, जो स्वतः प्रत्येक मान ही हैं अतः यहाँ उनका भी उल्लेख नहीं आवश्यक है।

(९) 'मानस' की भूमिका—'अज्ञान-समाधान' से सम्बन्धित सम्बन्ध राजता के अतिरिक्त इसमें कुछ साप और बरदान बाकी कथायें भी हैं जिनके उल्लेख राम का नाम और अन्तहार अतिवाये हो जाता है। एक और प्रस्ताप के कारण अम-विजय जलम्बर, इरतन और प्रतापमानु आदि राक्षस के व में उत्पन्न हैं, तो कुछ ही और कथन और अहित तथा मनु और अठकपा की अन्तरे उपस्था से प्रसन्न होकर बिन्दु मूह-माना बरदान देकर रामकथ में उनके व वन जाते हैं। इस प्रकार 'रामकथा' के प्रायक और प्रतिपाद्य के अन्तहार का वन करके तुलसी ने अन्तहारबाह की प्रतिष्ठा की है। इसके साथ ही 'विद्वेषण' का प्रदान बनना कर ब्राह्मणों के महत्व का ज्ञापन भी करते हैं और 'मूह मनि' (दानों) का उल्लेख करते हैं अन्तहार की महती कृपा का संकेत भी करना चाहते हैं। ऐसी इहोव भूमिका' संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ में नहीं है।

उत्थापन-सम्बन्धी तथा 'अम्बुरामायण' में 'वासुदेविक-रामायण' के अनुकरण एक भूमिका अक्षय मिलती है, जिसमें 'वासुदेविक-गारव संवाद' के पश्चात् 'भीष्म' का प्रथम दशक के अन्त 'रामायण' के निर्माण और राम की राजसभा में कुशलता 'उप' उसके मावन' का वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त 'जानकी-इरतन' 'शार-रावण' और 'राक्षसी' आदि में 'मूलकथा' के पूर्व अन्तहार के 'अज्ञान-विनाश', अन्तरे अन्तरे और 'ताप-साप' आदि का विशेष विस्तृत उल्लेख मिलता है जो वहाँ भिका के रूप में ही प्रस्तुत किया गया जाता या सकता है। मानस' की भूमिका साथ इन भूमिकाओं को तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें न तो कोई विशेष अन्तरे अन्तरे उपयोगिता है, न अन्तरे अन्तरे अन्तरे है और न कोई अन्तरे अन्तरे अन्तरे ही है।

(१०) 'मूलकथा' से सम्बद्ध प्रासङ्गिक कथायें—'मानस' की मूलकथा में केवल हीन बड़ी प्रासंगिक कथायें हैं, सुश्रीव-कथा, हनुमान-कथा और 'विभीषण कथा'। इनके अतिरिक्त अनेक छोटी-छोटी प्रासंगिक कथायें उन बड़ी कथाओं में अन्तर्निहित हैं। यही कथाओं में वे प्रथम दो कथायें 'मानस' के किरणिका-काण्ड से और अन्तिम कथा गुल्बर काण्ड से आरम्भ होकर 'मूलकथा' के साथ ही 'उत्तर काण्ड' में समाप्त हो जाती है। मूल धार्मिक कथा से मूल्य विन्दुओं का विवरण अभी दिया जा चुका है। ये प्रासंगिक कथायें उन विन्दुओं से सम्बद्ध की गई हैं। प्रत्येक विन्दु की प्रासंगिक कथायें भिन्न भिन्न हैं। उनके इस सम्बन्ध के मायोजन में ही संस्कृत की कला-कुशलता और मर्मज्ञता का परिचय मिलता है। इस मायोजन में 'मानसकार' और संस्कृत के साहित्यकारों की सज्जता का तुलनात्मक विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(११) राम-प्रश्न से सम्बद्ध प्रासङ्गिक कथायें—पृथ्वी-वृक्षलोक-गमन, विष्णु भोजना दक्षरूप-पुण्ड्रि-यज्ञ, विष्णु-वतुर्भुज-रूप-प्रदर्शन और विराट्-रूप प्रदर्शन आदि कथायें इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं। इन सभी कथाओं का एक-मात्र प्रयोजन 'राम चरम' की मनोविक्रमता का वर्णन करना है। संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों में 'पृथ्वी-वृक्षलोक-गमन का वर्णन इस प्रसंग में कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। भागवत, ब्रह्मपुराण पंचपुराण आदि में कल्पवृक्ष के प्रसंग में ही उसके वर्णन का उल्लेख किया जा चुका है।' विष्णु भोजना का वर्णन 'रघुवंश रामायण-मञ्जरी, राघवीय' और 'उदार राघव आदि ग्रन्थों में भी किया गया है किन्तु वहाँ सभी देवताओं को विष्णु की स्तुति के लिए सीरसापर तक जाना पड़ता है, जब कि 'मानस में

'हरि भ्यापक सर्वत्र समात्ता । प्रेम ठे प्रथमं हाहि मै जाता ॥ १।१८५

कह कर तुमही ने स्तुति के बल पर विष्णु के ब्रह्मलोक में ही प्रकट हो जाने का वर्णन किया है। इस प्रसंग की योजना में उनका यही विनिष्ट प्रयोजन है। 'पुण्ड्रियज्ञ' का उल्लेख संस्कृत के लगभग सभी ग्रन्थों में है। उल्लेख भी 'अभिवरण' की योजना में तुमही ने अपनी मनोवैज्ञानिकता का सरस परिचय दिया है।' विष्णु के वतुर्भुज-रूप और विराट्-रूप के वर्णन में तुमही पंचपुराण से प्रभावित आकर हैं, किन्तु उसके निरूपण में वे यथया स्वतन्त्र हैं क्योंकि पुराणकार ने विष्णु के वतुर्भुज रूप और विराट् रूप के सम्बन्धित दर्शन केवल एक ही आकार पर कराये हैं' वहाँ तुमही ने उसके दो भाग करके उनको विभिन्न आकारों पर आधारीत कर दिया है। 'मानस में इन दोनों भागों को बड़ी उपयोगिता है। प्रथम भाग यदि बौद्धिकता को विष्णु के ज्ञान सेना का पूर्वाभास कराता है,' तो द्वितीय भाग

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २४०

२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १२८ १२९

३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ ११०

४ पदम् । पाठान १०१०-२९

५ मानस १।१२२

उनकी भाष्य शैलियों की उपासना से विरक्त भी कर देता है।^१ संस्कृत के ग्रंथों में इस सोद्ध्यता का ध्यान नहीं रखा गया है।

(१२) रामचिन्ताह से सम्बद्ध प्रामाणिक कथायें—इस प्रसंग में 'बिरवाभिषेक' याचना ताटका तथा बहुश्लोकार पुष्पवाटिका-मिलन, सीता-स्वयंवर और परशुराम पराजय आदि की कथायें प्राप्त होती हैं। इन सबका सम्मिलित अर्थव्य राम के ही अनुभाव एवं प्रभाव का निरूपण करता है और इसीलिए तुलसी ने उनको वहाँ स्वीकार किया है।

संस्कृत के ग्रंथों में प्राप्त बिस्वामित्र-याचना के प्रसंग में बिरवाभिषेक के ही वैभ और कोप का अधिक वर्णन मिलता है और वहाँ बभरव एवं बलिष्ठ तक को सबसे आश्रयत विखनाया गया है जबकि मानस' के बिरवाभिषेक राम के ईश्वररथ से पुरारिचित हैं और यह-यह पर उसका ध्यान रखते हैं।^२ ताटका-यह प्रसंग का प्रयोग राम के बहुश्लोकार पराजय के वर्णन के साथ-साथ ताटक को मित्रपद' देने वाले उनके ईश्वररथ का भी संकेत करता है और बहुश्लोकार' के प्रसंग में बहुश्लोकार की स्तुति में उनके दिव्यभाव का प्रमुख उल्लेख मिलता है। संस्कृत के ग्रंथों में बलिष्ठ इन कथाओं में ताटका के उद्भव और बहुश्लोकार के पाप-भाष' आदि का ही विस्तृत निरूपण किया गया है।^३ जो मानसिक कुरबि एवं रस-व्याथा का ही उद्भव करता है। पुष्पवाटिका-मिलन के प्रसंग में सौधिक पूर्व मिलन का अतीतिक उल्लेख है। 'युञ्जार' का वहाँ पर्याप्त विस्तृत वर्णन होने पर भी उसमें ऐहिकता का कहीं उल्लेख नहीं है जबकि प्रसंगपराम्य और 'नैचली-कम्पाय' ताटकों में वहाँ ताटककारों ने इस दिव्ययुगल को 'द्विबिभ्रम' का साहस किया है जर्मनीता को अनायास ही प्रथम दिन गया है।^४ तुलसी इस विषय में सर्वथा सावधान है।

'सीतास्वयंवर' की कथा राम की उर्वरकर्मिता और तर्षीपरि सता का परिचय देती है। 'स्वयंवर-साक्षा में राम के प्रथम दर्शन के अनन्तर पर बलिष्ठ प्रतिबोधी बर्तनों की भावनाओं में और राम के द्वारा रावण आदि के असामर्थ्योत्तरक उस धिक्-अनुप के भय करने के उल्लेख में विद्वान्त और व्यवहार दोनों परों का अनुभव सामर्थ्य प्रस्तुत किया गया है जबकि संस्कृत के साहित्यकार, या तो उन स्वयंवरों में राम की अवस्थिति तक का विचार ही न कर सके या फिर उन 'मटमानी' रावणों की सुधीर्ष नाम-गणना में ही व्यस्त रहे। यही एक पर्याप्त स्थिति संस्कृत ग्रंथों में प्राप्त परशुराम-पराजय' कथा की भी है जिसमें परशुराम का मिलन और पराजय अपोष्मा के मार्ग में बलिष्ठ किया गया है जबकि तुलसी ने परशुराम को स्वयंवरप्रस्ता में और प्रतिबोधी रावणों की उत्पत्ति में ही पराजित और लज्जित दिखाना करके राम के अद्वितीय शीघ्र और विक्रम का आदर्श का जमा दिया है।

१ मानस १।२०१-२०२

२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १३२, १३४

३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १३४, १३६

४ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १३७, १३८

संस्कृत के जिन माटकों से उन्हें यह प्रेरणा मिली है उनमें परशुराम के साथ-साथ जनक सतानुग्रह दशरथ विश्वामित्र और राम के भी मुख्य भावकसह तथा अपमान सूचक संवाहों की ही केवल भरमार नहीं है, प्रत्युत नेपथ्य में राम के साथ परशुराम के झड़-पड़ का भी संकेत किया गया है जिसमें राम उनके पुण्यप्राप्त स्वर्गलोक का मातृ लक्ष भी कर देते हैं।^१ वही तुलसी यह अच्छी तरह से जानते हैं कि परशुराम भी एक भवतार हैं, इसीलिए उन्होंने एक ओर इस प्रथम की सारी कटुता को 'लक्ष्मण-परशुराम-संवाद' में ही सीमित करके राम तथा अन्य गुरुजनों की भासीनता की सुरक्षा की है और दूसरी ओर उन दोनों भवतारों की पर्याया को भी बरतकर रखा है जबकि संस्कृत के ग्रन्थों में परशुराम को एक प्रतिनायक के रूप में ही अधिकतर विमित किया गया है।

(१३) राम निर्वासन से सम्बद्ध प्रासंगिक कथायें-इसके अन्तर्गत देव-पद-बंध मंत्रा-विचार और केकयी की दरशान-वाचना आदि की कथायें उल्लेखनीय हैं। वे सभी कथायें उत्तरोत्तर प्रेरणा के फलस्वरूप एक ही दिशा में समाहित होकर तमान उत्तरदाशिव के साथ अपने लक्ष्य की प्रगति में सक्रिय हैं। इनमें देवपदग्रहण की कथा तुलसी की मौलिक ब्रह्मता है। वे बारम्बार चोपित करते हैं कि 'राम जगत्' का प्रयुक्त उद्देश्य मुरकार्य-साधन अथवा निश्चरणात्त है। इसके लिए वे राम के बन्ध-ग्रहण की अनिवापता से परिचित हैं। अतः राम निर्वासन के पदग्रहण में देवताओं की सक्रियता का निरूपण उनको सर्वथा अभीष्ट है जिसके लिए बुद्धि की अविच्छादी देवी उत्तरदाशिव के उपसृष्ट माध्यम का चुनाव उनके विवेक का परिचायक है। अथवा कुछ संस्कृत ग्रंथों में मन्वरा को बुद्धुमी रणधर्मी वा भवतार कह कर उसको ब्रह्मा के आदेश से उसी कार्य के लिए केकयी के समीप निपुक्त ब्रह्मनामा गया। 'मायरा-जड्यंत्र' कथा की महाबलुष योजना करते हुए तुलसी ने उसमें परशुराम का अधिक ध्यान रखा है जबकि रघुबंध पद्मपुराण अट्टिकाव्य प्रसन्नपत्र एवं हनुमत्पाठक आदि ग्रंथों में मन्वरा के अन्वय में सारा उत्तरदाशिव केकयी पर ही पड़ जाता है। महावीरचरित जनपराशर और बामरात्रायण आदि माटकों में मन्वरी मन्वराओं की सृष्टि भी इसी परशुराम-जालन के तद्वत् की गई है।^२ तुलसी ने यहाँ उनके लुंवार में शोक तथा प्रजावशीलता की नवीन उद्भाषनाओं से इन प्रथम को अधिक शोक एवं चमत्कारपूर्ण बना दिया है। केकयी की दरशान-वाचना बाधा प्रसंग 'राम निर्वासन' के लिये अग्रिम और लम्ब लक्ष्य से उत्तरदाशिव है। इसमें मानसकार ने दशरथ और केकयी की कथायें विपत्ति का अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक निरूपण किया है जबकि संस्कृत के कुछ माटकार केकयी की निर्दोषता और पुत्र हृदयता के वर्णन के लिये अनेक विविध कल्पनाओं की सृष्टि करते रहे हैं।^३ वही तुलसी

१ प्रसन्नपत्र विभाग १४२ १४६

२ मानस २।१२

३ प्रसन्नपत्र विभाग पृष्ठ १२२

४ प्रसन्नपत्र विभाग पृष्ठ १२३

ने केष्मी की हठमिता की सफलता को दिखाना कर उसे 'राम-निर्वासन' का एक अनिवार्य कारण सिद्ध कर दिया है।

(१४) राम-वन प्रवास से सम्बन्ध प्राप्तगिक कथायें— मूक कथा के इस बिन्दु से 'गुहमिलन' भरद्वाज-मिलन' 'अशुभयस तापस-मिलन', 'बास्मीकि-मिलन' सुमन्त्र प्रत्यावर्तन' 'दशरथ-भरण', 'भरत-चित्रकूट-गमन', 'जनक-चित्रकूट-गमन' 'चित्रकूट-समा' 'अमृत-आसन' 'अग्निमिलन' बिराज-वध धारमंग-मिलन' सुतीक्ष्ण-मिलन और बहस्त्य-मिलन' आदि कथायें सम्बन्ध हैं। यहाँ गुह भरद्वाज, अशुभयस-तापस बास्मीकि अग्नि धारमंग सुतीक्ष्ण और अमरम आदि से राम के मिलन की कथायें उनके शील और ईश्वररथ की द्योतक हैं जिससे उनसे मिलने वाले उपर्युक्त सभी लोग उनके द्वारा-दृष्टि की कामना करते हुए उनके जनपायिनी भक्ति का बरदान भी प्राप्त करते हैं। संस्कृत के कुछ ग्रन्थों में 'गुहमिलन कथा की बर्णना ही नहीं है और कुछ में गुह के रूप में अथवा इतरत्र का ही विस्तृत उल्लेख किया गया है।^१ अन्य कथाओं में भरद्वाजादि के आश्रमों का वर्णन महाकाव्य के एक मूलक के रूप में ही प्राप्त होता है जिसकी विशेषता प्रायः प्रकृति-सौन्दर्य एवं विषय बाधा धारण के निरूपण में ही जान पड़ती है। यहाँ न तो 'मानस' की ही समीकता अपना माणिक्यता है और न भक्ति-प्रस्तावना ही है।

मानस के 'सुमन्त्र प्रत्यावर्तन' कथा में राम का सर्वोच्च उत्तरी वितृमक्ति का पुष्ट परिचायक है और दशरथ-भरण के प्रसंग में दशरथ के पुत्र प्रेम की पराकाष्ठा दृष्टि पोषण होती है। संस्कृत के ग्रन्थों में सुमन्त्र का अधिकतर उल्लेख नहीं है और यहाँ है यहाँ 'मानस' की ही मर्यादा-पूर्व स्थिति के दर्शन नहीं होते हैं।^२ दशरथ-भरण की कथा को उन ग्रन्थों में राम-निर्वासन के साथ सम्बन्ध कर दिया गया है जिससे दशरथ के तीव्र बाह्यत्व का परिचय तो मिलता है किन्तु अर्थस्य के प्रति उनकी आब रुचता और अन्तिम आशा संय के साथ ही उनके प्राण संय की कथावस्था का निरूपण नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक ग्रन्थों में यहाँ 'अमृतवापस-आप' की दशरथ के भरण का अनिवार्य कारण ही प्रस्तुत किया गया है यहाँ उनका बाह्यत्व अमिनय मात्र रह जाता है। तुलसी ने इनीलिये उसका अतिव्यक्ति संकेत करके उनके चारित्रिक उद्वेग की रक्षा की है।

भरत और जनक के चित्रकूट-गमन और यहाँ गया की कथाओं की योजना राम के प्रति भरत एवं जनक के रूप में शोभात्र एवं हीमनस्य के निदर्शन के लिये की गई है। इनमें 'जनक-मिलन' की कथा तो निराश्रय मौलिक है और तुलसी की अप्रतिम मनोवैज्ञानिक प्रतिभा की द्योतक है। संस्कृत के महाकवि ऐसे व्यवहार पर जनक की प्रतिक्रिया का पूर्ण विस्मरण ही कर गये हैं। 'मानस' के 'भरत मिलन' क प्रसंग में

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १६०-१६१

२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १३३

३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १६२

४ मानस २।१३३

भरत के सहायकी परिवर्तनों और पुरजनों की आत्मीयता, माताओं की बरचसता, युद्ध की धुरंधता भरद्वाज की श्रद्धि सिद्ध योजना बनपण के प्रामाणिकता की सुहृदयता इन्द्र आदि की आशंका और लक्ष्मण के रोष-तोष के वर्चन के अतिरिक्त चित्रकूट समा में संघर्षों में आध्यात्मिकता और अलौकिकता का जो सरस एवं विस्तृत निरूपण किया गया है वह उसे संप्रान एवं स्पृहणीय बना देता है जबकि संस्कृत के ग्रंथों में भरत के 'कीरे वननागमन और गुच्छ उत्तर प्रत्युत्तर के ही नीरस विवरण से यह प्रसंग एक घटनामात्र रह गया है।

जयप्रसामन और विराधवध की कथाओं में राम की शक्ति और ईश्वरता का समर्थ संकेत मिलता है जिसके प्रभाव के साथी एकनयन जयन्त और निजपद गामी विराध हैं। संस्कृत के साहित्यकार हम प्रसंगों में सीता के 'स्तनों के नयोस्तौस' एवं 'अपहरण' के ही चित्रण में निमग्न रहे और परतु-योजना के महत्त्व पर अधिक ध्यान नहीं दे सके।

(१२) सीताहरण से सम्बद्ध प्रासंगिक कथाएँ—सूर्यनारा-विक्रमण सरदू पण-वध, मारीच-वध और जटायुमरण के प्रसंग इन दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय सीता हरण के कारण हैं और चतुर्थ उसका परिणाम है। यहाँ प्रथम प्रसंग में राम की शासितता द्वितीय और तृतीय में उनकी शक्ति और चतुर्थ में उनकी अलौकिकता का प्रतिपादन किया गया है। संस्कृत साहित्य में सूर्यनारा-विक्रमण के प्रसंग में सूर्यनारा के सौम्य विक्रमण एवं प्रणयनिवेदन और उसके साथ राम सम्मन के स्निग्ध संभाषण एवं किञ्चित् आश्चर्य के विस्तार चित्रण से 'रक्षाभाण' का ही अतिशयोक्त्य हुआ है जबकि मानस में राक्षसी की रक्षामात्रिक नाम प्रकृति और उसकी कुबेष्टाओं का यथार्थ वर्णन करते हुए तुलसी ने उसके विक्रमण को राक्षस के लिए एक 'बुनोती' बतला कर भविष्य की कथा का भी आत्म संकेत कर दिया है। इसके प्रसंगों के नियोजन और उनके पूर्वापर-संबन्धन के सम्बन्ध में 'मानसकार' की दित्यग दण्डता का प्रमाण मिलता है। 'सरदूषणवध' के प्रसंग में अपराध न होते हुए भी तुलसी ने राम के शीघ्र से लक्ष्मण का, उनकी शक्ति से १४ लक्ष राक्षसों की समाप्ति का और उनकी ईश्वरता से उन राक्षसों की निजपद प्राप्ति का वर्णन करते उनके लौकिक एवं अलौकिक अनुभाव का जो निरूपण किया है वह संस्कृत साहित्य में सर्वथा अप्राप्य है। वहाँ तो बड़े बड़े महाकवि युद्ध के विरतारों में ही उमंग मये और इस प्रकार प्रसंग योजना की उपयोगिता का विचार ही न कर सके। 'मारीच-वध' प्रसंग 'रामकथा की परम्परा का अनिवार्य अंग है। उसमें भी तुलसी ने मारीच के द्वारा राम के ईश्वरत्व के निरू-

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १७७

२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १८०

३ ' ' ' १८३-१८४

४ मानस १।१७

५ मानस १।१६-२०

पण से और उसके 'निजपद प्राप्ति' के उल्लेख से एक विषय बातावरण की सृष्टि की है। जटायु-मरण के प्रसंग में जटायु की 'साकम्प' और 'सालोक्य' मुक्ति का वर्णन करके तुलसी ने राम के ईश्वरत्व का सविरोध निकपण किया है, जबकि संस्कृत के ग्रंथों में इस प्रसंगों का कोई उचित महत्व प्राप्त नहीं हुआ है।

तुलसी की यही विरोधता है कि वे प्राप्त प्रसंगों में सुसूचित एवं सीधे-से विचार से सर्वत्र आत्मिक परिवर्तन एवं परिवर्धन कर लिया करते हैं तथा कभी-कभी उनमें उचित प्रेयसीयता का आभास देखकर मनीष उद्भावनाओं का शोकात्मक सूत्रन भी कर लेते हैं। समस्त महाकवियों की यही एक पहचान होती है।

(१९) सीता-शोध से सम्बद्ध प्रासंगिक कथायें—'मूमकथा' के इस विन्दु का अत्यधिक विकास हुआ है। इसी के अन्तर्गत सुग्रीव हनुमान् और विभीषण के नायकत्व में तीस बड़ी प्रासंगिक कथाओं का आरम्भ होता है जिनका विस्तार मूमकथा के अन्त तक बिखलाई पड़ता है। सुग्रीव-मिसल के पूर्व कबन्ध-वध जबरी मिसल और नारद मिसल तथा उसके परचात् 'बालि-वध' के प्रसंग राम से सम्बद्ध है। राम-सुग्रीव-मैत्री की भूमिका यों तो जबरी तैयार करती है किन्तु उसके अग्नि साक्ष्य के पुरोहित हनुमान् हैं। सुग्रीव के सेवक होने पर हनुमान अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। 'सीताशोध' में सुग्रीव प्रेरक मान है वास्तविक शोधक तो हनुमान् हैं और विभीषण उनके कुछ वर्ष में सहायक हैं। इस प्रकार इस प्रसंग में 'बालि-मुक्त' और 'बातरहुत-प्रेषण' की कथायें सुग्रीव से राम-सुग्रीव-मैत्री सुग्रीव प्रबोध स्वयंप्रज्ञा-वर्धन सम्पाति-मिसल समुद्र अंजन विभीषण मिसल सीता-संवाह बाटिका-संय रावण प्रबोध और अकावहन आदि की कथायें हनुमान से तथा सीता प्रकृति-निवेदन हनुमान रक्षण प्रयत्न और रावण प्रबोध आदि की कथायें विभीषण से सम्बद्ध हैं।

राम से सम्बद्ध कथाओं में कबन्धवध उनकी अद्वितीय शक्ति आह्वान-मक्ति और असौकरिता की स्थापना के सिधे आवोचित है जबकि संस्कृत ग्रंथों में इस प्रसंग के कबन्ध के द्वारा सीता-हरण करने और मुक्त करने का तो विस्तृत विवरण मिलता है किन्तु उपरिनिर्दिष्ट तत्त्वों की जहाँ तक नहीं है। अनेक ग्रंथों में जहाँ जबरी-मिसल की कथा का गिठान्त आभास है कबन्ध को ही सुग्रीव मिसल का संकेतक बतलाया गया है। मानस की 'जबरी-कथा' इस उपर्युक्त संकेत के अतिरिक्त राम के मुक्त से नववामलिक के प्रामाणिक उपदेश के निमित्त प्रयुक्त हुई है किन्तु संस्कृत के अधिकतर ग्रन्थों में जबरी का नामोस्मरण ही नहीं है और कुछ ग्रन्थों में उसे दूत रूप में या 'नकुली मन्धरा' के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। 'मानस' की जबरी इस राजनीति से सर्वथा दूर एक मूढ़ तापसी के रूप में ही प्रतिष्ठित है।

मारद-निगम की कथा बाणकाण्ड के 'मारदयाज' की कथा के उपसंहार के रूप में मानी जा सकती है। 'मारी निम्बा' और लम्बलक्ष्मण के निकपण से ही उसकी उपयोगिता है। यह कथा मूलकथा की श्रवण में किसी प्रकार भी छापक नहीं है, इसीलिए सम्भवतः संस्कृत के ग्रन्थों में उसके दर्शन नहीं होते हैं।

शास्त्रिक' की कथा राम की शक्ति और ईश्वी अनुमान के निर्देशन के साथ एक वैदिक सिद्धान्त का प्रतिपादन भी करती है —

अनुज बभू शक्तिनी मुक्त मारी । पुनु छठ कर्मास्य ए चारी ॥

इहृहि कदुष्टि बिलोकइ बोई । ताहि बभे बछु पाप न होई ॥ ४१॥

मानस' का शास्त्रिक राम के ईश्वरत्व से सुपरिचित है और वह उनके हाथों से अपनी मृत्यु को भी बरदान-सदृश मानता है। इसके अतिरिक्त वहाँ 'रावण विभेता शास्त्रिक के बच में राम की सामर्थ्य दिखाना कर उनके द्वारा निकट भविष्य में रावण-वध की सम्भावना का संकेत भी इस प्रसंग में दिया गया है। राम के द्वारा प्रतिज्ञापूर्ति और विश्वा-निर्वाह का उल्कास भी यहाँ सोई रूप है। संस्कृत के काव्यों में अन्वय दर्शन एक ही परम्परा का पालन किया गया है किन्तु कुछ नाटकों में शास्त्रिक का रामण से प्रेरित बतला कर उसके साथ राम के सीधे इन्द्र-मुद्र का विस्तृत वर्णन भी प्राप्त होता है जिससे स्थिति स्पष्ट बन जाती है और उसकी योजना का यह सब वैधान बन्ध बर्धन-भाव रह जाता है। नाटकीय दृष्टिकोण से यह प्रदर्शन यत्ने ही स्वाभाविक लगता हो किन्तु काव्यीचित्त के विचार से यह एक बड़ी अर्थवत्ता का निदानक हो जाता है।

सुग्रीव से सम्बन्ध शास्त्रिक' की कथा उन दोनों के मूर्त-र का चित्रण करती हुई राम के द्वारा शिवमाय 'शास्त्रिक' की मूर्तिका का काम देती है और उसकी 'अरथायत-वस्तुता का भी पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है। बानरदूत प्रसंग की कथा भी सभी संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त है। वहाँ बहुत से कवियों ने इसकी अपने-अपने ऋणिक मान्य प्रदर्शन का माध्यम बना लिया है जबकि तुलसी ने राम-हृदय के तारकालीन तीव्र स्पर्शन का अनुभव करके उसका सतिष्ठता शिप्रता और बलता के अरुण समर्थय के साथ आवोचित किया है। साथ ही सुग्रीव के द्वारा 'राम जानु बध मोर निहोरा' बहला कर 'मानसकार ने एक भाव्य में ही इस प्रसंग के सोई रूप काव्य को अष्टिक प्रभावपूर्ण रूप से प्रस्तुत कर दिया है।

हनुमान से सम्बन्ध कथाओं में 'राम-सुग्रीव-मैत्री' की कथा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसके प्रभाव में रामकथा के अन्वय भी बहना ही नहीं हो जा सकती है। ऐसे अनिर्वाय प्रसंग में भी तुलसी ने हनुमान के द्वारा राम के ईश्वरत्व के अनुभव का दर्शन करते हुए बल और मददान के मयूर सम्बन्धों का अरुण विश्लेषण भी कर दिया है, जिससे उसकी योजना में दिव्यता के साथ-साथ अमरार्थि भी संतुष्ट

वर्ष हैं। संस्कृत के ग्रन्थों में यह प्रयास नहीं है। सुग्रीव प्रबोध^१ में हनुमान के रूप की व्यंगता स्पष्ट है, जिसको संस्कृत के साहित्यकार न तो आत्मसात कर के भीरु न व्यक्त ही कर सके। स्वयंप्रभा-कथा की योजना का एकमात्र उद्देश्य गुरुरतों को समुद्रतट तक घीघटा से पहुँचा देना है। तुलसी ने इसको भी स्वयंप्रभा की राम भक्ति से संबन्धित कर दिया है, जबकि संस्कृत के महाकवि इस प्रसंग स्वयंप्रभा के इतिहास^२ का ही शोधन करते रहे और साधन का ही साध्य मानते हैं। 'सम्पाति-मिलन' के प्रसंग में रामरतों के वर्णन से सम्पाति की 'नवपद्म प्राप्ति' का उल्लेख 'मानस' के समान ही अनेक संस्कृत ग्रन्थों में मिलता है। किन्तु वहाँ वह एक संयोज-मान अथवा भविष्यवाणी के रूप में ही अधिकतर निरिच्छत हुआ है, जबकि 'मानस' में तुलसी ने उसे स्पष्ट चरणों में 'रामकथा' कह कर, सम्पाति के द्वारा उन रतों का भक्तिमय प्रबोधन भी बलिष्ठ किया है। कुछ ग्रन्थों में सम्पाति की रसक पुत्र सुपार्ष्व के उद्योगों के वर्णन से^३ इस प्रसंग को अत्यधिक विस्तार देने का प्रयत्न भी किया गया है जिससे उन कवियों की महाकाव्य-निर्माण-शक्ति का परिचाय तो मिलता है, किन्तु उनके महाकवित्व का आभास नहीं होता है। इसी प्रकार 'समुद्रसंधन' की कथा में भी संस्कृत-काव्यों में अनादरवक विस्तार के वर्णन होते हैं, जबकि तुलसी ने सर्वत्र रामभक्ति का पुट देकर एक असौक्यता का विदास किया है।

'विभीषण मिलन-कथा' तुलसी की मौलिक योजना है जो संस्कृत के किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होती है। वही से विभीषण से सम्बन्ध प्राप्तिक कथा आरम्भ होती है जो 'मूत्र-कथा' के साथ-साथ अन्त तक समाप्त बरिष्ठ से चलती है। संस्कृत के ग्रन्थों में रावण और विभीषण के प्रसंगों में कोई अन्तर नहीं बतलाया गया है। इसीलिए हनुमान बड़ी बीनों रक्तानों पर समाप्त रूप से घीघटा की खोज करते हैं। विभीषण को शत्रु और भक्त की यह समान स्थिति कदापि स्वीकार्य नहीं है। इसीलिए उन्होंने विभीषण के भवन को 'रामाशुभ' से अंकित^४ दिखलाया है और वहीं विभीषण एवं हनुमान के सरस भक्तिपूर्ण संवाद के पश्चात् उन्होंने विभीषण के द्वारा हनुमान को घीघटा का पता बतलाने का स्पष्ट वर्णन किया है।

'घीघटा-मिलन' के प्रसंग में हनुमान् के कुशल बृत्त-रूप का विचन किया गया है। सम्येसों और प्रत्यभिज्ञानों के आवाहन-महान के अतिरिक्त घीघटा को आश्चर्य करने के लिए हनुमान उनके समस्त अपन कर्मक मूत्रराशिर शरीर' का प्रदर्शन भी करते हैं। उसी शरीर के अतुरूप उनके पीरप ना प्रमाण देने के लिए ही 'बाटिका भंग' की कथा आयोजित की गई है जिसमें राम-नार्य की छिद्र के लिए हनुमान नाप पाघबड भी हो जाते हैं और रावण की सजा में पहुँचकर वे उसे घीघटा प्रत्यर्पण के

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २०४

२ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २१-२५

३ मानस ३।५

४ मानस ३।५

निम्ने धारम्भार प्रकाशित करते हैं। 'राज्य-प्रबोध-रूपा' का यही मन्त्रव्य है। राजन के न मगने पर और मूढ होकर हनुमान के वध की आज्ञा देने पर विभीषण 'दूतव्य को अनूचित दत्ता कर हनुमान की रक्षा करने का प्रयत्न करता है। तीता प्रवृत्ति के निवेदन के परचाप् विभीषण का यह दूसरा सहयोग है। विभीषण की बात मानकर राजन जब हनुमान के वध के स्थान पर उनके बंध मंग करने के लिए तुल्य जाता है और उनकी वृद्धि में आय रूपवा ही देता है। तब हनुमान उठी आय से विभीषण वधन को छोड़ कर समस्त संका को मरमसाव कर खाते हैं। लकाराह की यह कथा 'वाटिका मंत्र' के परचाप् राजन को हनुमान के द्वितीय पोष्य प्राण के निम्ने आमोन्नि की गई है। संस्कृत-साहित्य में इन प्रसंगों में हनुमान के राममन्त्र-रूप का विनय नहीं है। इसीलिए वहाँ उनके वधों मयावातिमय एवं अनूचित संवन्ध-विषयों का ही सविस्तार वर्णन किया गया है।

विभीषण से सम्बद्ध तीता-प्रवृत्ति-निवेदन और हनुमान रक्षा प्रयत्नों की कथाओं का उल्लेख अभी किया जा चुका है। इनमें 'प्रथम कथा' की मौलिकता सर्वथा असंदिग्ध है और द्वितीय कथा में संस्कृत-साहित्य में केवल 'गीत-राज' की ही प्रपाकता मिलती है। 'मानस' के विभीषण की आन्तरिक रित्यगता वहाँ दृष्टि बोधर नहीं होती है। इसी प्रकार 'राज्य-प्रबोध' के प्रसंग में भी विभीषण के द्वारा राम के ईश्वरत्व-वर्धन में उसके अति धारमयता, उत्साह और लोहादे के दृश्य होते हैं, वह संस्कृत वधों में अप्राप्य है। वहाँ विभीषण अधिकतर मातृश्रेय्या और भाव्य प्रम से ही इस विद्या में प्रवृत्त होता है।^१

(१०) 'सीताप्राप्ति' से सम्बद्ध प्रासंगिक कथार्य—इसके अन्तर्गत सुवीर के द्वारा बानर-संग-संगटन, और लंका-मुड में उसके सहयोग की कथायें सुवीर के विभीषण की परचापति और 'राज्य-मुड राम के साथ उसके सहयोग की कथायें विभीषण के लक्ष्य-मुड और लंका-मुड के अवसर पर हनुमान के प्रयत्न की कथायें हनुमान से नामपादमुक्ति की वधा लड़ने से मेवमाह-वध की कथा लक्ष्य से और पुष्पक-वध, एवं विभीषणामिवेक की कथायें राम से सम्बद्ध हैं।

बानर-दूत-प्रेषण के परचाप बानर-संग-संगटन सुवीर का द्वितीय प्रयत्न सहयोग है। इसके अतिरिक्त समग्र-रुट पर पहुँच कर 'पौन्याय' में और संका में पहुँच कर राम-राज्य-मुड में भी उसके सक्रिय सहयोग पर विस्तृत बचन 'मानस' में किया गया है। संस्कृत के सभी वधों में ये प्रसंग समान ही प्राप्त हो जाते हैं किन्तु तुलसी में उनमें राम के ईश्वरत्व का संकेत करके उनकी योजना को और अधिक चरदारपूर्ण बना दिया है।

विभीषण की परचापति उसकी आन्तरिक श्रेय्या का परिणाम है। इसीलिए राम उसे 'पावनी भक्ति के साथ-साथ एक विलक' में ही लंका की समरदा भी

प्रदान कर देते हैं। संस्कृत-साहित्य में षष्ठ और भयवान के इस चरस मिसन का वर्णन नहीं है। वहाँ के केवल विभीषण और राम हैं। 'मानस' का विभीषण 'रावण' के विनाश में सर्वादिमा सहयोग देने की भावना से ही राम की मेचनाद-यज्ञ, रावण-यज्ञ और रावण के नाभिकुण्ड में अमृत की उपस्थिति की सूचना देता है। मेचनाद के यज्ञ की सूचना का उल्लेख कुछ संस्कृत ग्रन्थों में भी है, किन्तु अन्तिम दोनों प्रसंग 'मानस' में सर्वथा मनीष और मौकिक हैं। विभीषण की सम्पूर्ण भक्ति के निरर्थक के लिए ही तुमही ने उन्हें यहाँ पर भाषोक्ति किया है।

'सकम्प-मूर्च्छा' के बचसर पर 'संजीवनीवधि' नामा हनुमान का तृतीय महाग सहयोग है। इसके पूर्व मुद्गीब-मन्त्री एवं 'सीता-शोध' के प्रसंगों में व अपनी सक्रियता का निरूपण कर चुके हैं। संस्कृत के ग्रन्थों में हनुमान का यह तृतीय उद्योग जनेक बार बर्णित है।^१ तुमही इस प्रसंग की योजना में विशेष चतर्क है। उन्होंने यहाँ एक तो सकम्प के साथ राम की मूर्च्छा का उल्लेख न करके उनके महत्त्व की सुरक्षा की है दूसरे विष्टवेयण से बचने के लिए हनुमान के कबल एक ही उद्योग का वर्णन किया है और तीसरे उनके परिकल्पित मर्ष के उपहार के लिये उन्होंने इसी प्रसंग में उनके साथ भरत-मित्रता की बटना का भी वर्णन कर दिया है। इन विशेषताओं के कारण 'मानस' के इस प्रसंग की योजना अधिक लोहेस्प और सजल हो गई है। इसी प्रकार 'नामपाश-मुक्ति' की कथा भी 'मानस' में कई उद्देश्यों से भाषोक्ति हुई है। रामचरित की जसौकिकता के वर्णन के साथ-साथ इसमें गरुड़ के उस भ्रम और दर्प का भी संकेत है जिसके विनाश के निमित्त 'उत्तर काण्ड' में काक-मरुड संवार' का संविस्तार वर्णन किया गया है। संस्कृत के साहित्यकारों ने इस बचसर पर गरुड़ की मनास्थिति का कोई वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया है।

सकम्प के द्वारा 'मेचनाद-यज्ञ' की योजना 'मानस' के समान ही लम्बाग सभी संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त होती है किन्तु तुमही ने इस प्रसंग में सकम्प की उस प्रतिज्ञा में उनके चरितमत्त उत्कर्ष का महत्त्वपूर्ण संकेत कर दिया है जिसमें सैकड़ों बंकरों के विरोध करने पर भी उसी दिन मेचनाद के यज्ञ का निरन्तर स्थग्न करते हैं। इस प्रतिज्ञा में 'रामदुर्गाई' के मिथ्य छे को जसौकिक चमत्कार उत्पन्न हो गया है वही इस प्रसंग की योजना का मूल तथ्य है। संस्कृत के ग्रन्थों में इस प्रसंग में 'रत्नविद्या' का ही विस्तृत वर्णन मिलता है जिससे सकम्प के अद्भुत शीर्ष की प्रविष्टा लो होती है, किन्तु उनकी रामनिष्ठा का संकेत नहीं मिलता है।

कुम्भकर्ण-यज्ञ की बटना 'मानस' के समान ही संस्कृत के ग्रन्थों में भी भाषोक्ति मिसती है, किन्तु 'मानस' में कुम्भकर्ण की मूर्ति का उल्लेख 'भूमिका'

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २२७

२ मानस ६।७२

३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २२६-२३२

की 'हेतुकथामों' से सम्बद्ध है जबकि संस्कृत साहित्य में इन हेतुकथामों का संबंध अभाव है। विभीषणाभितोष प्रसंग में राम के द्वारा 'पिता बचन में मरर ब भावत' कहलाकर तुलसी ने उनकी जिस चारित्रिक दृढ़ता एवं नीतिमत्ता का वर्णन किया है, वह अत्यन्त अप्राप्य है।

(१८) राम के अयोध्या प्रत्यागमन से सम्बद्ध कथायें—इसके अन्तर्गत भरद्वाज भिलन युद्ध-भिलन वैद-स्तुति शिव-स्तुति सनकादि-स्तुति बसिष्ठ-स्तुति नारद-स्तुति की कथायें हैं। पहली दोनों कथामों का आयोजन तुलसी ने भरद्वाज और युद्ध को राम के प्रत्यागमन से आरंभ करने और राम के ईश्वरत्व के संबंध में उनकी दृढ़ भावना के प्रतिपादन के लिए किया है। इन कथामों को अयोध्याकाण्ड में वर्णित इन दोनों की भिलन-कथामों का उपसंहार भी माना जा सकता है। शेष पाँचों स्तुतियों का एकमात्र यही लक्ष्य है कि राम ईश्वर हैं, सत् सर्व-रतुय हैं।

उपरोक्त विरोधताओं के दृष्टिकोण से यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'मानसकार' ने इन समस्त प्रबंध-काव्यनामों में अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। संस्कृत साहित्य में इन प्रबंधों के कहीं बर्तन नहीं होते हैं।

(१९) 'मानस का उपसंहार'—भूमिका के समाप्त ही इसमें भी संका स्यावान और 'संवाद-योजना' की पद्धति का आशय लिया गया है। यहाँ अन्तर्बोधी काक अपने अनुभवों के आधार पर संकानु बद्ध को स्वल्प तथा निर्धम करता है और प्रमाण में अपने पूर्वजग्यों का विस्तृत परिचय भी देता है। इन दोनों पक्षों के संवाद में भक्ति और दर्शन का बड़ा व्यापक विवेचन किया गया है जो 'पिता' और 'अप्यारम-सामाज्य' से बहुत कुछ प्रभावित है। इसके परवान् पौराणिक शैली में कथा के माहात्म्य और आधिकारियों के लक्षण आदि का शास्त्रीय निरूपण या किया गया है जो 'मानस' के प्रति तुलसी की भक्तता को व्यक्त करता है। संस्कृत के ग्रंथों में यह माहात्म्यादि वर्णन नहीं है, जिससे उनके केवल समर्थ पाठकों का ही प्रबंध हो सकता है जबकि 'मानस' पर सर्व साधारण का समाप्त भविकार है। इसी लिए वह बड़े से बड़े विद्वान् साहित्य-मर्मज्ञ से लेकर अपढ़ भक्त तक का 'मानस' पंचन करता रहा है और करता रहेगा। तुलसी की यह उपसंहार योजना सर्वथा मौलिक है क्योंकि संस्कृत के आसौष्य ग्रंथों में ऐसी योजना नहीं की दृष्टिकोण नहीं होती है।

इस वस्तु विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता कि यद्यपि तुलसी ने अपनी कथा के शीत में नानापुस्तक निपमायम आदि का संश्लेष कर दिया है, तो भी उन्होंने इसके वस्तु-संगठन में अपने विवेक और स्वातन्त्र्य का श्रेष्ठ परिचय दिया है। वस्तुतः उन्होंने अपनी भक्ति को उत्तरोत्तर बृद्ध करने तथा रामचरित का सर्व समस्त के लिए अधिक से अधिक प्राचीन राम-साहित्य-कर रचनाकर वा माकपूर्वक शोध किया

और अपनी सङ्ग्राहिता के अनुसार मनोबोद्धि सारमृत रचनोपकरण रत्नों को ही ग्रहण किया और उन्हें अपने दिव्य प्रकाश तथा मीलिकता की शान पर बढ़ा कर विशेष सुसंस्कृत रूप देकर अपने नूतन राम साहित्य में समिष्टिष्ट किया ।”

तुलसी इस तथ्य से भी सुपरिचित हैं कि कथा में ठारतम्य की एक-सूत्रता के साथ-साथ समय प्रमाणाग्निषि का ध्यान रचना भी परम आवश्यक होता है जो अन्ततोगत्वा अभीष्टित ‘रसनिष्पत्ति’ का नियोजन करता है। संस्कृत के कवियों ने परम्परा-नात्मन की दृष्टि से अधिकतर केवल कथा के वर्णन में ही अपने कर्तव्यों की सफलता मान ली है और इसकी सोझ-समता के बिचार से अपनी किसी मनीषता का प्रतिपादन नहीं किया है। इससे यह स्पष्ट है कि संस्कृत के इन ग्रन्थों में से किसी भी एक में ‘रामचरित-मानस’ की ही पूर्णता ध्यायकता प्रमाणात्मकता और गंभीरता एक साथ विद्यमान नहीं मिलती है। अतः राम-काव्य में इस ग्रन्थ का अद्वितीय महत्व है ।’

२ पात्र-विवेचन

(१) नेता—प्रबन्ध-काव्य में नेता या नायक का स्थान अति महत्वपूर्ण होता है क्योंकि वस्तु का साधन-ताना-बाना उसी के ऊपर या चारों ओर बुना जाता है। राम की अनैक सङ्घरियां उसी के सम्बन्ध से विद्याविशेष में लहुराठी बली पाती हैं। सम्बन्ध-सूत्र का निर्बाह उसी के कार्य-कलाप पर आधारित रहता है। यों तो अन्य पात्र भी होते हैं किन्तु उन सबका अस्तित्व नायक के अस्तित्व से ही सम्बन्धित होता है क्योंकि मूल बटना के उपरान्त अन्तुषित प्रमुख फल का बोझा बही होता है।

‘मानस’ के नेता राम हैं। सारी कथायें परोक्ष या अपरोक्ष रूप से उन्हीं से सम्बन्धित हैं। अस्याय प्रसंगों में उपनायकों की स्थिति भी राम से अप्रभाविष्ट वृत्तिबोधर नहीं होती है। ‘राम ग्रन्थ’ से सम्बन्धित सभी प्रसंगों से लेकर ‘रामराज्य’ के महत्व तक राम ही का परिवेष्ट है। रावण के समय पूर्व बीरव में भी परोक्षरूप से राम के ऐश्वर्य की छांड़ी मिल सकती है। प्रतिनायक की पराभव का सम्बन्ध नायक की जय से होता है अतएव प्रतिनायक के मोरव की पीठिका पर नायक के बीरव की प्रतिष्ठा स्वयंसेव हो जाती है। राम के द्वारा महान् शक्तिशाली रावण का जब ‘मानस’ की मूल बटना है तबसे पश्चात् राम को अर्मराज्य की स्थापना का अवसर मिलता है। यही राम को अर्म कस की प्राप्ति है जिसमें अर्म भी स्पष्टतया निहित है।

‘मानस’ का उतना महत्व अनेक बटनाओं और वर्णनों से नहीं है अतना इसके नेता के सम्बन्ध से है। मानस के नेता का अस्तित्व अतना महान् है उतनी

१ डा० रामचरित दीपित—तुलसीदास और उनका युग पृष्ठ ३४६

२ डा० मदीरय मिश्र—तुलसी रसायन, पृष्ठ ७२

ही मूळी उद्यमी पृष्ठभूमि है। स्पष्टतः राम हमारे सामने लौकिक और अलौकिक दो रूपों में प्रकट होते हैं। अपने अलौकिक रूप में वे केवल शीरघायी विष्णु ही नहीं हैं बल्कि त्रिभुव निरीह निबिकार एवं अनन्त मायैत—ब्रह्म भी हैं जिसका संकेत 'मानसकार पद-पद पर पाठक को देता जसता है। उद्ये मय है कि कहीं पाठक राम को केवल 'दाशरथि राम' न समझ लें। बस्तुतः तुमसीदास की भाँषों के सामने कबीर के राम की भूमिका है, जो 'दशरथि राम' नहीं हैं और जिसको किसी विशेष नाम से अभिहित करना भी उचित नहीं है। इसके साथ ही तुलसी के हृदय में 'दाशरथि राम' की भी प्रतिष्ठा है इसीलिए उन्होंने पुराणों के मूल का भी समुचित उपयोग करते हुए ब्रह्म विष्णु और राम के सम्बन्धों की एकत्र प्रतिष्ठा की है। यही मानस के राम का लौकिक और अलौकिक रूप है। अपने अलौकिक रूप में वे त्रिभुव ब्रह्म और समुच्च विष्णु हैं तथा लौकिक रूप में वे 'राजकुमार' राम हैं ही।

(२) त्रिगुण प्रज्ञ-रूप—मानस के आरम्भ में ही गोरबामी जी ने 'यस्याया वसवति विश्वमसिक्तं ब्रह्मादिदेवामुरा।

अन्वेर्द्ध तमसोपकारम परं रामाक्षयमीर्षं हरिम् ॥ १। श्लोक ६

कह कर यह स्पष्ट कर दिया है कि यह शारा विश्व जिसकी माया के पपीभूत है वह ब्रह्म ही राम नाम से अभिहित हुआ है। उद्यी को तुलसी ने हरि यमिना भी प्रदान की है। राम को 'वशापक ब्रह्म' परमानन्द-स्वरूप वरेश और 'पुराण कह कर तुलसीदास ने ब्रह्म के शर्वाण्य पद पर आसीन कर दिया है। वे कहते हैं—

“राम ब्रह्म व्यापक जन ज्ञाना। परमानन्द परेश पुराणा।” १। १। १६

उनके अनुसार जो राम ब्रह्मपर पर आसीन हैं, वे दार्शनिकों (अद्वैतवादियों) के राम होते हुए भी मत्तों के राम हैं, क्योंकि उन्हीं का नाम 'अम तिमिर पतंगा' है। अद्वैतवादियों के ब्रह्म के नाम में यह सामर्थ्य नहीं है। यह ब्रह्म त्रिभुव-बाधक है और उतका किसी नाम रूप तथा इच्छा आदि से सम्बन्ध भी नहीं है। एक अनीह अना अनामा।” कह कर तुलसी ने एक समस्या के साथ उसका हल भी प्रस्तुत कर दिया है। एक बार वे कहते हैं कि उसका नाम 'अमतिमिर पतंगा' है और दूसरी ओर वे कहते हैं कि वह 'अनाम है। इस प्रकार यहाँ अनाम अथवा त्रिभुव ब्रह्म का सांख्यिक-जन और अनाम अथवा समुच्च ब्रह्म का 'मत्ति-सेत्र' प्रतिपादित क्रिया पथा है।

(३) त्रिगुण प्रज्ञ-रूप—मानस में राम के समुच्च ईश्वरत्व का ही विशेष वर्णन किया गया है। साक्षात्कार इसके दो रूप हमारे सामने आते हैं। एक ब्रह्म रूप और दूसरा विष्णुरूप। 'ब्रह्मरूप' में वे विष्णु तथा अल्प देवताओं के भी त्रिनामक अनामाप पद हैं। तुलसी ने राम को 'विधि हरि संभू नबावन हारे' और विष्णु को 'टि लन

पालन कर्ता^१ कह कर उनके ब्रह्मत्व की ओर संकेत किया है और 'हरि हित संहित रामु बब ओहे । रमा समेत रमापति मोहे ॥'^२ कह कर अबतार रूप में रमा के लौकिक सौम्यता की पराकाष्ठा की ओर इंगित किया है । यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि बिष्णु और राम भिन्न हैं और वास्तव में व्यापहारिक दृष्टि में अबतार और अबतारी में भेद होना भी चाहिए किन्तु यह भेद राम के मौलिक बिष्णु स्वरूप का संकेतक नहीं है । यही तो उनके मूल ब्रह्मत्व है ।

(४) बिष्णु-रूप—'मानस' के अधिष्ठित विस्तार में तुलसी ने राम और बिष्णु की अभिप्रेता का प्रतिपादन किया है । उन्होंने बिष्णु को सर्वत्र 'हरिपब' से अभिहित किया है । 'मानस के आरम्भ में ही—

“बन्धेऽहं तमशेषकारपपरं रामाक्ष्यमीदं हरिम् ॥”^३ । श्लोक ६

कह कर वे 'रामाक्ष्य हरि' की ही बखाना करते हैं । इसके अधिष्ठित राम और हरि की एकता मान कर ही वे 'राम-चरित-मानस को 'हरिपरिभ्रमानस' के नाम से भी अभिहित करते हैं । वहाँ शिव भी हरि व्यापक सर्वत्र समाना^४ कह कर हरि शब्द से बिष्णु का ही उल्लेख करते हैं । 'राम-नाम' के पूर्व कोसल्या के समय को यद्युक्त रूपवारी बिष्णु प्रकट होते हैं वे ही उनकी प्रार्थना पर रामरूप में शिषु-सीता करने लगते हैं । इस प्रकार 'मानस' में राम और बिष्णु की एकता का ही सर्वत्र निरूपण किया गया है । अपने इस 'बिष्णुरूप' में राम को ब्रह्म और शिव से अत्यधिक शक्तिशाली बतलाया गया है । इसीलिए ब्रह्मत्वा स्वयंभवा विभीषण, बंगब, मंदोदरी इन्हें भरत समकादि काकभुमुनि और स्वयं 'मानसकार' ने भी अपनी स्तुतियों में उनको उन दोनों के द्वारा पूज्य माना है ।^५ यही नहीं 'मानस' में उन दोनों को राम की स्तुतिकर्ता के रूप में प्रस्तुत भी किया गया है ।^६ अत्यंत व्यवहार में 'बिष्णु राम' की इस प्रमूढता का प्रमाण बचन का अनुभव भी है और स्वयं राम भी यही कहते हैं कि उनके शत्रु की प्राण रक्षा करने में ब्रह्म और शिव भी समर्थ नहीं हैं ।^७ इस प्रकार उपर्युक्त दोनों शूनों में मानस के राम की असौकरिता का चित्रण किया गया है । संस्कृत ग्रन्थों में भी उसका अनेक प्रकार से वर्णन प्राप्त होता है, वहाँ राम के निर्गुण ब्रह्मत्व के साध-साध उनके शत्रुच अबतारी बिष्णुत्व का भी विस्तार से निरूपण किया गया है ।

१ मानस ७।२२

२ मानस १।३।७

३ मानस ७।३३

४ मानस १।१८२

५ मानस १।१८४ १८६ १८२, २११ ४।२३, २।४७ ६।२२, १०४ १।३,
७।२ ३४ ३३ १२४ शारदीय १, ७।श्लोक २ ।

६ मानस ६।१११, ११३

७ मानस ३।२

८ मानस २।६

(३) संस्कृत साहित्य में राम का ब्रह्मरूप—'राघवीय' में राम को स्वप्रकाशविद्यमान, सनातन, अनन्तर और 'योगियों का अनेष्ट्य' रामचरित' में उनको परमपुरुष अनादिनिबन्धन, अन्न अन्न, आनन्दसिन्धु, पद्मीराजमगोचर, योगिन्या महावीर चरित' में उन्हें छायात पुराणपुरुष और पारमार्थिकों का उत्तम, 'रामायण मञ्जरी' में 'नारायण सनातन और परमात्मा, 'चित्रचम्पू' में वेदान्तवेद्य प्रबन्धकल्प, मोक्षद्वार अक्षर्य, धर्मवत्, अनादि और अनन्त, 'मद्विष्टकाव्य' में अन्न और नारायण ब्रह्मवैवर्तपुराण' में प्रकृत पर और देवकी के ईश्वर तथा 'पद्मपुराण' में मूलप्रकृति, परमात्मा परब्रह्म योगिन्धेय और अनाद्यन्त के विशेषणों से अतिवृत्त किया गया है।

(१) संस्कृत साहित्य में राम का विष्णु-रूप—राम के सगुण विष्णुत्व का उल्लेख तो संस्कृत के लगभग सभी ऋषियों में अतिव्याप्य रूप से किया गया है क्योंकि उसके अभाव में कथामय का संगठन ही नहीं सम्भव नहीं है। विष्णुपुराण' और 'राघवतपस्वीय' में रामादि चारों भाइयों को विष्णु का चतुर्धा अंश कहा गया है। 'राघवीय' और 'मद्भुत दर्पण' में राम को गरुड-नैमित्तक बतला कर उनके विष्णुत्व का निरूपण किया गया है। आश्वर्यबूझामणि' में उनको 'मुचन-सहस्रयो वयकारण हरि' के रूप में स्मरण किया गया है। 'रामायण मञ्जरी' में राम को ईश-सुमन्विष्ट विष्णु 'राघवपाण्डवीय' में अत्यन्तमकर विष्णु 'पद्मपुराण' में अमृत-विष्ठा लक्ष्मणवामानसि और वीरबाह विष्णु, 'रामचरित' में उन्हें श्रीवत्स साधन, समुद्रघापी और मयुकेटभमुरादिहस्ता विष्णु तथा 'उदार राम' में दीप घापी और शतितमन-सैत्रलोच विष्णु की अभिधा दी गई है। 'राघवीय' 'राम चरित' 'रामायण मञ्जरी' आदि ऋषियों में उनके मात्स्याहिकवतारों का वर्णन भी संतोष में किया गया है। दशावतारचरित तथा भागवत एवं विष्णुपुराण आदि समस्त

१ राघवीय ७।२४-२५, १०।४८	२ रामचरित १।८-१६
३ महावीरचरित ७।२	४ रा० मञ्जरी । मुद्र । २२२-२६०
५ चित्रचम्पू २।१-२।८	६ मद्विष्टकाव्य २।१।१६-१७
७ ब्रह्मवैवर्तपुराण । श्रीकल्प उल्लेख १२।२३	
८ पद्म । उत्तर । २।४२।३।३७, २।४३।२४-२७	
९ विष्णुपुराण ४।४।८७	१० राघवतपस्वीय १।२
११ राघवीय १।७।६।७।७	१२ मद्भुत दर्पण २।४-७
१३ आश्वर्यबूझामणि २।१।१	१४ रा० मञ्जरी । मुद्र । १।७२
१५ राघवपाण्डवीय १।१।६	१५ पद्य । पाठान्त । १।१।२८
१७ रामचरित १।४-१६	१८ उदार राम २।३।३-१४
१९ राघवीय २०।२।१	२० रामचरित १।८-१६
२१ रामायण मञ्जरी । मुद्र । २२२-२६०	

पुराणों का उद्देश्य ही विष्णु के सभी अवतारों का वर्णन करना है। विष्णु राम की इस प्रमविष्णुता से ही बड़ा ब्रह्मा और शिव की अपेक्षा उनकी अधिक शक्तिमत्ता प्रमाणित होती है।

राम के विष्णु रूप के वर्णन के अतिरिक्त 'रामचरित' में विष्णु और शिव की (परोक्ष में राम और शिव की) एककपता का वर्णन मिलता है। वहीं पर उनको (राम को) 'शिवश्री' का प्रतिरूप भी कहा गया है। 'व्यासपुराण' में तो राम और शीता को 'शिव-शार्वती', ब्रह्मा-सावित्री एवं 'विष्णु-लक्ष्मी' आदि का प्रतिबिम्ब माना गया है।

(७) राम का लौकिक रूप—'मानस' में राम के ब्रह्म और विष्णु-रूप के अतिरिक्त उनके लौकिक रूप का भी विस्तृत चित्रण किया गया है। वस्तुतः यहाँ उनका यही रूप प्रधान है। 'मानस' के राम का लौकिक रूप वास्मीकि के राम से प्रायः मिलता मिलता है। 'मानस' के राम अपने बुद्धों में वास्मीकि के राम से किसी प्रकार कम नहीं है और वहाँ वही उनके चरित्र पर कोई धीटा पड़ने की सम्भावना दिखाई नहीं है वहीं तुलसीदास ने कभी लौकिकता की दुहाई देकर उनकी रक्षा की है कभी शिव बचवा किसी अन्य पात्र से उनकी सीता की व्याख्या करवा दी है, और तो और एकाच अबसर पर स्वयं राम को ही अपने चरित्र के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण देना पड़ा है।^१ इससे यह सिद्ध हो जाता है कि राम के चरित्र में आदर्श की प्रतिष्ठा करने के लिए ही तुलसीदास यह सब करते हैं। राम का आदर्श चरित्र ही उनको ब्रह्मक्षत्रीय ऊँचाई तक ले पहुँचता है। राम के इसी लौकिक रूप को 'मर्यादापुराणोत्तर' की संज्ञा देकर कहा गया है कि राम की विशेष स्थिति तीनों दृष्टियों से आदर्श पुरुष है।^२ इस लौकिक में 'मानस' के राम, पुत्र-तृप्त्य बन्धु पति धर्म कर्तु और राजा आदि के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनका यही लौकिक चरित्र हमें एक आदर्श की प्रेरणा देता है।

(८) राम का पुत्र-रूप—'मानस' के राम एक आदर्श पुत्र हैं। बचपन से ही वे अपने माता-पिता के आज्ञा-पालक हैं। पिता की आज्ञा से विरामित के साथ उनका बचपन इसी का प्रमाण है। उनकी पितृभक्ति की वास्तविक परीक्षा 'कैशिकी की बरदान-याचना' के अबसर पर होती है। उस समय भी वे पितृभक्त पुत्र की 'बहुमानी एवं दुर्लभ कहकर पिता की आज्ञा से अपने राज्य त्याग तथा 'बन-जमन' को अपने लिए हितकर ही बतलाते हैं—

१ रामचरित ६।८ ११ २।१।१२ ११४
२ मानस ४।१

२ पदम् । अंतर । २४१ २४ ३६
४ बलदेवप्रसाद मिश्र-मुजुमी दर्शन
पृष्ठ १२६

मुनु जननी सोह मुठ बड़भागी । ओ पितु मातु बचन अनुरागी ॥

तनय मातृ पितृ तोपनिहाय । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥२१४१

रक्ष्य केकयी भी राम की बिशेषता की प्रशंसा करती है।^१ राम की यह पितृभक्ति उनके प्रत्येक आचरण से व्यक्त होती है। इसी के लिये वे सीता और सत्यम को बल-सह्यमन से रोकते हैं।^२ अपने सुमन्त्र-संदेश में भी वे पितृभक्ति पर ही बल देते हैं।^३ वे अपनी माता कीसत्या के भी पद्म भक्त हैं। बिमाताओं के प्रति भी उनके हृदय में अत्यधिक सम्मान है। अपने निर्वासन की आत्मा देने वाली केकयी के प्रति भी उनकी हार्दिकता में कभी अन्तर नहीं पड़ता है। बिचकूट और अयोध्या में वे उल्लेख उसी पूर्ववत् बिधिष्ठ भाव से मिलते हैं^४ और अपने निर्वासन का समस्त दोष 'काम-कर्म और बिधि को देकर उसे अस्मिष्ठ कहते हुए साम्प्रदा भी देते हैं। मुमिषा के सभमनोपदेश में भी राम की बिमातृ भक्ति के सरस दर्शन दिये जा सकते हैं।

संस्कृत-साहित्य में 'रामायण मञ्जरी के राम पिता की आत्मा को 'अबिचारवीय' कह कर उनके संकेत से भयंकर प्रसवाम्नि तर्क में प्रवेश कर सकते हैं।^५ 'उदार रामव' के राम पितृभक्ति की अपनी बंधनमें बतसाते हुए आत्मबार्हिक शैली में अपनी आदर भावनाओं को व्यक्त करते हैं। 'अम्बुरामायण में वे कण्डू परमुराम और पुत्र आदि का उदाहरण देकर पिता की आत्मा को 'अबिचारित जन में ही मान लेने की सम्भेष्ट सवाचार कहते हैं।^६ 'प्रतिमा नाटक' में वे पिता की आत्मा की ही अपने 'पन-मन' का मूल प्रेरक बतसाते हैं।^७

'पद्मपुराण', 'अग्निपुराण 'भाष्यत 'रपूर्व' 'हनुमन्नाटक आदि में भी राम की आदर्श पितृभक्ति का बिबिध उत्सोष मिलता है, बिन्तु मातृभक्ति के निरूपण में 'मानव' के समान शीष्ट्य के दर्शन कहीं नहीं होते हैं। 'रामायण मञ्जरी' के राम कीसत्या के द्वारा उनके प्रति वासव्यवस ही उही-उदार के प्रति कण्डूबचन बड़े जाने की सम्भावना करके उनको रोकते हैं।^८ रामवीय में वे 'बल-मन' के समय कीसत्या और मुमिषा से प्रणाम के अतिरिक्त कोई बात नहीं करते हैं जबकि अपने निर्वासन के लिए केकयी को वे हार्दिक धन्यवाद भी देते हैं।^९ 'उदार रामव' के राम कीसत्या के बिभाव और प्रभाव के उत्तर में साम्प्रदा का एक शब्द भी नहीं कहते हैं बिन्तु केकयी के प्रति अपनी कठगतता व्यक्त करते हुए

- | | |
|----------------------------------|----------------------------------|
| १ मानस २।४३ | २ मानस २।६१ ७१ |
| ३ मानस २।९६ १११-११२ | ४ ' २।२४४, ७।१० |
| ५ " २।७४-७६ | ६ रा० मञ्जरी । अयोध्या । ५१४ ५२० |
| ७ उदार रामव १।३६ | |
| ८ अम्बु रामायण २।९६ के बाद | ९ प्रतिमा ४।२० |
| १० रा० मञ्जरी । अयोध्या । ७६१-६२ | ११ रामवीय १।१०-१२, ५० |

के अपनी श्रम ७०० विमाताओं से भी समा माँवते हैं तथा उनके सापत्य-आव मूल कर माता कौसल्या की सेवा करने का आग्रह आशय करते हैं। 'अम्यू रामायण' में वे एक मोर बहो केकयी की प्रशंसा करते हैं वहाँ पुत्री बोर कौसल्या को 'अह गमन' से इसलिए रोकते हैं कि उन्हें मूर केकयी की शर्ककवाणी से भग्नहृदय पिता की प्राण रक्षा भी करनी है। 'प्रतिमा' में कौसल्या और सुमित्रा से उनके मिलन का संकेत भी नहीं है किन्तु उनके द्वारा केकयी के सर्वपुत्रों की प्रशंसा का विस्तृत इत्येक विषयता है। संस्कृत साहित्य में इस मातृवर्ग को वस्तुतः बलवत्त गौरव प्राप्त हुआ है। इछामिये उनके प्रति राम की आदर भावनाओं का वहाँ कोई उल्लेखनीय परिचय नहीं प्राप्त होता है।

(९) राम का शिष्य रूप—राम और विरबामित्र—विश्वामित्र और वसिष्ठ राम के दो गुरु हैं। इनमें विरबामित्र उनके सीसा-गुरु हैं। राम को अपने किबोर जीवन में ही कुछ समय के लिए उनका संरक्षण प्राप्त हो जाता है। राम पर-नर पर उनका अनुयायन मानते हैं यहाँ तक कि नर भ्रमण, घमण, विद्याम और अनुर्वेय के लिये भी वे 'गुरुकुलपेक्षी' हैं। उनके प्रति राम का व्यवहार बड़ा विरक्षण है इसीलिए वे 'सीसा-पूर्व-मिलन' की बात भी उनको स्पष्टतया बतला देते हैं। राम की इसी गुरुभक्ति से प्रभावित होकर विरबामित्र ब्रह्मणा में बहुत समय तक उनके साथ रहकर उनका आतिथ्य ग्रहण करते हैं। संस्कृत बंधों में रघुवंश 'राजकीय,' 'रामायण-मन्वन्तरी' और महावीर चरित' में भी राम के इसी आदर्श शिष्य-रूप का उल्लेख किन्तु संक्षिप्त बर्णन मिलता है।

(१०) राम और वसिष्ठ—वसिष्ठ राम के कुलपुरु हैं। वे उनके आठ-कर्म नामकरण बुढाकर्म यज्ञोपवीत, विवाह और धार्मिक आदि सभी संस्कार धर्म्य प्र करते हैं। राम के शोचराज्यामियेक के पूर्व उन्हें धिखा देने के लिए जब वे उनके मदन पधारते हैं तब राम उनका स्वागत करत हुए उनका जो दोहल पूजा करते हैं वह उनकी पुत्रवलि का पुष्ट प्रमाण है। 'बल प्रस्थान' से पूर्व भी राम के द्वारा वसिष्ठ की करन में अपने हाथ-आसियों को धोप जाना उनके प्रति उनके आशय विरवास का प्रतीक है। शिखास्त-रूप में भी राम पुत्रवत को छोक और वेव में 'बहुमानी' मानते हैं।

- | | |
|---------------------------------|-------------------------------|
| १ उदार राजव १११४-११६ ११२० ११-८२ | २ प्रतिमा ११११ ११ के बाद |
| २ अम्यू रामायण २१२६, ३० | ३ मानस ११२१० |
| ४ मानस ११२१५, २२९, २३४ | ७ रघुवंश १११११ |
| ५ मानस ११३६० | ८ रा० मन्वन्तरी। बाव। १४०-१२१ |
| ६ राजकीय २१६१, २१६९ | ११ मानस ११२१५ ११७, २०१ |
| १० महावीर चरित १११५ | २०४, १२१, १११९ |
| १२ मानस २१९ | १४ मानस २१२५६ |

मुसली ने अपने सिद्धांत-बिरोध के कारण ही विरयामित्र और बसिष्ठ को राम के ईश्वरत्व से सुपरिचित बननाया है और बसिष्ठ के द्वारा उनसे जन्म जन्मांतर के लिए 'अविरल भक्ति-पात्रता का संकेत भी दिया है।' संस्कृत-साहित्य में बसिष्ठ के कृत-सुरोहित रूप का ही अधिक विकास मिलता है इसीलिए उनके प्रति राम की यज्ञ का वर्णन बड़ा स्वाभाविक है जिसका सरस परिचय रामायण-मञ्जरी,^१ महावीरचरित^२ जनार्णवचरित और वास-रामायण^३ आदि ग्रंथों में मिलता है।

(११) राम का भ्रातृ-रूप-राम और लक्ष्मण-मानस^४ में यद्यपि भरत सत्वम और रामुष्ण तीनों भाइयों के सम्बन्ध से राम के बादसं भ्रातृत्व का निरूपण किया गया है, फिर भी उनमें सत्वम को राम का अधिक साभिध्यसाह हुआ है। 'मानसकार' ने उन दोनों के बचपन से ही सुम^५ बन जाने का उल्लेख किया है, जिसका संकेत 'रघुबंध'^६ और रामायण-मञ्जरी^७ आदि में भी मिलता है। राम और लक्ष्मण के मयूर भ्रातृत्व का विस्तृत वर्णन वनप्रवास-काल में प्राप्त होता है। राम सत्वम की प्रसन्नता और मुरदा का ध्यान बढ़ी सतर्कता के साथ रक्त है —

योगर्थाह प्रमु सिय सपत्नहि कैसे । पछक बिसोचन गोसक जैसे ॥२१४२

सत्वम-भ्रूणप्रसंग^८ में सत्वम के प्रति राम के भ्रातृहृदय का सर्वधृष्ट सिन्धु परिचय मिलता है। वहाँ के प्रेमाधिक्य के कारण उनके विभावृत् होने पर भी उनकी सहोदरता का संकेत करते हुए उनकी तुलना में गुत बित नारि भवन परि वारा को भी उपैतणोय मानते हैं और अपने सत्यपादन के बोधिरय पर भी दुग्ध एवं संदिग्ध होते हैं —

जो जनतेई बन बंधु बिछोह । पिठा बचन मनतेह नहि जाह ॥२१६१

संस्कृत-साहित्य में भी राम की इस असाधारण 'भ्रातृत्वसत्ता' के सर्वत्र-विशेषकर इसी प्रसंग में-दर्शन हो जाते हैं। 'रामायण-मञ्जरी' में भी वे सहोदर भाई की 'अप्यन्त दुर्लभ कह कर सत्वम के लिए मन्त्री मुत सिप्य गृह्य बन्धु गामी और दधिपसुत्र आदि बिरोधों का प्रयोग करते हैं।' 'रामचरित' के राम इस अवसर पर अपने जीवन, विजय-नाम और सीता प्राप्ति तक के प्रति विरक्त हो जाते हैं और गुणीय को 'रघुपुत्र' कह कर उसके 'यमराज-सहोदरत्व' के संकेत से, उल्लेख तक से लक्ष्मण के प्रायः प्राय जाने का आह्वान करते हैं।^९ 'रावणिय' में भी उनकी इसी विरक्ति का कथन संकेत है।^{१०} 'मट्टिकाव्य' में इस अवसर पर राम

- | | | | |
|----|-----------------------|----|-----------------------------|
| १ | मानस ७।४८-४९ | २ | रा० मञ्जरी । अरण्य १२८७-३०४ |
| ३ | महावीर चरित ७।३१-३२ | ४ | जनार्णवचरित ७।११६-११८, १४८ |
| ५ | वास-रामायण १०।१८ | ६ | मानस १।२०२ २।७, १० |
| ७ | मानस १।११८ | ८ | रघुबंध १०।८१ |
| ९ | रा० मञ्जरी । वाण । ७८ | १० | रा० मञ्जरी । मृग । २१२-१७ |
| ११ | रामचरित ४४।२२-२३ | १२ | रावणिय १।२।४-२६ |

के द्वारा मायामहत्या के प्रयत्न का भी वर्णन किया गया है, जिसमें उनके भावप्रेम की चरम सीमा देखी जा सकती है। 'हनुमत्साटक' में वे अपनी आदर्श विद्यापू मण्डि को तिलाञ्जलि देकर कोकरो के प्रति आभेद भी व्यक्त करते हैं। 'प्रथमराजस में वे मुनिमा और बसिमा के शोक का ध्यान करते अयोध्या लौटी का विचार तक स्थाय देते हैं।' अक्रमण के प्रति अपने इसी विशेष प्रेम के कारण राम उनकी 'रामा-यण-मन्त्रिणी' में युवराज्यपद देने का प्रयत्न करते हैं।

(१२) राम और भरत—भरत के प्रति राम के अनुत्पन्न का विद्वान्ता विस्तृत ज्ञान 'मानस' में है, जतना संस्कृत-साहित्य में कहीं नहीं मिलता है। चित्रकूट में भरत को सबलवस बाते देकर शुभ्य सदनस को समझाते हुए राम भरत के सोभाव की बड़ी प्रशंसा करते हैं—

युगहु नखन भन भरत परीसा । बिधि प्रबंध महुँ गुना न बीसा ॥ २।२३।
 नखन तुम्हार सपय विगु माना । सुबि सुबगु नहि भरत समाना ॥ २।२३२

यहाँ भरत को लक्ष्मण से भी अधिक राम प्रिय संकेतित किया गया है। 'रामायण मन्त्रिणी' के राम भरत को इस जनसर पर विद्यवाहय महास्थायी नीर तिर्यगन्त बतनाते हैं। 'उदार राजस' में वे उनकी 'महाक्यकारी' और यद्वैकवीर कहते हैं। 'प्रतिमा' नाटक में वे उन्हें सर्वपुत्रनिधि निष्कल्प-आत्मा और पुत्र्योत्तम कह कर स्वयं को उनके यहाँ से परितोषित निश्चित और बचीकृत समझते हैं। 'मानस' के समान ही 'रघुवंश' "अनर्षराजस" आदि में भी अयोध्या प्रत्यागमन के बचसर पर पुत्रजनों से मिलने के तुरन्त परभाव ही राम भरत मिलन का वर्णन किया गया है किन्तु 'रामायण-मन्त्रिणी' के राम स्नेह की अधिकता के कारण विमान पर घडे बैठे ही सर्वप्रथम भरत से मिल बैठे हैं किंर विमान की बिदाई के परभाव के मुक-पनों के वर्तन करते हैं। "राजवीर" "महाभारत" "महावीर चरित" "बम्पूराजायण" में भी राम के द्वारा भरत के सर्वप्रथम मिलन का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्राय मित्रता से भरत के प्रति राम की सर्वाधिक अनुकरसलता की पृष्टि तो होती है किन्तु विप्लवाचार का अतिक्रमण भी हो जाता है इसीनिम्ने तुलसी ने इसे स्वीकार नहीं किया है।

- १ अट्टिकाय १।४।१
- २ प्रथमराजस ७।३०-३२
- ३ रा० मन्त्रिणी । भरत १।१३-११७
- ४ प्रतिमा ४।२२-२३
- ५ रघुवंश १।३।७०
- ६ रा० मन्त्रिणी । अंकोतर १।७०-१७१
- ७ महावीरचरित ७।३१

- २ हनुमत्साटक १।३।२७
- ४ रा० मन्त्रिणी । अंकोतर । १७७
- ५ उदारराजस २।३६
- ६ मानस ७।३
- ७ अनर्षराजस ७।४१ के बाद
- ८ राजवीर २।१।४४-६६
- ९ महाभारत । अं । १२।१।६२-६३
- १० बम्पूराजायण १।१०६ के बाद

(११) राम और शत्रुघ्न—'मानस' के समान ही संस्कृत-साहित्य में भी शत्रुघ्न के प्रति राम के बन्धुत्व का कोई सम्बन्धीय विषय नहीं मिलता है। कवीन्द्रा-प्रबोधन के अक्षर पर 'मानस' के समान ही अनर्चरायण, 'प्रथमा' और बालरामायण के 'राम शत्रुघ्न मिलन' में केवल शिष्टाचार-निर्वाह का ही संकेत मिलता है।

(१४) राम का पति रूप—सीता के प्रति राम के साम्यात्मिक स्नेह का परिचय उनके साम्य-जीवन के प्रत्येक प्रसंग में मिलता है। 'मानस' में उनके पूर्व राम, संवोय और विभोग की सभी परिस्थितियों में उसका सरस किम्बु संयत विषय किया गया है इस संयत के लिए तुलसी की मर्यादा-भावना उत्तरदायी है क्योंकि जब वे सिव और पार्वती को अमल के पिता-माता कह कर उनके शृङ्गार-वर्षन में अपनी अक्षमर्यता व्यक्त करते हैं^१ तब उनके भी आराध्य और अपने इष्टदेव राम और सीता के सम्बन्ध में उनकी विशदता सहज अनुमेय है। फिर भी साम्यत्व के औचित्य के विचार से उन्होंने 'मानस' में शृङ्गार के सभी पलों का आदर्श और मर्यादित निरूपण प्रस्तुत किया है।

(१५) पूर्वरागी राम—अनक-बाटिका' में सीता के प्रथम दर्शन से राम को एक अविश्वनीय आनन्द प्राप्त होता है। वे प्रभावशाली शब्दों में सीता के सौन्दर्य का निरूपण करते हैं और गुण शक्तियों से प्रसन्न होकर वे अपने मानसिक शोक को लक्ष्मण से ठीकी समझ व्यक्त भी कर देते हैं। 'रघुबंधी होने के नाते ये अपने मन के लक्ष्मणामी होने पर पूर्ण विश्वास प्रकट करते हैं कि वह पर-भारी की ओर कभी भी आश्रित नहीं हो सकता है।' अतः वे लक्ष्मण के अतिरिक्त विरवाभिन्न से भी अपने इस मिलन का सविस्तार वर्णन कर देते हैं और इस प्रकार अपनी मानसिक पुष्टता का परिचय देते हैं।

'महाशेर चरित' प्रथमरायण और वैदिकीकृत्याण' नाटकों में राम के इस पूर्वराग का अमल अथिक्त बिल्लुव वर्णन किया गया है। महाशेर-चरित' में विश्वाभिन्न के आनन्द में ही सीता के प्रथम दर्शन से राम के मन में उनके प्रति स्नेह का प्रादुर्भाव होता है और वे स्वयं कहते हैं—

'तद्विदियममृतवतिरिब मे असुराप्यायति ।^२

'प्रथमरायण' में वे सीता को 'परस्त्री' समझ कर पहले संकुचित होते हैं फिर उन्हें 'कबारी' जानकर वे शीघ्र प्रसन्न भी होते हैं और बड़े उत्साह से उनके रूप का वक्षन करने लगते हैं। उनके जैसे जाने भर के शुक्य होकर बड़ी व्यथता और प्रायाणा से

१ मानस ७१२

२ प्रथमा ७१८ के बाद

३ मानस १११०१

४ " ११२३०

५ अनर्चरायण ७११२२

६ बालरामायण १०।१०० के बाद

७ मानस ११२३१

८ महाशेर चरित १।२८ के बाद

उनके पुनर्दशन की कामना भी करते हैं।^१ इस प्रकार यहाँ इनके पूर्वराग में नयाँवा एवं लौकिकता का ही प्राचुर्य है जो परिभाषित होकर 'मानस' में मारई एवं आलौकिक बन गया है। 'मैमिली-कल्याण' नाटक में राम के पूर्वराग का ही वर्णन प्रमुख है। उसके पाँच अंकों के विस्तार में बसको पूर्व चार अंक प्राप्त हो गये हैं। यहाँ केवल दर्शन ही नहीं अपितु उन दोनों के बीच बार मिलन की भी व्यवस्था है, जिसमें उन दोनों का पारस्परिक आकर्षण इतना अधिक बढ़ जाता है कि वे विच्छेदों ही अछड़ा विरह की तीक्ष्णभूति करने लगते हैं, जो अनेक सरत उपचारों से भी शान्त नहीं हो पाती है। यहाँ भी राम के हाथ सीता के सौम्य का विस्तार मर्मस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया गया है।^२ जिससे उनके बड़े पूर्वराग का परिचय मिल जाता है। यहाँ उनके संकल्प विचार मेघ और नीचम सभी कुछ सीतामम हो जाते हैं। सीता के विद्योम में प्रकृति के मीतल पदार्थ उन्हें विपरीत जान पड़ते हैं। वे अपने विरहोपचार के लिए कृष्ण-राम्या आदि की व्यवस्था की भी जयला करते हैं और सीता की हृती से उनका सखेव पाकर वे उनके पिलने के लिए संकेत-रसल पर पहुँच भी जाते हैं।^३ इस प्रकार यहाँ पूर्वराग-भाव में ही राम के संयोगी और विद्योमी स्त्रियों का जो अतिरिक्त वर्णन किया गया है, वह उनके रामत्व के अनुकूल नहीं जान पड़ता है।

(१६) संयोगी राम—मानस' में राम के संयोगी जीवन का बड़ा संभव वर्णन किया गया है जिसकी एक क्षमक 'अवन्त प्रथम' में मिल जाती है। जब राम अपने हाथों से सीता का पुष्प शृङ्गार करते हैं। संकट से गर्वों में उन दोनों के संयोग का बड़ा ही उग्रमुक्त और स्वच्छन्द वर्णन प्राप्त होता है। 'आनकीहरण में 'संयोग-वर्णन', हनुमन्नाटक' में 'आनकी-बिलास' तथा 'महानाटक' में 'बैदेही सुरत' के नाम से स्वतन्त्र अख्याओं का आयोगल मिलता है। अन्य ग्रन्थों में भी इस प्रकार के विशिष्ट प्रचुर मात्रा में सुभाव हो जाते हैं।

सम्भवतः इन उपचारों ने 'काम' को ही आईस्य-जीवन का केन्द्रबिन्दु मान कर उसी के परिवेष्ट में ऐसा निरूपण कर दिया है, किन्तु 'काम' ही उस पवित्र जीवन का सर्वस्व नहीं होता है। उसके अतिरिक्त साम्प्रदाय जीवन में वस्तुतः ऐसे अनेक व्यवहार जाते हैं जब संपत्ति के सूक्ष्म साम्प्रदाय काचुर्य-भाव की सरत अभि-स्यंजना होती है या हो सकती है। 'जो केवल साम्प्रदाय ही में अपनी प्राचुर्यता प्रकट कर लें—वे पूर्ण मानुक नहीं कहे जा सकते हैं। पूर्ण मानुक वे ही हैं जो जीवन की अत्येक स्थिति के मर्मस्पर्शी अंत का साक्षात्कार कर लें और उसे सीता

१ अक्षयराजव २।८-९ ११-१७-१६-२० २२ ३०

२ मैमिलीकल्याण १।१५-२० २२

३ मैमिलीकल्याण २।७ २२, ४।३ १४

४ मानस १।१

५ आनकीहरण । अष्टम अंक

६ हनुमन्नाटक । द्वितीय अंक

७ महानाटक । द्वितीय अंक

या पाठक के सम्मुख अपनी शब्द-शक्ति के द्वारा प्रत्यक्ष कर सकें। हिन्दी के कवियों में इस प्रकार की सर्वाङ्गपूर्ण भावुकता हमारे मोस्वामीजी में ही है।" इसी भावुकता से प्रेरित होकर मोस्वामीजी ने 'राम-वन गमन' के प्रसंग में राम के 'चित्त-हृदय' का स्निग्ध परिचय दिया है। वहाँ राम के द्वारा सीता के छोड़नाम का विषय उनके आत्मश्रुतिक प्रेम की अभिव्यक्ति करता है—

इसमबनि तुम्ह नहि बन जोगू। मुनि मयबसु माहि देहहि सोयू ॥

रहु भवन अस हृदय विचारी। चम्बरबनि दुसु कानन भारी ॥२।१६३

इसी प्रकार 'वनचर्या' में भी राम के शम्पत्य प्रेम का पुष्ट चित्रण मिलता है—

"धीप सखन वैहि बिधि सुत लहूँ। सोइ रघुनाथ करहि सोइ कहूँ ॥२।१४१

जोगबहि प्रभु सिय सखनहि कैते। पकक बिसोचन मोसक बीये ॥२।१४२

'रामायण-मन्त्रो', 'रावरीय' उदाररायण 'बम्बूरायण' तथा प्रसन्नरायण' आदि संस्कृत के कुछ ग्रंथों में भी 'सीता प्रबोध' के अक्षर पर राम के इसी आदर्श प्रेम के चित्रण का प्रयास दृष्टिगोचर होता है किन्तु 'भट्टिकाव्य' 'हनुमत्पाठक', 'महानाटक' आदि में उपलब्ध उनकी वनचर्या में उनके 'दाशरथरति' के वर्णन को अनाशयक प्रथम मिल गया है जिसके लिये उन कवियों की मूल भावना ही उत्तरदायी है।

(१७) विधोगी राम—राम के दाशरथ्य-प्रेम की अतिनी श्रेष्ठ अभिव्यञ्जना 'मानस' में प्राप्त उनके 'विधोमवर्णन' में मिलती है। सतनी शम्पत्य दुर्लभ है। प्रेम का जो वेग संयोग में प्रकटपन रहता है विधोम में वह इतना मुखर और प्रखर हो जाता है उसमें कृत्रिमता एवं औपचारिकता स्वतः गप्ट हो जाती है। 'सीता-हरण' के अोकवेग से 'मानस' के मर्यादापुरुषोत्तम राम आरम्भ दुग्ध हो जाते हैं, क्योंकि इस 'हरण' में केवल बिरह की भावना नहीं है अपितु सीता के अनिदित्त दुर्भविष्य का भय और अज्ञात अनिष्ट की आशंका भी मिली हुई है। हनुमान के द्वारा अोक वाटिका में स्थित सीता के पास पहुँचाए गए राम के सम्प्रेय में उनके बिरही हृदय का बड़ा अर्थवर्ती चित्रण मिलता है—

तब प्रेम कर मन अब छोरा। जानत प्रिया एक मनु मोरा।

सो मनु चरा रह्य तोहि पाही। जानू प्रीति रघु एतेहि माही ॥२।१३

संरहृत के अर्थों में राम के बिरह का अतिरंजित चित्रण प्राप्त होता है

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मो० तुलसीदास—सप्तम संस्करण, पृष्ठ ७४-७५

२ ए० ब० ३०। अयोध्या। २६३ ६१, ७७

३ रावरीय १।६१, ६६ - ४ उदाररायण १।४४

५ बम्बूरायण २।१२ ; ६ प्रसन्नरायण १।६

७ भट्टिकाव्य ६।१३-१३; ८ हनुमत्पाठक १।१, ३

९ महानाटक ४।११, २१

विषयों उनके आदर्श स्वरूप की प्रतिष्ठा नहीं हो पाती है। 'हनुमन्नाटक' तथा 'महानाटक' में सीता के विरह में राम की इतना दुर्बल दिखलाया गया है कि उनकी मुद्रिका सब कंकष का स्थान लेने लगी है। 'मद्विदकाम्य' 'रामायण मञ्जरी' के राम 'मानस' के राम के समान ही पशु-प्रसियों से सीता के सम्बन्ध में जिहासा करते हैं। 'मद्विदकाम्य' 'हनुमन्नाटक' और 'महानाटक' के राम इतने बचसुर पर अपने बिलास और शम्भर्यरिति आदि का स्मरण करके बिलाप करते हैं। 'रामायण-मञ्जरी', 'हनुमन्नाटक' और 'महानाटक' में वे सीता के संबन्धनों का शोचार्थ-वर्णन करते हुये उनके अकाल बिलास की कल्पना से बड़े 'रुच' होते हैं। 'महावीर चरित' में उनको 'बन्धन-शोकाग्नि' कहा गया है। 'अमरचराचर' में अड़ठा, बाष्पोद्भूत एवं स्मृतिघ्न आदि लक्षणों के फलस्वरूप उनकी हठी भावुक पठिहृदय की व्यञ्जना के लिए कहा है। वहाँ उनके लम्बा प्रकाप और बिलाप का अति विस्तृत वर्णन मिलता है। इस प्रकार इन सभी ग्रन्थों में राम के विरही हृदय का बड़ा समस्यर्धी चित्रण किया गया है।

(१८) राम का मित्र-रूप—'मानस' में सुपीव के सम्बन्ध से राम के मित्र-वैय का आदर्श निरूपण किया गया है। सुपीव की कष्टदाया सुन कर वे उसके नाई किन्तु धनु बालि के बन्ध की तुरन्त प्रतिज्ञा करते हैं। सुमित्र और कुमित्र के लक्षणों को विस्तार से बतलाते हुये वे इसको अपनी पूरी-पूरी सहायता का विश्वास दिखाते हैं—

'सखा शोच स्थानहु बस मोरें। सब बिधि बटव काज मैं तोरें ॥४७७
 और अपने इन्हीं बन्धनों का निर्वाह करते हुए वे 'बाकिबन्ध' के परचाए सुपीव को किरिकम्बा का राबा भी बना देते हैं। राज-सुख में मग्न सुपीव के प्रयास से वे शून्य भी होते हैं किन्तु उसके क्षमा पाँव सिने पर वे बड़े भरत के सवान प्रियबाई' कह कर अपने मित्र हृदय का स्निग्ध परिचय देते हैं। "अयोध्या में सुक-वसिष्ठ से सुपीव का परिचय कराते हुए राम उसको समस्तानर का बेदा' और 'नरत है भी बाकि प्रिय' कह कर उसके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते

- | | | | |
|---|--|---|------------------------|
| १ | हनुमन्नाटक १।१६ | २ | महानाटक ३।९० |
| १ | मद्विदकाम्य १।२६ | ४ | रा० मञ्जरी। अरण्य १८७४ |
| २ | वस्तुतः निबन्ध वृष्ट २७३ | ५ | " " ११००६-१३ |
| ३ | हनुमन्नाटक ३।३, ३।५, ३।६ | ६ | महानाटक ४।१८ |
| ४ | महावीर चरित, ३।२५ | ७ | अमरचराचर ३।२२ |
| ५ | अमरचराचर १।५-१६, ३।३०-३२, ३।३-३७ ३१-३३ | ८ | मानस ४।११, १८, २१ |
| ६ | मानस ४।६ | | |

हैं और बिदा के समय घरत के हाथों से बने हुए बस्त्रों को सवे स्वयं पहना कर अपने अनुपम मित्र प्रेम का उत्कट निरूपण भी करते हैं।^१

संस्कृत-साहित्य में भी राम के मित्र प्रेम का आदर्श विनय मित्रता है। 'रामायण-मञ्जरी' के सुधीव राम की मित्रता के लिए आर्या स्मिरा, मुनीक-दाहिणी और सर्वस्वरामिनी आदि विधेयों का प्रयोग करता है। 'राघवीय' और 'मनर्षराघव' आदि के राम तो सुधीव को अपना 'भाई' ही मान लेते हैं क्योंकि वे सूर्यवंशी हैं और वह सूर्य-पुत्र है। उनकी यह सम्मान-कल्पना उनके मित्र प्रेम की पराकाष्ठा है, जिससे आश्चर्य होकर 'मनर्षराघव' का सुधीव उनके 'मित्रपर्याय दास्य' की कामना करता है और 'मन्त्रिक' का सुधीव राम की मित्रता से बालरघव तथा देवराज को भी मुसम बतसाता है।^२ 'अद्भुत-दर्पण' में ही सुधीव के प्रति राम के अद्वितीय छोहार्द का परिचय मित्रता है, जब वे उसके कटे धार को देख कर विभाव करते हुये यहाँ तक कहते हैं कि जब भसे ही निपुण (रससाक्ष) रावणों को मारा जाय किन्तु सुधीव छोटा मित्र तो मिल ही नहीं सकता है।^३

सुधीव के स्वामत और बिदाई के अवसर पर भी संस्कृत-साहित्य में राम के स्नेहाविषय की सरस अभिव्यक्ति मिलती है। अयोध्या पहुँचने पर राम वहाँ सुधीव का सबसे परिचय करते हुए उसे कुन्ती-बन्धु, दुःसहाय-नीत और शीता-शेर' तक कह देते हैं।^४ 'रघुवंश' के राम उसकी बिदाई के समय शीता के द्वारा लाई गई पुत्रा घामनी से उसे सम्मानित करते हैं^५ और इस प्रकार अपने आन्तरिक प्रेम का परिचय देते हैं।

(११) राम का शत्रु-रूप—'मानस' के राम जिस प्रकार आदर्श मित्र हैं वही प्रकार आदर्श शत्रु भी हैं। उनके जन्म का प्रमुख उद्देश्य ही धर्म की रक्षा करने वाले असुरों एवं अपम अभिमानी व्यक्तियों का विनाश करना है। असुरों में वे क्रम से दाटका, मुबाहु, विराय मारीच छर, दूषण, कबन्ध कुम्भकर्ण और रावण आदि का वध करके उन्हें निजपद भी दे देते हैं और अपम अभिमानी व्यक्तियों में प्रह्लिषर्ष में समुद्र को, वे पहले ही पारण माय सेने पर उसे समा कर देते हैं बरबादी में 'परकुराव को वे अपने दरबार का परिचय देकर कात्त करते हैं, 'वशिष्ठ' में जम्भ को वे पारण में जाने पर एक वधन करके छोड़ देते हैं और 'बाहुरवण' में बाहि को बाहृत करके भी उसके समा माय सेने पर उसके प्राण

१ मानस ७।८ १९, १०

२ प० मञ्जरी । क्रिष्णिया । २१-२३

३ राघवीय २०।२९

४ मनर्षराघव २।२६ के बाद

५ मनर्षराघव २।२१ के बाद

६ मन्त्रिक १।४ के बाद

७ अद्भुत दर्पण २।१७, २०

८ प्रस्तुत निरूपण मृष्य १४९, १५१

९ रघुवंश १४।१६

बारम्बार करने का आग्रह करते हैं और अन्त में उसकी इच्छा पर ही उसे 'निजबान' भिन्न करते हैं।

राम वस्तुतः इतने भारसे तन्मू है कि वे कौची परशुराम के समस्त विवर्धन की प्रशंसा से सम्बन्धित विवर्धना भी स्पष्ट कर देते हैं। 'बन्धु-रूपन के सुवों से भी अपने भारसे तन्मू बर्न की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि वे 'मनोवे' तन्मू पर आक्रमण नहीं करते हैं बलवान तन्मू से डरते भी नहीं हैं तथा एक बार काब तक से भी मरने का साहस रखते हैं।' राम के सर्व प्रपन्न करने पर वे उद्यते 'पादल-रसाज-मनस' का उल्लेख करते बकवास बन्द करने और आबरवक बीरता दिखाने का आग्रह करते हैं। यह राम का ही भारसे तन्मू-दूषण है जिससे प्रेरित होकर वे बालि तथा राम के बच के परभाव उनकी विविध मृतक क्रिया के लिए उनके भावों से आग्रह करते हैं। यही नहीं अपने हाथ मारे गए सभी व्यक्तियों को वे 'सामोक्थ' बचवा सामुक्थ' मुक्ति भी प्रदान करते हैं। इसमें उनकी ईश्वरता के साथ-साथ उनकी राघवेय रहित भारसे तन्मूता की भी कोमल स्वंजना है।

संस्कृत साहित्य में भी राम के इसी भारसे तन्मू रूप की अधिम्यक्ति अनेक प्रकार से की गई है। तादका बच के प्रसंग में वे अन्त के स्त्री होने के कारण ही उद्यत आक्रमण करने में हिचकिचाते हैं जिसका उल्लेख 'राघायण-मंजरी' 'बाह-राघायण' 'महावीर-चरित और अनन्तराज' बाह अनेक ग्रंथों में मिलता है। अपने तन्मूकों के प्रति सहज सोहार्से के कारण ही राम मारीच की समझाते हैं और उसके बुधबुध दिखाने पर वे उठी बुद्धता के साथ बचका बच भी कर देते हैं। संस्कृत साहित्य में 'परशुराम-विबाह प्रसंग' में राम का यह भारसे रूप बही दिखलाई पड़ता है क्योंकि एक ठो वे उनसे—बिबन्न होकर ही सही—विविध युद्ध करते हैं और उनके परीक्षा-मान के लिए लिए गए वैज्यव तन्मू का अनुचित उपयोग करके उनके 'पुण्यमाप्त साक' को नष्ट भी कर देते हैं।

'मानस' में बालि विराध और कर्ण के प्रसंग को लेकर राम की भारसे तन्मूता के विषय में किसी को यह समझ हो सकता है कि उनके बच के लिए राम के पास सम्भवत कोई आचार नहीं था किन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि बालि, राम के मित्र सुग्रीव का तन्मू है। बचवा तन्मू तो एक बार क्षम्य हो सकता है, किन्तु मित्र का तन्मू पुनः बच-बोध्य होता है। क्षम्यता मित्र की दृष्टि में वह सम्मान नहीं पड़े पाता है। विराध और कर्ण के विषय में उनका अनुप्राण ही उनके बच का एक मात्र

१ मानस १।२५१-२५४
 २ मानस १।११
 ३ " १।१०५।१
 ४ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ ११४
 ५ " " १५३-१५८
 ६ " " " १५३-१५८
 ७ " " " १५३-१५८
 ८ " " " १५३-१५८
 ९ " " " १५३-१५८
 १० " " " १५३-१५८
 ११ " " " १५३-१५८
 १२ " " " १५३-१५८
 १३ " " " १५३-१५८
 १४ " " " १५३-१५८
 १५ " " " १५३-१५८
 १६ " " " १५३-१५८
 १७ " " " १५३-१५८
 १८ " " " १५३-१५८
 १९ " " " १५३-१५८
 २० " " " १५३-१५८
 २१ " " " १५३-१५८
 २२ " " " १५३-१५८
 २३ " " " १५३-१५८
 २४ " " " १५३-१५८
 २५ " " " १५३-१५८
 २६ " " " १५३-१५८
 २७ " " " १५३-१५८
 २८ " " " १५३-१५८
 २९ " " " १५३-१५८
 ३० " " " १५३-१५८

प्रमुख कारण है, क्योंकि उसी के विकास के लिए राम आरम्भ से ही कृतप्रतिष्ठ है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के कुछ नाटकों में वही भाति को रावण-विजय और रामचरितकृत विराय को हीताहरण-कर्ता तथा कबाल को राम पर बाधमनकता विमित किया गया है उनके साथ राम की समुदा का पर्यन्त आधार भी मिल जाता है। महावीर चरित में रावण को बन्नु होने के कारण बन्ध मानते हुए भी राम, उसे अपहृषणी, पद्माप्रवीण अतिवीर्य अप्रमेयतप और असाधारण विद्वान् भी कहते हैं तथा उसकी 'अमृत्प्रति' को वे 'नैकत्र बन्ने गुणा कइ कर दाम जाते हैं।' 'रावणी' के राम युद्धभूमि में रावण को आहत और रत्न-सावित्री-हीन शकर को भी उसका बन्ध नहीं करते हैं। प्रकृत उसे स्वस्म्य और समर्प होने के लिए दूसरे रत्न में अंका भेज देते हैं। 'अमृतदर्पण' में रावण कुम्भकर्ण और मेघनाद तीनों को एक घाम असाधारण शैकर नभ लभय वन पर प्रहार करना चाहते हैं तब राम अनोचित के कारण ही उन्हें तुरन्त रोक देते हैं। 'इतीहिये वही 'रामस्त राजा महापुरुष' मानुमनुते एवावन्त्याहितम् कहकर राम को आदर्श मनुष्य की सत्य प्रसता की गई है।'

(१०) राम का राजा-रूप— शान्त में राजा राम के मुरार्य का बड़े विस्तार के साथ आकर्षक वर्णन किया गया है। 'रामराम्य अपनी उन विशेषताओं के कारण आज भी हमार्य काय्य आदर्श है। राम के इस आदर्श रूप का बचन उनकी एक सत्ता में मिलता है जिसमें वे पुरुषों के समस्त अपना सोहाव प्रयत्न करते हुए कहते हैं —

वहि कनीति वहि कइ प्रनुवाई । मुमहु करहु जो तुम्हहि सोहाई ॥

जो कनीति बसु भावी भाई । तो मोहि करजहु मय निघराई ॥१०४३॥

इसके अतिरिक्त 'रामराम्य' के आकर्षक वर्णन में भी राम की सुताय-अवस्था का पुष्ट प्रमाण मिलता है जो उनके आदर्श राजा-रूप का स्पष्ट परिचायक है। संस्कृत के सभी रूपों में विशेषकर 'राजाय-मञ्जरी' 'शायक', 'महापुरुष' तथा 'वच पुराण' आदि में रामराम्य के बचन का अति विस्तार से वर्णन किया गया है। गुण और कृति के सभी रूपों को साकार बनाने के लिये 'रामराम्य' के अतिरिक्त और वही अवकाश भी तो नहीं है इतीहिये राम-रुपा के प्रमेताओं के 'सम्पन्नता के अपने सम्प्रादर्श को वही भी भर कर प्रतिष्ठापित किया है। मुमकी ने इस विद्या में बहु-धन्य बयत के अनुभव शैरवर्ष का उत्तीर्ण करके राम के आदर्श राजा रूप की प्रसता और उत्तम अभिव्यक्ति की है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राम अपने सभी सम्बन्धी—पुत्र पिप्य भ्राता बति निम मनु और राजा आदि—में पूर्णतया आदर्श है। केवल विद्वानों में ही

१ महावीर चरित १।११-११

२ रावणीय १।४०-४३

३ अनुमृतदर्पण ६।८ के बाद १२ ११ २६

४ अनुमृत-दर्पण १।६ के बाद

५ संस्कृत निबन्ध पृष्ठ २४६,

नहीं, अपितु व्यवहारों में भी वे अपने इस महान् चारुण्य का सापेक्ष निर्वाह क-
 हैं। यही तो राम का 'रामत्व' है। इन सम्मग्यों की सफल अभिवृत्ति का सम्पूर्ण
 उत्तरदायित्व राम के व्यक्तित्व गुणों पर है। इनकी वीरता वन्धीरता बुद्धि,
 उदारता वयानुता, समता दक्षता नैतिकता विनीतता लोकप्रियता वीर वरणा-
 मतवत्सलता अद्वितीय तथा अलौकिक है। वे सभी गुण जबमें इतने अत्यंतप्रिय हैं
 कि योग्य अवसर पाने पर एक के साथ ही अनेक स्वतः प्रवृत्त हो जाते हैं। इन गुणों
 का पूण्ड्र विवेचन विस्तारमय से यहाँ अपेक्षित नहीं है, बस केवल राम की उदारता
 और शरणागतवत्सलता का ही यहाँ निरूपण किया जा रहा है।

(२१) राम की उदारता—राम का उदार हृदय वस्तुतः बड़ा समाधीन
 है। उनके सामने कोई भी अपराधी अपने अपराध को स्वीकार करके जब उनसे
 क्षमा माँग जाता है तब वे अपनी विनाश हृदयता का भीम ही परिचय देते हैं।
 परमुराम अयन्त, सुधीन वीर समुद्र ऐसे ही अपराधी हैं जो मजान एवं अधिमजान
 के कारण प्रबाधवश राम की अवहेलना कर बैठते हैं किन्तु अन्त में मिरास होकर
 वे उनकी शरण में आ जाते हैं और उनसे क्षमा प्राप्त करते हैं।

संस्कृत के ग्रन्थों में राम की उदारता के इस भावार्थ रूप के वर्णन नहीं होते
 हैं। यहाँ परमुराम के साथ उनका वाक्यबद्ध वीर नीपव्य-मुद्र तक होता है और वे
 उनकी स्वर्नति को समाप्त भी कर देते हैं। अयन्त की 'एकासता' का उल्लेख
 भी यहाँ सर्वत्र अद्वैतस्वरूप ही है। क्षमा-स्वरूप नहीं। सुधीन के प्रति क्षमा का
 संकेत समाप्त होते हुए भी संस्कृत-ग्रन्थों में 'मानस के समाप्त 'भावुत्व' की अति
 व्यक्ति कही भी बुद्धिगोचर नहीं होती है। 'समुद्र प्रसंग' में भी संस्कृत के ग्रन्थों में
 सर्वत्र राम के वाप-प्रयोग का बचन मिलता है जबकि 'मानस में केवल चारुण्य
 मान ही का संकेत है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त विनीतता के पूर्वतिलक प्रसंग में
 राम की उदारता का सर्वश्रेष्ठ परिचय मिलता है—

जो संपति सिद्धराजनिहिं वीरुं विर्यं दत्त माय ।
 सोह संवदा विनीतनिहिं सङ्गुधि वीरुहिं रघुनाथ । २।४६

इस वर्णन में तुलसी 'हनुमन्नाटक से प्रभावित अवश्य' हैं किन्तु सङ्गुधि' शब्द के
 प्रयोग से उन्होंने यहाँ राम की अद्वितीय उदारता का संकेत कर दिया है। इस प्रकार
 राम की उदारता की जो सर्वोच्च अभिव्यंजना 'मानस' में प्राप्त होती है वह
 अत्यन्त दुर्लभ है।

(२२) राम की शरणागत-वत्सलता—राम के इस गुण में उनकी अती
 किकता और लौकिकता दोनों का समावेश है। लौकिक दृष्टि से मोदताम के लिये

१ प्रस्तुत विवरण पृष्ठ १४२-१४६
 २ मानस ४।२१
 ३ हनुमन्नाटक ३।१४

२ प्रस्तुत विवरण पृष्ठ १७८
 " " " २१५-२१६

बहु 'राम' की धारण में जाना 'मानस' के प्रत्येक पात्र—भगवत या अमनस की अन्तिम साक्षात्कार है। भौतिक दृष्टि से 'धरम' का सम्बन्ध अधिकतर 'राजनैतिक सुरक्षा' से होता है, जिसमें धरम्य के समझ या तो स्वयं उसका शत्रु विषय होकर के 'बाहिर्' करता है अथवा उसके शत्रु से बात कोई अन्य व्यक्ति अपनी सुरक्षा की याचना करता है। 'मानस' के अन्त और विभीषण इसके ठीक उदाहरण हैं। अपराधी अन्त जब बिलोक में कहीं भी जान म पाकर राम के समझ निरूपिता है तब वे उसे धरम्य से डेते हैं। यही यह उल्लेखनीय है कि इस प्रसंग में अन्त को पूर्व दामादान देने का बर्णन केवल 'बद्धपुराण' में ही मिलता है, अन्यत्र सभी ग्रंथों में उसके 'नेत्ररश्मि' का समान रूप से संकेत किया गया है।

राम की 'धरमागतवत्सलता' का सर्वश्रेष्ठ निरूपण 'विभीषण प्रसंग' में मिलता है। राम उसे केवल अमनस ही नहीं डेते हैं, अपितु उसको लंका का राज्य बिताने की प्रतिज्ञा भी करते हैं। युद्धभूमि में 'राज्य' के द्वारा विभीषण पर धनिक प्रहार किए जाने पर वे उसे पीछे हटकेत कर स्वयं भागे बड़ जाते हैं और उस 'यन्त्रि' को अपने धरा पर मोलकर अपने उस महान् गुण का व्यावहारिक परिचय भी डेते हैं।^१

यों सिद्धात्मा रूप में अपनी धरमागतवत्सलता का पविस्तार बर्णन करते हुए राम स्वयं कहते हैं—

धरमागत कर्तुं ये तर्हि नित्र अनहित अनुमानि ।

ते नर पांशर पापमय विहृति बिलोकत हामि ॥ १।४३

कोटि विप्रवय सांखि वाहू । आएं धरम तर्क नहि वाहू ॥ १।४४

तुमसी ने स्वभावतः इस प्रसंग में विभीषण की भौतिक बिरक्ति और राम से उसकी प्रसिद्ध-याचना का संकेत कर दिया है। संशुत के ग्रंथों में विभीषण का यह भवत रूप कहीं भी प्राप्त नहीं होता है।

इस प्रकार 'मानस' के राम के चरित्र-विशेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुमसी ने उनके विष्णुदिश्य सभी रूपों का निरूपण करते हुए भी उनके ईश्वरत्व के प्रतिपादन की ओर अधिक ध्यान दिया है, अतः राम के निर्युध ब्रह्म, समुद्र ब्रह्म और विष्णु रूप की सम्मिश्रित शक्तों के समान मानस में प्रायः सर्वत्र हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त तुमसी ने राम के 'नर-रूप' का जो चित्रण कहाँ किया है वह काष्ठी बिरय की दृष्टि से पूर्णतया अपूर्ण होने के साथ-साथ उनके बिसाल हृदय की महतो-महीयान् बल्यता का साधारण रूप भी है। वस्तुतः उन्होंने राम को सर्वदा महान् और अतिमहान् ही चित्रित करने का एकमात्र प्रयास किया है। इसीलिए यदि उन्हें उनके चरित्र में कहीं कितो दोष की स्वल्प सी भी संभावना प्रतीत हुई है तो उन पर उन्होंने सीधे ही अपनी 'नर-भीला' का मिलविना आवरण अवश्य डाल दिया है,

१ बद्धपुराण । उत्तर । २४२ । ११६-२११

२ मानस १।६३-६१

३ मानस १।२०४, २२४, ३।१८, ६।११

क्योंकि उनके राम केवल तर ही नहीं अपितु साक्षात् नारायण अथवा परमब्रह्म हैं। आदि-कवि वास्मीकि के राम के साथ यदि तुलसी के राम की तुलना की जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्मीकि ने राम के 'नरत्न और नाटयत्न' इन दो पक्षों में से नरत्न की पूर्णता प्रदर्शित करने के लिए उनके चरित का मान किया है। पर गोस्वामी जी ने राम का 'नाटयत्न' लिया है।—इससे कहीं-कहीं उग्होंने उनके नरत्न-सूचक लक्षणों को दृष्टि के सामने से हटा दिया है—पर साथ ही काव्यत्व की उग्होंने पूरी रक्षा की है अस्वाभाविकता नहीं माने की है। 'वास्तव में राम का चरित इतना महान् है कि उसके सम्बन्ध में अधिकाधिक कहना भी सर्वत्र अपर्याप्त ही रहेगा। मानस के वास्मीकि भी इसका समर्थन करते हैं:—

'राम सख्य तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धिपर।

अधियत अक्षय अपार नैति नैति नित निगम कहू ॥२॥१२६॥

(२३) सीता चरित—सीता 'मानस' की नायिका है। राम के समान ही उसका चरित भी अलौकिक एवं मौलिक भेद से द्विविध निकमित हुआ है। अलौकिक रूप में वे महा राम की 'परमकृति' मायापति राम की माया^१ और बिष्णु राम की 'अकमी'^२ हैं। उद्भव-स्वर्गि संहारकारिणी^३ और सर्वभेदसूचरी होने के साथ साथ वे 'रामवस्तुमा भी हैं।^४ इसी अलौकिकता के कारण राम के साथ उनको पिरा और अर्ध एवं 'बल और बोधि के समान अभिप्रा'^५ कहा गया है। इस अलौकिक रूप के अतिरिक्त अपने लौकिक रूप में वे एक 'आदर्श पत्नी और 'कुशल सम्पूहिनी' भी हैं।

(२४) आनुरा-पत्नी—सीता के इस रूप में उनके पूर्वराग संयोग और विद्योय की सभी स्थितियों की सरल अभिव्यञ्जना हुई है। 'पुष्प-आदिदा' म राम को देखकर वे उन्हें निजनिधि समझती हैं और पिता के पत्र के स्मरण से दुःख होकर वे 'पिबबनुप' को ही समुत्तर बना देने के लिए बेवताओं से प्रार्थना करती हैं।^६ उनकी इस प्रार्थना में उनके आदर्श पूर्वराग के सपुत्र वर्जन किए जा सकते हैं। संस्कृत के ग्रन्थों में 'महावीर चरित' म वे राम को देखकर स्वयं ही उन्हें 'सौम्य-वर्धन एवं लोचनामग'^७ कहती हैं। यहाँ विवशानिध और कुसम्बज की उपस्थिति के कारण उनके इस 'पुत्रराम का अधिक विकास नहीं हो सका है। प्रथमराज्य की सीता राम के प्रति आकृष्ट होकर उनके सौम्य का विस्तृत बचन भी करती हैं।^८

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास—उपन्य स० पृ० ७३-७४

२ मानस १।१८७

४ १।१८६, १।११२

५ ' १।१८

६ ' १।२३७-२३८

१० प्रथमराज्य २।२१-२३

३ मानस १।१०६ ३०७ २।१२६ २५२

७ १। अलौकिक ३

८ " १।२३२

९ महावीर चरित १।१८ के आर

२० के आर

'येमिनी कल्याण की सीता या राम मुल-अवयव के कारण 'पूर्वावस्था' है। यद्यपि प्रथम वर्धन में ही उनकी बहु भावस्थि अत्यधिक पक जाती है। 'द्वितीय दर्शन' में उनके प्रथम उपास का संकेत भी यहाँ मिलता है। यहाँ से विरह दशा के कारण अरथापन तक हो जाती है और दूतों को भेजकर राम को संकेतमय पर बुलवा भी होती है। 'मानस' के वर्धन में पर्याप्त विस्तार होने पर भी कामुकता का कहीं सेवमान भी आभास नहीं है। प्रसूत उसमें एक विषय आन्तरिक स्नेह की ही अभिव्यक्ति है जो संस्कृत साहित्य में कहीं भी सुनम नहीं है।

संवात गृ गार के वर्धन में भी 'मानसकार' ने बड़ी बटाटा एव सतर्कता का परिचय दिया है, जब कि जानकीहरण, हनुमदाटक और महाताटक आदि में राम और सीता के 'दाम्पत्य-विभास' के वर्धन का उत्सोह अभी किया जा चुका है। इसके उन कवियों को भावना एवं परम्परा का परिचय मिल जाता है। 'मानस' के वर्धन में राम और सीता के संयोग-सुखों का जो उत्सोह किया गया है उसमें उनके 'मुनिव्रत की ही प्रयत्नता है।' जिसका चित्रण संस्कृत-ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता है। 'मानस' में सीता की 'बल-यहूदयन' शायंता में उनको 'पतिसेवा पराधमता का वर्धन किया गया है किन्तु संस्कृत-साहित्य में उनकी कटुता और यमकियों का भी उत्सोह मिलता है। 'मानस' के मारीय प्रसंग में सीता के 'यर्ष्य यमनों' का कोई विस्तार न होने से उनके उदात्त चरित्र को कोई विशेष लक्षि नहीं पहुँचती है जबकि संस्कृत के ग्रन्थों में उनके विस्तार से सीता के आदर्श चित्रण में बाधा उपस्थित होती है।

सीता के विधोयिनी रूप का यहाँ तक सम्बन्ध है 'मानस' में उसका सर्व श्रेष्ठ चित्रण हुआ है यद्यपि बहु 'प्रसन्नराज्य' से बहुत कुछ प्रभावित है। रामायण मञ्जरी" महाभारत" और 'आदर्शबुद्धिमति' में भी उसके सरस दर्शन प्राप्त हो जाते हैं। 'सीता-शुद्धि' प्रसंग में भी 'मानस' में और संस्कृत-साहित्य' में बलिष्ठ सीता के आत्म-विरहास में उनको अद्वितीय 'प्रेमासक्ति दृष्टिगोचर होती है।

(२३) कृष्णस सद्गुणद्विणी— मानस की सीता की कृष्णता और वर्तम्य पराधमता बहुत प्रसन्ननीय है। संवा-पार करते ही उठरई के रूप में गृह को

१	येमिनीकल्याण १।२३ २६, ३।२८ के बाद	३।७ १३, १४, १७, १९ ४२	
२	प्रसून निबन्ध गूठ २७४	३	मानस २।२१ १२३, १३९ १४१
४	' ' ' २७३	४	प्रसून निबन्ध गूठ १३६ १३७
६	मानस ३।२८	७	' ' ' १८८
८	३।१२	८	प्रसन्नराज्य ६।३३ के बाद-३३
१०	१।० मञ्जरी) मुञ्जरी १।२८८-२९८	११	महाभारत । बल । २८०।१०-३३
१२	आदर्शबुद्धिमति ६।३ के बाद	१२	मानस ६।१०९
१४	प्रसून निबन्ध गूठ २३९		

‘मणि-मुद्रिका’^१ दैते में प्रामीन स्त्रियों के समझ राम का परिचय देते समय लक्ष्मण का प्रथम उल्लेख करने में^२ तथा चित्रकूट प्रवास में सूर्यास्त के पश्चात् अपने माता पिता के भी पास अपने ठहरने के अनौचित्य के संकेत करने में^३ उनकी व्यावहारिक कृपणता दर्शनीय है। संस्कृत ग्रन्थों में प्रथम और तृतीय प्रसंगों का संकेत नहीं नहीं है और द्वितीय प्रसंग में केवल ‘हनुमन्नाटक’^४ में राम के ही परिचय देने का उल्लेख मिलता है जिससे उनके इस कोषल के दर्शन नहीं हो पाते हैं।

जहाँ तक सीता की कर्तव्यपरायणता का सम्बन्ध है, वे अपने व्यक्तिगत धर्मों के पावन में पूर्णतया दक्षिण हैं। ‘रामाभियेक’ के पश्चात् महारानी होते हुए भी और शासकादियों के रहने पर भी वे अपने ही हाथों से समस्त गृहपरिचर्या करती हैं। वहाँ पवित्रेया और शास-सेवा के लिए उनकी निरविभाज्य तत्परता में उनकी कर्मठता का स्पष्ट परिचय मिलता है^५। संस्कृत के ग्रंथों में सीता के इस रूप का चित्रण नहीं है। वस्तुतः वह तुसरी की अपनी मौखिक और व्यावहारिक शोचना का परिणाम है जो उनकी सूक्ष्म-उत्सव-वसिष्ठा और मनोवैज्ञानिकता का एकम निर्वेक्षण करता है।

सीता के चरित्र-चित्रण में उनके बलौकिक और लौकिक दोनों रूपों का एकत्र सम्मेलन हुआ है। उनका अद्विष्टिद्वि-सत्कार^६ सासों की सेवा के लिए उनका अनेक शेष-निर्माण^७ और उनका अविधिम्ब-रूप^८ उनकी बलौकिकता का ही चोटक है फिर भी तुसरी ने उनके पत्नी और मुहिनी रूप का जो मनोरम और आकर्षक चित्रण किया है उसमें ‘साधारण्यीकरण’ का अद्वितीय चमत्कार है।

(२६) रावण-चरित्र-रावण ‘मानस’ का प्रतिनायक है। काव्यशास्त्रों में प्रतिनायक को मुख्य बीरोद्यत, पापी और ब्यसनी आदि कहा गया है^९ किन्तु जिस प्रकार शास्त्रीय मतानुसार राम के समस्त गुणवर्धन में अक्षय्य हैं उसी प्रकार वे रावणका भी पूर्ण चित्रण उपस्थित नहीं कर पाते हैं। वस्तुतः नामक में जितने उद्गुणों की वस्तुना की जा सकती है प्रतिनायक में उतने से भी अधिक कुर्बुनों की स्थिति यानी जाती है। प्रतिनायक की उन्नतता और बलिक्रमता उसके विजेता नायक का ही पथ बड़ाती है। रावण अपनी उपस्था एवं सापना के बल पर ही महान शक्ति प्राप्त करता है जिसके कारण उसे अहंकार होना बहुत स्वाभाविक है। अहंकार से ही काम श्रेय शोच और मोह का विकास होता है। अहंकारी के लिए संसार की कोई भी वस्तु इष्ट होने पर जिस प्रकार असम्य नहीं होती उसी प्रकार अलिष्ट होने पर प्रतिनायक भी नहीं रहती,

१ मानस २।१०३

२ " २।२८७

३ " ७।२४

४ " २।२५२

५ दशस्कण्ड २।१

६ मानस २।११७

७ हनुमन्नाटक ३।१५

८ मानस १।३०६-३०७

९ " ३।२४

इसीलिये कुबेर से पुष्पक-नाम छीन लेना, देव, यक्ष आदि की कुमारियों को बलपूर्वक बरन कर लेना रावण के लिये उचित ही सुकर है, जितना यक्ष, गो, बाह्यमादि का विनाश करना । वस्तुतः रावण का समस्त चरित्र, शक्ति और उससे उत्पन्न अहंकार काम और श्रेय आदि दुर्गुणों का ही परिणाम है ।

(२७) रावण की शक्ति—'मानस' का रावण पड़ा मल्लिसानी है । पुष्पक के हारन, कैलाश के उचोसन, रवि, माघि, पवन, वरुण कुबेर आदि देवताओं के बलीकरण की बटमार्ग बसकी शक्ति की परिणामक है जिसका उल्लेख बहु राम 'अनन' और मन्वोदरी' आदि के समय बारम्बार करता है । संस्कृत-साहित्य में 'पद्मवतारचरित', 'रावणवीर्य', 'प्रसन्नरायण' अथर्वरायण' 'बासुरामायण' 'हनुमत्पाठक' आदि सभी ग्रन्थों में उसके अपर्युक्त पराक्रमों का विस्तृत उल्लेख मिलता है ।

(२८) रावण का अहंकार—अपनी अग्रतिय शक्ति के कारण ही रावण अहंकारग्रस्त हो जाता है । पूर्ववथा से बलका बिक्रम्य और राम का शौर्य सुनकर उसका 'अहं' सर्व प्रथम घुम्न होता है और बहु प्रतिकार के लिए ही सीता हारन की योजना निश्चित कर लेता है । मारीच क समयाने पर बहु अहंकारग्रस्त ही उस पर क्रुद्ध होकर उसे 'बावामुन' बनने को बाध्य करता है । 'सीताहारन' की प्रथम प्रतिश्रिया 'संकादाह' से यद्यपि सभी राज्यों में भय का संचार होता है, तो भी रावण पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, जिसका प्रमाण मन्वोदरी विभीषण मात्यबाह और धुक के साथ सम्पन्न उसके संचार में मिल जाता है । 'सेतुबन्ध के परचासु भी मन्वोदरी मात्यबाह प्रहस्त और कुम्भकर्ण जैसे आरमीयजनों के समुप देवी पर लक्ष बहु ध्यान नहीं देता है ।' तो रामदूत अंयद की बात अनसुनी कर देना उसके लिये कोई बड़ी बात नहीं है ।

संस्कृत-साहित्य में रावण के इसी अहंकार का अनेक प्रसंगों में वर्णन किया गया है । 'सीता-नवर्षण' अर्धय में 'प्रसन्नरायण' और 'बासुरामायण' आदि नाटकों में बहु अपने अहंकार के कारण ही 'पनुर्भय की घर्ष को अपमान समझता है

१ मानस ११७६-१८१	२ मानस ११७६-१८२
३ " ११९०	४ " ११२२-२८
५ " २११७ ६१८	६ पद्मवतारचरित ७१२०-१६, २३२
७ रावणवीर्य ११११२-१४	८ प्रसन्नरायण १४८, २० २२, २८
९ अथर्वरायण १११८, ४४, ४६	१० बासुरामायण १४४, २१
११ हनुमत्पाठक १११२, १३, १४, ४४, ११, ४१	१२ मानस ११२२-२६
१३ मानस २११९, ३८-४०, २४-२६	१४ मानस ११६-२, १४-१४, १६
१५ मानस ११२०-१३	१७ ४८-४६
१६ प्रसन्नरायण १४२	१८ बासुरामायण ११३१

बीर बलप्रबोध से ही सीता को प्राप्त करना चाहता है। मानस में 'सीताहरण' के प्रसंग में राजस के द्वारा सीता को 'राजनीति' भय और 'प्रीति' विहायने का संकेत मात्र किया गया है किन्तु संस्कृत साहित्य में उसे बड़ा विस्तार मिला है। 'मानकी-हरण' में राजस के द्वारा ऐरावत के वाँट उखाड़ने लोकाचारों की भीतने सुमेरु से रत्नहरण करने उर्बंशी तिमोत्तमा रत्नादि अप्सरारामों को बन्धी बनाने। रामायण मञ्जरी में सीते की संका बनाने पुष्पक छीनने पूर्व आदि को बल में करने स्वर्ग में पाठास और पाठाक में स्वर्ग करने की अपनी क्षमता के वर्णन में 'राजवीय' में श्रीजास को उठाने कल्पवृक्षा छीनने तथा बधियों को बन्धी बनाने और 'व्यावहारवर्तित' में विभिन्नव्य करने तथा विश्वेश्वर होने की घोषणा करने से उसके अहंकार की ही प्रशामना है।

(२९) राघव का काम—तुलसी ने सीता के प्रति पूज्य भाव होने से उनके सम्बन्ध में राजस की काम चेतनाओं का वर्णन विस्तृत नहीं किया है प्रत्युत उसके द्वारा उनके हरण के समय उनके चरनों की मर्न ही मम बन्धना करने का संकेत कर दिया है। अशोक-वाटिका में भी उनके द्वारा उनके केवल एक 'कृपादृष्टि' की ही याचना का उल्लेख है किन्तु 'प्रसन्नराजस' और 'आत्-रामायण' का राजस सीता के स्वयंवर में ही उनके प्रथम दर्शन करने पर कामोन्मत्त होकर उनके रूप-सौंदर्य का विस्तृत वर्णन करने लगता है। इसी प्रकार 'आश्चर्यचूडामणि', 'मानकी-हरण', 'राजवीय' आदि ग्रन्थों में पञ्चदश में सीता के प्रथम साक्षात्कार पर राजस की कामोत्थियों का विस्तार उल्लेख किया गया है। 'रामायण-मञ्जरी' 'रघुवीर-वर्तित' 'महामारत' आदि में अशोक-वाटिका में भी राजस के द्वारा सीता से अत्यन्त कामपूर्ण बलमय करने का संकेत मिलता है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त 'महावीर-वर्तित' 'अनर्घराजस' 'महानाटक', 'हनुमत्नाटक'।

१ मानस ३।२८	२ मानकी हरण १।१८१-८८
३ रा० मञ्जरी । अरण्य । ८००-८०४	४ ११-८२२, ८४३
४ राजवीय १।७०-७३	५ व्यावहारवर्तित ७।१४३
६ मानस ३।२८	७ मानस ३।९
८ प्रसन्नराजस १।१५-१७	९ बालरामायण १।४० ४२-४३
१० आश्चर्यचूडामणि ३।२०-२१ २४, २६	
११ मानकीहरण १।१८१	१२ राजवीय १।७१-७३
१३ रा० मञ्जरी । अरण्य ।	१४ रघुवीरवर्तित । १।२।५७ से अन्त
	८०५-८०७
१५ महामारत । बल।१५।१८-१९	१६ महावीरवर्तित ९।१२-१३
१७ अनर्घराजस ६।१७	१८ महानाटक ८।२
१९ हनुमत्नाटक ३।१ ३१-४०	

'भारवर्षेच्छुशामनि'^१ आदि ग्रन्थों में रावण की काम चोटियों और बिरहोपचारों का विस्तार से वर्णन दिया गया है। 'बाहुरामायण' में तो उसके बिरहोपचार के लिए एक विस्तृत गभर्क^२ की योजना मिलती है। वहाँ उसकी बिरह-शान्ति के लिए मास्ववान् के द्वारा सीता और उसकी भाग्यिका सिम्पूरिका को ऐसी मूर्तियों के निर्माण करवाने का उल्लेख किया गया है, जिनके मुँह में छारिकाएँ हों और वे रावण से अभीष्ट प्रेमासाप भी करती हों, किन्तु उनको स्वर्ष करते ही रावण को छान रहस्य बात हो जाता है। इसके पश्चात् उसके प्रसाप उन्माद और बिरहोपचार का वही अन्तिम विस्तृत वर्णन मिलता है।^३

(३०) रावण का क्रोध—क्रोध 'मानस के रावण का अविद्य स्वभाव बन गया है। इसी क्रोध के कारण वह देवताओं पर आक्रमण करके उन्हें अपने बस में कर लेता है। पूर्णवला का बिरूपण देव्य कर उसका शरीर क्रोध से मानों बन जाता है।^४ उसकी काशमरी एक डोट से मारीच, मास्यवान, धुक प्रहस्त और कालनेमि आदि का छाहस समाप्त हो जाता है।^५ उसके क्रोधमरे एक चरणप्रहार से बिभीषण का छाहस सदा के लिए मिट जाता है।^६ संस्कृत साहित्य में भी रावण के योग का ऐसा ही विस्तृत वर्णन मिलता है। उसके पराक्रम की पुर्बोक्त समस्त कणसिन्धो उसके क्रोध की ही देन हैं।

(३१) रावण के गुण—सारे छानर में रत्नों की भाँति रावण में कुछ बिसिष्ट गुण भी हैं। प्रतिमा माटक में वह संज्ञापाप वेद, मानवीय धर्मशास्त्र, माहेश्वर योनशास्त्र आर्ष्यशास्त्र और प्राचिष्ठ व्याजकल्प का विज्ञान बतलाया गया है। अनर्षराषव में वह वैदिक कट्यदी-पश्चित और 'सास्त्रार्थ' में पञ्चद्विजवाचिसापी बन कर राम से विवाद करना चाहता है। वहाँ अपने बरिषय को 'धर्म-विश्रावण' कह कर अपना 'वाक्यल' दिखसाता है।^७ कुछ अन्य ग्रन्थों में भी उसकी बिभुता का संश्लिष्ट उल्लेख मिलता है।

बस्तुतः रावण का 'रावणत्व' उसका सबसे बड़ा दुर्गुण है जिसके कारण वह कामादि षट् बिचारों का प्रतीक सा बन गया है। उसकी बिद्या और बिद्वता से उसकी कुचोटियों को ही अविद्य उत्तेजना मिलती है। तुलसी ने रावण के इतने चरित्र-बिषय में उसको 'वैरवर्षि' के समकक्ष से एक अद्वितीय चमत्कार उत्पन्न कर दिया है जिससे उसके सम्मुख में बिचार करने की दिया ही एक दम परिवर्तित

१ भारवर्षेच्छुशामनि १।२६-३०

२ बाहुरामायण ३।१०-२०

४ मानस ३।२२

५ " ३।४१

६ प्रतिमा ३।८ के बाद

१ बाहुरामायण ३।६-७४

२ मानस ३।२६, ३।४०, ३।७

३।१०-१६

८ अनर्षराषव ३।१ के बाद

हो जाती है और उसकी प्रत्येक वस्तु प्रकृति में किये सम्भावना का एक मधुर भ्रम सा ही जाता है ।

(१२) अस्य पात्र—नायक राम, नायिका सीता और प्रतिनायक रावण के चरित्र-विचित्र के पश्चात् मानस^१ में पुरुष पात्रों में दशरथ, भरत, लक्ष्मण सुपीय विभीषण और हनुमान तथा स्त्री पात्रों में कौसल्या, केकयी और मगधोदरी के चरित्र भी उल्लेखनीय हैं ।

(१३) दशरथ का पतिरूप—पति पिता और राजा के तीनों रूपों में दशरथ का चरित्र वृष्टम्य है । इनमें उसकी कर्तव्यपरामर्शता की उत्तरोत्तर प्रबलता है । 'मानस' और संस्कृत साहित्य में सर्वत्र तीनों राशियों में से केवल केकयी के प्रतिही उनके आत्यधिक प्रेम का निरूपण प्राप्त होता है । कोपमय में कठी हुई केकयी को मनाने के लिए किए गए उनके प्रयत्नों और आशवासनों में उनके पति-हृदय का सरस परिचय मिलता है । 'रामायण-मञ्जरी'^२ और महाभारत^३ में भी इसका मधुर उक्ति दर्शनीय है ।

(१४) दशरथ का पिता-रूप—दशरथ अपने इसी रूप के कारण अत्यधिक प्रसिद्ध हैं । विश्वामित्र के द्वारा राम पाषाण के अवसर पर उनके वास्तव्य के अपूर्व दर्शन होते हैं । वहाँ राम के प्रति सर्वाधिक स्नेह का स्पष्ट उक्ति मिलता है ।^४ संस्कृत के ग्रन्थों में भी उनके इस विशेष वास्तव्य का उल्लेख है ।^५ केकयी वरपाषाण के प्रसंग में भी वे इसी अशिथिल पुत्र प्रेम का प्रकाशन करते हैं^६ जिसकी ओर केकयी के उक्ति करने पर, वे भरत और राम को अपनी दोनों भातियों के समान बचाना कर अपना 'समभारतस्य'^७ भी व्यक्त करते हैं । संस्कृत-साहित्य में उनके केवल राम के ही प्रति अत्यधिक स्नेह का उल्लेख किया गया है । वहाँ 'बनगमन' के लिए प्रस्तुत राम को वे अपना समस्त जीवन इसीलिए देना चाहते हैं ताकि भरत उन्हें प्रदेष्ट पर राज्य करें ।^८ कुछ ग्रन्थों में वे राम निर्वासन के पश्चात् में भरत के क्लिप्त होने का उल्लेख भी करते हैं ।^९

(१५) दशरथ का राजा-रूप—दशरथ 'रघुवंशी' राजा हैं । अतः सत्य वाक्यता और प्रतिष्ठापूर्ति उनकी बंध विधेयतायें हैं, जिसके लिए वे प्राणों की भी चिन्ता नहीं करते हैं ।^{१०} राम-निर्वासन के प्रसंग पर उनका अत्युत्कृष्ट बड़ा मार्मिक है क्योंकि वे अपने व्यक्ति-धर्म (वास्तव्य) और कुल-धर्म (वचन-नाशन) तीनों का

- | | |
|------------------------------|--------------------------------|
| १ मानस २।२३ | २ रा० मञ्जरी । अयोध्या ७११-७१६ |
| ३ महाभारत । अ. १२७।२२-२४ | |
| ४ मानस २।२३ | ५ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १३४ |
| ६ " २।१४ | ७ मानस २।११ |
| ८ रा० मञ्जरी । अयोध्या । ८८६ | ९ अंबुसामय २।२१ |
| १० मानस १।२८ | उदाररथपद ४।१०९ |

एक साथ निर्बाह करना चाहते हैं बिसे केकरी के दुःखद ने अतन्मय बना दिया है । अन्त में वे अपने कुनवरों पर अपने जीवन और व्यक्तिगत दोनों का बलिदान कर देते हैं । यों तो संस्कृत-साहित्य में भी उनके इस महान त्याग का उचितार बचन किया गया है, किन्तु 'मानस' के समान सर्वांग के वर्णन कहीं नहीं होते हैं ।^१ वस्तुतः दशरथ का चरित्र एक दुःखान्त गाथा है, जिसमें उनकी दुःखता, तनरता एवं कर्मठता भी दृश्य है । अपनी इन सभी विशेषताओं के कारण दशरथ कदापि भारतवर्ष के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित हो पाए हैं ।

(१६) भरत—मानस में भरत धृति की प्रतिमा है । यों तो उनका पुत्र रूप भी कम प्रबलनीय नहीं है किन्तु उनका भातृरूप विशेष प्रचलित है । भरत के चरित्र-विश्लेषण में उनके इन्हीं दोनों कर्तव्यों—पुत्र रूप और भातृरूप—का निरूपण ही विशेषकर उल्लेखनीय है । पुत्ररूप उनको पितृभक्ति अथवा मातृ-भक्ति का चित्रण कहीं नहीं मिलता है प्रसुप्त भातृभक्ति के कारण उनकी दुःख्य मातृभक्ति का ही वर्णन उल्लेख किया गया है ।^२ उसके सामने वे 'पितृभक्त' का भी चित्रण कर रहे हैं ।^३ 'राज्य ग्रहण के लिए कौतल्या एवं बलिष्ठ के आग्रह को उपेक्षा करने, विश्वकूट जाकर राम से अयोध्या प्रत्यावर्तन की प्रार्थना करने एवं उनकी चरम पादुकाओं को सिंहासनासीन करके १४ वर्ष तक गन्धिधाम में मुनि-व्रत गालन करने और भी उनकी आर्षभ भातृ भक्ति का वृष्ट प्रमाण निरूपित किया है । अन्त में भी उनके भरत के साथ अपने संसार में राम उनके इस स्नेह की प्रतीका करते हैं—

सत्यं तुम्हारे धर्म पितृ जाना । मुनि मुकमु नहिं भरत लजाना ॥ १।२।२
'धीन काल विभुवन मठ छोरे । पुण्यसिद्धि कदापि तब तरे छोरे ॥' २।१६३

संस्कृत-साहित्य में भी भरत के इस उत्तर प्रेम का वर्णन विरिषाजयी कवी में निरूपण किया गया है ।^४ प्रतिमा नाटक में कहीं वे सत्यम के अनुज हैं उनके प्रति भी उनका ही भाव दर्शनीय है ।^५ भातृभक्ति के अतिरिक्त वे अपने कर्तव्य के प्रति भी सर्वत्र आग्रहक हैं । विश्वकूट-प्रस्थान के पूर्व और परजातु भी अयोध्या की सुधरवाका का ध्यान रखना,^६ आकाशवाणी हनुमान् को राजत सप्त कर एक बाण से भीषे बिना लेना और फिर उन्हें अपने बाण से ही राम के पास भेज देने का प्रस्ताव करना,^७ उनकी कर्मठता और अद्भुत धृति के परिचायक हैं जिसका उल्लेख हनुमत्प्रादक^८ और श्रोतवा^९ नाटक में भी मिलता है । संस्कृत साहित्य में केवल भरत का ही चरित्र वर्णना विशेष विविध किया गया है फिर भी 'मानस' में उनके

१ प्रसुप्त निरूपण १२२-१२८

२ प्रसुप्त निरूपण पृष्ठ १६०

४ " " " १०३

५ मानस २।१८६ १२३

६ रामचरित २।१०४-१०

३ मानस २।१६०

४ प्रतिमा ४।८ के बाद १८ के बाद

७ मानस २।१८०-१०

८ प्रतिमा २।१६

उदात्त और उद्वृष्ट भ्रातृस्नेह का जो सबिस्तार बर्नन मिलता है वह अत्यन्त अत्राय्य है। अस्तुत् भरत को साकार राम प्रेम के रूप में प्रतिष्ठित करने का तुलसी ने जो महान् प्रयास किया है, उसमें उनको अभूतपूर्व सफलता मिली है।

(३७) साहस्य—भरत की भाँति भी लक्ष्मण केवल रामनिष्ठ है। राम की मक्ति के लिए वे कोई भी बलिदान कर सकते हैं। उसके सामने के अपने पिता, (बि) माता तथा अन्य माइयों के प्रति पूर्ण तिरस्कार व्यक्त करते हैं।^१ संस्कृत साहित्य में भी उनके इसी रूप का चित्रण मिलता है।^२ उनकी यह विशेषता संभवतः उनके सुगम-निर्माण का प्रमाण है।^३ इसी रामभक्ति के कारण वे जनक और परशुराम के प्रति भी अपना रोष दिखाते हैं। हनुमन्नाटक^४ और 'महानाटक'^५ में उनका यही रोष उनके स्वाग पर राम से सम्बन्ध मिलता है। तुलसी ने राम्यवत् छोटे राम के अयोग्य पातकर संकमल के साथ उसको जोड़ दिया है जिसके फलस्वरूप उनके ओषी स्वभाव की आरम्भ से ही प्रसिद्धि हो गयी है। उनकी इस उद्योग के चित्रण में तुलसी उनके शोषावतार^६ की कल्पना से भी प्रभावित जाग पड़ते हैं। 'रामनिर्वाहन' के अक्षर पर दशरथ और केन्द्री के प्रति सम्बन्ध किये गए उनके उपयुक्त तिरस्कार में उनकी भ्रातृमक्ति की ही प्रधानता है। सुग्रीव-प्रमाण के प्रसंग में भी मानस^७ और संस्कृत-साहित्य में समानतया बणित उनका शोष उनके इसी भ्रातृस्नेह का सुस्पष्ट परिणाम है।^८ इसके अतिरिक्त उनकी बीरता दुर्गा स्वरत्ता और दयता का भी विस्तृत बर्णन मानस और संस्कृत-साहित्य में समान रूप से मिलता है। तुलसी ने उसमें उनकी भ्रातृमक्ति धरना राम भक्ति का संकेत करके उनके चार्त्तिक उल्का की स्पष्ट अधिभ्यक्ति की है। उनके समस्त चरित्र में 'सुग्रीव-परीक्ष' के प्रसंग में बणित उनकी दार्त्तिकता कृष्ण विद्वानों को अस्वानाविक^९ प्रतीत होती है, किन्तु उसमें तरबतान की अवेता मुह को दान्त करने की प्रवृत्ति अचिह्न है जिसमें यह भी अर्थ है कि उसको दुमरो के पारिवारिक विवाहों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

(३८) सुग्रीव—सुग्रीव भ्रातृ पौंड्रि है। केवल 'महावीरचरित' में उसके बालि-वधपानी होने का उल्लेख है। यहाँ वह बालि की भाँति से ही विषय होकर

- | | |
|---|---------------------------------|
| १ मानस १।२८-१० | २ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १२७-१२८ |
| ३ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २७१ | ४ मानस १।२२२-२२४ |
| ५ मानस १।२७१-२७६ | ६ हनुमन्नाटक १।१०, ४६ |
| ७ महानाटक १।२४ २।१६ | ८ मानस १।१७ |
| ९ मानस ४।१८ ११ रामचरित ३।२३ रामवीर १।१२०, अग्निपुत्राव ८।२७ | |
| १० मानस २।२२-२३ | |
| ११ डा० माता प्रयास पृष्ठ—तुलसीदास—द्वितीय संस्करण पृष्ठ २८३ | |

राम से मीठी करता है।^१ 'बानरराज' होने के कारण वह दूध प्रेयस सैम्य-संगठन, सेतु-निर्माण तथा संका-मुद्र आदि में राम की सहायता करके अपनी सम्पत्तिका परिचय देता है, जिससे प्रामाणिक होकर राम भी अयोध्या में उसके स्वागत और सम्मान बिना की व्यवस्था करते हैं।^२ 'मानस' और संस्कृत-साहित्य में उसके प्रवास का संकेत भी उक्त रूप से मिलता है,^३ जन्मपा सर्वत्र उसके साहस शौर्य शारदा और विश्वस्त धरम का ही संविस्तार वचन किया गया है। तुषठी ने उसकी भक्ति और विरक्ति का भी विवरण करके उसकी मित्रवक्त' की काटि में रहने का एक संकट प्रकाश किया है।

(३२) विभीषण—विभीषण राम का पूर्वभक्त है। मानस के हनुमान्-मिलन प्रसंग में उसके चत्वनवन, राम-भाव-नमस्स और योधा प्रकृति-निवेदन आदि का उल्लेख उसकी रामभक्ति का ही परिचायक है। संस्कृत-साहित्य में इसका कहीं संकेत भी नहीं है। रामभक्त होने के साथ साथ वह नीतिज्ञ नम्र, लिप्त उदार भावद्विषी क्षुद्रहृत्वी और दूरदर्शी भी है। इधीनिए वह रामन से सीता-प्रत्येक की प्रायता करता है और उससे विरहदृष्ट एवं पर प्रहारित होने पर भी वह अपने विविष्ट मुनों के कारण ही उद्ये रामभक्ति करन का भाष्य करता है।^४ राम की धारण जाने पर वह उनसे उनकी वाचनी भक्ति'की याचना करते उन्हें भाव-सम्पन्न कर देता है। वह राम की संका-मुद्र में मेघना-यज्ञ, रावण-यज्ञ और रावण-नामि-मुपा' आदि की सूचना देकर अपनी विश्वस्तता और कठमपिष्टा का प्रमाण भी देता है। संस्कृत के कल संघों में उसको राम क ईश्वररत्न में इसका अपिक परिचित ब्रताया गया है कि वह रावण विवाह के अवाध में भी स्वच्छास उसकी धारण में जमा जाता है। तुषठी ने अस्वामाविष्टता क विचार से ही संस्कृत पद्यके इस रवेक्यावमन का निरूपन नहीं किया है। इसके अतिरिक्त उद्येनि उसके चरित्र में रामभक्ति का सर्वप्रमुख हेतु और उसकी विरक्ति एवं निरीहता का संकेत करके उसकी उदारता की ही सर्वत्र प्रतिष्ठापना की है।

(४१) हनुमान्—हनुमान् मूमत्र मूषीक के सेवक होने पर भी राम क अवश्य भक्त है और 'राम से अपिक राम कर नामा के प्रत्येक उदाहरण है। के अति और अति के अक्षिपीय मतीक है। 'साता-मोष एवं लपप-मुष्ठा के प्रसंगों में उनकी 'महावीरता' के साथ साथ उनकी नम्रता निर्मादता दुर्गा बधता उदारता, कर्मता निरद्वेषता निरराजता, निरजिवाविता तथा दुर्दपिष्टा आदि सद्गुणों का विषय मयबन है जो उनकी रावण-भक्ति के वर्णन के अन्तर्गत

१ महावीरचरित १।२४ के बाउ २६

२ मानस निबन्ध पृष्ठ २०१

३ मानस १।३६-४१

४ मानस १।३२, ३२ १०२

२ प्रभू निबन्ध पृष्ठ २६१-२६३

४ मानस १।२-३

७ प्रभू निबन्ध पृष्ठ २१७

अधिक समस्कारपूर्वक हो गया है।

संस्कृत साहित्य में हनुमान् के 'रोहद्रावतार,' 'पूर्वधिय' और 'तर्कवी बहिगार' आदि होने का संकेत किया गया है। वही जाम्बवान् के अनुरोध से राम सीता-सोच के लिए उगरी स्तुति उक्त करते हैं।^१ हनुमान की आतिथिक बुद्धा का उल्लेख 'रामचरित में मिलता है वही ने एक बानरी के बनेक प्रेम प्रस्तावों को बारम्बार मस्वीकृत कर देते हैं।^२ इसके अतिरिक्त रामचन्द्र के समय सीता की सुरक्षा का ध्यान रखने में और उनको आत्महत्या के प्रयत्नों से बचाने में हनुमान् की क्षमता दक्षता एवं सतर्कता भी दर्शनीय है।^३ 'लंकावाह' तथा 'श्रीबीजो-जापयन' के अवसरों पर उनके असाधारण बिक्रम का उल्लेख भी जयमन सघी बंधों में मिलता है।^४ मानह में सुधीर की विद्या के परभाव उसकी अनुमति से हनुमान् के द्वारा राम के समीप हो रह जाने के उल्लेख से तुलसी ने उनके चरित्र में इनकी स्वाभाविकता तथा रामभक्ति का जो सर्वोत्कृष्ट समन्वय किया है, वह अग्यत्र कहीं नहीं मिलता है। अस्तु तुलसी ने उनको एक श्रेष्ठ 'शासक' के रूप में ही चित्रित किया है इसीलिए उन्होंने राम के प्रथम दर्शन के अवसर पर ही उनसे उनकी भक्तिवाचना और अन्त में भी उनके द्वारा राम की 'सामीप्य प्राप्ति' का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार तुलसी ने उनके आदर्श मूल्य की जो अनुपम प्रतिष्ठा प्राप्त की है वह संस्कृत-साहित्य में सर्वथा वृत्तव्य है।

(४१) कौसल्या—पत्नी, सपत्नी माता एवं विमाता के चार रूपों में कौसल्या का चरित्रचित्रण उल्लेखनीय है और सबसे उनके त्याग विवेक औरार्थ गाम्भीर्य सरमज्ञा और सहृदयता का आदर्श निरूपण किया गया है। राम को 'न-ममक' की अनुमति देने के समय उनके हृदय में 'अर्पस्नेह' एवं 'पुत्र-सनेह' का एक विविध संचर्ण होता है किन्तु कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर वे अपनी बुद्धा और निर्भयता का ही वही चरित्र देती है। इस अवसर पर राम के सामने द्रिया गया उनका स्पष्टीकरण उनके सुधम विवेक सचस्वीप्रेम तथा विद्याल-हृदय का धीरक है। 'राम विदाहन' से सुख भरत को लानेवा देते समय उनके 'पथ सवक' का उल्लेख करके तुलसी ने उनके लक्ष्मण सम-वारस्य' के उद्देश का निदर्शन कर दिया है।^५ संस्कृत के र्णों में राम के प्रति कौसल्या के ओह्नुर्ब वारस्य का ही दर्शन किया गया है, संभवत उसी के कारण कैकयी और भरत की बात तो दूर दक्षरच के आश्रम में भी उनकी बहुभाषा अनेक रत्नों पर उबनवा गई है।^६ किन्तु तुलसी ने उनके चारों

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १६९	२ हनुमन्नाटक ६।२ के बाद
३ रामचरित १२।४५-४६	४ रामचरित १९।१२-१७ २०।२-३
५ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २१३	६ भावस ७।१९
७ भावस २।३५ ३७	८ भावस ३।१९९
९ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ १३९	

रूपों में उन्हें सर्वथा आदर्श और अनुकरणीय ही प्रतिष्ठित किया है।
(४२) केकयी—कीससा के समान केकयी का भी उपयुक्त सभी रूपों में

विभक्त किया गया है जिसमें उसका मातृत्व ही सर्वाधिक प्रबल है। 'मगधराज्योप
के पूर्व तक तो वह अपने शेष रूपों में भी समान रूप से ही सफल है किन्तु उसके
परमात् इतको नति सफलियों एवं सपत्नी-पुत्रों के प्रति कोई भी आकर्षण नहीं रह
जाता है। 'वसवाचना के अवसर पर वह अपनी ईर्ष्या को इस प्रकार स्पष्टतया
प्रकट कर देती है—

कह करत किन कोटि उपावा । वही म साविहि राजर मावा ॥
राम साधु, तुम साधु सपाने । राममातृ भसि सब पहिचाने ॥ ११३३

। प्रसंग में केकयी सोम, मोह, अविमान अविशेष दुःखग्रह सपत्नीवाह अग्रहि
ता और हठकमिता आदि का बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है। संस्कृत साहित्य
में श्री केकयी का ऐसा ही विधान है। 'अमूरामावस' में उसके दोषों को 'मातृप्रवृत्त
वतसावा पया है।' कुल्ल माटकों में उसके निर्दोष सिद्ध करने का भी प्रयास किया
गया है। 'वसकि सुमयी ने उसके रूप में एक विधाता के ही ईर्ष्यान्वु और आतंकपूर्ण
विभक्त में वर्णनवार और अतिप्रबोधित का विशिष्ट समागम्य प्रस्तुत किया है जो
उनकी अहितीय मनोवैज्ञानिक निरीक्षण शक्ति का मूढ परिचायक है।

(४३) अमूरी—राज्य-अभ्योप के लिए 'काम्तासंमतसोपदेश' की वृष्टि
से अमूरी का सर्वोप अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह एक आदर्श पत्नी और कुल
द्विजाकीर्तिनी-मारी है इसीलिए 'सीतार्पण' तथा 'रामसरणमन' के लिए राजन
के किए गए उसके चारों अमूरी' में उसकी सर्वशुद्धि शानिकता उद्धारता दूर
रक्षिता और विद्याम हृदयता के साथ-साथ उसकी पतिपरायणता एवं कुलहितकामना
के भी सरस दर्शन होते हैं। संस्कृत के कुल संघों में राजन को 'सीतार्पण' के लिए
बाध्य न करने तथा सीता के प्रति अपनी उदासीनता व्यक्त करने में उसकी सुव्य
मनोवैज्ञानिकता और 'उसको देखवयी की एकर-वृष्टि का उपदेश देकर अपने
उद्देश्य के अनुकूल कर लेने के प्रयासों में उसकी सफल दार्शनिकता का भी अग्र्या
निरूपण किया गया है।'

(४४) निष्कर्ष—संस्कृत-साहित्य तथा 'मानस' में इन सभी पात्रों के
चरित्र-विवरण के तुलनात्मक अध्ययन से वह निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृत-साहित्य में
भारत के समान जिस पात्रों को सर्वथा निर्दोष रूप में चित्रित किया गया है और अन्य पात्रों
में उनको और भी अधिक उदात्त एवं उदात्त रूप दे दिया गया है और अन्य पात्रों
में वही जो शेष पाए जाते हैं 'मानस' में उनका कुलतता से वर्णनार्थन ही गया है।

१ अमूरामावस २११४ के बाद
२ मानस १११६ ११६-७ १४ १२, १२ १७
४ आतुन निरूपण पृष्ठ १२१

इतना ही नहीं उन सबमें 'रामचरित की अत्यधिक मात्रा में इतनी प्रतिष्ठा भी कर दी गई है कि कहीं कहीं अस्वाभाविकता के भी दर्शन हो जाते हैं। उपरान्त उनके एवं बहिष्कृत आदि बहिष्कृत पात्रों का चरित्र-विवरण इस दृष्टि से विचारणीय है, किन्तु राम की ईश्वरता के विचार से उसमें कोई कटघने वाली बात नहीं जान पड़ती है। अत्युक्त भक्ति के प्रवाह में उसमें अकल्प्यता एवं गतिशीलता का ही परिचय मिलता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने मानस के पात्रों का चरित्र चित्रण करते समय संस्कृत साहित्य में प्राप्त उनकी 'कानिमा' को पोंछ कर के और उसके स्थान पर राम भक्ति के सुनहले रंग को बहा करके उनके निकरे और लंबारे हुए स्पर्शों को ही वहाँ प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है जिससे कथा के विकास में भी अधिक सौन्दर्य एवं आभिजात्य का स्वतः अपरकारपूर्ण समावेश हो गया है। यह तुलसी के अक्षरव्यय की निरालम्बता का ही प्रसाद है।

आचार्य रामचन्द्र गुप्त ने 'मानस' के पात्रों को सात्विक, राजस और तामस इन तीन प्रकृतियों के आधार पर आदर्श और सामान्य दो वर्गों में विभाजित किया है। उनके अनुसार आदर्श चित्रण के भीतर सात्विक और तामस दोनों आते हैं। राजस को हम सामान्य चित्रण के भीतर से समझते हैं। सीता राम भरत हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के भीतर आते हैं तथा बछराव क्रमशः विभीषण सुग्रीव और केकयी सामान्य चित्रण के भीतर। आदर्श चित्रण में हम या तो वहाँ से वहाँ तक सात्विक बृत्ति का निर्वाह पावें या तामस का। प्रकृति नेह सुनकर अनेकरूपता उसमें न मिलेगी। सीता राम भरत और हनुमान ये सात्विक आदर्श हैं, रावण तामस आदर्श है। 'मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह वर्गीकरण उचित नहीं प्रतीत होता है। डा० चम्पूनाथसिंह के मत में तुलसी ने यथार्थवादी या मनोवैज्ञानिक आधार पर भी चरित्र निर्मित नहीं किए हैं। उनका दृष्टिकोण भाविक और आदर्शवादी था। अतः उन्होंने चरित्रों को काटिबी (टाइप) बनाकर प्रत्येक कोटि का प्रतिनिधित्व करने वाले चरित्र निर्मित किये हैं।' अतिवाह में तो यह भी कहा जा सकता है कि 'मानस के सभी पात्र एक ही मूल' कोटि के हैं, किन्तु यहाँ यह स्मरणनीय है कि तुलसी ने अतिमहत्त्व वाले पात्रों के भी चरित्र-विवरण में उनकी वैयक्तिक विशेषताओं का उचित निरूपण किया है। अस्तु चरित्र-विवरण का एक मात्र यही उद्देश्य होता है कि पात्रों की सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक स्थितियों का समर्थ उद्घाटन किया जावे जिससे उनके व्यक्तित्व का सभी दृष्टियों से मूर्तान्त सम्भव हो सके। इनमें सम्बन्धित पात्र के बचन और कर्म के अतिरिक्त अन्य पात्रों तथा सैपक के भी उल्लेखनीय बचन और कर्म का अहरबपूर्वक सहयोग रहता है। इस संदर्भ में उन पात्रों की सफलता ही कवि की निजी सफलता मानी जाती है, अतः प्रत्येक

१ आचार्य रामचन्द्र गुप्त—मोक्षामी तुलसीदास—उत्तम संस्करण पृष्ठ १२९

२ डा० चम्पूनाथसिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—पृ० १३७

कवि इस क्षेत्र में बड़ी सजगता तथा सतर्कता के साथ प्रवृत्त होता है। प्रकृत कथात्मक में तो परिचित्रण के लिए कवि के सामने अनेक विषयतायें होती हैं क्योंकि वरम्परा के ब्यवन के कारण उसका कल्पना-क्षेत्र बहुत सीमित हो जाता है, किन्तु समर्थ महाकवि अपनी प्रतिभा के बल पर, किसी प्रकार के भी ब्यवन से कभी विरस नहीं होते हैं।

हजारों गोस्वामी तुसखोदास जो ऐसे ही समर्थ महाकवि हैं और उनके परिचित्रण के सम्बन्ध में यह कहना पुनरावृत्ति ग हावी कि उन्होंने उस दिशा में अद्वितीय और समुत्तुर्ण सफलता प्राप्त की है।

३ रस विवेचन

(१) रस-योजना—वस्तु और पात्र के पदवात् रस बाध्य का तीव्रता और अधिकतम महत्त्वपूर्ण टाक है। यों तो 'रस निष्पत्ति के मूलमन्त्र' विभाव, अनुभाव और संचारीभाव के संयोग को समझकर कोई भी कवि किसी रंग विशेष की योजना बड़ी सफलता से कर सकता है किन्तु प्रबन्ध काव्य-विशेषकर महाकाव्य में उसका बाधोपाय्य कुराल निर्बाह उस कवि की मौलिक प्रतिभा एवं रसमर्षजता पर ही निर्भर होता है। चायदा उस रस के भाव-मात्र ही बने रहने अथवा रसाभास में परिवर्त हो जाने की आशंका सर्व्व बनी रहती है। समर्थ महारवि काव्य के लक्ष्यार्थ परीर में रस की इस प्राणवता से पूर्ण परिचित्र हाते हैं और कथावस्तु और पात्रों के साथ उसके एवम सामंजस्य के प्रति भी वे सर्व्व आसक्त रहते हैं। इसी दृष्टि बोध से वे सर्व्वप्रथम अनुकूल वस्तु का संग्रह करते हैं और फिर उसके सफल प्रसार के लिए समर्थ नायक का चनाव करते हैं। ऐसे नायक के साथ उम वृत्ति और कृति बर का भी पल सरा के लिये अमर हो जाता है। बाध्य बयने" कह कर मण्डल से बाध्य-निर्माक के हेतुओं में इसीलिये यम' को सर्व्वप्रथम स्थान दिया है। तुमछी भी साधु-समाज के अानी 'मनिति के सम्मान' को अयेंजा रखते ही हैं और इसी लिये वे प्राशंसक के वृत्तवान' को हेतु मजस कर 'अयल यवन अयंवन हारी यम की अयर्ममन करनी" कथा को ही अपना प्रतिपाद्य बनाते हैं।

विरथय ही कवि की भावना में बड़ा लोच-अयण की प्रमुत्तता है। उछी के निमित्त उसका उत्साह उमड़ा पड़ता है। अिठकी को चारायें हैं एक तो अरने जालमदन का आदर्श का प्रालुप्त करना और दूसरे उनके प्रति लोच को प्ररित करना अिथमे के उसके बुधवाही बने और उनके आदर्श आचरण का अनुकरण भी करें। सामासिक अतिरम्यं न तु रावचारिवन्' की मुक्ति केरक यमों।देनछी के काम की हो सच्छी है। महान् साहित्यकार तो अविचारी पाठकों को साहित्यी प्रतिभा के लिये अनुकूल

१ साहित्य दर्पण ३११

२ काव्यप्रकाश ११२

३ मानस ११४

४ मानस १११

५ " १११०

निष्कर्ष प्रस्तुत कर दिया करते हैं। लोकर्णगम के इस विशिष्ट गुण से सम्बन्धित 'रामकथा' के प्रतिपादन के लिये तुलसी अपने इसी आन्तरिक उत्साह से प्रेरित होकर 'रामकाम्य' के समस्त प्राचीन कवियों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं और उनके उत्साह से अनुप्राणित भी होते हैं; अपने उत्साह को पूर्णरूप देने के लिये वे उस 'रामकथा' में से केवल उसी भाग को ग्रहण करते हैं, जिसमें नायक के अद्वितीय बराह्म का सर्वश्रेष्ठ निरूपण प्राप्त होता है। वहीं भी वे बीर-रस का सुन्दर आत्मन्यन प्रस्तुत करने के लिए कुछ शब्दों को निकाल देते हैं कुछ को मीढ़ देते हैं और कुछ का नया सूत्रन भी कर लेते हैं। वहीं पर उनका अद्वितीय काव्य-कौशल दिखाई पड़ता है।

वस्तु-योजना की इस पद्धति से यह स्पष्ट है कि 'मानस' में 'उत्साह' का निरूपण ही कवि नायक का प्रथम उद्यम है। जहाँ तक नायक की प्रकृतियों का सम्बन्ध है—उनका पर्यवसान 'बीररस' में ही होता है। कथा के अनेक परिवर्तन और परिवर्धन भी इसी दृष्टिकोण से सोई गए हैं। 'मानस' के नायक राम के जन्म का मुख्य हेतु ही 'अमुर-मारि बापाहि सुम्ह' है जिसके लिए विशेष 'उत्साह' की अपेक्षा है। विश्वामित्र के साथ प्रथम वन-मयन और तदुपरान्त द्वितीय वन-मयन में भी राम के इसी उत्साह का चित्रण मिलता है, जिसके प्रति स्वयं कवि का उत्साह भी अत्यन्तनीव और अविस्मरणीय है। वस्तुतः 'मानस' के नायक राम के उत्साह को हम अनेक पारश्यों में प्रकाशित होते हुए देखते हैं। उन्हीं में से धर्म भी एक है। उनका मुख्य महत्व धर्म प्रतिष्ठ है। वहीं मानस के स्थायी भाव 'उत्साह' का अभिन्न रूप है। मानस में राम के चरित्र और चरित दोनों में सर्वत्र उनके उत्साह और धर्मप्रतिष्ठ भी ही प्रमुखता है। राम के इसी उत्साह की प्रशंसा करते हुए डा० रामचन्द्र मुखन कहते हैं 'वास्तवावस्था में ही जिस प्रसन्नता के साथ, उगईने भर छोड़ा और विश्वामित्र के साथ काहूर रहकर अस्त्र शिवा प्राप्त की तथा विष्णुकारी विष्ट रायसों पर बहुसे-बहुत भयना बल भावमाया, बहु उस उत्साहपूर्ण साहस का प्रतीक है जिसे 'उत्साह' कहते हैं। छोटी अवस्था में ही ऐसे विष्ट प्रबाह के लिए जिनकी बड़क हमने तुलसी देवी उगईने की वीधि जोबह बर्ष बन में रहकर अनेक कष्टों का सामना करते हुए जपत् को धुस्य करने वाले कुम्भकर्ण और रावण ऐसे रायसों को मारते हुए हम देखते हैं। इस प्रकार जिन परिस्थितियों के बीच में बीर जीवन का विकास होता है उसकी परम्परा का निर्वाह हम कम से रामचरित में देखते हैं।'

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'मानस' का प्रधान रस 'बीर रस' ही है क्योंकि एक तो 'मानस' के सारे प्रपन्न उद्ये के प्रतिपादन के लिए

१ मानस १।१३-१४

२ मानस १।१२।

३ आचार्य रामचन्द्र मुखन-यो० तुलसीदास, सप्तम संस्करण पृ० ११४

प्रियाकीर्ण हो रहे हैं और दूसरे 'मानस' की 'रामकथा' का आलोचनात्मक ढाँचा ही कुछ इस प्रकार का है कि उसमें बीर-रस को छोड़कर और कोई दूसरा रस प्रमुख हो ही नहीं सकता है। इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी स्मरणयोग्य है कि उसके नायक की समस्त कृत्यायें, सर्वत्र उसके उत्साह का ही एकमात्र निरूपण करती हैं। इसी अप्रतिम 'उत्साह' के साथ बड़े अपने अभीष्टित लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है और एक आदर्श राक्षस—रामराज्य—की स्थापना में इतकाई होता है, जिसमें प्रमुखतः धर्म और योग्य कर्म (राज्य) की कला की भी प्राप्ति होती है।

'मानस' के रस के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत विचारयोग्य हैं। डा० चम्पूनाथसिंह का निष्कर्ष यह है कि 'रामचरित मानस' की आधिकारिक कथा में वीर रस अतीरस है पर धर्म का पर्यवसान वीर रस में नहीं बल्कि भक्तिरस में हुआ है। डा० राजपति दीक्षित कहते हैं कि 'इसमें शाश्वत (मक्ति) रस ही सर्वोपरि विराजमान है अन्य सभी रस इसी के (भक्तिरस के) अंगभूत हैं।' डा० मवीरय मिश्र के विचार से 'मानस का प्रमुख रस शाश्वत है।'

'वास्तव में तथ्य यह है कि 'मानस' में आशय वीर रस की ही प्रतिष्ठा है। यह ठीक है कि भक्तिरस की लहरें भी उसके प्रवाह में प्रबल हैं जिसे आदर्श चरित्र के साथ उसके प्रति भक्ति भी प्रतिष्ठित हो जाती है। भक्ति से संबन्ध में 'मानस' के पाठक अथवा श्रोतागण इनको भक्तिरस का धर्म मान लेते हैं। इसके लिये उनका समस्त क्लृप्त आचार भी है किन्तु उत्साह को जूना देने पर भक्ति का मन्त्र भी उठ नहीं सकता है। डा० सरनाथसिंह के अनुसार समुद्र 'रामचरित मानस' में वीर चरित की ही प्रधानता है और रामकथामय व प्रणतार्थों में कम से कम तुलसीदासजी ने अपने कथा-नायक का अद्वैत वीर रूप में ही कृपा देसा है। राम का सर्वत्र परिराम्य और राजमूल पराक्रमसूत्रा उत्कृष्ट शानवीर का उदाहरण है। लका को जीत कर विजीवण को दे देता इस तथ्य की ओर भी अतिरिक्त पृष्टि करता है। राक्षस जैसे प्रतिनायक से मन की परिनिमित्तियों से मोहा सेकर उसे पछात कर देने में राम की 'रक्षणीयता प्रकाशित हो रही है। कर्तव्य की देही पर सीता के स्नेह का अविदान राम की कर्मवीरता की सुदुर्लभ ब्रजा रहा है।

मंसूत-साहित्य में देवता कथ नाटकों को छोड़कर लगभग राम-कथामय वीर रस का ही एकाधिकार है। 'उत्तर रामचरित और 'कूटमाता' नाटकों में 'अभियेवोत्तर कथा के अर्थन से 'वक्रवर्ण' की रियति स्वाभाविक है, मीमंसी-वदनाम तथा 'उत्तररामच' नाटकों में देवता 'पुनरीय वीर विधाय के चित्रण से 'सु वार की प्रमुखता है अर्थात् अटमूत-वर्षण तथा 'आरक्षक-ब्रह्ममणि' नाटकों में

१ डा० चम्पूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विवरण—पृ० १२७

२ डा० राजपति दीक्षित—लसगीदास और उनका युग—पृ० १२४

३ डा० मवीरय मिश्र—मूलनी-रमायन—पृ० ९०

४ डा० सरनाथसिंह दर्जा—'दसरे फूल—पृ० १९४

'वर्षण' और 'शुद्धामणि' के विस्तारों के कारण 'अद्भुत रस' का निरूपण मिलता है, किन्तु अन्यत्र सर्वत्र 'वीर-रस' को ही सर्वप्रथम स्थान प्राप्त हुआ है।

'मानस' की रस-योजना के साथ संस्कृत-साहित्य की रस-योजना पर तुलनात्मक विचार करने से अनेक विशेषताओं का परिचय मिलता है। एक ओर तो संस्कृत के अनेक महाकवि बड़े शर्पशील हैं जो अपनी काव्य-प्रतिभा का विविध वर्णन करते हैं किन्तु अपनी कृतियों में उतने समय दिखलाई नहीं पड़ते हैं। दूसरी ओर नम्रता और धार्मिकता के मूर्त रूप तुलसी अपने कृतित्व में उन सभी कवियों से बहुत आगे हैं क्योंकि इन महाकवियों के संघों में रसविकृत स्वयं विरल प्रयत्नसाध्य और रीतिबद्ध प्राप्त होते हैं जबकि 'मानस' में अयणित सरस प्रसंगों की योजना सहज रूप से ही सुगम है। इसके अतिरिक्त वहाँ ऐसे अनेक लचील भावों की भी यत्नपूर्वक व्यवस्था मिल जाती है। बिम्बका परिचय न तो इन महाकवियों को ही कभी हुआ और न रीति शास्त्रियों को। कुछ उदाहरणों से यह विवेचन अधिक स्पष्ट हो जायगा।

संस्कृत के महाकाव्यों में शास्त्रीय कवियों के अनुसार अधिकतर वीर, शृङ्गार और कृष्ण रसों को ही प्राधान्य प्राप्त हुआ है। कुछ स्थलों में 'भक्ति' का भी अल्प निरूपण मिलता है। अतः उनके सम्बन्ध में 'मानस' के उत्तम प्रसंगों का तुलनात्मक विवेचन ही अधिक उपयुक्त होगा।

(२) वीर रस विवेचन—'मानस' में 'टाटका बध' के प्रसंग में राम के शौरिक और आसौकिक पराक्रम का प्रथम परिचय प्राप्त होता है—

'एकहि बान प्राग हरि सीगहा । बीन बानि तैहि निज पर बीगहा ॥ १।२०६
संस्कृत के प्रसंगों में टाटका की विकट शक्ति और कृष्णता के साथ-साथ उसके बध में राम की हितचिन्ता के उल्लेख से 'उत्साह का वह गुण चिन्तन नहीं हो सका है। वहाँ उसमें भय घूना मति लगना आसका स्थानि बिन्दा और बिरक बानि की उपस्थिति से अपेक्षित 'रस-बोध' में बड़ा व्यवधान हो जाता है। इसी प्रकार विराय और कथय के बध के वर्णन में भी स्पष्ट अन्तर प्राप्त होता है क्योंकि 'मानस' के राज जनको देखते ही समाप्त कर बंते हैं वीर उन्हें निजबाम भेज बैठे हैं जब कि संस्कृत साहित्य में उन राजसों के द्वारा सीता हरण और राम-कटमण पर आक्रमण करने के प्रस्ताव से भय विस्मय अमर्ष आद्य रस स्थानि और बिन्दा भावि भावों के संघार के साथ 'बोध' की ही प्रमुखता दृष्टिगोचर होती है। 'परगुराम विशय प्रसंग में 'मानस' के राम के मयाशुर्ज उत्साह की उत्कल उत्कल मिलती है—

इस अनुस्र भूपति भट नामा । राम बल ह्योड अधिक बलवाना ।

जो रस हमहि पचारे कोऊ । तरहि मुकेन काक किन होऊ ॥१।२०४
संस्कृत साहित्य में इस प्रसंग में उत्साह के स्थान पर आशय पूर्व अमर्ष आदि का

१ बब्रूति—महावीर चरित १।४ के बाद मुरारि—अनर्भरायण १।११ के बाद

राजसेधर—बान राममय १।१२, १६ १८

२ मानस १।८-१३

श्रीराम में पर्यवसान दिखलाया गया है, जिससे राम के गौरव और शासीन स्वभाव का सरस चित्रण नहीं हो सका है।

‘मानस’ के ‘अर-संवाद’ में भी राम का यही उल्साह वर्णनीय है—

‘हम धरो मृगया बन करहीं। तुम्ह से बन मृग खोजत फिरहीं ॥

रिपु बलबन्ध देखि नहि करहीं। एक बार कालहु सन लखहीं ॥

शो न होइ बन पर फिरि आहु। समर विमुख मैं हठउं न काहु ॥ १।१८

इसमें राम की रत्नबीरता के अतिरिक्त उनकी कर्मबीरता का भी सरस बर्णन किया गया है। संस्कृत-साहित्य में इसका कहीं संकेत भी नहीं मिलता है। राम की कर्मबीरता के बर्णन उनके केजरी-संवाद में भी प्राप्त होते हैं। ‘वतमन’ की आज्ञा से लुम्बिका के स्थान पर उनका उल्साह प्रदर्शन उनकी अपूर्व दृढ़ता का प्रतिपादन करता है। संस्कृत-साहित्य में रामायण-मंजरी ‘राघवीय’ और ‘उदारराघव’ आदि में भी यह संवाद मिलता है, किन्तु वहाँ ‘मानस’ के राम की ही तत्परता एवं कर्मठता के बर्णन नहीं होते हैं। ‘मुनि-मिलन’ के प्रसंग में भी राघवों से भरत मुनिजनों के समक्ष समस्त राघवसभ्य की प्रतिज्ञा करना, राम के उल्साह का ही प्रतीक है। संस्कृत-साहित्य में इस प्रकार का सफल चित्रण नहीं है। ‘मानस’ में कठामु और शानि से प्राणधारण करने के लिए राम की प्रार्थना में तथा अपने द्वारा मारे गए राघवों को निजपक्ष देने में उनकी दया बीरता भी स्पष्ट है। संस्कृत-साहित्य में इसका कहीं संकेत भी नहीं है। राम की दानबीरता का सर्वप्रथम निरूपण विभीषण विसर्ग प्रसंग में कही किया जा चुका है।^१

‘मानस’ के युद्ध-वर्णनों में प्राप्त भीर रस के सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि यहाँ तुलसी ने अनात्मिक विस्तारों से बचकर धरत शीघ्र और मानिक चित्तों को ही प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है जिसमें ‘रस-निष्पत्ति के अनयोमी उपकरण वहाँ स्वयमेव सुमम हा मए हैं। जबकि संस्कृत के कवि परम्परा से प्राप्त उन वर्णनों में ‘रस-विद्या के कोशल पर ही मन देते रहे हैं, जिसके फलस्वरूप पर्याप्त विस्तार होते हुए भी उन वर्णनों में वह प्रेक्षणीयता नहीं मिलती है।

राम के अतिरिक्त भरत के ‘राग्ययाग’ में उनकी दानबीरता और ‘नि-दाय प्रवास’ में उनकी कर्मबीरता के सरस दर्शन होते हैं। भरत की ‘विनकट-यात्रा के प्रसंग में उनके प्रति तियाद और लग्न के श्रेष्ठपूर्ण उल्साह का किञ्चन आलम्बन के अनोचारे के कारण—‘रसामास’ की कोटि में ही जाता है। उसे मध्यमार्थ की व्यंजना अथवा शीघ्र को उदात्तता समझना ठीक नहीं है, जैसा कि कुछ विद्वान मानते हैं।

- | | |
|--|-------------------------------|
| १ मानस १।११-४२ | २ रा० मंजरी। बसोप्या १८२०-८२५ |
| ३ राघवीय १।१०-३३ | ४ उदारराघव ४।०५-०९ |
| ५ मानस १।८ | ६ प्रान्त निबन्ध पृ० २०० |
| ७ डा० याज्ञनिक दृष्ट-मुनिगीत-दि० संस्करण पृष्ठ ११८ | |

बीर रस के अतिरिक्त प्रधान रस की योज्यता रखने वाले अथवा और कर्म रस का भी 'मानस' में विशेष निरूपण किया गया है। वहाँ अज्ञार रस के सभी पक्षों का बड़ी योज्यता से प्रतिपादन दर्शनीय है। यह तुलसी की यौक्तिक प्रतिभा का ही प्रमाण है कि वे 'मानस' के विविष्ट-वाचनरूप में अज्ञार का भी सफ़ल समन्वय कर सके हैं।

(३) अज्ञार-रस-विवेचन—शु वार रस का स्थायी वाच रति है जिसके मूलतः दाम्पति-रति का ही बोध होता है। अतः काव्य में नायक के दाम्पत्य-संबन्धी राग-विहास का विषय ही प्रायः इसके अन्तर्गत किया जाता है। इस सम्बन्ध में तुलसी की विवक्षता का पहले ही उद्धृत किया जा चुका है।^१ अज्ञार के पूर्वराग संबोध और वियोग आदि सभी पक्षों का विषय वे बड़ी उत्प्रेरणा के साथ आरम्भ करते हैं, किन्तु ऐसे अक्षरों पर उनके 'कवि पर समका 'मक्त' प्रबन्ध होता हुआ जान पड़ता है। कानिबास ने कुमार-सम्बन्ध में विच-वाबंती के विहास वर्णन में अपने कवि के साथ कभी भी ऐसा सम्बन्ध नहीं किया है। वस्तुतः कवि के लिए कुछ भी अक्षर नहीं हैं। सम्बन्ध महारामा तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नाबती के प्रेम की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप 'मानस' में वियोग शु वार तक में मारी की कुल कर गिरा' करते हैं और संबोध-शु वार में जो वे उसे कोई प्रयुक्तता नहीं देना चाहते हैं—मने ही इससे रस निष्पत्ति उठनी संभव न हो सके। 'मानस' में शु वार का यह संघर्ष और मर्यादित भाव भी उसकी एक विशेषता बन गया है जिसके कारण उसको इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

(४) पूर्वराग—मानस में जनक-बाटिका में राम और सीता के प्रथम वर्णन से उत्पन्न 'पूर्वराग' का सर्वश्रेष्ठ निरूपण किया गया है। वही पर राम के शोध में 'रपूर्वराग' और सीता के शोभ में जनक-प्रियता' के स्मरण में एक निविष्ट मर्यादा का समन्वय हो गया है। इस सम्बन्ध में प्रथमराग' का वर्णन भी दर्शनीय है। वहाँ सभी एक मर्यादा है जब तक राम सीता को 'परस्त्री' समझते हैं, किन्तु उनको 'कुमारी' मानते ही उनका शृङ्गारी रूप अनेक स्रोतों से अपनी सरसता की अभिव्यक्ति करने लगता है।^२ 'मैथिली कल्याण' में इस 'पूर्वराग' का अपूर्व विस्तार है जो अनेक स्थलों पर मर्यादा तक हो गया है।^३ वहाँ राम और सीता का विषय साधारण लौकिक वाचक और नायिका के रूप में ही किया गया है।

(५) संयोग अज्ञार—इसी प्रकार संयोग-अज्ञार में भी 'मानस' के विषय सर्वथा निरूपण हैं। यहाँ माहंस्य जीवन की विविध परिस्थितियों के बीच ही माधुर्य-भाव की सरस अभिव्यक्ति की गई है जबकि संश्लेष के साहित्यकार संयोग और संयोग में अनेक मानकर अधिकतर कामप्रवृत्तियों के निरूपण में ही रसविष्ट

१ प्रस्तुत निबन्ध पृष्ठ २०३

२ मानस १।१७ ४३ ४४

४ मानस १।२३४

५ मैथिलीकल्याण २।२८ के बाद, ४।१४

३ मानस १।२३१

२ प्रथमराग २।६ ३०

रहे हैं। 'मानस' में 'कोपमदन' में केकयी क इठने मीर बघरप के हाथ उसको मराने में संयोग-शृंगार का प्रथम सरस संस्केष मिलता है—

सो० बार बार कह राठ सुमुखि मुखोचनि पिच्छवपति ।

कारन मोहि सुताउ गत्र गामिनि निज कोप कर ॥२१२२

प्रिया प्राण गुठ सरबसु मारे । परिव्रज प्रजा सफस बस ठारे ॥

'रामायणमञ्जरी' के वचन में यह मार्मिकता और व्यापकता नहीं है—

प्रिये जहि प्रकृतस्य प्रकोपस्यास्य कारणम् ।

सरयमारमापि म बध्यस्वैस्कोपे हेतुतां मत् ॥अयो० ७१३

सीता को वन-सह्यमग्न' से रोकने के लिए राम के अनुरोध में उनके आश्रित स्नेह का निरूपण किया जा चुका है। वन की विकट परिस्थितियों में भी संयोग सुख का सरस अनुभव करन वाली सीता के चित्रण में 'संयोग-शृंगार' का वर्णन वस्तुतः स्पृहणीय है—

राम संग सिम रहित मुबारी । पुर परिव्रज गूह सुरति बिसारी ॥

सिनुसिनु पिय बिम्बु बदन निहारी । प्रमुदित मनहु चोर कुमारी ॥

गाह नेहू निज बक्य बिलोकी । इरपित रहति बिबस त्रिमि कोकी ॥

परमकटी प्रिय प्रियतम संमा । पिय परिचार करेन बिहूना ॥

नाम साथ सांपरी सुहाई । मयन सपन सम सम सुषरार्ई ॥२१४०

प्रसन्नरायण 'हनुमत्प्रोटक' और बाणरामायण आदि में प्राप्त 'वनप्रवास'

के विस्तृत वचनों में एक तो उपर्युक्त संयोग सुख की वहीं कल्पना भी नहीं मिलती है दूसरे वहाँ वनप्रस में सीता की आश्रिता और व्याकुलता का ही अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है जिसका मानस में संकेत नहीं है तथा तीसरे 'मानस' के समान वहाँ अतीव्रिय सुख का उल्लेख भी नहीं मिलता है।

(६) वियोग शृंगार—यहाँ तक वियोग शृंगार का सम्बन्ध है, 'मानस' में उसका समरूपी वर्णन प्राप्त होता है। 'सीताहरण के परचात् राम की विरहता के चित्रण में तुमसो न माव और कसा का विनिष्ट सायम्भस्य किया है—

.....। पूर्वज चनि सदा श्रु पौठी ॥

हे राम मूम है मचुकर घनी । तुम बैगी सीता मृगनीनी ॥

संजन मुक कपोत मूम मीना । मयुन निकर कोकिला प्रकोना ॥

कगद कती दाडिम दामिनी । वमन सरर शसि अहिमाविनी ॥

बलन पात मनोर धनु हूना । गत्र केहरि निज मुनत प्रघंसा ॥

पीछन कनक करनि हरपाही । मैकु ग संकसकच मन माई ॥

मुनु जानकी सीहि बिनु जानू । हरवे सखत पाद जनु राजू ॥३१०

अबकि हनुमत्प्रोटक में इमो भाष के मूल दमोद में शोक और व्युत्पत्ता का ही अतिरेक है शोकिक वहाँ विप्र विप्र वर्णों के उपमानों द्वारा सीता पर किए गए

१ प्रस्तुत निरूपण पृष्ठ २७४
२ प्रसन्नरायण २१२३-२१
३ २, २-१६
४ बाणरामायण ६१४-२१

पाद्यविक अत्याचारों की यह सम्भावना की गई है—

मध्मोऽयं हरिनि स्मित हिमरुचा नेत्र कुरंगीने
कान्तिरचम्पककुडमते कलरवो हाहा तुव कोकिली ।
मातृदीर्गमर्म कर्प कपमहो हृष्टेचिमव्याधुना
कान्तारे सकसौविनास्य पशुबध्नीतासि मो दीपिली ॥१॥१॥

इसके अतिरिक्त वहाँ परिचित स्वप्नों पर केलियों के स्मरण बसरप तथा केकयी के प्रति आक्रोश एवं राम के विविध प्रसाप का भी विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें मन्वा अर्पणस्य और अमोचित्य आदि का प्राधान्य है ।

मानस' में हनुमान् के द्वारा सीता के पास भेजे गए राम के संदेश में भी राम के विद्योपी पति-सुख के प्रीतिरस' का बड़ा भाविक परिचय प्राप्त होता है—

कहेउ राम वियोग तक सीता । मो कहुं सकल भए बिपरीता ॥
पत्र तक किसलय मगहुं कृसानु । काल गिछा सय किछि छसि मानु ॥
कुबलय विविध कृप्त बन सरिसा । बारिदि तपत तेन बनु बरिसा ॥
तब प्रेम कर मम अब तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
सो मनु सब रहव तोहि पाही । जानु प्रीति रसु एतनेहि माही ॥१॥१॥

इस संदेश पर प्रसन्नराजस' का बहुत बड़ा आभास है किन्तु वहाँ 'इन्द्रबाहु' के संयोग से वह 'आमी' हो गया है । इसके अतिरिक्त 'मानस' में सीता-संदेश' की भी एक शैलिक योजना है जिसका संदेश अग्रे शब्दों में कही नहीं मिलता है ।

इस प्रकार तुलसी का अज्ञाररस-निरूपण 'मानस' में अपनी सीमाओं में आवद्ध होने पर भी भावसम्बन्धना में अपूर्व सरास है । संस्कृत के कवि इस रिता में स्वतन्त्र होते हुए भी पृ गारिक ऐश्वर्यता से ऊपर नहीं उठ सके हैं और इसी के विष्ट-निषण में स्वयं को कृतकार्य मानते रहे हैं । बस्तुतः तुलसी के लिए जो अमित क्षेत्र था वही उनका रमण-क्षेत्र था अथवा यों कहें कि जिस पारिधि में संस्कृत के कवि व्यस्त रहे उसके बाहर का समस्त क्षेत्र तुलसी के अधिकार में था । इसीलिए संस्कृत के कवियों का अज्ञार-वर्धन जहाँ एलोक्षिष्ट अथवा परम्परायुक्त है वहाँ तुलसी का वह वर्धन उदार व्यापक एवं विद्याल है ।

(७) करुण-रस—वीर और शृ गार के अतिरिक्त करुण-रस का भी 'मानस' में बड़ा भाविक वर्धन किया गया है । 'बसरप-मरस' और लवमय-मूर्च्छा के प्रसंग इस दृष्टिकोण से विशेषतः उल्लेखनीय है । कवि के 'रस-श्रीफल' की परीक्षा बस्तुतः भाविक प्रसंगों की परिधि में ही हुआ करती है । हास्य तो मूर्खता से भी निपन्न किया जा सकता है, किन्तु रस के लिये अपेक्षित हृदय-शाव विरल-साध्य होता है । इसी में कृतकार्य कवि 'रस सिद्ध' माने जा सकते हैं । महाकवि होना सरल है, किन्तु महान् कवि के लिये यह 'रस-सिद्धता' अनिवार्य है । इस दृष्टिकोण से

तुमही सचमुच महान् कवि हैं ।

'रामायणमञ्जरी' और 'वाम्पुरामायण' आदि में दशरथ-मरण के प्रसंग में 'अग्नितापस घाव' के स्मरण का अधिक विस्तार होने के कारण वही शोक की तीव्रता और मर्यादालोचन का बहु संकेत नहीं मिलता है। इसी प्रकार 'मद्विद्विषय' में भी मरणागम्य दशरथ के मरणानादि से बिराग और रानियों के रदन केयगुञ्जन, ब्रजभाषा, भूषणलयाग भूषाण और बलय भंग्य (बूझी फोड़ना) आदि के वर्णन से कदम्बरस के घटन निरूपण का एक प्रयास किया गया है।^१ अग्य शर्षों में इस प्रसंग को आवश्यक महत्त्व नहीं प्राप्त हुआ है। 'मानस' में 'सदमममूर्च्छा' के प्रसंग में भी कदम्बरस का अतीव मार्मिक वर्णन मिलता है। शोक के आवेग से पर्याय के अर्थन सिद्ध मिल ही जाते हैं, इसीलिये 'मानस' के राम को अपने सत्य पासन पर भी शोक हो जाना स्वाभाविक है। यह शोक उनके हृदय के उत्पीडन का ही चोटक है किसी शोकस्य वा नहीं—

जो जगतेत बन बहु बिछोहू। विता बचन मनतत नहि सोहू ॥

वैहते अरुध कोन मुहुं सार्ई। गारि हेतु प्रिय भाइ पंवारई ॥६।६१

मानसकार इस अवसर पर हनुमान् के आगमन को त्रिभि करना महत्त्व रस' कह कर प्रसंग की अनीमित्त रसवता की ओर संकेत भी करता है। संस्कृत साहित्य में भी इस प्रसंग में कदम्बरस का मूढ चित्रण किया गया है किन्तु वही एक तो राम भी सदमम के साथ ही आहत पड़े हुए दिखलाए गए हैं अतः उनके विषय में बहु समर्पता नहीं है और दूसरे वही राम के अनुभावों में उनके उपयुक्त शोक का वही संकेत भी नहीं है जो कि शोक की पराधाटा को व्यक्त करता हुआ कदम्बरस-वर्णन को पूर्णतया साकार बना देता है। इस प्रकार मानस का कदम्बरस-निरूपण भी संस्कृत साहित्य की अपेक्षा अधिक उन्नत और उन्नत है।

(८) भक्ति-रस—उपयुक्त शीरानि रसों का निरूपण राम के 'मरणा के सम्बन्धों को लेकर ही किया गया है किन्तु 'मानस' के इस रस के अतिरिक्त उनके ब्रह्मरूप (निर्गुण) तथा विष्णुरूप (सगुण) का भी उचिततः निरूपण प्राप्त हुआ है। अपने इतनी तीव्र रसों के माधुर्यस्य के कारण ही ये परम आराध्य हैं। ब्रह्मरूप निराकारता के अन्तर्गत केवल ज्ञान का विषय है, जबकि विष्णुरूप, साकारता के कारण भक्तों की यत्ना और भक्ति का आत्मबन्ध भी हो जाता है। मानस में इस 'विष्णुरूप' के साथ ही राम के 'महाविष्णुरूप' का भी अनेक रसों पर चित्रण किया

१ रा० मञ्जरी। अयोध्या। ६२७-६८३

२ वाम्पुरामायण २।१७-१८ ३ मद्विद्विषय ३।२०-२२

४ मद्विद्विषय १।६।६२-६३ रा० मञ्जरी। युद्ध। २१३-२१९ राधकीय १।१।४-२९ रामचरित ४।१।७-१२, हनुमन्नाटक १।१।६ १।२८, प्रसन्नराज ७।१०-१२

गया है जिसमें वे बिराट् बिरबभ्यायक और देवधरी से 'कोटि गुणित बरुवासी' बतलाए गए हैं। संस्कृत-साहित्य में उनके इस रूप का संकेत कहीं नहीं है, वहाँ केवल विष्णुरूप का ही वर्णन है। संभवतः इसी परम्परा से प्रभावित होकर तुलसी ने राम के विष्णु रूप का निदर्शन कर दिया है और साथ ही उनको व्यापक समुच्च ब्रह्म निरूपित करने के लिए उन्होंने उनके महाविष्णुत्व की भी उल्लेख कल्पना की है।

राम का यह ईश्वर रूप ही 'मक्ति-रस' का आसम्बन्ध माना गया है। 'मानस' के छोटे बड़े सभी पात्र राम से मतपामिनी भक्ति की कामना करते हैं। दशरथ बनक, बलिष्ठ बाबि पूज्यन भी इसी दृष्टिकोण से राम की बखला करते हैं। उनके भाइयों में भरत तो भक्ति के साकार रूप ही हैं। लक्ष्मण भी उनकी भक्ति से कुछ कम प्रभावित नहीं हैं। सुग्रीव और बिभीषण बाबि राम के मित्र होते हुए भी उनसे अविरत भक्ति की याचना करते हैं। रावण और कूम्भकर्ण बाबि उनके राक्षस भी बरुवा से राम की भक्ति करते हैं और पुरस्कार स्वरूप उनसे 'सामोय मूर्ति' भी प्राप्त करते हैं। बटायु बंसे पत्नी मत्त की भी राम की कृपा से 'सारूप्य मूर्ति' मिस जाती है। मुख्य रूप से अतिरिक्त मानस' की भूमिका और उपब्रह्मण्य भाग में भक्तिरस के अकूत वातावरण का बड़ा विस्तार मिलता है। तुलसी का सारा प्रयास इसी ओर केन्द्रित है कि प्रह्लाद राम की लोग राजकुमार राम न समय में इसीलिए वे भीष-भीष में अपनी ओर से भी भक्ति के पोषक उपकरणों का विस्तृत वर्णन करते हुए बतते हैं। मानस की स्तुतियों और बखलाओं का समुच्चय भी इस दिशा में नूनाया नहीं जा सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने मानस में जिस भक्तियुक्त वातावरण का सृजन किया है वह अद्वितीय है। पुराणों की छोड़कर संस्कृत के काव्यों में यह कहीं भी सुलभ नहीं है।

(६) निष्कर्ष—इस रस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने मानस में विभिन्न रसों को उचित स्थान देते हुए 'वीर रस' की प्रमुख रूप से प्रतिष्ठा की है। संस्कृत साहित्य में भी कुछ नाटकों की छोड़कर सर्वत्र वीररस की ही प्रधानता प्राप्त हुई है। यह समानता होने पर भी 'मानस' की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें वीर रस के स्थायी भाव 'उत्साह' के अनेकानेक रूपों का बड़ी उफनता से निरूपण किया गया है किन्तु संस्कृत के साहित्यकार केवल बुद्धोत्साह को ही उत्साह मानकर अपने सीमित क्षेत्र में ही अधिकतर प्रयत्नशील रहे हैं।

४ अलंकार-विवेचन

(१) अलंकार का अभिप्राय—'अलंकार' शब्द में 'अलं' का अर्थ है पूर्णता अतः इसका अभिप्राय सम्बन्धित वर्णन को पूर्णता प्रदान करना होता है। भाष्य प्रधानता की प्रधानता में इस आर्थकारिक पूर्णता की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। संभवतः इसीलिए संस्कृत के अधिकतर भाषाओं में अलंकारों को दशरूप

शरीर-काम्य का घोमातिघायी किन्तु अस्विकर धर्म माना है,' इस के परस्पररूप चरहोनि काम्य में रस निष्पत्ति के लिए अलंकारों की अनिवार्यता भी स्वीकार नहीं की है। 'घोमातिघय में अतिघय' की पूर्ति का पर्याय मानने वाले कुछ आचार्य और कवि अलंकारों की 'स्विकरवर्धता' का भी समर्थन करते हैं किन्तु यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार कालिदास की 'शकुन्तला' बरकत से भी अधिक मनोमत्त समती है क्योंकि मधुर आकृतियों के लिए सभी कुछ स्वतः मण्डन हो जाता है,' उसी प्रकार भावप्रबल वर्धन के लिये फिर अलंकारों का कोई विशेष महत्त्व नहीं रह जाता है। 'आरच्य-ब्रह्ममणिवार' भी यही प्रतिपादित करते हैं कि जिसकी घोमा स्वाभाविक होती है उसको संस्कार की फिर कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है —

'यस्य नैसर्गिकी घोमा तन्न संस्कारमर्हति ।

क कसा दाबिभो माष्टिं कोस्तुम केन रज्यते ॥ १।२४

इसके अतिरिक्त कविता में कभी कभी अधिक अलंकार भार स्वरूप भी हो जाते हैं क्योंकि वे उसके भाव (आत्मा) को ही दबा देते हैं। ऐसे काम्यों में अलंकारों की ठीक बही स्थिति मानी जाती है जो वाक्य को सजाने वाले सामुपयोगों की हो जाती है। यह भी देखा गया है कि अधिकतर भावहीन काम्यों को ही अलंकारों की अपेक्षा होती है। जब कहने के लिये बहुत कम होता है, तब उसको बढ़ा कर कहने के लिये नवीन प्रकारों की शोध की जाती है। ये अलंकार वस्तुतः और कुछ नहीं केवल अधिष्पत्ति के ही विभिन्न प्रकार होते हैं। इनका सबसे बड़ा उपयोग भाव को सजाने तथा वर्धकवस्तु के रूप में अलंकारों के अधिकारिक लौक और आकर्षक अनुभव कराने में ही होता है। तुलसी ने भी इसी प्रयोजन से 'मानस' में विभिन्न रूपों पर अलंकारों को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इन अलंकारों से तुलसी की मनोवैज्ञानिक प्रतिभा का सरल परिचय प्राप्त होता है। अनेक संस्कृतपूर्व अलंकारों पर तुलसी की ऐसी मूल-मूल में अलंकारों के सहयोग से ही अनूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। यद्यपि तुलसी अलंकार निष्ठ नहीं हैं तो भी उनकी रचनाओं में अलंकारों का बहुत अनूत प्रयोग हुआ है। इन कीदम में संस्कृत के कवि कितने सफल अथवा असफल हुए हैं यह दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो सकता है।

(२) शब्दालंकार—एक और अर्थ से सम्बद्ध होने के कारण ये अलंकार भी दो प्रकार के माने गये हैं। शब्दालंकारों में एक 'अपरिवर्तितमह' होते हैं, जब कि अपरिवर्तितों में उन शब्दों में यथार्थ परिवर्तन भी किया जा सकता है किन्तु वही प्रत्येक दशा में 'अर्थ की अनूतव्यथा अनिवार्य' होती है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष और वक्रोक्ति प्रमुखा हैं। इनके शरीरधर्मों की चर्चा के लिये यहाँ अब काम नहीं है। 'मानस' में इन सभी अलंकारों का सहज रूप से विस्तृत निरूपण प्राप्त होता है। अनुप्रास के दर्शन तो प्रत्येक बालक में मुम्ब है क्योंकि इसके लिए

प्रयत्न की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है। अन्य सम्बोधकार, जो ईपत्र यत्नसाध्य हैं, 'मानस' की अपेक्षा संस्कृत साहित्य में ही प्रचुर परिमाण में दृष्टि बोधर होते हैं। संस्कृत के काव्यों में 'शब्द-श्रीका' का बाहुल्य रहा है। वहाँ तो प्रत्येक महाकाव्य में कुछ अध्यायों में निश्चित रूप से इस 'शब्द-श्रीकाम्य' का प्रदर्शन किया जाता है। काव्यशास्त्रज्ञों के द्वारा ऐसे 'विशकाव्यों' को अक्षय की संज्ञा देने पर भी अनेक महाकवि इसके निरूपण में ही अपने और एक पाण्डित्य का अनुभव करते रहे हैं।

(३) अर्थोत्तरकार—वहाँ तक अर्थोत्तरकारों का सम्बन्ध है जिनमें ही कवि के वास्तविक काव्यकौशल की परीक्षा होती है। इन अर्थकारों में उपमा उत्प्रेक्षा और रूपक अत्यन्त महत्वपूर्ण अर्थकार हैं और इन तीनों पर 'मानसकार' का अद्वितीय प्राधिपत्य है। संस्कृत-साहित्य में कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थनोरथ इन्हीं का पद-साहित्य और माघ की उपर्युक्त तीनों विशेषतायें अत्यन्त प्रसिद्ध मानी हैं किन्तु तुलसी के काव्य के समस्त यह भाव्यता कीकी पङ्क आठी है।

(४) उपमा—उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक तीनों अर्थकार साधुस्वप्नक हैं। इनमें उपमा में 'सादृश्य' बाध्य होता है, उत्प्रेक्षा में उसकी सम्भावना की आठी है और रूपक में उसका आरोप किया जाता है। तुलसी ने इस विधा में सभी व्यावहारिक शैली से सम्स्कारपूर्ण उपमान संसृष्ट किये हैं। 'पद्यचरित' और 'मानस' के रूपक में उन्होंने उपमा को 'बीचिबिलास' के समान मनोरम माना है और 'सीता सोम्वर्य' वर्णन में उन्होंने शब्द उपमाओं को 'बुटारी' और 'गपू' बतलाया है। इससे उपमा के स्वरूप और विस्तार के सम्बन्ध में उनकी मर्मज्ञता का परिचय मिल जाता है। उनका 'मानस' उपमामों का वास्तुतः अपूर्व भण्डार है, जिसमें शार्ङ्ग और समर्थ उचकारों का बड़ा सरल संक्षेप दृष्टिबोधर होता है। तुल्योपमा पूर्वोपमा और मानोपमा आदि उपमा के सभी भेदोपभेदों को 'मानस' में बचा-बचा प्रचुरता के साथ प्रायोजित किया गया है। अंश के आरम्भ में ही उनके ये अमूल्य उदाहरण दर्शनीय हैं—

सुप्तोपमा—

'नील सरोरुह स्वयं तस्मिन् अटन वारिज नयन । १११ सो० ३

पूर्वोपमा—

'साधु वरिष्ठ मुम सरिष्ठ कपासु । ११२

मानोपमा—

बंदरं यत्न अठ सेव सरोपा । तद्वत् वदन वरतद् पर बोपा ॥

पुनि प्रमथरं पूषुपाव समाना । पर अथ मुनह सहस वरत काना ॥

बहुरि सक सम बिनबदं तेही । संतत सुखमीक हित जेही ॥

बचन बन्ध जेहि सवा विपाठ । सहस्र नपन पर बोप निहारा ॥११४

इन उपमानों में कोप सादृश्य ही नहीं है बलितु जनते कवि के भाव-सम्बन्धी विस्तृत व्यञ्जन और मूढमपर्यवेक्षण का भी प्रमाण मिलता है, जबकि संस्कृत के कवियों ने अपने अलंकारों में अधिकतर सादृश्य का ही प्रयोग रचा है। उदाहरणार्थ वन प्रवासी राम सीता और लक्ष्मण के लिए संस्कृत के ग्रंथों में अनेक उपमान जुटाए गए हैं। उदाहरण 'मैं जे सीता आरामा, बिद्या और बिबेक अथवा अज्ञ प्रमा और प्रसाद 'रघुबीरचरित में सूर्य' सग्या और अज्ञ अथवा प्रबोध बिद्या और बिनव,' प्रतिमा नाटक में सत्य, यत्कि और द्योत अथवा सूर्य, छाया और दिन' तथा प्रसन्नराज्य में अज्ञ अश्रिका और प्रसाद अथवा मय विभूति और सुखसाय' के समान प्रस्तुत किए गए हैं जब कि 'मानस' में उनके लिए ब्रह्म माया और जीव, मदन रति और मधु अथवा विष्णु, रोहिणी और बुध' के सांकेतिक उपमानों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार केकयी बरदान-वाचना प्रसंग में शुरुब बरारव को रामायण मञ्जरी में 'कृतसुप्त-द्रुम' 'राजवीर' में दावाभिरहित वनरपति' 'उदारराज्य' में 'मग्नोपविबद्ध नायेन्द्र' और 'प्रतिमा' नाटक में प्रसन्नकालीन लक्ष्मण मैक, पुष्क महासमुद्र एवं पतमोग्मुय सूर्य' के समान बतसाया गया है, जब कि 'मानस' में उनकी शुरुबता का यथार्थ विवचन करने के लिए एक से एक बढ़कर समर्थ उपमान बनिष्ठ हुए हैं—

सुनि मुहु बचन भूपहिय छोड़ू । सधि कर छूमत बिकस जिमि कोड़ू ॥

ओर मनोरञ्ज पुरतक कूला । करत करिनि जिमि हूठेठ समूला ॥

बोय सिद्धि पन समय जिमि अतिहि अविद्या मास ॥२।२९

'सीताहरण के प्रसंग में संस्कृत-ग्रंथों में राजव और सीता की तुलना के लिये अनेक उपमानों का प्रयोग किया गया है। उनको 'रामायणमञ्जरी' में अम्बुक और सिंह-विद्या,' 'महाभारत' में मूषर और करिणी,' 'प्रसन्नराज्य' में सूर्य और पद्ममेघा' तथा 'रघुबीर चरित में वायस और राजहूनी श्याम और अग्निवेशी एवं पूषदेवु और अग्निमेघा' के समान बतसाया गया है, जबकि 'मानस' में इस अवसर पर शर्म सीता राजव को छात्र शत्रु और स्वयं को शिक्षिनी अथवा उसको

१ उदार राज्य १।१०

२ प्रतिमा २।८ ४।४

३ मानस २।१११

४ राजवीर १।२६

५ उदारराज्य ४।१९

६ रा० मञ्जरी । अरण्य । ४।४

७ प्रसन्नराज्य १।४६

८ रघुबीर चरित २।१-४

९ प्रसन्नराज्य १।१ के वा २०

१० रामायण मञ्जरी । अयोध्या । ७२७, ७३२ ७७२

११ प्रतिमा २।१

१२ महाभारत । वन । २७।१३

१३ रघुबीरचरित १।२।१७

रासम और स्वयं को पुरोडास कहती हैं।^१ वहाँ बटायु रामन को स्नेह और सीता को कपिला नाम कहता है। स्वयं याज्ञकार भी उनके लिए व्यास और मूनी के उपासक होते हैं।^२ इस उपबान-संघ से तुलसी की यौक्तिक प्रतिभा का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार लिख कहते हैं कि 'उपमा कान्निवासस्य' कह कर कान्निवास की प्रशंसा की जाती है किन्तु उनकी सर्वोत्तम उपमाओं से भी 'मानस' की उपमाएँ अधिक समर्थ हैं।^३

(२) उत्प्रेक्षा—उपमा के समान ही इस असेंकार का भी बड़ी समर्पता के साथ 'मानस' में प्रयोग किया गया है। संस्कृत-साहित्य में 'प्रसन्नराज' के राम 'अनक-बाटिका' में सीता की मृगुर-स्वप्ति मुनकर वहाँ उसके लिए 'राजहंस-संविष्ट की उत्प्रेक्षा करते हैं वहाँ 'मानस' के राम उसको 'विश्वविजयी मदन की सुरगुणि' बतलाते हैं।^४ इसी प्रकार सीता के प्रथम दर्शन करने पर प्रसन्नराज के राम उनके लिये 'कापकोटा-नवनवलयवीरिपिटा'^५ और 'वीरिणी-कल्याण' के राम सौम्य-सर्वरथ के साधारण दर्शन की सम्भावना करते हैं किन्तु 'मानस' के राम की उत्प्रेक्षाएँ इस प्रसंग में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे कहते हैं—

बनु विरंचि सब निब सिपुनाई । विरंचि विश्व कह प्रपटि बिघाई ।

सुम्बरता नहुँ सुम्बर करई । अविगृह वीरिपिटा अबु बरई ॥ १।२३०

'केकयी-वरदायना' प्रसंग में भी संस्कृत-साहित्य में केकयी के लिए अनेक उत्प्रेक्षाएँ श्रुतिबोधर होती हैं। रामायण-मञ्जरी में उसको भूतानिमृत् कामक्षिप्त और किन्धिय-निमित्त^६ उदाररासन में यमवैजयन्ती, मूर्धोपविष्ट मृत्बुद्धी काल शकुल कालराजि और धर्मव्रदिष्ट धरकाशी तथा राजवीम में कामजुर्वी^७ कहा गया है, किन्तु 'मानस' में उसके लिये 'सरोप मुर्जग कामिनि, 'रोप तस्यारि 'रोपतरिनि' भागुत शमसान' और 'सरेहू कठोरता'^८ की सम्भावनाओं की गई हैं। जबसे जिस समर्थ बिध का निर्माण होता है वह संस्कृत की उत्प्रेक्षाओं से क्यापि सम्भव नहीं है।

(६) रूपक—'मानस' के मालकारों में रूपक का सर्वोपरि स्थान है। बस्तुतः तुलसी रूपकों के राजा हैं। उनके सभी रों के निरूपण में उनकी सर्वाधिक रचि है। धीरे धीरे परम्परित रूपकों से तो उनकी इतना मोह हो गया है कि कुछ

१ मानस १।२८-२९

३ बी०ए० लिख-अकबर की सेट

मृगल-पृष्ठ ४२०

५ प्रसन्नराज २।७

८ रा० मञ्जरी । अयोध्या । ७२०, ७२४

१० राजवीम । १।३८

२ मानस १।२९

४ प्रसन्नराज २।६ के बाद

५ मानस १।२३०

७ वीरिणी कल्याण १।२०, २२

८ उदार राज ४।१४, १७, १८

११ मानस २।२९, ३१, ३४, ३६, ४१

विद्वान् जैसे 'एक बड़ी परम्परा का अनुसरण मानते हैं।' वास्तुतः सम्बन्ध-सम्बन्धे सायं कर्णों का बहुत बड़ी भाषा में, जैसा लफल निबन्ध 'मानस' में किया गया है, वैसा अत्यन्त बड़ी भी नहीं मिलता है। रामचरित और मानस रामकथा और तरपु पितामह और शीव, रामचरित और विन्तामयि तथा मानसिक भाव और शेष के सुदीर्घ कथक प्रति प्रसिद्ध हैं। संपूर्णकों में सन्त-समाज और शीर्षराज, शीर्षराज और राजा, अरुणक और बन्धुवा केकवी-कृष्ण और बड़ई, सम्पति और बकवी रामामम और सुदान, बमक-सिमा और कदवा नदी, काम और राजा नारी और बगलत बय और रव तथा रामप्रताप और सूर्य जगि का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत-साहित्य में यद्यपि कथकों का बहुत मात्र है फिर भी उनमें अत्यन्त बंधों तक सादृश्य-विधान का अल्पतम विभव कहीं नहीं प्राप्त होता है। 'मानस' में कथक योजना के प्रति तुलसी अत्यन्त आदर दिखलाई देते हैं। इस दिशा में उन्होंने अनेकानेक बंधों का बड़ी दूर तक अनुकूल निबन्ध प्रस्तुत किया है।

तुलसी के कथकों में मात्रा की अविच्छेदा के साथ-साथ पुराणों की भी अपनी विधि-विधिता है जो अनेकित विन्न विचार में सर्वथा अलग है। उदाहरणार्थ दो कथक यहाँ दिये जा रहे हैं। 'रामकीर्ण' में केकवी-यात्री और कामभूजनों के कथक के साथ 'मानस' का यह उत्तम कथक तुलसीय है —

‘केकवेग्न बुद्धिपूर्वकगताङ्गुलता बरभन्धिरसला ॥

बाहू कपी समय मुर्छमठिरक हारुभरेग्नमवि बरभूजनी ॥ ११३८

मानहुँ सरोव भूजग भामिनि विषम जति निहारई ।

दोठ बाववा रसना बचन बर परम टाहू देखई ॥ ११३९

यही नहीं इस प्रबंध में 'मानस' की यह कथक मात्रा भी वर्तनीय है —

बात बुझाइ कृष्णति हँसि बोसी । कृष्ण कृष्णुव कलह जनु पोसी ॥

भूप मनीरक मुखम बनु मुख सुबिहूष समानु ।

त्रिभक्ति त्रिभि साहज बहति बचनु मन्त्रक बाहु ॥ ११३८

जायें दीपित करत रिक्त भारी । बलहुँ रोष तरवारि ज्यारी ॥

कूठि कबुडि मार निदुराई । घटी कुरी सान बनाई ॥

लाती बहीष करत कडोरा । सत्य कि जीबनु मेहदि मोरा ॥ ११३९

अब कहि कृष्णि कई ठठि टाड़ी । मानहुँ रोष तरवारि बाड़ी ॥

बाष पहार प्रपट बर लोई । जरी कोष पल प्राद न लोई ॥

दोठ बर कूल कठिन हठ बाघ । बर कुरी बचन प्रचारा ॥

१. भा० रामचरित पूजल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, चौथी संस्करण पृ० १४२

२. मानस १११६-१६, १६४१, ७१११०-१११ १२० १२१-१२१

३. मानस १११-१ १११०, २०९-२१०, २१२, २१३, २१३-२१३ २०५-२०६

११३०-१३०, ११४४, ११५०, ७१११

राजस भीर स्वयं को पुरोडास कहती है।^१ वही बटायु राजस को भोज भीर धीठा को कपिला पाप कहता है। स्वयं मानसकार भी उनके लिए व्यास और मुगी के उपमान कहे हैं।^२ इस उपमान-संग्रह से तुलसी की मौलिक प्रतिभा का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार लिख कहते हैं कि 'उपमा कालिदासस्य कृत्वा कर कालिदास की प्रशंसा की जाती है किन्तु उनकी सर्वोत्तम उपमाओं से भी 'मानस' की उपमाएँ अधिक समर्थ हैं।'^३

(५) उत्प्रेक्षा—उपमा के समान ही इस जलकार का भी बड़ी उपर्यता के साथ 'मानस' में प्रयोग किया गया है। संस्कृत-साहित्य में प्रसन्नराजस के साथ जलक-वाटिका में धीठा की मृपुर-स्वप्ति सुनकर वही उसके लिए राजहंस-उचित की उत्प्रेक्षा करते हैं, वही 'मानस' के राम उसको विरबन्धिवी मदन की कुन्दुबि कहलाते हैं।^४ इसी प्रकार धीठा के प्रथम वर्णन करने पर प्रसन्नराजस के राम उनके लिये 'कामकीडा मदनबलभीरीपिका'^५ और 'सैबिली-अस्याम'^६ के राम 'सौन्दर्य-सर्वेश्वर के तादारम्य दर्शन'^७ की सम्भावना करते हैं किन्तु 'मानस' के राम की उत्प्रेक्षाएँ इस प्रसंग में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे कहते हैं—

बनू विरंषि सब निज निपुनाई । विरंषि बिस्व कह प्रबदि रिखाई ।

सुन्दरता कहूँ सुन्दर करई ; छविपूह दीपछिन्ना बनू बरई ॥ १।२३०

'केन्द्री-वर्षावना प्रसंग में भी संस्कृत-साहित्य में केन्द्री के लिए अनेक उत्प्रेक्षाएँ कृतियोग्य होती हैं। रामायण-मञ्जरी में उसको बुदाबिमूठ कालक्षिप्त भीर किम्बिप-निमित्त,^८ उदारराजस में यमबीजयन्त्री, पूर्वोपदिष्ट पूर्ववृत्ती काल प्रवृत्त कासराणि और भगप्रदिष्ट महकाशी तथा राजबीय में कालमुञ्जबी'^९ कहा गया है किन्तु 'मानस' में इसके लिये सरोप मुञ्जग नामिनि,^{१०} 'रीप ठलकारि 'रीपतरंगिनी जागृत शकसान'^{११} और 'सरीहू प्यौरता'^{१२} की समान सम्भावनाएँ की गई हैं। उनसे बिना उपर्ये बिच का निर्माण होता है वह संस्कृत की उत्प्रेक्षाओं से कदापि सम्भव नहीं है।

(६) रूपक—'मानस' के जलकारों में रूपक का सर्वोपरि स्थान है। बस्तुतः तुलसी रूपकों के राजा हैं। उनके सभी भेदों के निरूपण में उनकी सर्वाधिक रुचि है। साथ ही परम्परित रूपकों से तो उनकी इतना मोह हो गया है कि कृष्ण

१ मानस ३।२७-२९

२ बी०ए० लिख-अकबर की श्रेष्ठ

मुपल-मुष्ट ४२०

३ प्रसन्नराजस २।७

४ च० मञ्जरी । अयोध्या । ७१०, ७१४

५ राजबीय । ३।३८

६ मानस ३।२९

७ प्रसन्नराजस २।६ के साथ ।

८ मानस ३।२९०

९ सैबिली वस्याम ३।२०-२२

१० उदार रायस ४।१४, १७, १८

११ मानस २।२५, ३९, ४४, ४६-४९

विद्वान् उक्ते 'एक मही परम्परा का अनुसरण भागते हैं।' वस्तुतः लम्बे-लम्बे सींग रूपकों का बहुत बड़ी मात्रा में, जैसा सफल निर्वाह 'मानस' में किया गया है, वैसा सम्भव नहीं भी नहीं मिलता है। रामचरित और मानस, रामकथा और धरतू, विभ्रान और वीर, रामभक्ति और चित्रामयि तथा मानसिक धाम और रोप के सुखीयें रूपक प्रति प्रसिद्ध हैं। संपूर्णकों में सन्त-समाज और तीर्थराज, तीर्थराज और राजा, भरतवज्र और चण्डिका, केकयी-कूमठ और बड़ई, सम्पति और बरुची रामाभय और गुराज, बमक-सेना और कदवा गदी काम और राजा नारी और बसंत, जय और रम तथा रामप्रताप और सूर्य आदि का महारूपक स्थापन है। संस्कृत-साहित्य में यद्यपि रूपकों का बहुत मान है, फिर भी उनमें अधिक अंशों तक सादृश्य-विधान का उच्चतम चित्रण नहीं मिला प्राप्त होता है। 'मानस' में रूपक योजना के प्रति तुलसी व्यपबिध आकृष्ट दिखलाई पड़ते हैं। इस दिशा में उन्होंने अनेकानेक अंशों का बड़ी दूर तक अनुकूल निर्वाह प्रस्तुत किया है।

तुलसी के रूपकों में भाषा की अधिकता के साथ-साथ युक्तों की भी अपनी विशेषता है जो अपेक्षित चित्र-विधान में सर्वथा सक्षम है। बदाहरणाय दो रूपक यहाँ दिये जा रहे हैं। 'रामबीर' में केकयी-बाधी और कासभुजमी के रूपक के साथ 'मानस' का यह उत्तम रूपक तुलसीय है —

केकयीग्र दुहितुर्भयगतदुरसुता बरसुवद्विरसता ॥
 बाक मयी तयय मूछैभितरम दाह्नदेशमवि शालभुजमी ॥ १।१८
 मानहुँ सरोप भुजब भासिनि विपम भाँति निहारई ।
 बोट बासना रसना दसम बर मरम ठाहूँ देखई ॥ २।२३

यही नहीं इस प्रसंग में मानस की यह रूपक भाषा भी दर्शनीय है —

बाठ पुड़ाइ कुमठि हौंसि कोलो । कुवत कुबिहुँय कुमह जनु सोलो ॥
 घुष मनोरन भुजय वनु सुघ सुबिहुँय समानु ।
 विस्मिति विवि दाह्न बहति बचनु अयंकष बाहु ॥ २।२८
 आनें पीरि जरठ रिष मारी । अनहुँ रोष तरवारि जपारी ॥
 मुठि कुबुडि पार निहृणई । बरी कुबरी सान बनाई ॥
 तराी महीप कपम कठोरा । साथ कि जीवनु सेहहि मोरा ॥ २।३१
 अघ कहि कटिन भई बडि ठाड़ी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाड़ी ॥
 पाप पहार प्रपट भइ सोई । बरी रोष जल जार न सोई ॥
 बोट बर कुल कटिन हट पाप । मँबर कुबरी बचन प्रचारा ॥

- १ आ० रामचन्द्र गुराज-हिन्दी साहित्य का इतिहास चौथी संस्करण पृ० १४४
 २ मानस १।१६-३६ ३६ ४३, ७।१७-११७, १२०, १२१-१२२
 ३ मानस १।६-३, १।१०५ २०९-२१० २१९, २१५, २१६-२३६, २७४-२७६, ३।३०-३६, ३।४४ ९।५०, ७।३१

रासम और स्वयं को पुरोहाय कहती हैं।^१ वहाँ बटामु रासम को म्लेय और सीता को कविता वाप कहता है। स्वयं मानसकार भी उनके लिए भ्याव और मूषी के उपमान देते हैं।^२ इस उपमान-संबन्ध से तुलसी की मौलिक प्रतिभा का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार रिमथ कहते हैं कि 'उपमा कालिदासस्य कृद् कर कालिदास की प्रशंसा की जाती है किन्तु उनकी सर्वोत्तम उपमाओं से भी 'मानस की उपमायें अधिक समर्थ हैं।'^३

(२) उत्प्रेक्षा—उपमा के समान ही इस बर्णनकार का भी बड़ी समर्यता के साथ मानस में प्रयोग किया गया है। संस्कृत-साहित्य में 'प्रसन्नरासम के राम जनक-बाटिका में सीता की मृपूर-स्वनि सुनकर वहाँ उसके लिए रासहृंस-सिन्धित की उत्प्रेक्षा करते हैं वहाँ मानस के राम उसको विवशविजयी यदन की दुःखि बतलाते हैं।^४ इसी प्रकार सीता के प्रथम दर्शन करने पर 'प्रसन्नरासम के राम उनके लिये 'कामधीरा पवनवतमीवीपिका' और 'मैबिची-कल्याण' के राम 'द्योत्सव-सर्वरथ के सादारम्य बर्चन' की सम्भावना करते हैं किन्तु मानस के राम की उत्प्रेक्षाओं इस प्रसंग में सर्वस्युष्ट है। वे कहते हैं—

वनु विरंभि सुख निज निपुमाई । विरंभि बिस्व कहूँ प्रवटि दिखाई ।

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई । छविपूह पीपछिछा जगु बरई ॥ १।१३०

केकयी-बरसाचना' प्रसंग में भी संस्कृत-साहित्य में केकयी के लिए अनेक उत्प्रेक्षाएं दृष्टिपोषर होती हैं। रामायण-सम्बन्धी में उसको मृतानिभूत कालदिप्य और किस्मिय-निमित्त, 'उदाररासम में समर्थ-अमली, मूर्धोपविष्ट मृत्पुटी काल प्रमूक्त कालराजि और मर्यप्रविष्ट बहकाली' तथा रासवीय में कालभुजंगी" कहा गया है, किन्तु 'मानस' में उसके लिये 'उरोप भुजंग-नामिति, रोप तस्वारि', 'रौपतरंजिनी' जाबूत इपतान' और 'अरेह कठोरता' की सप्राम सम्भावनाओं की गई हैं। उनके जिस समर्थ बिम्ब का निर्माण होता है वह संस्कृत की उत्प्रेक्षाओं से कदापि सम्भव नहीं है।

(३) रूपक—'मानस' के बर्णनकारों में रूपक का सर्वोपरि स्थान है। वस्तुतः सुमती रूपकों के राजा हैं। उनके सभी येषों के निरूपण में उनकी सर्वाधिक रसि है। धीम और परम्परित रूपकों से तो उनको इतना मोह हो गया है कि कुछ

१ मानस १।२८-२९

२ बी०ए० रिमथ-अकबर डी प्रेट

मृपूर-पूठ ४२०

३ प्रसन्नरासम २।७

४ रा० सम्बन्धी । अयोध्या । ७३०, ७३४

५ रासवीय । १।१६

६ मानस १।२९

७ प्रसन्नरासम २।९ के वाप

८ मानस १।२३०

९ मैबिची कल्याण १।२०, २२

१० उदार रासम ४।१४, १७, १८

११ मानस १।२३, १६, १४, १९, ४१

विद्वान् उसे 'एक बड़ी बरम्परा का अनुसरण मानते हैं।' वास्तुतः सम्बन्धमे चाप
 कर्णों का बहुत बड़ी मात्रा में, जैसा उद्यम निर्वाह 'मानस' में किया गया है, विसा
 सम्पन्न नहीं भी नहीं विमता है। शान्ति और शान्त, रामकृष्ण और सरजू विद्याम
 और दीप, रामभक्ति और विष्णुभक्ति तथा मानसिक भाव और रोष के सुदीर्घ कर्ण
 प्रति प्रसिद्ध हैं। 'समुच्चय' में उद्यम-समाज और तीर्थराज, तीर्थराज और राजा,
 भरतवज्र और शम्भु, कैकयी-कुमर और बर्द्ध, सम्पत्ति और बर्द्ध, रामायण और
 सुराज, बलक-शैला और कृष्णा मयी, काम और राजा, मारी और बसन्त, बस और
 रथ तथा रामप्रताप और सूर्य आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'संस्कृत-साहित्य' में
 यद्यपि कर्णों का बहुत जगह है, फिर भी उनमें अधिक अंशों तक सादृश्य-विधान का
 उद्यम विनय नहीं बड़ी प्राप्त होता है। 'मानस' में कर्ण योजना के प्रति तुमसी
 शक्तिशालि आकृष्ट दिग्दर्शक पढ़ते हैं। इस विद्या में उन्होंने अनेकामर अंशों का बड़ी
 दूर तक अनुक्रम निर्वाह प्रस्तुत किया है।

तुमसी के कर्णों में मात्रा की अधिकता के साथ-साथ तुमों की भी अपनी
 विशिष्टता है जो अनेकित चित्र विधान में उर्वरता प्रदान है। उदाहरणार्थ दो कर्ण
 यही दिग्दर्शक हैं। 'रामकृष्ण' में कैकयी-मायी और कालभुजंगी के कर्ण के साथ
 'मानस' का यह उद्यम कर्ण तुमसीय है —

'कैकयेय दृष्टिपूर्वकपतादुसुता बरयुद्धिरधरा ॥

बाहु मयी उद्यम पूर्वकवित्तम श्रावणैश्वर्यवि शानभुजंगी ॥' २११८

मानहुँ सरोष भुजंग भागिनि विषय जति निहारई ।

शेड बाधना रसना दत्तन कर मरम ठाहूँ देखई ॥ २१२२

यही नहीं इस प्रसंग में 'मानस' की यह कर्ण-मात्रा भी व्योनीय है —

बात बुझाइ कुमति होठि बोझी । कमठ कुबिहुँम कुतह जनु छोझी ॥

भुप मनोरथ मुषय बनु मुख कुबिहुँम तयानु ।

विनिनिनि निनि छाड़न पहठि बचनु भवंकरु बानु ॥२१२८

जामें दीपि करत रिश भारी । मनहुँ रोष ठरवारि जघारी ॥

बूढि कुबुडि कार निहुराई । बरी कुबरी जान बनाई ॥

तमी बहोष कराल कठोरा । बाप कि जीबनु सिहहि मोरा ॥२१३१

अत कहि कुटिल गई जठि टाड़ी । मानहुँ रोष तरविनि बाड़ी ॥

पाप बहार प्रपट भर छोई । बरी मोष चल जाइ न जोई ॥

दोड बर कुल कटि हठ पारा । बंवर कुबरी बचन प्रचारा ॥

१ आ० रामचन्द्र पुस्तक-श्रिष्टी साहित्य का इतिहास चौथी संस्करण पृ० १४२

२ मानस ११११-११२, ११४३, ०१११०-११८, १२० १२१-१२२

३ मानस १११-१, १११०२, २०९-२१०, २१२, २१३ २१४-२१६, २०४-२०६

१११०-१८, १४४, १४०, ०१३१

रासम और स्वयं को पुरोडास कहती हैं।^१ वहाँ बटायु रावण को श्लेष्म और सीता को कपिसा नाय कहता है। स्वयं मानसकार भी उनके लिए श्याम और मृगी के उपमान देते हैं।^२ इस उपमान-संग्रह से तुलसी की मौलिक प्रतिभा का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार लिखते हैं कि 'उपमा कालिदासस्य कृत्वर कालिदास की प्रशंसा की जाती है किन्तु उनकी सर्वोत्तम उपमाओं से भी 'मानस' की उपमार्ये अधिक समर्थ हैं।'^३

(३) उल्लेख—उपमा के समान ही इस बर्तकार का भी बड़ी समर्थता के साथ 'मानस' में प्रयोग किया गया है। संस्कृत-साहित्य में 'प्रसन्नराज्य' के राम जनक-बाटिका' में सीता की मृगुर-स्वनि मुनकर वहाँ उसके लिए राजहंस-सिंहित की उल्लेखा करते हैं वहाँ 'मानस' के राम उसको 'विश्वविजयी भवन की कुम्भुधि' बतलाते हैं।^४ इसी प्रकार सीता के प्रथम दर्शन करने पर 'प्रसन्नराज्य' के राम उनके लिये 'कामक्रीडा भवनवक्रभीषीपिका' और 'मैत्रिली-कल्याण' के राम 'सौन्दर्य-सर्वजन के तादात्म्य दर्शन' की सम्भावना करते हैं किन्तु 'मानस' के राम की उल्लेखाओं इस प्रसंग में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे कहते हैं—

जनु बिरंभि सब निब निपुनाई । बिरंभि बिस्व कह प्रगटि बिद्याई ।
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई । छविगूह भीषसिखा जनु बरई ॥ १।२३०

'केकयी-व्रयाचना' प्रसंग में भी संस्कृत-साहित्य में केकयी के लिए अनेक उल्लेखाएँ दृष्टिकोचर होती हैं। रामायण-मञ्जरी में उसको भूतामिमूत कालभित्त और किस्त्रिय निमित्त 'उदारराज्य में यमबीजयन्त्री भूर्भोपविष्ट मृत्युहृती काव प्रमुक्त काकराजि और मर्गप्रविष्ट मज्जकाकी' तथा राजबीय में कालभूर्जनी' कहा गया है, किन्तु 'मानस' में उसके लिये 'रोप भूर्ज-भामिनि, रोप टकवारि' 'रोपतरंगिनी' 'बाभूत शयतान' और 'सदेह कठोरता'^५ की उपमा सम्भावनाओं की गई हैं। उनसे जिस समर्थ चित्र का निर्माण होता है वह संस्कृत की उल्लेखाओं से कदापि सम्भव नहीं है।

(६) रूपक—'मानस' के बर्तकारों में रूपक का सर्वोपरि स्थान है। वस्तुतः तुलसी रूपकों के राजा हैं। उनके सभी चरित्रों के निरूपण में उनकी सर्वाधिक रचि है। सीत और परम्परित रूपकों से तो उनको इतना मोह हो गया है कि कुछ

१ मानस १।२८-२९	२ मानस १।२९
३ भी०ए० लिपय-अकबर की श्रेष्ठ मुद्रा-मुद्रा ४२०	४ प्रसन्नराज्य २।६ के बाद
५ प्रसन्नराज्य २।७	५ मानस १।२३०
६ रा० मञ्जरी । जयोप्या । ७१० । ७१४	७ मैत्रिली कल्याण १।२०, २२
७ रायबीय । १।३५	८ उदार राजन ४।१४, १७ ६८
	९० कालिका ०।१७ ३३ ३४ ३६ ३७

विद्वान् उक्त 'एक बड़ी बरम्परा का अनुसरण मानते हैं।' बरम्परा सम्बन्धमें सीमा रूपकों का बहुत बड़ी मात्रा में, जैसा उक्त निबोध 'मानस' में किया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है। रामचरित और मानस रामकथा और सरयू, विमान और दीप राममूर्ति और विद्यामणि तथा मानसिक भाव और रोग के सुदीर्घ रूपक प्रति प्रसिद्ध हैं।^१ लघुरूपकों में सप्त-सभाज और तीर्थराज, तीर्थराज और राजा, भरतपद्म और बग्नवा केकयी-कुमर और बड़ई, सम्पति और चकवी, रामायण और सुराज, यनक-सेना और ककवा नदी, काम और राजा नारी और बसन्त, जय और रथ तथा रामप्रताप और सूर्ये शक्ति का महारूपमें स्थान है।^२ संस्कृत-साहित्य में यद्यपि रूपकों का बहुत मान है फिर भी उनमें अधिक संख्या तक सादृश्य-विधान का उचित चित्रण नहीं प्राप्त होता है। 'मानस' में रूपक-याचना के प्रति तुलसी आत्यधिक आकृष्ट दित्तताई बढते हैं। इस विधा में उन्होंने अनेकानेक संख्या का बड़ी बुर तक अनुकूल निबोध प्रस्तुत किया है।

तुलसी के रूपकों में मात्रा की अधिकता के साथ-साथ गुणों की भी अपनी विशेषता है या अपेक्षित चित्र विधान में सर्वथा सक्षम है। महाहरणार्थ दो रूपक यही दिये जा रहे हैं। 'रामकीर्ण' में केकयी-बायी और काकभुजंगी के रूपक के साथ 'मानस' का यह सक्षम रूपक तुलसीय है —

केकयेन्द्र बुद्धिगुणैर्गताङ्गुत्तमा बरम्पराद्विरसजा ॥

बाहु मयी तमय मूर्च्छपतिरम शङ्करेन्द्रमपि बालभुजंगी ॥ १।१८

मानहुँ सरीय भुजंग भासिनि विषम भाति निहारई ।

बोड बासना रसना बसन बर मरम टाहक देखई ॥ २।२१

यही नहीं इस प्रत्यय में 'मानस' की यह रूपक-नामा भी दर्शनीय है —

बात बुझाइ कुमति हैसि बोधो । कनठ कुबिहुय कलह जनु सोमी ॥

ब्रह्म मनोरथ मुजय बनु तुष सुबिहुय समानु ।

मिस्तिनि विवि घ्राकन बहति बचनु जयकद बानु ॥ २।२८

आर्ये दीपि जलत रिह मारी । बरहुँ सौय सरकारि उपारी ॥

मूठि कुनुठि पार मिठुपारई । परी कुबरी सान बनाई ॥

सरी महीच कराल कठोरा । धर्य कि जीवनु सेहदि मोछ ॥ २।३१

बल कहि कुटिल बई उठि टापी । मानहुँ रोच तरंगिनि बापी ॥

बाब पहर प्रपट मर सोई । नरी बोध जल जाह न जोई ॥

बोड बर कूल कठिन हठ पाठ । बंजर कुबरी बचन प्रचारा ॥

१ आ० रामचन्द्र गुप्त-हिन्दी साहित्य का इतिहास, चौथी संस्करण, पृ० १४२

२ मानस १।१६-१८, १९-४१, ७।१७-१८ १२० १२१-१२२

३ मानस १।२-३, १।१०-१२ २०९-२१०, २।२, २।११, २।१४-२।१६, २।३६-२३७, ३।१७-१९, ३।४४, ९।६०, ७।३१

बाह्य रूपक तक मुझा । जली विपति चारिणि अनुकूला ॥२।३४

इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'मानस' के रूपक अत्यधिक समर्थ और विज्ञ-विधायक हैं । परमुरास के समरयज्ञ के इस रूपक में भी विधाकन की विशेषता दृष्ट्य है—

चाप सुबा सर आहुति चानू । कोप मोर धति चोर कसानू ॥

समिधि सैन चतुरंग सुहाई । महा महीप भए पसु भारी ॥

मैं एहि परसु काटि बलि दीन्है । समर जम्ब अप कोटिन्हु कीन्है ॥१।२८३

इस प्रसंग के सम्बन्ध में प्रसन्नराज^१ जनार्णराज^२, बालरामायण^३ और हनुमन्नाटक^४ के उत्तम रूपकों में केवल अटिल समास-योजना के साथ निरंय श्लेष की ही प्रमु खता है । सांगरूपकों के अतिरिक्त परम्पठित रूपकों में भी तुलसी ने जिस विधिष्टता का प्रदर्शन किया है वह संस्कृत साहित्य में दुर्लभ है ।

(७) अन्य अलङ्कार—संस्कृत के भाषायों ने ज्ञान्यतः सूक्ष्म विवेचन के साथ अलङ्कारों की संख्या का बहुत बड़ा विस्तार निर्धारित किया है । उनके भेदोपभेदों की संख्या तो अवश्य है । वस्तुतः ये सभी अलङ्कार साम्य-मूलक, वैयम्ब-मूलक और अनेकार्थ-मूलक-इन चारों वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं । साम्य-मूलक अलङ्कारों में उपर्युक्त उपमादि के अतिरिक्त, अपह्नुति प्रत्येक सम्येह भाषितमान्, अयोक्ति, प्रवीण, अतिशयोक्ति, स्मरण और अपठितरम्यास आदि वैयम्बमूलक में व्यतिरेक, विभावना असंगति विशेषोक्ति, विषम, उद्गुण, योजित और व्यापात आदि वस्तुमूलक में यथार्थस्य सहोक्ति पर्याय बीपक परिकर, परिकराकुर चार एकावली आदि और अनेकार्थमूलक में विरोधाभास परिचंख्या व्यायोक्ति और श्लेष आदि अलङ्कार समाविष्ट हो जाते हैं । 'मानस' में इनके अतिरिक्त अस्याम्य अनेक अलङ्कारों के भी उदाहरण बड़ी सरभता से मिल जाते हैं । संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध अलङ्कारों के साथ 'मानस' के अलङ्कारों की तुलना करने से 'मानसकार' की ग्रीढ़ कल्पनाशक्ति और विचित्रमस्कार-विचामिनी अद्वितीय प्रतिभा का भी परिचय प्राप्त हो जाता है । विस्तार-मय के कारण यहाँ कुछ जोड़े से ही अलङ्कारों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।

(८) अल्लोख—सीता-स्वयंवर-सभा में राम के दर्शन से प्रभावित दर्शकों की भावना में इसका यथेष्ट विचय मिलता है—

बिम्ह के रही भावना बीची । प्रमु मूरति तिन्हु देखी तेंती ॥

देखाहि रूप महा रत्नबीच । मनहुं बीर रसु परें सरीच ॥

डरे कुटिल मुख प्रभुहि निहारी । मनहुं अयाजक मूरति भारी ॥

रहे असुर छल छोदिय बेया । तिन्हु प्रमुप्रपट कासठम देखा ॥

१ प्रसन्नराज ४।३३-३४

२ जनार्णराज ४।२२ ३७ ४४

३ बाल रामायण ४।६४

४ हनुमन्नाटक १।३६

५ मानस १।२६, १७, २४३, २४०

पुरवादिगृह देये शोच भाई । नरभूपन लोचन मुखभाई ॥

नारि बिलोकाहि हरपि हियं निज निज बधि अनुकप ।

अनु सोहठ विचार बरि मूरति परम अनुप ॥१२४१

बिदुपगृह प्रभु बिराटमय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सोसा ॥

अनक भाति अचलोकाहि कैंसे । अजन सये प्रिय सागाहि गैसे ॥

सहित बिदेह बिलोकाहि रानी । सिसु सम प्रीति न जाति बघानी ॥

ओमिगृह परम लखमय भासा । सौंड सुख सम सहस्र प्रकासा ॥

हरिमलयगृह देये शोच भाता । इष्टदेव हव सब सुखदाता ॥१२४२

इस प्रसंग में 'मागवत' का 'उत्सेख' भी वर्तनीय है—

मरुतानामयमिनु वां मरुवरो, स्त्रीनां मरुये मूर्तिमान् ।

गोपानां स्वजनो सतां शिथिनां वास्ता स्वपित्रो पिपु ॥

मृत्युर्भोजपतेविराडबिदुपां तर्ष परं यापिनाम् ।

कृष्णीनां परदेकतेति विदितो रंग गत साधवः ॥१०।४१।१७

मानस के उत्सेख पर 'मागवत' का प्रभाव अवश्य है किन्तु 'मानस' के सामने बहु मिश्रणत्व लगता है । इसके अतिरिक्त 'मानस' की कल्पना में जो पुष्टता प्रौढता और विस्तार है वह 'मागवत' में नहीं है । 'मागवत' पर आपारित होने के कारण ही उसको हीन^१ मानने की बात समाज में नहीं जाती है ।

(१) अतिशयोक्ति—सीता-सोम्य-वर्णन में तुलसी ने इस अंशकार का उत्कृष्ट निकषय किया है—

सिय सोमा नहि जाइ यगानी । जयदम्बिका रूप सुन रागी ॥

जो छवि मुखा पयानिधि होई । परम रूपमय कवचनु सोई ॥

सोमा रनु मन्दक विपाक । सर्वे पानि पंकर निज माक ॥

एहि बिधि उपगी लज्जि जब सुदरता भुरत मूम ।

तदपि सकोष समेत कबि कहहि सीम सय वूम ॥१२४७

इस सम्बन्ध में संस्कृत के कवियों की ये कल्पनावर्णे भी तुलसीय हैं—

एतां यथा हृष्यवचनभाषतासीं संसारसारनिषदेन विज्ञाय वेधा ।

शाके दिग्गज महर्षे परिव्रिजितात्पारान् स मां किरति येन तटे मित्राहं ॥^२

मुखापुत्रीभोत्सविदमाथो नवाम्बुशाम्भोजमूपातिधानाम् ।

रम्भापत्रीदुम्बपिपीरशान्ना तस्यारान्नु सारसमाहृति तां ॥

१ डा० बाबाप्रसाद मुख्त—तुलसीदास—पृष्ठ १४१

२ बालराजानन्द ॥१११

१ उपधीय १।१९

बावा ध्याननिमीलितान्नतिकरः कश्चित्पदापेक्षे ।
 सृष्ट्वेमां तववस्य एव नियतं मङ्गलभायामभात् ॥
 यद्युन्मीलितसृष्टिसृष्टममुना क्वाप्येतदीयं वपुः
 स्व ध्यानं नव तप नव चास्य नियमं नव बह्वाचारैरिति ॥'

इन सभी अतिशयोक्तियों से 'मानस' की अतिशयोक्ति रूपक एवं व्यतिरेक से पुष्ट होने के कारण अधिक चमत्कारपूर्ण है ।

(१०) स्मरण—सूचीव से मिलने के पश्चात् उद्यते सीता का पट प्राप्त करके राम को उनके स्मरण से बड़ा झोक होता है । यहाँ 'मानसकार' ने आह्लाकारिक चमत्कार के साथ राम के स्वामाविक साम्नीय का भी बड़ा अच्छा समन्वय किया है—

मांगा राम सुरत ठेहि वीन्हा । पट धर साइ सोच अति कीन्हा ॥१०३॥
 संस्कृत के साहित्यकार इस प्रसंग में राम के 'रामत्व को ही भूल गए, इसीलिए 'हनुमन्घाटक' के राम के इस अवसर पर अनेक विचित्र उद्भावनार्थ करते हैं—

द्युते एव प्रचयकेनियु कण्ठपाशः कीडापरिधमहरं भ्यजनं रतास्ते ।

यस्या निधीनसमये जनकारमजाया प्राप्तं मया विविधसाहिरमुत्तरीयम् ॥'

'रामायनमञ्जरी' के राम तो बिभाष करके सुछिन्न ही हो जाती हैं—

राजबोर्षि तवादाय विन्यस्य निविडं हृदि ।

नव प्रियेति बिलप्योन्मैनिपपाठ महीतसे ॥

बिरेव संभामासाद्य बाणसंक्षदसोचन ॥'

यही वसा 'राजवीय' के राम के भी हो जाती है—

आशायामुग्यादराधीनमीलं प्रत्युद्गीप्तस्फीतविस्सेपवेह-

हा देवीति व्याहृतार्वाकिरर्कं रापुर्जासो मोमुद्गीतिस्म राम ॥

इसी प्रकार अयोध्याटिका में 'राम-मुद्रिका' की प्राप्ति के पश्चात् सीता के 'स्मरण' का जो वर्णनापूर्ण वर्णन 'मानस' में मिलता है वह संस्कृत के ग्रन्थों में नहीं है—

जब देवी मुद्रिका मनोहर । रामनाम अंकित अति सुन्दर ।

अंकित पिठव मुहुरी पहचानी । हृदय विषाद हृदय अकृतानी ।

बीति को सकरु मजय रपुराई । माया से अति रची न आई ॥१११॥

असमत्पदव' की सीता उस मुद्रिका के बिपे डूबरी सीता की कल्पना करती है—

या शीघ्रवापि मनोरमरामचन्द्रहस्तांगुलिप्रभविनी सुमया सुवृत्ता ॥

अप्येव सा जनकराजसुता क्वं नु शंकासुपायतवती यधिमुद्रिकैयम् ॥११२॥

१ रामच पाण्डवीय १।११ २ हनुमन्घाटक १।१

३ रा० मञ्जरी । किरिकावा । ३४-३५

४ राजवीय १०।६६

'रामायण-मंजरी' में वे उसको 'राम' ही समझ कर प्रसन्न होती हैं—

सा तदाद्यम सोत्तादी हर्षबाष्पाप्सुतस्तनी ।

मनूयतिमिवास्तोक्य पुनकासाङ्कताकति ॥ सुन्दर ११८

'आश्वर्यबुधामणि' की सीता के मन में इन दोनों भावों के अतिरिक्त आसिपन भाव की शय अनेक कल्पनायें भी जागृत होती हैं—

इह सोकामरणस्यापरर्ष, इह रजनीपु रत्नवीप इह बदना

कंधारुबिदस्तादर्थ । अंशुसीपक ! त्ववप्यार्यपुमेव वाचिना

गृहीतोऽसि रवमप्यहमिष राससबाकीभूत । अपि चांशुसीप-

प्रदानेन वाचिनितेवास्यपुत्रम् ॥६।१४, १७ के बाद ।

'राक्षसीय' की सीता आतिथित होने की ही नहीं अंकोपविष्ट' होने तक की कल्पना करदे लगती है—

मृदा तदाद्यम विवेहपुत्री मुहु प्रमोदाभुभिरार्द्रमासी ।

आनिगदुष्टस्युसकं प्रतीकं विधीपगुहं प्रियमेव ममे ।

अगाह चैनं मुमते हनुमन् बदासि मे औचितमव माग्यत् ॥

संकोरविष्टापि नरेन्द्रमूर्तोरंकोपविष्टेव मुनिव् वाचि ॥११।१४-१६

(१०) सन्देह—बन में राम-सदस्य को देत कर हनुमान के 'सन्देह का मानस में बड़ा अचछा निरूपण मिलता है—

को तुम्हू छीनि देव मह बाळ । नर नारायन को तुम्हू दोळ ॥

जम बारन ठारन मव धंजन धरती धार ।

को तुम्हू अघित भुवन पति लोहू पनुन अवठार ॥४११

रामायणमंजरी का सन्देह' इस प्रसंग में दृष्ट्य है—

सूर्याश्रमगौ कोन्दि अनापेग्री निबिष्टये ।

युवा परं यदि बने नरनारायणावुपी ॥ द्विपिग्या १६

राक्षसीय के हनुमान भी ऐसा ही 'सन्देह व्यक्त करते हैं—

सूर्याश्रमौ कि सुशामुप्रोच्छाविग्याविष्णु किम्पु माजावतीभो ॥१०।१७

किम्पु 'मानस के दोहे में जो चमत्कार है वह इनमें नहीं भी नहीं है ।

(११) अपहनुति—मानस के इस समुच्चय में 'हेम्बाननुति से अधिक परमाकार दिगताई बढ़ता है—

प्रभु प्रान बहबावन भारी । घोषत्र प्रपम पयोनिधि भारी ॥

तव रिपु नादि रदन जनचार । मरेड बहोरि जयत्र लेहि धारा ॥४।१

जबकि हनुमन्नाटक के तमम वर्मन में वह विरोधा नहीं है ।

राम रवतारणत्रयाप-द्वन्द्वशासावतीपोपिता ।

तमे चारिषपत्रतो रिपुवपुत्रेनाग्यमि पुरिता ॥१०।८१

(१२) दीपक—सूर्यदत्त-राक्षस-सुधा' में इस अंतार का अचछा निरूपण

बचनं बनामते सरसीरुहाणि भू गालमाला जगद्विधाय ।
 एषीषुवास्तेऽप्यवसोवय वैधीमंतं मुञ्जनाधिपतिर्जुषोप ॥
 स्वर्णं सूवर्णं दहते स्वदेहं विरोप कान्तिं तव दन्तपल्लवम् ।
 बिलोकय पुन मणिबीजपूर्वं पल्लं बिबीर्णं ननु दाडिमस्य ॥ २।२४-२५

रामायणमञ्जरी की निम्नांकित उक्तियाँ भी इस सम्बन्ध में दृष्टव्य हैं—

धयज्ञोणस्य घटिन वषस्य च मनोमुक् ।
 धाता एवं निमित्ता मुमु कश्चित्संजीवनोपधि ॥ अरण्य ॥ ७६२

इसी प्रबंध में 'बामरामायण' की इन पंक्तियों की भी तुलना की जा सकती है—

इष्टनिष्ठ इवाग्नेन बहिता वृष्टिम् गीषामिष ।
 प्रप्तानादभिनिष विद्रुममता वयामेव हेमवृष्टि ।
 पारप्यं कनका च कोक्लिषपुरुषुष्टेति प्रस्तुतं ।
 धीताया पुरतश्च ह्यस्त विधिना बर्हां समर्हा इव ॥ १।४२

(१४) पर्यायोक्त—राम-जटाभ्यु-संवाद में 'पर्यायोक्त' अलंकार का यह विवरण
 बस्तुतः प्रसंगिक है—

सोता हरन, तात जनि बहेउ विता छन जाइ ।

जो मैं राम त कुल सहित कहहि दयानन साइ ॥ १।३१

यहाँ दशरथ रावण-निघ्नन के संकेत से रावण के स्वर्गगमन का ही पर्याय से वर्णन
 किया गया है । इसके निम्नांकित मूल श्लोक के अनाशयक विस्तार को त्याग कर
 तुलसी ने सारग्रहण में अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय दिया है—

'बुभारखेकमिमां बभूहृत्किपौ तातागितके मा वृषा ।

रामोऽहं यदि तद्विने कतिपयैर्वीरानभारकग्वर ।

घार्थं बभूवनेन सेग्वबिजयी बल्य स्वयं रावण ॥ हनु० ॥ १।१९

(१५) सहोक्ति—राम-यजूर्मय' के प्रकरण में इस अलंकार का निम्नांकित
 उदाहरण प्राप्त होता है—

सब कर संसत अरु अम्पान् । मरु महीपण्ड कर अदिमान् ॥

भृगुपति कैरि गरुड परजाई । मुर मुनिवरणु कैरि बरपाई ॥

सिय कर सोषु जनक पदितारा । रागिण्ड कर दारन दुख बाषा ॥

संभु चार बड़ बोहिनु पाई । बड़े जाइ सब संभु बनाई ॥ १।२६०

यहाँ पर 'संभु' शब्द के प्रभाव से 'सहोक्ति' अलंकार है और सब बस्तुओं के एक-
 जैव-रूपन' से 'सुख्ययोगिता' भी दृष्टव्य है । इसके मूल संस्कृत-श्लोक में केवल
 'सहोक्ति' है,—

उत्तिष्ठं सह कोविदस्य पुनर्कं सार्धं भृगुनीमिषं ।

दूषानो जनकरय संतपथिया ताकं समारटनितम ।

बैदेशीमनसा सर्वं च सहाकृष्टं ततो मार्गव—

प्रीतार्हकतिदुर्दैवेन सहितं तद्व्यममर्थं पनु ॥ हनु० ॥ १।२१

(१६) परिकर—इस अर्थकार में साभिप्राय विशेषणों की अपेक्षा होती है—
'सुमत् भवति चरित्रं बंधाना । इत्तं मुञ्चते उता वक्तव्याना ॥

सांख्यो वननिधि नीरनिधि बलनिधि त्रिभु बारीष ।

सत्य शोयनिधि कपति जडनि पयोनि नदीस ॥ ६।१६

यहाँ समुद्र के १० पर्याय साभिप्राय दिए गए हैं। 'महानाटक' के इस उत्तम वर्णन में भी यही अर्थकार है -

'श्रुत्वा सागरबंधनं पशुधिरा सर्वैर्मुखैरेकदा

दूर्गपुच्छति वातिकं सचकिं भीरवाकृम संभ्रमात् ।

बद्धं सत्य मपानिभिर्वलनिधि' कीभासभिस्तोयनिधि'

पायोभिर्वलनिधि पयोविद्वभिर्षीरानिधिर्वातिपि ॥ महानाटक ७।१६

यहाँ पर 'लंकाबाह के समय पानी की पुकार करता हुआ' और 'पेतुबन्ध' सुनकर समुद्र को बिचकारवा' हुआ राजन फिर वो बार समुद्र के १० १० नामों का उच्चारण करता है। इन १० नामों में १६ नामों की पुनरावृत्तिमान है। तुलसी ने इस विरसता से बचने के लिए ही नये प्रचलित पर्यायों के साथ केवल एक बार इस अर्थकार का प्रयोग किया है।

(१७) परिकराकुल—इस अर्थकार में साभिप्राय विशेष्य का प्रभाव दृष्टि पोषक होता है। शीता-कृत अष्टोक्त-प्रार्थना में अष्टोक्त अर्थ के प्रयोग में इसकी सादिकता स्पष्ट है -

सुमत् विनय मम विदप्य अशोका । सत्यनाम क्व ह्य मम शोका । २।१२

प्रसन्नराज्य के निम्नांकित श्लोक से यह पंक्ति प्रभावित अवश्य है किन्तु यहाँ यह विशेषता नहीं मिलती है।

दुःख सकल्पं वेत्त श्रीमन्नलोकवनस्पते

बह्वकनिकामेकां तावन्मम प्रवटीकृष ॥ ६।१२

(१७) अप्रस्तुत प्रशंसा—अप्रस्तुत की उक्ति से प्रस्तुत विषय का स्पष्टीकरण करना इस अर्थकार का लक्ष्य है। राजन के प्रति शीता की इस प्रशंसा में उपयुक्त अप्रस्तुत की योजना की गई है -

'सुमु बह्ममुञ्च सद्योत् प्रकाशा । कबहुँ कि नतिनी करइ बिकाशा ॥ १।१६

इसके मूल श्लोक में भी यही अर्थकार है किन्तु उसमें 'मानस' के 'सुमु बह्ममुञ्च' वैसे ही सामर्थ्य नहीं है -

'अपि पद्योत् मासाप्रिय समुग्धीजति पदिमनी ॥ प्रसन्न० ६।२० के बाद

(१६) परिसंख्या--'रामराज्य-वर्धन' में इसका एकमात्र उदाहरण मिलता

है -

एक अतिम कर भेद जहूँ नर्तक नृत्य समाज ।

पीठहुँ मनहि सुनिय अत रामचन्द्र के राज ॥ ७१२२

‘पद्मपुराण के इसी प्रसंग में इस अस्कार का प्राचुर्य है किन्तु उसी विष्ट कल्पना वाले ऐसे अस्कारों के प्रति अधिक रुचि नहीं दिखाते हैं—

सदम्मा निम्नना यत्र न यत्र जनता नवचित् ।

कुलाग्नेव कुचीनाति बर्चानां न धनानि च ॥

वष्ट परदुकहासवासस्यजनरात्रिपु ।

आतगभेपु माग्यच नवबिरभोपरोपोज ॥

दागहानिर्मज्जेव तीरणा एव हि कण्ठका ।

बाभेपु गुणदिरसेवो बाभोक्ति. पुरतके दृढा ॥ पाठास । २।११ ४३

(२०) सार—उत्तरात्तर उत्तर्य में इस अस्कार को रिचति मानी जाती है ।

तुसही ने यहाँ राम के मुँह से अपने भक्त की सर्वाधिक प्रियता प्रतिपादित की है—

सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सबसे अधिक मनुज मोहि माए ।

तिग्दमंह द्विजद्विजमंह प्युतिघारी । तिग्द महें नियम परम अनुकारी ॥

तिग्दमंह प्रिय बिरक्त पुनि प्यामी । प्यानिहुँ ते अति प्रिय बिप्यामी ॥

तिग्द ते पुनि मोहि प्रिय निज दाया । जेहि मति मारि न बूझरि भाया ॥ ७१२६

‘ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी इस प्रसंग में यही अस्कार है किन्तु वहाँ भक्तों से भी अधिक अस्कार को प्रिय बतला कर समस्त वर्णन की प्रणवा और उपयोगिता का विवरण कर दिया गया है जब कि तुसही ने अस्कार के साथ-साथ अपने विशिष्ट उद्देश्य का भी सामंजस्य प्रस्तुत किया है—

सर्वेषुप्रियमाभेय ब्राह्मणारच मम प्रिया ।

ब्राह्मणारच प्रिया सरमी सतयं बरासि स्थिता ॥

ततोऽपिक्वा प्रिया राया प्रिया भद्रास्ततोऽपिक्वा

ततोऽपिक्वं न्करो मे मारि मे न्करात्प्रिय ॥ श्रीकल्पव्राम ।

उत्तरार्थ । ७२।२९ ११

(२१) भाव शकलता—जमें अनेक भाव परस्पर मिश्रित होकर किसी

एक मुख्य भाव के अधीभूत हो जाते हैं—

बहु विवटा सनु राजकुमारी । उर उर सागत मरद सुरारी ॥

प्रभु ताते उर दृष्ट न ठेही । एहि के हृदय बसति बँदेही ॥

एहि के हृदय बस जानरी जानरी उर मम बास है ।

मम उर मम अनेक सागत बास सब कर भास है ॥ १।१११

यहाँ मति बिरहें अनुया स्मृति और बिगडा आदि भाव माता के प्रति विवटा के ‘मजामाव’ के अंग हो गए हैं । संस्कार वर्णों के उत्तम वर्णों में भी यही अस्कार है, किन्तु सीमा के आरवाणन की दृष्टि से ‘मानस’ में जो उमका मद्रव है, बहु अगम्य नहीं है

अयं यावदावतसुपुद्गयपीठो रक्षुपतिः शिरस्येवासक्तो न दक्षददमस्य व्यचयति ।
अयं टावतावद्दहति मुखमुष्णैरंसमुत्सः किरीतस्मिन्मैत्री जनकपतिपुत्री निवसति ॥
प्रसन्नराभव । ७।४६

यो रामो न अपान कस्यसि रचे तं रावणं सामक-
स्य मेमो विवप्रातु वस्त्रिमुखनभ्यापापीभ्रष्टापर ।
हृत्स्य प्रतिवासरं वसति सा तस्यास्वहं रावणो
मभ्यास्ते मुखनाबली विकसिता द्वीपं समं सप्तमि ॥ हनु० । १४।२६

(२२) निष्कप—मोस्वामीजी की अस्कारपट्टा का तुलनात्मक उत्कर्ष प्रस्तुत करने के लिए यहाँ अधिकतर तत्सम वर्णनों को ही आधार बनाया गया है । इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि अस्कारों के प्रथम में तुलसी उन वर्णों से प्रभावित अपना उपद्रव है । वस्तुतः बात यह है कि संस्कृत के ग्रंथों में वर्णनों में अल्प अस्कार भी पाए जाते हैं, जबकि तुलसी ने केवल उपयुक्त अस्कार का ही पुराव किया है और उसी को आधारक महत्त्व दिया है । वे अच्छी तरह से जानते हैं कि भाव रूप गुण आदि की उत्कर्ष-व्यंजना के लिए कौन कौन से अस्कार अधिक समर्थ होते हैं । इसीलिए उनकी अस्कार योजना की सबसे बड़ी विशेषता यही दिखाई पड़ती है कि उन्होंने अस्कारों को आवश्यक रूप में प्रयुक्त नहीं किया है अपितु सादृश्यविधान गुणरूप-वर्णन उत्कृष्ट-वैचित्र्य और अस्कार-विशेष के साथ साथ उन्होंने उन अस्कारों में मर्यादा उपयुक्तता और सोद्भूतता का भी प्रतिभा सम्पन्न निर्वाह किया है । अपने समस्त प्रबन्ध विस्तार में उन्होंने प्रसंगानुकूलता पर विशेष बल देते हुए केवल समर्थ अस्कारों को ही उचित प्रथम दिया है । आचार्य रामचन्द्र मुनि के अनुसार मोस्वामी जी की इस अद्भुत विशेषता का कारण है उनकी अपूर्व प्रबन्धपट्टता जिसके बल से उन्होंने अपनी प्रबन्ध-भारा के साथ अधिकतर प्रकरण प्राप्त वस्तुओं को ही लेकर अस्कारों को इस उपार्थ से मिलाया है कि बोक मान्य नहीं पड़ता ।^१ वे पुनः कहते हैं कि वस्तुतः अस्कारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों या तथ्यों की व्यंजना को प्रस्फुरित करते हुए पाए जाते हैं अपनी असंग अपेक्ष दक्षक दिखलाते हुए नहीं ।^२

अस्कारों के सम्बन्ध में विद्वानों की तरफ से बड़ी मांगवता रही है कि उनका उन्नी प्रयोग किया जावे जब उनसे भाव व्यंजना वस्तु के अधिकतम उत्कर्ष की अधिक व्यक्ति हो सके क्योंकि पौरुष-सदृश के मोक्ष में इस तरह की उपेक्षा करने के कारण लक्ष्यों को न तो कभी अधिक पट मिला है और न मिल सकता है । मोस्वामीजी इस तथ्य से भी परिचित थे कि अधिक अस्कार काव्य अमसाधारण के लिये न तो सुभव होते हैं और न प्रसन्ननीय इसीलिए उन्होंने अपने 'मानस' में केवल उन्नी

१ आचार्य रामचन्द्र मुनि—मोस्वामी तुलसीदास—सप्तम संस्करण पृ० १६६

२ " हिन्दी साहित्य का इतिहास—नवम संस्करण, पृ० १४३

स्वर्गों पर अलंकारों का प्रयोग किया है, वहाँ से प्रसंगानुकूलता के साथ-साथ भावोत्कर्ष के भी विचारक सिद्ध हुए हैं। इस दृष्टि से सरकत बहियों की तुलना उनकी अलंकार-योजना अधिक प्रचलित और महत्वपूर्ण है।

५ शैली विवेचन

(१) शैली का अर्थ—प्रत्येक साहित्यकार अपने साहित्य में अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के अधिकाधिक भाग को विविध माध्यमों से अनुभवयुक्त बना दे चाहता है। प्रेक्षणीयता के विचार से यह उसको इतना सरस स्पष्ट और सुबुझ बना देने का प्रयत्न करता है कि उसके मन का विषय अपनी समस्त सूक्ष्मतम रसा और रंघीनियों के साथ प्रत्येक पाठक बसबा थोड़ा के मन में भी उर्वो का एक अंकित हो सके। इस प्रक्रिया में उस कृति के साथ कृतिकार के व्यक्तित्व का एक समान सम्मिश्रण हो जाता है कि प्रत्येक शब्द संप्राण होकर अपने अर्थ (साहित्यकार का पक्षोपान करने सगता है। व्यक्तित्व के इस प्रकार के अंतर्गत व्यक्तित्व, आकृति प्रकृति, प्रतिभा कल्पना निरीक्षणशक्ति विवेचन ज्ञानुरी व्यवहारानुगत प्रेक्षण-शुद्धता एवं सर्वांगीण प्रभावशीलता आदि-आदि की समस्त विषयता समन्वित होती है जिनका समस्त प्रतिबिम्ब उसकी प्रत्येक कृति में गुप्त हो जाता है। शैली को 'व्यक्ति' ही समझने की साम्यता में यही रहस्य दिया हुआ है।

प्रत्येक कृति में दो अनिवार्य तत्व होते हैं—अनुभूति और अभिव्यक्ति अनुभूति उसकी मूलभूत बस्तु होती है और अभिव्यक्ति उसकी शैली। ये दोनों अन्वयोन्मायित रहती हैं अतः बस्तुभेद से शैली भेद हो जाना बहुत स्वाभाविक है बस्तु का पात्र और रस के साथ भी अविच्छिन्न सम्बन्ध होता है, क्योंकि पात्र उस प्रकारक है और रस उसकी आत्मा है, अतः पात्र-भेद और रस-भेद से भी शब्द अनेक रूप हो जाया करते हैं। शैली की इन अनेककल्पता का परिचय उसकी भाषा से प्राप्त होता है क्योंकि वही उसकी माध्यम अथवा वाहिका होती है। भाषा शब्द और अर्थ सुगंधयुक्त होते हैं। सुगंध अलंकार उद्देश्य के अर्थ कहलाते हैं अतः शैली की विविधता में उनका विविध रूप भी दर्शनीय होता है। 'मानस के निर्माण में सुन्दरी का ध्यान आरम्भ से ही शैली के तर्कों की ओर वेगिष्ठ जान पड़ता है। प्राथमिक श्लोक में ही 'दापी-विनायक-अप्यना म अर्थ अर्थ रस तथा एतत् का साभिप्राय स्मरण करना और अपने भाषा विवेचन के अतिरिक्त' एतत् की पाठ्य करना इस विधा में उनकी विशेषता का परिचायक है।

इतनु-दृष्टि से मानस पर माना पुराणनियमान्य रामायण तथा महासाहित्य का प्रभाव स्वयं 'मानसकार' मानते हैं। पुराणों से उद्गीर्ण अलंकार की अस्मात्पर अर्थों थोड़ा अल्प परम्परा कर्मीक शायों का अतिशयोक्तिपूर्ण अर्थ तथा अर्थ के माहात्म्य और अधिकारियों के निर्देश आदि का उद्गार किया है अतः उनमें शैलीक शैली के उद्गार दर्शन हो जाते हैं। विनायकों के आचार पर उद्गी-

विभिन्न स्तुतियों, तर्कों और शार्ङ्गिक तर्कों का सरस प्रतिपादन किया है। अतः उन स्थलों में स्तुति-शैली शार्ङ्गिक शैली और शार्ङ्गिक शैली का मधुर सम्मिश्रण मिलता है। रामायणों में 'वाल्मीकि रामायण' से उन्होंने मूल कथा के विभिन्न वर्णन और अष्टात्मरामायण से मक्ति और दर्शन के भी विभिन्न अर्थों का स्वीकरण किया है। अतः वहाँ उस प्रकार की शैली की विशेषता भी वर्तनीय है। अथ्य साहित्य में वे शैली के वर्णन से भी अत्यधिक प्रभावित हैं। अतः आत्मिक प्रसंगों में उन्होंने उसको भी महत्त्वपूर्ण स्थान दे दिया है। महाकाव्यों की शैली से प्रभावित होकर उन्होंने संसारम्भ में ब्रह्मा ब्रह्मनिष्ठा और सत्यतत्त्व प्रसंग आदि का वर्णन किया है तथा अथ्य प्रकृति-वर्णन विद्या-वर्णन युद्ध-वर्णन आदि में मानव-जीवन से सम्बन्ध विभिन्न व्यापारों का भी उन्होंने बड़ी कुशलता से निर्याह किया है। नाटकों में प्रसन्न रासव एवं हनुमन्नाटक अथवा महानाटक आदि से आकृष्ट होकर उन्होंने पुष्पवाटिका मिलन परपुराम-मिलन सीता रासव-संवाद और अंगद रासव-संवाद आदि प्रसंगों में नाटकीय शैली का भी सरस समन्वय किया है। नीति-वर्णन में अर्ध हरिश्चन्द्रक आत्मव्यतीति शुक्लीति हितोपदेश पञ्चतन्त्र आदि के अनुसार 'मानस' में उपदेशक शैली का भी रोचक निरूपण मिलता है। इस प्रकार वस्तुमेव से 'मानस' में विभिन्न शैलियों का अच्छा परिचय सुलभ हो जाता है। डा० मनीरम मिश्र के अनुसार 'रामचरित-मानस' में गोस्वामीजी ने पुराण नाटक और महाकाव्य तीनों ही शैली की विशेषताओं का समन्वय कर दिया है।—पुराण के समान उसका प्रारम्भ है— इसके साथ ही साथ बटना-संपदन और फनिक विकास महाकाव्य का सा है।— संवादों की सजीवता चरित्र का सूक्ष्म चित्रण चार्तसिाप का जोरपापन आदि नाटकीयता के लक्षण हैं।'

वस्तु के अतिरिक्त पाशों की दृष्टि से भी 'मानस' की शैली के अनेक रूप मिलते हैं। दैवता और राजस मूनि और नागरिक राजा और सेवक, विद्वान और अशिक्षित रात्री और दासी आदि सभी पात्रों के चिह्नों के व्यक्तीकरण में 'मानस' का ने स्वामाधिकार का सफल चित्रण किया है। इन पात्रानुकूल शैली के माध्यम से साहित्यकार विभिन्न पात्रों की भावियों को उन्हीं के मूल स्वर में उपस्थित करता है और इस प्रकार उनको अनुवाद की कृत्रिमता एवं पुष्टता से बचाकर एक वैयक्तिकता एवं मौलिकता से सम्पन्न बना देता है। इस विद्या में तुलसी अनुपम और अद्वितीय हैं। 'मानस' के निम्न संवाद इसके प्रमाण हैं। एक और 'चरित्र वसिष्ठ-संवाद' में वहाँ गुप्ता और चिह्नता के वर्णन होते हैं—

वे मुद् चरम रेवु सिर परहीं । ते जनु सकस विभव बस करहीं ॥
मोहि एम यह प्रनुभवत न दुर्जे । सबु पायस रज पावनि पुर्जे ॥

राजल राजर नामु बनु सब अनिमल पावार ।

फल बनवामी महिष मणि मन अनितापु तुम्हार ॥२११

वही दुखरी और घाबीनों के संबन्ध में उसकी प्राम्थता भी स्पष्ट है—

बाब वहाँ मणि तहूँ पहुँचाई । फिर कबहोरि तुम्हहि सिद्ध नाई ॥२११२२

तबना ही नहीं वहाँ बर्ग-विशेष की बोलियों को भी महत्व प्राप्त हुआ है । इस सम्बन्ध में गूढ़ का यह सबाद दृष्टव्य है—

तर्पित मृत्ति परनी होइ पाई । बाट परइ मौरि बाब उड़ाई ॥

एहि प्रतिपासत सबु परिवारु । नहि नामत कछु बतर कषारु ॥२११००

वही परनी बाट परइ उड़ाई और कषारु बाबि अन्न विचारणीय है । स्त्री मर्ष की भाषा में कैचरी और मन्वरा के संवादों में उनके स्वर का अन्तर भी दर्शनीय है—

त्रिपदादिनि सिद्ध भोगिहृदं छोड़ी । सपनेहुं तो पर कोपु न मोही ॥

सुविनु गुमंवल बामकु छोई । तोर कहा कुर बेहि दिन होई ॥

कोर जोमु कषारु बभामा । भसेउ कहत दुष रजरेहि भागा ॥

हबहुं कहि बब ठकुर छोहासी । माहि त मोन रहव दिनु रासी ॥

कारे कोपु सुमात हमार । अनमन देखि न जाइ तुम्हारा ॥२११३ १९

वस्तु और पाप के अनुकूल शैली का विद्यमान फिर भी कुछ प्रयत्न-साध्य है किन्तु रसानुसूता के निर्वाह में ही कवि की कारवधिक कला-सुसमता और हृदय प्रकणता की बरीदा होयी है । संस्कृत के काव्य-शास्त्रियों के 'पद-संबन्धना को रीति बतलाते हुए उसको 'रसादि को उपकारिका' भागा है । यह 'रीति इस प्रकार शैली के बहुत निकट ही सफती है किन्तु जसमें व्यक्तियत्त वैशिष्ट्य के स्थान पर प्राग्भवात वैशिष्ट्य को प्रधानता है ही यदि है और इसी दृष्टिकोण से उसके बंदर्भों तोड़ी पावानी और माटी आदि चार भव किए गए हैं ।' बर्तमान परिस्थितियों में इन भौतिक विद्येपनाओं का उठना महत्व नहीं रह गया है क्योंकि आज तो व्यक्तियत्त के विस्फोट की ऐसी अघिक विचारों हो गई हैं कि उनमें ही साम्य की सोच कभी-कभी एक समस्या हो जाती है ।

एत भव मे शैली को विविधता में यह स्मरणीय है कि इन सभी रसों के स्थायी भावों में 'नामक' के मूल दो भावों सुष और दुष का ही विस्तार प्रतीत होता है । रसि हाण, अनाह और विस्मय पवि मूल के विनाश है तो घोष, शोक भय और कुकुना दुःख की देन है । इन भावों के उपपुष्ट स्थानों में मानव मन को अनात स्थितियों के दयाव निकान में ही कवि की बचकता मानी जाती

है। 'मानस' में इस दृष्टिकोण से विचार करने पर रामजन्म, पुण्यवाटिका मिलन, राम-विवाह और रामानिवेक आदि सुखमूलक प्रसंग हैं तथा रामनिर्वाचन बधरथ मरण सीता-हरण और लक्ष्मण-मूर्च्छा आदि दुःखमूलक प्रसंग हैं। इन सभी प्रसंगों में तुलसी का मन अधिक रमा है और वह पाठकों को भी उतना ही रमा सका है। संस्कृत के ग्रन्थों में इन प्रसंगों को न तो आक्षेपक महत्त्व प्राप्त हुआ है और न उत्तम वर्णनों में ही कवि के उस उत्साह का चित्रण है, जो मानस में सरलता से दृष्टिकोचर हो जाता है।

रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया में दो क्रमिक स्थितियाँ होती हैं। पूर्व स्थिति में आसम्भन की प्रेरणा से आशय, अनुभूत भावों का स्वयं अनुभव करता है और उत्तर स्थिति में वह उनका अनुभव भी कराता है। प्रथम स्थिति में 'ध्यानरस' होता है और द्वितीय स्थिति में 'वर्णन रस'। तुलसी ने 'ध्यान रस' का निरूपण इस प्रकार किया है—

प्रसन्न भया कै सहज सुहार्द । जल बिहीन मुनि छिन्न मन भाई ॥

हर हियं रामचरित सब आए । प्रेम मुक्तक लोचन बस छाप ॥

धीरजुनाथ रूप उर आया । परमानन्द जमित सुख पाया ॥

ममन ध्यानरस दृष्टजुम पुनि मग बाहर कीन्ह ।

रसुपति चरित महेश तब हरपित बरनै कीन्ह ॥१११११॥

यह स्थिति कैवल्य से दण्ड (राज) तक ही रहती है जिसमें आशय या तो धीन रहता है या अस्पृष्ट बोलता है। उसके पश्चात् उस स्थिति का वर्णन करते समय वह उसके साम्य और साहचर्य की अनेक तरुण कल्पनाओं एवं उद्भावनाओं की अतिव्यक्ति करता है जिसके विभिन्न प्रकारों का नाम ही अलंकार है। अलंकारों के अतिरिक्त इस रसवृत्ति शैली में भावुपार्थि सुषों की बोलना का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। उसके समन्वय से वहाँ एक ध्वन्यात्मकता का स्वतः प्रावृत्ति हो जाता है। 'मानस' के इस मधुर वर्णन में इन सभी तथ्यों का सामन्वयस्य वर्तनीय है—

कंकन किंकिन नूपुर मुनि मुनि । कहुत सतत संम राम हृदय मुनि ॥

मानहुँ महन बुन्दुबी कीन्हू । मनसा बिस्व विजय की कीन्हू ॥

रखि सीय सोमा मुख पाया । हृदय सदाहृत बचनू न आया ॥११२३०॥

यहाँ रसनिष्पत्ति की पूर्वोक्त दोनों क्रमिक स्थितियाँ हैं, अलंकार भी मन में बसे हुए विषय को स्पष्ट कर रहे हैं और मुगानुषय वर्णन-साम्य तथा ध्वनि-साम्य दोनों ही अनुरणनात्मकता के साध-साध हृदय में एक मीठी मुद्रगुणी को भी कल्पन कर रहे हैं। कठोर वर्णनों में भी 'मानसकार' की ओजस्वी प्रतिभा सर्वत्र जागृत रही है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

देखिगु बाद बपिगु के छट्टा । अति विरासत तनु भानु सुमदटा ॥

बाबाई पनहि न अबबट पाटा । परैठ फोरि करहि गहि बाटा ॥
 फटफटाहि कोटिगु मट गर्जहि । वसत भोठ काटहि मति तर्जहि ॥६४१॥

इन दोनों प्रकार के वर्णनों में कमरा मायुर्वं और ओज पुन के अतिरिक्त प्रसाध गुण की विशेषता और वर्णनभारमकता भी दृष्ट्य है ।

प्रबन्धभारमकता की दृष्टि से 'मानस' में 'दोहा चौपाई' शैली की प्रमुखता है । तुमसी के समय में 'बम्ब की छप्पय-शैली' सूर की गीतरौली, कबीर की दोहा-शैली, माटों की कवित्त-सर्वेपा-शैली और बायसी की दोहा चौपाई-शैली विशेष रूप से प्रोढ़ता प्राप्त कर चुकी थी । इनमें से प्रबन्ध काव्यों का निर्माण केवल छप्पय और दोहा चौपाई-शैली में ही उपसम्भ्य था । 'पञ्चमचरित' बादि अपभ्रंश के चरित शैली के अनेक महाकाव्यों में भी इस दोहा चौपाई-शैली को प्रमुखता मिली थी, जो सरकारीय कवियों के लिए एक आकर्षण की वस्तु थी । अतः तुमसी ने 'मानस' के निर्माण में महाकाव्यरच के विचार से दोहा-चौपाई-शैली को ही प्रमुखता दी ।

(२) संस्कृत काव्यों की शैली और 'मानस'—'मानस' की शैली के साथ संस्कृत के विभिन्न शब्दों की शैलियों की तुलना करने से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं कि एक तो उनमें वस्तु और पात्र से अधिक रस की अनुकूलता का विशेष ध्यान रखने का प्रयत्न किया गया है । पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार उनमें वर्णनात्मकता की प्रधानता होने से मार्सकारिक शैली को भी स्वाभाविक प्रथम स्थान दिया है । जिसमें गुणभोजना का भी महत्वपूर्ण स्थान है । दूसरे उनमें पौराणिक, दार्शनिक और उपदेशक शैली के अभाव में उनका शुद्ध काव्यरूप अधिक दिखार उठा है जो कि 'मानस' में उपर्युक्त शैलीय के प्रभाव से वही-कही कृत्रिम रस का गया है । जहाँ तक नाटकों की शैली का सम्बन्ध है उनमें भी रस की प्रमुखता होने से ओजपूर्ण-शैली का अधिक निरूपण हुआ है । प्रथमप्रकाश, वैपिकीकस्याप और अग्रतत्प्राय बादि नाटकों में मायुर्वं शैली का अच्छा विकास दृष्टिगोचर होता है । केवल मयमति के महावीरचरित और उत्तर रामचरित दोनों नाटकों में अमरा ओज और मायुर्वं से सम्पन्न शैलियों का बड़ा स्वाभाविक समावेश किया गया है । यदि उनकी इस द्विविध शक्ति के अर्थन एकत्र हो सकते तो सम्भवतः तुमसी के साथ तुमना के लिए अनेक नाम—संशोध के साथ ही यही—ग्रहण कर लिया जाता ।

(३) निष्कर्ष—शैली की इन विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि मोरबामीजी के अतिमंजुमता के सम्पादन के लिए ही 'मानस' में विभिन्न शैलियों का सरस और सोदृश्य सम्मेलन किया है । अपने इस मौलिक प्रयास में उन्होंने अपूर्व सफलता भी प्राप्त की है । आचार्य रामचन्द्र गुप्त के शब्दों में हम कह सकते हैं कि मोरबामीजी अपनी सर्वतोमूर्ति प्रतिभा के इस से अनेक (शैलियों के) दोहराव को...

साहित्य-क्षेत्र में प्रथम पर के अधिकारी हुए हैं। सारांश यह है कि हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचना-विधियों के ऊपर मोक्षामीजी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता और किसी को प्राप्त नहीं है।^१

३ काव्य स्वरूप-विवेचन

(१) मानस का महाकाव्यत्व— रामचरितमानस एक 'महाकाव्य' है। धार्मिक लक्ष्यों के अनुसार^२ उसमें वस्तु, पात्र रस और विविध वर्णनों का उचित सामन्वय है। 'मानस' में 'सर्वस्व' की योजना 'आर्य' है और वह 'वास्तविक रामायण' से प्रभावित है। उसके नायक मर्यादा-पुण्योत्तम राम हैं जो 'बीरोबात' नायक के बनिष्ठ गुणों से भी अधिक गुणों से सुसम्पन्न हैं। उसमें 'बीररस' अनीरस है और अन्य रस भी यथास्थान निबोधित हुए हैं। नाटक की समस्त 'सन्धियाँ' भी उसमें विविधत् प्राप्त होती हैं। उसका कथानक प्रसिद्ध और ऐतिहासिक है। 'मर्यादा-काम-भोष' आदि का भी उसमें आद्योपान्त निरूपण किया गया है। धर्म-रस में देवताओं की वन्दना भी नियमानुसार है। इसके अतिरिक्त महाकाव्य के अन्य लक्षणों में परमविन्दा सज्जन-प्रवृत्ता ऋतु प्रवृत्ति संयोग विधोक्त युद्ध, विवाह और पुत्रोदय आदि के भी विस्तृत वर्णन वहाँ सहज सुलभ हैं। नायक के नाम पर उसका 'नामकरण' भी धार्मिक नियमों के अनुरूप ही है। महाकाव्य के अन्याय स्पष्ट सङ्गण भी उसके स्वरूप पर कटित किए जा सकते हैं।

इस प्रकार मानस का 'महाकाव्यत्व' सर्वथा सुनिश्चित है। फिर भी कुछ विद्वान् उसे दूसरे प्रकार का काव्य समझते हैं। डा० श्रीकृष्णसाहू के अनुसार 'मानस महाकाव्य नहीं बल्कि पुराण है उसमें काव्यरसमयता भी है अतः उसे 'पुराण काव्य' कहा जा सकता है।^३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार 'स मानस एक चरितकाव्य है। वे कहते हैं कि 'हिन्दी में चरित काव्य बहुत जोड़े हैं। इसभाषा में तो कोई ऐसा चरितकाव्य नहीं जिसने जनता के बीच प्रसिद्धि प्राप्ति की हो। चरितकाव्य में जबकी भाषा को ही सफलता प्राप्त हुई और जबकी भाषा के सर्व श्रेष्ठ रस हैं रामचरितमानस और पद्यावत। उनके अनुसार प्रबन्ध काव्यों में समस्त जीवन को प्रस्तुत करने वाले काव्य दो प्रकार के हो सकते हैं—व्यक्ति-प्रधान और घटना-प्रधान। इस दृष्टि से संस्कृत काव्यों पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि प्रथम प्रकार के प्रबन्धों को हम व्यक्ति-प्रधान कह सकते हैं जिसके अन्तर्गत

१ डा० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पञ्चम संस्करण

२ साहित्य दर्पण ६।३१२-३२२ / पृष्ठ १३४, १३७

३ डा० श्रीकृष्णसाहू—मानस दर्शन पृष्ठ १४७

४ आर्यसौ प्रवृत्तिसौ—डा० रामचन्द्र शुक्ल—चतुर्थ संस्करण भूमिका भाग पृष्ठ २०१

सदस्यों के अतिरिक्त और भी बहुत सी विशेषताएँ हैं। राय के चरित्र-चित्रण में यह कहा जा चुका है कि यद्यपि वे 'भीरोबात नायक' हैं फिर भी उनमें उस नायक के बसित प्रसिद्ध गुणों से भी बढ़ कर अन्य अनेक गुण प्राप्त होते हैं। यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि 'लक्षण-संघन-ध्याय' के अनुसार समर्थ महाकवि जिन लक्षणसंघों का निर्माण करते हैं उन्हीं के आधार पर काम्य-शास्त्रज्ञ अपने शास्त्रीय संघन निर्धारित कर लेते हैं। नये कवि अधिकतर इन्हीं लक्षणों से प्रेरित होकर अपने काम्य का सुजन करते रहते हैं किन्तु उनमें जो विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न होते हैं, वे कदावधियों में न बंध कर अपनी काम्यसाधिका के स्वतंत्र समेप का ऐसा परिचय देते हैं कि काम्यसाहित्यियों को अपने संघनों में तदनुसार परिवर्तन करने के लिए विवश हो जाना पड़ता है। इस प्रकार यह कम अचिरात् यति से ज्ञात करता है। हिन्दी में ऐसे महीन मौलिक संघनों के अभाव के कारण, आज हमें संस्कृत के लक्षण-संघों पर ही अधिकतर निर्भर रहना पड़ता है जिसका कूपरिणाम यह भी हो सकता है कि 'महाकाम्यत्व' के लिये कम से कम आठ सगुणों को अनिवार्यता मान लेने पर किसी को 'मानस' की सप्तकाण्ड-योजना भी दूषित जान पड़े। श्री के० एच० रामा स्वामी शास्त्री चित्रोमणि के अनुसार 'लक्षण-संघों पर आधारित काम्य उन सभ्य संघनों की सूचना में कुछ हलके भी होते हैं जिन्हें देखकर वे लक्षण-संघ बनाने लगे थे। वे इसे भी सत्य मानते हैं कि कवि के स्वतंत्र चिंतन में वे लक्षण-संघ बाधक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिए महाकवि उनके बन्धनों से दूर रह कर अपनी प्रतिभा एवं कल्पना का प्रसरण निरूपण करते हैं।'

उपरोक्त विवेचन का यही तात्पर्य है कि मानस में पुरुषों एवं चरित काम्यों आदि की सौम्यत विशेषताओं को देखकर उसके 'महाकाम्यत्व' का विस्मरण कर देना उपयुक्त नहीं है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि किसी भी काम्य के महाकाम्यत्व के लिए एकरस्यम्बी बड़ा देवस वस्तु के गौरव को महत्त्व देते हैं 'और कबीरदास रबीरदास 'नायक के गौरव का प्रतिपादन करते हैं' यहाँ 'मानस' के निर्माण में 'मायसकार' ने वस्तु और नायक ही नहीं अपितु उस प्रकृति चित्रण जीवन-वर्तन, समाज निरूपण और आधार बर्तन आदि सभी तत्वों का जो 'महत्त्व' महीनान् रूप प्रस्तुत किया है वह इस बात का प्रमाण है कि उनके सभी प्रयत्न 'मानस' के महाकाम्यत्व की सिद्धि के लिए उत्तर हैं। डा० रामकृष्ण बर्मा के विचार से भी तुलसीदास के 'रामचरित मानस' की कथा एक महाकाम्य के दृष्टिकोण से सिद्धी है जिसमें जीवन के समस्त अंश पून रूप से प्रकटित किये गये हैं।

१ रामचरित (अभिनव)-सं० श्री के० एच० रामा स्वामी शास्त्री

चित्रोमणि-भूमिका भाग, पृष्ठ २३

२ एकरस्यम्बी-श्री एचिन्द्र-पृष्ठ ३१

३ श्रीरबीरदास ठाकुर-मेवनाद-वप (हिन्दी अनुवाद)-भूमिका, पृ० १३८

४ डा० रामकृष्ण बर्मा-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ४००

संस्कृत के महाकाव्यों के साथ 'मानस' की तुलना करने से उसमें अनेक विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं। 'रघुबंध' में राम-कथा ही मुख्यतः वर्ण्यवस्तु नहीं है। वही इक्ष्वाकुवंशी अग्य राजाओं की परम्परा में ही राम के भी अस्मृदय और स्वयममन का संघिप्त वर्णन कर दिया गया है। इसीमिने कथा की पधि के अधिक संवेग होने के कारण संज्ञित सौम में महाकाव्यत्व के संकृषित स्वरूप पर विचार करना बड़ा अप्रमत्त नहीं है। रामावतारकाली तो वास्तवीक रामायण का पवित्र सारनाथ है। उसमें वर्णनारमकता की प्रमुलता है एक ही ध्य (अनुष्टुप) का आद्यन्त प्रयोग है तथा आचारप्रग्न का अग्य सभी दिशाओं में ध्यापक अनुकरण है। कवि की मौलिक सद्भावनाओं के अभाव में महाकाव्य की उपायन रसकता की उद-लक्षिप उसमें नहीं होती है। 'आनकी-हरण' उल्लिख महाकाव्य है। उसके लेखक का दृष्टिकोण भी एकीकी है। उसमें उगुल्ल शृङ्गार वचन की अनावश्यक प्रथम मिल गया है। यद्यपि महाकाव्य के अनेक लक्षणा का उपाय कुशल निर्वाह विरासाई पड़ता है तो भी अपने समाओं एवं बीषों से उल्ल होने के कारण उसमें मानस की ही चास्ता एवं सुकवि-सम्पन्नता के रक्षण नहीं होते हैं। उदारराषव' भी उल्लिख महाकाव्य है। उसमें वर्णनों के विस्तार में अनुपात का अभाव भी विस्तनीय है। वही कुल प्रसंगों में पधवि नवीन उद्वाचनाओं के दर्शन होते हैं किन्तु उनमें भीविम और आनुकस्य का उतना ध्यान नहीं रखा गया है। अत्रिनाद के 'रामचरित' में कथावस्तु की तो कम है किन्तु उसका अनावश्यक विस्तार है। उसमें राम के वर्ण-प्रवाह' के पूर्व की कथा के अभाव में भी अय वर्णन को ४० वर्षों में समाहित किया गया है अिससे अुह अहस के प्रसंगों को भी अनेकाकृत अधिक मान पिक बना है। यदि 'महाकाव्य का अर्थ महान् विस्तार वाला काव्य हो तो समकथ रामचरित के अतिरिक्त अग्य महाकाव्य अनेक पद से कथित हो जायेंगे। इय महाकाव्य में भी धारवीक लक्षणा का बड़ी उल्लरता से पालन विमा गया है किन्तु वेमन उगुही से ही उसके महाकाव्य की धिदि नहीं हो पाई है। रघुवीरचरित महाकाव्य में भी एक तो वस्तु की ग्युलता है नवीकि उसका आरम्भ राम-वन प्रवाह से होता है दूसरे कथके कवि के सम्पाध में भी कोई निरूपन नहीं है और अन्त में उसमें भी महाकाव्योचित बीमर के वर्णन नहीं होते हैं। 'अट्टिकाव्य' में कथाकरण कधि की प्रभावता होने के उसका स्वरूप ही बहुत कुल परिचित हो गया है। वही कवि का ध्यान महाकाव्य के लक्ष प्रभाव के निरूपण की ओर नहीं है यद्यपि धारवीक लक्षणा के अनुसरण में वह अवरप जागरक है। वेकल 'राषवीय ही ऐसा महाकाव्य है जो अनेक दृष्टियों से 'मानस' के बहूत कुल समानता ररता है। उसका अनुकथन वाचचरित-निरूपण रक निर्वाह प्रदृतिवर्णन समाज निरूपण, संस्वार विवेचन तथा अग्याय प्रसंगों का वर्णन एवं विरूपण भी मानस के वर्णन के बहूत निरपट है। धारवीय विशेषताओं का नवीग में धार्यरय भी वही प्राप्त हो जाता है, किन्तु कटिरं दृष्टि से इतना लभ होने पर भी वह 'मानस' के अन्तरं वी

विषयता का स्पर्श भी नहीं कर सका है।

संस्कृत के महाकाव्यों में एक सामान्य शोध यह भी है कि वहाँ अनेक कवि बड़े पर्व के साथ अपने पाण्डुरंग प्रदर्शन का प्रयत्न करते हैं जिसके फलस्वरूप उनकी भाषा, कल्पना और शैली सभी कुछ केवल विशिष्ट वर्ण के लिए ही उपादेय रह जाती है। इसके अतिरिक्त वे महाकवि अधिकतर राज-सम्मान पाने के कारण जनसाधारण के सम्पर्क से दूर रहते थे जिसके कारण उनकी कृति के समस्त चित्रणों का सम्बन्ध भी समाज के केवल शीघ्र-वर्ग से ही मेल खाता है। इस प्रकार अतिरिक्त शोध से ही इन महाकाव्यों का सम्बन्ध रह जाने के कारण वे न तो लोकप्रिय हो सके और न लोकप्रिय रूप में प्रतिष्ठित ही हो सके। इनके अतिरिक्त विदेशी महाकाव्यों की तुलना में भी मानस की सर्वोत्कृष्टता प्रतिपादित करते हुए डा० राजपति शोधित कहते हैं कि 'मही नहीं हम सिर उठाकर यह भी कह सकते हैं कि तुलसी के महाकाव्य में जैसी आदर्श और उदात्त चरित्र-कल्पना है वैसी न मिस्टन के 'पेरा डाइज् नास्ट' में है, न स्पेन्सर की 'फेयरी क्वीन' में है और न बति की 'डिवाइना कामेडिया' में। साम्प्रदायिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध की जो अतिरिक्त समस्या तुलसी के सामने थी वह इन पाश्चात्य संकेत 'एपिस' के रचयिताओं के समक्ष नहीं थी।'

(२) निष्कर्ष—सारांश यह है कि 'मानस' महानता के मूख में उभरा एक निजी शोध है। उसकी प्रसिद्धि उसमें समाविष्ट रामचरित आदर्श चरित्र-चित्रण नीतिशोधोपदेश लोकवर्ण और समाजधर्म के आपस में निर्वाह एवं पौराणिक तथा परितोषी के कारण ही नहीं है अपितु एक महाकाव्य के नाते से भी है। इन सभी तत्वों के योग से उसका जो अमिट प्रभाव और संस्कार उसके पाठक अथवा श्रोता पर पड़ता है वही उसकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण है। उसकी सर्वोत्कृष्टता इसी बात से सिद्ध होती है कि संस्कृत के अनेक महाकाव्य मिलकर भी उसकी पुरता एवं प्रतिष्ठा की समानता नहीं कर सकते हैं। केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में भी इसीनिधे उसका सर्वोच्च स्थान है।

७ छन्द विवेचन

(१) छन्दों की उपयुक्तता—'मानस' को छन्दोबद्ध करने के लिये मोस्वामी जी ने दोहा और चौपाई को मूल आधार चुना है। इसके साथ ही उन्होंने अनेक नायिक एवं नायिक छन्दों को भी पर्याप्तान निबद्ध किया है। इस समस्त छन्द योजना में उनका ध्यान कला क प्रवाह प्रभाव और शोभ्यता की ओर ही एकाग्र रहा है। उन्होंने केवल चुने हुए छन्दों का चुने हुए स्थलों पर ही प्रयोग करके अपनी आदर्श छन्दोबद्धता का सरल परिचय दिया है।

(२) मात्रिक छन्द—दोहा और चौपाई के अतिरिक्त 'मानस' में सोरठा हरिनीतिका, त्रिभंजी, चौपाया और तोमर आदि मात्रिक छन्दों का विशेष प्रयोग

विद्युत्मासा किसी में स्वायत्ता और किसी में शोकक-वादि का चतुर्धा चमत्कार भी विद्यमान है। कहीं दो चरणों में एक छन्द है तो शेष दो चरणों में दूसरा है। इससे तुलसी के विस्तृत छन्दज्ञान एवं समन्वय शक्ति का भी परिचय मिल जाता है।

उपर्युक्त तीनों छन्दों के परचात् हरिपीठिका' तुलसी का सर्वप्रिय छन्द है। 'मानस' में यह सबसे अधिक—१४० बार—प्रयुक्त हुआ है। शोपाइयों के द्वारा प्रस्तुत पात्र प्रभाव एवं बुध विधान को सर्वाङ्गपूर्ण और रंजीत बनाने में 'हरिपीठिका' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रयोग में प्रसंगनिर्वाह का भी विशेष ध्यान रखा गया है। इसीकिये उसकी प्रथम पंक्ति का आरम्भ सबसे पहले 'पूर्वप्रयुक्त अर्थात्' के उत्तरार्ध की पुनरावृत्ति से ही किया है, यथा

भक्ति भरेस वस्तु भक्ति बरनी । राम कया जम मंगल करनी ॥

मंगल करनि कमिमत हरिनि तुलसी कया रजुनाय की ॥ ११०

तुलसी की छन्दयोजना का सर्वश्रेष्ठ रूप अयोध्याकाण्ड में वृष्टिगोचर होता है जहाँ प्रत्येक ८ अर्थांशों के परचात् एक दोहा नियमित रूप से मिल जाता है और ऐसे प्रत्येक २४ बें दोहे के स्थान में एक 'हरिपीठिका' और 'छौरठा' का प्रयोग किया गया है किन्तु ११ बें दोहे पर 'समूहयस जापस प्रसंग' से यह क्रम कुछ व्यवहित हो गया है। शिव-विवाह राम-विवाह रामस्तुति और रावण-बुद्ध के वर्णन में इस छन्द का क्रम अधिक प्रयोग किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि उल्लास एवं उत्साह के बिचल के लिए तुलसी ने इस छन्द को एक सबसे माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक काण्ड की समाप्ति पर भी इस छन्द का अनिवार्य प्रयोग इसी प्रवृत्ति का सूचक है। 'मानस रूपक' में जहाँ तुलसी ने शोपाई दोहा और छौरठा के साथ छन्द को भी 'बहुत कमल' निरूपित किया है, वहाँ छन्द परच से जना अभिप्राय, इसी 'हरिपीठिका' छन्द से ही जान पड़ता है।^१

जहाँ एक शिखरी वादि शेष तीनों छन्दों का सम्बन्ध है उनमें से पाँचों शिखरियों^२ में से सात शोषियों^३ और तेइस में से आठ शोमरों^४ का प्रयोग केवल स्तुति में किया गया है। शेष दो शोषियों^५ से रावण के अत्याचार तथा शैतानों की विषमता और पन्द्रह शोमरों^६ से चर एवं रावण के मुठ का रोचक निरूपण किया गया है। उपर्युक्त तीनों छन्दों में प्रथम दो में बगीची एवं अठारवीं माथाओं के परचात सम्बन्धित होती हैं जबकि अन्तिम छन्द केवल बारह माथाओं का होता है। इस प्रकार स्वयं बिचरों के साथ इन छन्दों के सम्बन्धन किए जाने से

१	मानस ११३७	२	मानस ११९२।३ २११।१-४
३	" ११४६।१-४, ११२।१ २४ ४		११११।१-८
५	" ११८३ १८४	६	३।२०, १।१०१

इसमें मायावेप को प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत करने की अपूर्व सामर्थ्य पाई जाती है। बिरोपत जब मानव हृदय इतना आनन्द मद्गुण अपना बातकप्रसूत होता है कि वह रुक रुक कर छोटे छोटे बाव्यों में अपने विचार व्यक्त करने लगता है, उस समय मावों की इस मृदुम मतिविधि से गुणरिचित महाकवि ऐय ही अनूठे छन्दों का प्रयोग किया करते हैं।

(१) वार्षिक छन्द— मानस में प्रयुक्त सभी कविक कृत संस्कृत के हैं। उनमें इन्द्रब्या 'बंघस्य' और मानिनी' का एक बार बसन्त-तिलका रपोडवा' और सगपरा' का दो बार अनुष्टुप' का साठ बार भुजंगप्रपाठ' का आठ बार, सादु'सवित्रीदित' का दस बार प्रनायिका' का तेरह बार और तोटक' का इकतीस बार प्रयोग किया गया है। इनमें सर्वाधिक प्रयुक्त तोटक छन्द में चार सगनों के फलस्वरूप सोनह मावार्थ होने से चौगई के समान ही ध्वन्यात्मकता होती है। सन्मयत इसी दृष्टिकोण से उसमें म-तो संस्कृत मापा का प्रयोग मिलता है और न बिद्युत स्तुति-वर्षन तक ही उसको सीमित रखा गया है जबकि शेष सभी वर्णवृत्तों में जामु ल शोभो बिरोपताएं सर्वत्र दिसलाई पड़ते हैं।

मानस' के दार्ष्टी छन्दों के साथ संस्कृत-साहित्य के छन्दों की तुलना की जा सकती है। काव्य शास्त्रीय नियमों के आभार पर संस्कृत के छन्दों में प्रत्येक सग्न में केवल एक ही छन्द का प्रयोग किया जाता है और केवल अष्ट में सर्व-परिवर्तन की शूचना के निमित्त उसमें परिवर्तन कर दिया जाता है। बड़ी सर्वबद्धता के लिये इन छन्दों में से अनुष्टुप इन्द्रब्या बंघस्य रपोडवा तथा बसन्त-तिलका और सन्मय के लिये मानिनी भुजंग प्रपाठ सादु स वित्रीदित तथा सगपरा आदि का ही अधिकतर व्यवहार किया जाता है। शेष तोटक और प्रनायिका छन्दों का बड़ा बहुत कम प्रयोग दिखाई पड़ता है।

वस्तुवर्षन की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में इन छन्दों में बड़ा वैविध्य प्राप्त हुआ है। रामायणकन्दरी में सभी छान्दों में एक मात्र अनुष्टुप का ही आचम्य

१	मानस २।१ श्लोक १	२	मानस २।१ श्लोक २
३	२।१ " ३	४	१।१ " ७ १।१
५	७।१ " २ ३	७	" १।१ " श्लोक २
६	६।१ " १, ७।१ श्लोक १	८	" १।१ " १-२ ६।१
८	" ७।१०८ श्लोक १-८		श्लोक १ ७।१०८ श्लोक ८
९	" १।१ " ६ २।१ श्लोक १		१।१ समाध १-२ ५।१ श्लोक १-२
१०	" ३।१ " १, ६।१ " २ तथा ७।१ ३ श्लोक १-२		
११	मानस १।५ श्लोक १-१२ ७।१ २२ श्लोक १		
१२	मानस ६।१ १।१-१।१, ७।१ ५।१-१।० १।० १।१-२, १।० २।१-२		

प्रयोग किया गया है। केवल अन्त में 'रामाभिप्रेक' के वर्णन में समय १० 'इन्द्रवज्रा' और दो 'वसन्त-तिसरा' एवं एक 'मासिनी' के वर्णन होते हैं। 'मानस' में जिस प्रकार केवल दोहों और चौपाइयों से ही सभी चारों के समर्थ प्रकाशन में तुलसी बद्धुत क्षमता के वर्णन किए जा सकते हैं उसी प्रकार वहाँ भी सभी प्रसंगों में अनुष्टुप् की अद्वितीय शक्ति का परिचय मिल जाता है। महाभारत और समस्त पुराणों में भी इसी छन्द की प्रमत्तिप्युता दर्शनीय है। रघुवंश राजर्षीय रामचरित उदारराज्य ज्ञानकी हरण आदि महाकाव्यों में भी अविच्छिन्न चर्चों के कसेवर केवल इसी छन्द से भिन्नित हुए हैं। वस्तुतः यह संस्कृत का मूल छन्द कथना श्लोक है 'इति एव श्लोक' अथ इसका पर्यायवाची ही ज्ञान गया है।

इन्द्रवज्रा आदि छन्दों में भी यति के अभाव के कारण एक स्वच्छन्द प्रवाह समता दृष्टिगोचर होती है अतः वस्तु के अनवरत और सबसे वर्णन में इनकी उपयोगिता स्वयं-सिद्ध है। सम्भवतः इसीलिए संस्कृत के महाकाव्यों में अनुष्टुप् के पश्चात् इन छन्दों का बहुलता से प्रयोग प्राप्त होता है। मासिनी चार्दुमबिम्बीडित और सगराष्ट्र छन्दों में क्रमशः अनेक चर्चों एवं यतियों का समावेश होने से विस्तृत चिन्तनों अथवा विधाम के स्पर्शों में ही इनका स्मरण किया जाता है। 'मानस' में इन तीनों छन्दों के प्रयोग में मोक्षामीजी ने अपनी विद्विष्ट निपुणता का परिचय दिया है। उग्होने 'वासकाष्ठ' की छोड़कर आदि के चार काव्यों का आरम्भ चार्दुम बिम्बीडित से और अन्तिम दोनों काव्यों का आरम्भ सगराष्ट्र से किया है। इनमें प्रथम दो से सिद्ध की और अन्तिम चार से राम की कथना प्रस्तुत की गई है। एक मात्र मासिनी छन्द का प्रयोग हनुमान की कथना में किया गया है। इस प्रकार इन छन्दों के सरस एवं सुमधुर प्रवाह से उग्होने एक तो प्रथम के समस्त वातावरण को एक विषयता एवं पवित्रता प्रदान की है और दूसरे केवल स्तुति को ही इन छन्दों का वर्णन विषय बनाकर उनकी एकैद्म्यता भी स्पष्ट कर दी है।

कथा की दृष्टि से तुलसीदासजी छन्द-शास्त्र के बहुत बड़े विद्वान हैं। उग्होने अपने विभिन्न छन्दों में छन्द-शास्त्र सम्बन्धी अपने विस्तृत ज्ञान का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिचय दिया है। सोडा कथित सर्वथा बरबै संगत सोहर मीठ आदि अनेक छन्दों को लेकर उग्होने स्वच्छन्द काव्यों का प्रयोग भी किया है। उनका विशाल साहित्य इस विधा में उनके पाण्डित्य का विशेष परिचायक है। छन्दों की रसानुकूलता के ये बहुत बड़े ज्ञान हैं और साथ ही मानव-स्वभाव के भी अद्वितीय पारधी हैं। इसीलिए 'मानस' के हृदयस्पर्शी स्वरों में उग्होने भाव और प्रवाह के अनुरूप ही सतत और रसप्रधान छन्दों के विधान में अपनी अद्वितीय प्रतिभा का मौलिक उत्कर्ष प्रतिष्ठित किया है।

संघीत की दृष्टि से भी 'मानस' के छन्दों में मय को रमाने की अत्यन्त पक्की है। संरक्षक का वागिक चूको के संरक्षक पाठ बचवा मानस से नहीं एक अद्वितीय आन्तरिक माहला उपलब्ध होता है नहीं दोहा जोपाई सोरठा और हरिभोविका बादि से भी एक संपन्न संघीत की मयुर निरूपित होती है। छन्दों की संरक्षक ध्वनी धारणकता पर विचार करते हुए भी मुनिनामधन पत्र कहते हैं कि 'कविता हमारे प्राणों का संघीत है। छन्द हृदयमय है तथा कविता का स्वभाव ही छन्द में लक्ष्य मान हो जाता है। अपने अत्यन्त दाकों में हमारा जीवन छन्द ही में बहने लगता है उसमें एक प्रकार की सम्पूर्णता स्वर्णय और लयम आ जाता है।' 'मानस की जोपादों की संघीतारमक छक्तिमता का एक और रहस्य है कि उनमें हृदयी और संरक्षक के विविध छन्दों का संरक्षक समावेश है मया है जिससे वे हमारे मन के अनेकानेक भावों को समान रूप से उद्गीष्ट करने में पूर्ण सक्षम हैं। श्री लोडेर के अनुसार कवि जब किसी ऐसे सुन्दर छन्द का चयन कर लेता है, तो उसे अभिप्रेरित में बड़ी सहायता मिलती है क्योंकि उसके साथ कन और माह का विकास सहज हो जाता है।" जोपादों के दली बहरन का प्रतिपादन करते हुए डा० राज पति दीक्षित कहते हैं कि 'जोपादों में प्रयुक्त स्वरों और व्यंजनों की माह धुति में ऐसा उत्तम आरोह या अन्वरोह है कि वे पाठकों के लिए भी उपकारक सिद्ध होती हैं। कनत हारमोनियम सिंथार लोक सांग आदि बाजों के साथ साथ प्रयुक्त रहें उत्साहपूर्वक पाठे भी हैं। इनका संघीतत्व स्वीकार करने में हमें कोई बाधित न करनी चाहिए, क्योंकि योग्यताओं ने अनेक रचनाएँ वर अपने को समर्पित का पायक भी कहा है।"

यह मानस की अत्यन्त संघीतारमकता का ही प्रमाण है कि कभी-कभी संघीत के विशेष ज्ञान बचवा धारण के अभाव में भी अनेक 'मानस प्रेमियों' को 'राममक्ति' इतना विद्वान कर देती है कि वे लोडेर से ही नहीं बल्कि राफो वा सुजन कर सिखा करते हैं। अनेक राममत्तों का यह भी विदबास है कि मानस के वाट अथवा गायन से अतीव कार्य की सिद्धि होती है। यमक अनेक सत्यकों पर मानस के जो एकात्मिक नवात्मिक अथवा साहित्य पारामय आवेष्टित किए जाते हैं उनमें धार्मिक रूप से मानस का संरक्षक मान्य भी किया जाता है। संघीत में त्रिभ प्रकार किसी एक विविष्ट 'टेक' की बार-बार अ'वृत्ति की जाती है जती प्रकार इन पारामयों में भी प्रत्येक दोहे के वरकाठ मानस की किसी एक विधेय अर्थात् की संघुट के नाम से टेक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है और उसको

१ श्री मुनिनामधन पत्र—पस्तक—प्रवेश, पृष्ठ २१

२ श्री एल० नार० लोडेर—ऐटोरिक एण्ड प्रोसेडी दृष्ट १२०

३ डा० राजपति दीक्षित—मुनसीदास और उनका युग पृष्ठ १७४

विशेष ध्यानारमकता के साथ बारम्बार ब्रह्मराया भी जाता है। ये 'मर्वाहिया' 'मानस' में विभिन्न रामसत्तों की स्तुतियों से जून भी जाती है। पाठकर्ता के विविध छद्मों के अनुसार इनका बर्णन भी प्राप्त होता है। कसत-विशेष कार्यसिद्धि के लिए विशेष 'सम्पुट' को ही अपनान का परामर्श दिया जाता है। इन संपुटों की पुनरावृत्ति का लक्ष्य 'उद्देश्य-विशेष के सतत् स्मरण के अतिरिक्त विग्राम' और 'मानस पाठकर्ता का परिचर्जन भी होता है ताकि वह पारायण' निश्चित समय तक अविग्राम मति से चलता रहे। ऐसे अवसरों पर 'मानस' के रामबन्ध राम-विवाह और रामामियेक के प्रसंगों को बड़े समारोह के साथ विभिन्न वाद्ययन्त्रों की सहायता से गाया भी जाता है। इससे पता चलता है कि उत्सासपूर्व प्रसंगों की आयोजना में मोस्वामी जी ने संगीतारमकता का कितना विशेष ध्यान रखा है। इस प्रकार 'मानस' में नीतिकाम्य के भी विभिन्न तर्कों का सरस समन्वय सहज सुकम है।

(४) निष्कर्ष—उपयुक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि यद्यपि मोस्वामी जी ने 'मानस' में अपने छन्द-सांख्यिक ज्ञान का सरस परिचय दिया है तो भी वे उसके अर्थों के जाने कहीं भी गतमस्तक नहीं हुए हैं। उन्होंने विभिन्न छन्दों के सामंजस्य से जीपार्ई छन्द को इतना सुपुष्ट बना दिया है कि वह प्रत्येक भाव के बहान और ज्ञापन में पूर्ण समर्थ हो गया है। संस्कृत के छन्दों का अधिकतर बन्दनाओं में प्रयोग करके उन्होंने 'मानस' में एक विशिष्ट वातावरण का निर्माण भी किया है। कला और संगीत की दृष्टि से भी उनकी छन्द-योजना में एक प्रसन्न शोडता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'मानस' की छन्द योजना में मोस्वामी जी को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

८ भाषा—विवेचन

मोस्वामीजी ने 'मानस' की भाषा को सर्वत्र भाषा के नाम से ही अभिहित किया है। 'भाषा' शब्द से उनका तात्पर्य संस्कृतेतर लोक भाषा से रहा है इसी लिये 'प्राकृत भाषा के लिये भी उन्होंने साधारणतया 'भाषा' शब्द का ही प्रयोग कर दिया है। उनके समय में 'अवधी और 'ब्रज' दोनों भाषाएँ साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित थीं। उन दोनों पर उनका समान अधिकार भी विश्वास है। अवधी में 'रामचरित मानस' और 'ब्रज' में कवितावली गीतावली और विनय पत्रिका आदि ग्रन्थों का निर्माण उनके इस भाषा पाण्डित्य का स्पष्ट परिचामक है। 'मानस' के निर्माण के लिए तुमसी ने अवधी को दो कारणों से प्राथमिकता दी

- १ मानस १ २८, ११२, १३२ १४६ २३६, ३४२ २७२ १०७ १३७ १९७
२०५, २६६, ३१६, ४७ ३२७ ३४ ४० ७१८, ६३ ८४
- २ मानस ११६ वसो ७ ११६ १४ १५ ३१ ७१३० वसो १
- ३ मानस ११४

होती एक ही है 'महाकाव्य' की रचना के लिए 'अवधी की परम्परा एवं व्यवस्था से सुपरिचित थे और दूसरे उनके कथानामक राम' का जन्म-सम्बन्ध भी अवध प्रान्त से था।

रबकर की दृष्टि से 'रामचरित मानस' की माया पश्चिमी अवधी के अविनाश रूपों की रचनी हुई भी प्रपातक 'वैशवाड़ी अवधी' है। परन्तु और माया वैज्ञानिक विस्लेषण दोनों ही इस निर्णय का समर्थन करते हैं। तुलसी के सामने ठंड अवधी का पचावठ था किन्तु उनकी समरस्यवादी प्रतिभा ने उसके 'ठंडपन' को स्वीकार नहीं किया 'सतत मानस' में यह लक्ष्मी लोकभाषा के दर्शन होते हैं जिसमें अवधी के अतिरिक्त अनेक प्रांतीय भाषाओं विभाषाओं तथा बोधियों के समन्वित अर्थों का बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया गया है। इतना ही नहीं उसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंस के अनिश्चित शब्दों और धारणी के भी बहु संस्कार अर्थों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। डा० बलदेवप्रसाद मिश्र के अनुसार कोल्हामीजी के मन में भी लोक भाषा के सम्बन्ध में ऐसी ही दृष्टि धारणा थी, इसीलिए उनके रामकथा काव्य में हम न केवल विपुल धारावाही ही पाते हैं किन्तु विपुल प्रयोगावली के भी दर्शन कर सकते हैं। 'आवधी की माया के साथ तुलसी की माया की तुलना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि 'आवधी की माया और तुलसी की माया में यही बड़ा अन्तर है कि आवधी को पहुँच अवधी में प्रचलित लोक भाषा के भीतर बहते हुए माधुर्य तक की दर कोल्हामी जी की पहुँच दीर्घ संस्कृत-कवि-परम्परा द्वारा परिपक्व आधुनिक आधुनिकता तक भी पूरी पूरी थी। तुलसीदास जी ने ठंड अवधी की सपुरता भी प्रत्यय के अनुसार जगह जगह पर मिली है। सारांश यह है कि तुलसीदास जी का दोनी प्रकार की भाषाओं पर आधिपत्य था और आवधी का एक प्रकार की माया पर।'

'मानस' के समस्त माया पद्य में मूलतः संस्कृत की प्रचलितता दृष्टिगोचर होती है। प्रायेक पाण्ड के आदि के श्लोकों में तथा अनेक अर्थनामों में संस्कृत का ही एकाधिकार है। इसके अतिरिक्त उनकी अवधी भाषा में भी गणक के अविनाशिक पदों और लक्षण शब्दों का बहुत बड़ा मात्रा में प्रयोग मिलता है। संस्कृत का रचना में कोल्हामीजी की अनुपम सामर्थ्य देखाकर यह विचार होता है कि वह यदि चाहते तो संस्कृत में भी 'मानस' का निर्माण सफलतापूर्वक कर सकते थे। डा० देवकीनन्दन खत्रीदास के अनुसार कोल्हामीजी के विचार में ही तुलसी प्रकृतिक अर्थ भाषा के पचापत्ती थे, किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से वे—संस्कृत भाषा के प्रति अत्यन्त रसने वाले थे। अतएव उन्होंने अपनी रचनाओं के अन्तर्गत संस्कृत की

१ डा० देवकीनन्दन खत्रीदास—जन्मदीपावली की माया पृष्ठ १६१

२ डा० बलदेवप्रसाद मिश्र—मानस में रामरथा—पृष्ठ ८४-८५

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संस्कृत संस्कृत पृ० ११७

अध्यावसी को भी पर्वान्त मात्रा में स्वान दिया। जनभाया के प्रति अपनी आत्मीयता और संस्कृत के प्रति अट्टाभाष का साप-साध पूर्ण निर्वाह करना, तुलसी जैसे लोकनायक का ही काम था।^१ इस सम्बन्ध में डा० राजपति वीक्षित कहते हैं कि छन्दे महाकवि की भाँति मोस्वामीजी अपने सामयिक जनसामान्य की भाषा से पूर्वतया अधिष्ठ थे और उसकी प्राचीन परम्परा से संबद्ध भाषाओं का भी उन्हें परिज्ञान था।^२ इसीलिए उनकी भाषा में वास्मीकि की स्वामाबिकता व्यास की समास-शक्ति भारवि का अर्ध-धोरव, बाल का साहित्य वासिदास की प्रसाविकता चन्द्र की अनेकवपता कबीर की ओकरिबता जावसी की ठेठरूपता वीर सूर की माचुरी मर्यादित एवं समन्वित रूप में विद्यमान है।^३

यह पहले ही कहा जा चुका है कि मानसकार ने मानस के निर्माण में 'नानापुराणनिबन्धागम और वास्मीकि रामायण आदि की सम्मति को स्वीकार किया है अतः मानस' की इस संस्कृत-सम्पन्नता का यही सबसे बड़ा कारण सिद्ध होता है। 'मानस' के भाषा-विज्ञान के स्वल्प तुलनात्मक अध्ययन से ही, उस पर बड़े हुए संस्कृत काव्यों के प्रभाव का भी स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। वस्तुतः तुलसी ने अपने 'मानस' में वास्मीकि-रामायण अध्यात्म रामायण महाभारत भागवत पद्यपुराण सिद्धपुराण अनेक उपनिषद् प्रसन्नरावण हनुमन्प्राटक तथा विविध नीति-ग्रन्थों से बहुत कुछ तो क्योँ न त्यों सम्बन्ध ग्रहण कर लिया है और अव्यक्त स्थलों पर उगहोने उनसे मात्र तथा अर्थ का भी निस्संकोच संकल्पन किया है। अध्यात्म के इस ग्रहण में तुलसी भाषों की अनिम्यक्ति की तीव्रता से ही अधिक प्रेरित हुए हैं। उन्होंने केवल उगही प्रसंनों में ही यह ग्रहण किया है, वहाँ उनके विचार से अध्यात्म अधिम्यक्ति में अधीप्सित सफलता की प्राप्ति सम्भव नहीं थी।

(१) शब्द-ग्रहण—भाषार्थ राजसेखर ने काव्यमीमांसा में पर पाद अर्थ बृत्त और प्रबन्ध के भेद से अक्षरहरण के पाँच भेद विचार किये हैं। तुलसी के संदर्भ में यह 'हरण शब्द ठीक नहीं है क्योंकि उन्होंने अपने 'स्रोतों' का पहले ही नामोस्मरण कर दिया है अतः इसे ग्रहण कहना ही उचित होगा। इस ग्रहण में 'पर से संज्ञा अथवा क्रिया' के पर पाद से अपोष्ठ का चतुर्थ भाग 'अर्थ से प्रकृत अर्थमान बृत्त से उगका छन्द और प्रबन्ध' से उगका कथानक अभिप्रेत है। 'प्रबन्ध ग्रहण' के सम्बन्ध में विद्यते अध्यात्मों में विगठार से विचार किया जा चका है अतः यहाँ पर पाद अर्थ और बृत्त के ही ग्रहण का विवेचन अपेक्षित है।

१ डा० देवकीनन्दन धीवास्तव—तुलसीदास की भाषा पृष्ठ ६

२ डा० राजपति वीक्षित—तुलसीदास और उनका युग—पृष्ठ ४१६

३ डा० देवकीनन्दन धीवास्तव—तुलसीदास की भाषा—पृष्ठ १४२

४ काव्य मीमांसा—सं० केदारनाथ तर्का—पृष्ठ ११६

(१) तात लं निज तेजसैव बभित स्वर्गं ब्रज स्वस्ति ते । हनु० २।१६

तात कर्म निज ते मति पाई ॥ १।११

(२) हा राम हा रमय हा अगदेक बीर, हा नाप हा रघुपते किमुपेससे माम् ।
हनुमत्पाठक ४।१४

हा अगदेकबीर रघुपत्या । कैहि अपराय विचारेहु बाया ॥ १।२८

(३) या सैबी पुत्रि सीते बबति मम पुरी नैव हूरं दुष्टारया ॥ हनु० ४।१०

सीते पुत्रि करसि बनि नासा । करिहीं जाकुबान कर नासा ॥ १।२३

(४) कि अल्पितेन बहुना सुमुक्ति त्वरत् स्वाम्युच्छित्तमसि क्षिरासि पुनर्बन्धास्य ।
प्रथमरावण १।२५

कह रावण तुनु सुमुक्ति छयाती ॥ २।६

(५) कि बन्धासि नयी ब्रज सुरगमोऽप्युष्णै यथा कि ह्य ।

कि रम्भाऽप्यवता हतं किमु युगं कामोऽपि धम्बी नु किम् ॥

महानाटक ७।६१

राम मनुज कस रै छठ बन्धा । धम्बी कामु मरी पुत्रि बन्धा ॥ १।२६

(६) उवारा सर्व एवैते ज्ञानी त्वारमैव मे मतम् ॥ भीष्मा ७।१८

रामयगत ब्रज जारि प्रकारा । सुहृती जारिउ मनच उवारा ॥ १।२२

(७) बन्धी अप्यतु रम्योऽप्यमुभी भूमौ निपेततुः ॥ महाभारत । वन । २८०।३१
जिरै उमी बाळी मति तर्जा ॥ ४।८

(८) पाषण्डारिष्यत्स्थापमविद्यन् शरदईश्रम ।

यथा बरिउद्वपय कुदुम्भी विप्रितेगिहय ॥ भाष्यत १०।२०।३७

जस संकोच विकल गई भीता । अहुय कदुम्भी विप्रि घन हीता ॥ ४।१६

(४) विमक्तियुक्त तदुम्भ—विभिन्न संस्कृत-शब्दों से 'मानस' में ऐसे अनेक

पर भी सूहीत हुए हैं जिनमें विभक्तिवां तो हैं किन्तु उनका का भाषा की प्रवृत्ति के

अनुसार परिवर्तित हो गया है । निम्न उदाहरणों के रैकांकित पदों में इसका स्वरूप

दर्शनीय है —

(१) परदारपहरणे न युता या दसानन ।

वृष्टा वृषपरिवाणे साबोस्ते धर्मशीलता ॥ हनु० ५।२२

कह कवि धर्मशीलता तोरी । हयहू मुनी इत परतिय बोरी ॥ १।२२

(२) त्रिह्लासती दादुरिकैव मृत न चोपमायत्पुस्यामगायः ॥ भाष्यत २।१।२०

बो न करह राम गुन माता । बीह सो दादुर जोह समाता ॥ १।१।२२

(१) मृद्वेहमाद्य सुहृत्कर्ष प्लक्षं सुकर्षं गृह्णकर्षवारम ।

मयानुकृतेन नमस्वतेरितं पुनाग्मवाग्भिर् न तरेत्स आत्महा ॥

भाष्यत । १।१।२०।१७

नर तनु भव कारिणि बहुं बेरो । सम्मुख मरुत अनुपहू मैरो ॥

करनधार सदनुर बुहू नाभा । दुर्मभ छात्र सुखम करि पाभा ॥

बो न तरै भव सागर नर समात्र भव पाह ।

हा इत निरक मंभमति भारमाहन पति जाह ॥ ७।४४

(२) विभक्ति हीन सत्सम— 'मानस' की चोपाइयो में संस्कृत के अनेक पदों की विभक्ति से हीन करके उनसे मूल रूपों में स्वीकृत कर लिया गया है । प्रस्तुत उदाहरणों में रेखांकित पद इसी दृष्टिकोण से दृष्टव्य हैं -

(१) अथ हिम्यवान सा वयुः क्षतपापा निजमासदन् पदम् ॥ रामबीम १।२४

बोन जानि ठैहि निज पद बीगहा ॥ मानस १।२०९

(२) यग्मात्तरहृतापापान् गुहृतीषं प्रयासयेत् ।

संचार तारपासैश्च अंशम तीर्षयुतमम् ॥ पद्म । सुमि । १२१।२३

सुदम गव मय सन्त समात् । जो अय अंशम तीरव राज् ॥ १।२

(१) ऐ ऐ रसा बव वासान रघुहृत्सतिसकरवापहाय प्रयासि ॥ हनु० ७।१०

बीपरान्न सति भारत बाबी । रघुहृत्स-तिसक कारि पडुषानी ॥१।२६

(४) सुर्वावाटनसो ध्योधि लक्षोपेन्द्रो त्रिविष्टपे ।

सुर्वा परं यदि बने नरनारायणसुषो ॥ रा० मन्त्ररो । किरिण्णा । १६

बो सुग्ह तीन देव मंह बोळ । नरनारायण की सुग्ह सोळ ॥ ४।१

(५) हुटे सामाग्यरूपेण मुक्ति प्राप लबोत्तम ॥ पद्म । उत्तर । १४२।२११

वीच देह तजि धरि हरि कृपा ॥ १।३२

(६) संभाषितम्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ पीठा । १।३४

संभाषित कहू अपजस माहू । मरन कोटि सम बाण बाहू ॥ १।३५

(७) राम स्त्रीविरहोच हारितकपुस्तम्बिन्तया मन्मथ ।

सुग्रीवोऽज्ञादधस्य यैदकठया निर्मूलकूलद्रुम ॥ हनु० ८।३

तव प्रभु नारि विरह बलहीना । अमुज तामु दुख दुखी मसीना ॥

तुम सुपीथ कूल द्रुम बोक ।

॥ १।३६

(८) साञ्जबीत्सरपसरमन्मथस्य कृतज्ञस्य महीपते ।

तव वत्सापहरणं ज्ञानतामवसरिचरम ॥ रा० पञ्चटी । बयोध्या । ७४१

... .. । सरयसंभ तुम रघुकुस माही ।

बैन कहेउ अज अनि बरबेहू । तजहू सत्य अज अपजस बेहू ॥ मानस २।३०

(९) विभक्तिहीन लघुमञ्ज—इसमें संस्कृत के पदों की विभक्तियों के त्याग के पश्चात् 'माया' में उनके प्रचलित रूप को प्रमुखता दी गई है । ऐच्छकित पदों में यह विशेषता दर्शनीय है ।

(१) भासन्नुत्पपबाह्विग्य शुद्धमसोज्ञसुप्यती ।

पुंसो यथा ह्यदग्नस्य देह इविच सम्पद ॥ भागवत १०।२०।१०

शुद्धमसो मरि जली ताउई । अस योगेउ मन सम बीउई ॥ ४।१४

(२) पुतकपैर्वा ज्वि केवसायां निर्वेदुपी क्षेमहृद्योत्तरीयाम ॥

रघुवीरचरित १२।७४

हउतनु बीस अहा एक बेबी । जपति हूबप रघुपति कुनस मी ॥ १।३

(३) अपि मुहमुहयात्तो चाग्निमास स्वकीर्षी ।

परमवितिपतोषं चाभिसम्पत् विपत् ॥ प्रउन्नरायण १।१३

निज कबिल केहि साय न मीया । सरस होउ अपवा अति पीका ।

ये परमविति जगत हउवाही । ते भर पुप्य बहुत जय नाही ॥ १।८

(४) मस्मादेकं नृपं शरासनमिदं सुम्यक्तमुर्धामुजाम् ।

मस्माकं भवतीं पुनर्नवमुर्धं यज्ञोपवीतं वक्तम् ॥ प्रसन्नरायण ४।२३

देव एकमुत्तं वनूप हमारो । नवमुत्तं परम पुनीत तुम्हारे ॥ १।२८२

(७) समविभक्तिहीन तत्सम—संस्कृत के अनेक विभक्तिहीन शेष पदों को भी 'मानस' में ज्यों का त्यों समाधिष्ट कर लिया गया है । ऐतच्छीकृत पदों में यह प्रकृति सरसता से देखी जा सकती है —

(१) नमयति वनुरेष्टं यस्तुवारीपञ्चेत् ।

निमुञ्चन अयत्तमी आनकी तस्यवारा ॥ हनु० १।१८

छोड़ पुरारिकोदष्ट कठोर । राम समान जायु बिद तोरा ॥

निमुञ्चनञ्च समेत भेदेही । बिनहि बिचारि वरै हतिसेही ॥ १।२३०

(२) हेनोत्सर्गमितवारिभिः कपिकुसं शार्ङ्गस रामो महान् ॥ हनु० ६।६

जेहि जलनाय वपायउ हेसा ॥ ६।३७

(७) समविभक्तिहीन तद्भव—इसमें पूर्वोक्त विभक्तिहीन पदों को तद्भव रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस बिचार से ऐतच्छीकृत पद उदाहरणीय हैं—

(१) पयःकन निमा दाय्या दाग्या वनमपरिच्छदा ॥ मानवत्

३।३३।१६ ४।६।६१

मुभग मुरभि पयःकेन समाना ।

कोमल कलित मुपेती नाना ॥ १।३३६

(२) शरितं रघुनायस्य छतकोटिप्रविस्तरम् ॥ पद्म । पाताल । १।१४

नाना भाति राम अवठारा । रामायन छतकोटि अपारा ॥ १।३३

(३) उदरं ध्रुवमिन्द्राद्विभ्रं सविम् एतु न दृश्यते ।

अनुर्वीचश्लेषेण पररणीमानपट्टिका ॥ प्रसन्नरायण ७।१

को आवन बाहह वस्याना । मुञ्च मुमति मुभयति मुम नाना ।

तो परमारि तिलार मोताई । तत्रउ अजयि के अण्ट की नाई ॥ १।३८

(४) भानुवीकरमरेषु रस्ति ठे पादवीरिति वया प्रवीयसी ॥

आनवायि तव पादर्वचर्चं नापदादुचरोरु वा मिरा ॥ महानाटक ३।४३

बरन कमल रस कहुँ सब कहई । मानुष करनि मुरि कहुँ नहई ॥

छुमठ सिला बई नारि सुहाई । पाहन ठै न काठ कठिनाई ॥२।१००

(२) यो न हृष्यति न क्षेप्यति न क्षोभति न कांसति ।

सुभासुमपरिस्वायी, भक्तिमान्म स मे प्रिय ॥ शीठा १९।१७

स्वाबहि कर्म सुभासुम बापक । मबहि मोहि सुरनर मुनि नायक ॥३।४१

(६) हा आतोर्षस पुनस्त्वहंत तियस शीठसुठैसासनम् ॥ प्रसन्नराजव ७।३

रिपि पुनस्ति असु विमस मर्यका । तेहि छसिमहू अति होहु कर्लका ॥

२।२३

(क) विमल्योचित तत्सम—इसमें संस्कृत के विद्यच्छिहीन पदों को ज्यों

का त्यों ग्रहण करके इनमें यादा की विद्यच्छिहीन जोड़ दी जाती है । इस सम्बन्ध में निम्न रेखांकित उदाहरण बर्तनीय है -

(१) श्री वेदान्तब्राह्मिणीपठिमहाश्वस्यपेटोदरः ।

तत्समुच्छिभिरंपसरगतस्तत्कर्म लप्स्यसे ॥ हनु० ५।४९

माको कसु पाबहिगो जाये । बानर भासु अपेटन्हि सामे ॥ ६।६२

यहाँ 'बानर' में समविभक्तिहीन तद्भव और 'पस' में विभक्तिपुनरु तद्भव भी उदाहरणीय है ।

(२) विमल्योचित तद्भव—इसके अन्वयत विभक्तिहीन पदों की

तद्भव रूप में स्वीकार करके फिर उनमें पूर्वोक्त प्रकार से विभक्तियों का जोड़ कर दिया जाता है -

(१) मयूखनसरजटहिमिरकुम्भिकुम्भस्वको अज्ञततरमतारकाकपटकीर्णमूवतामजः ।

पुररवरहरिहरीकृहरवर्भसुप्तोत्पथ सुवारकरकैसरी बवन कानर्नबाहते ॥

प्रसन्नराजव ७।६१

पूरव विधि पिरि गृहा निबासी । परम प्रताप तेज बस रासी ॥

पत्तनाम सम कुम्भ विहारी । उच्च कैसरी गगल बन चारी ॥

बिबुरे नम मुकताह्नतारा । निधि सुन्दरी कैर सिमार ॥ ६।१२

यहाँ 'कैसरी' में विभक्तिपुनरु तत्सम 'नगल' में समविभक्तिहीन तत्सम और 'मुकताह्न' में समविभक्तिहीन तद्भव भी बर्तनीय हैं ।

यहाँ 'बद-ग्रहण' के ये बहुत मोड़े से उदाहरण दिये गये हैं । कुछ ही अधिक प्रयत्न से इनके बहुवचन के भी बर्तन किए जा सकते हैं । रामचरित मियादी के अनुसार खोजने से संस्कृत प्रयोगों में रामचरित मानस के बहुत से चोहों खोजें,

धर्मों और शोपाइयों के मूल मिल जायेंगे। यह देखकर महाम् आश्चर्य होता है कि तुलसीदास ने संस्कृत धर्मों का जैसा सूक्ष्म अध्ययन किया था। उन्होंने 'मानस' में वास्मीकि रामायण, अघ्यारम रामायण, भायवत, प्रथमरावण, हनुमन्नाटक आदि से अधिक सहायता ली है। इसके सिवा संस्कृत के दोषों से अधिक धर्मों के श्लोकों को भी चुन चुन कर उनका रूपांतर 'मानस' में भर दिया है। कहीं एक शोपाई के भाव किसी एक पुराण से तो उसके भावों की शोपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के हैं। उससे भी भावों की शोपाई में किसी नाटक या नीति-ग्रन्थ के भाव हैं। ऐसे स्थानों पर तुलसी के मस्तिष्क की महिमा देखते बनती है। मानों संस्कृत के दो हाईको धर्मों के आर्यों श्लोकों पर उनका एक संपाद की तरह अधिकार था और वे जिसे कहा चाहते थे उसे वहीं चुना लेते थे।^१

(१०) पाद ग्रहण—तुलसी ने 'मानस' की शोपाइयों में अनेक श्लोकों के पारों को भी समाविष्ट कर लिया है। यह ग्रहण यद्यपि अधिकतर 'तद्वचन रूप में ही हुआ है और उसमें कहीं कहीं बीच में अन्य शब्द भी आये हैं तो भी 'पाद' के समग्र स्वभाव की एकता से उसकी प्रथकियुता समान है। तुलसी ने इसमें कहीं प्रथम, कहीं द्वितीय कहीं तृतीय और कहीं चतुर्थ के अतिरिक्त कहीं कहीं बड़े पारों तक का ग्रहण कर लिया है। निम्नलिखित उदाहरित 'पारों' में यह ग्रहण दृष्टम्य है—

(१) कमठपूठठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्तिरसो रघुमन्दन ।

कपमपिण्यमनेन विभीषतामहह तात रणस्तव वाक्य ॥ हनु० ११३

कमठ पीठ पदि कूट कठोरा । नृप समाज महु विज धनु तोरा ॥ ११३७

अहह तात वाक्य हू ठानी । ॥ ११३७

(२) नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र रावण ॥ प्रतिमा ३१२४

अवय तहां अहं राम विनामू । तहंइ दिवसु अहं भाग प्रकामू ॥ २१७४

(३) कस्यावनाय व्यतिकरमिन्नं मूकतु सो भवेत्

को जानीते निमृत्तमुमपोरावयो स्नेहछारम ।

जानात्येकं पञ्चरमसि प्रेमत्राई मनो ये

रवानैवैविकरमनुमत्तं ततिप्रये कि करोमि ॥ प्रथमरावण ६१४४

तव प्रम कर मय अक तोरा । जानत प्रिया एक मनु तोरा ॥

ता मनु सदा रण तौहि पाही । जानु प्रीति रनु रतनाह माही ॥ ११३३

१. पं० रामनरेश दिवाली—तुलसी और उनका वाक्य—पृष्ठ १४२

- (४) कुह सकरुषं वेतः भीमस्यसोकवनस्पते
बह्वनकमिकामेकां तावग्मम प्रकटीकुह ।
 मनु विरहिना संतापाम स्फुटीकुस्ते मया-
 मन्वसिस्वकथेभीम्यावात्कुधानुचिन्तावसिम् ॥ प्रसभराचव १।१३
 पुनहुँ बिनय मम बितप बसोका । सत्य नाम कइ हइ मम सोका ॥
गूठन किसलय बनस समाना । बैहि बपिनि बनि करहि मिथाना ॥ २।१२
- (५) हिमांशुपथ्यांशुर्नववसवरो वावबहून् सरिहीषीवात कृपितफनिमिशवासपवन
नवा मलती बस्त्री कुवमयवर्णं कूटमहनं मम स्वशिरसेपात्सुमुखि विपरीतं अपरिवन्
 प्रसभराचव १।४३

--- --

कहेइ राम बियोप तब सीता । मो कहुँ सकस भए विपरीता ॥
कुवलय बपिन हुँत बन सरिता । बारिब तपत तैस जगु बरिसा ॥
बैहित रहे करत तैह पीरा । उरग स्वास सम त्रिबिब समीरा ॥ २।१२

- (६) धोर्मणस्य निरो विप्राः सूतमानववन्दिन ।
मानकाश्च बगुर्भुमेवो बुभुभवो मुहु ॥ भाषवत १०।२।३
 --- --
- मानव सूत वन्दिवन मायक । पावन मुन बाबहि रघुनायक ॥१।१२४

- (७) भीरामसाधिप्यवसाज्जनवार्मवदायिनीम् ।
सत्यतिस्वितिसंहारकारिणीं सर्वं हेहिमाम् ॥ रामतापनीयोपनिषद् ३।२२
 --- --
- बहुमवस्विति संहारकारिणी मीसहारिणीम् ।
सर्वभेषस्करी सीतां मतोऽर्हं र मवस्तमाम ॥ १।१ बलोक ५

‘पाद ग्रहण’ के इस अध्ययन से पता चलता है कि तुलसी ने कहीं-कहीं भेद नया, दो अथवा दार्द पदों का भी ग्रहण कर लिया है किन्तु ऐसे दो या दो से अधिक पद क्रमबद्ध न होने के कारण अर्थग्रहण की सीमा में नहीं आते हैं ।

(११) अर्थ-ग्रहण—पाद ही नहीं कहीं-कहीं गोस्वामीजी ने समस्त बलोक के पूर्वार्ध अथवा उत्तरार्ध का भी ग्रहण कर लिया है -

- (१) शास्तामृतस्य शास्ताया तातां यन्तु पराक्रम ।
वत्पुनसंविदोऽम्भोविः प्रभावोऽयंप्रभो तव ॥ इगु० १।१४

--- --

शाखा मुग के बड़ि मनुसाई । शाखा ठे साया पर बाई ॥ २।१३

(२) यदन्तरं वामस्य वेनतेययोर्वदन्तरं सिंहश्यासयोर्वने ।

सद्योतमार्कशक्योर्वदन्तरं तदन्तरं ते त्पुनस्तनस्य च ॥ महाभारत १।४७

तुम्हारे रघुपतिहि अन्तर कैसे । समुच्चोत दिनकरहि जैसे ॥११९

(३) ये मग्गन्ति निमग्गपन्ति च परास्ते प्रस्तरा कुस्तरे ।

बाबों बीर तरंगित वानरघटान् सन्तारवन्तेऽपि च ।

मे ते धावसुखा न कारिनिष्खा नो वानराणो गुणा

भीमवृद्धाघरथा प्रतापमहिमारम्भ समुज्जम्भते ॥ हनु० ७।१६

मद्विया यह न जलधि की करनी । पाहन गुन न कपिह की करनी ॥

धी रघबीर प्रताप ते सिन्धु तरे पालान ॥ ६।६

(४) साम्प्रतीनाम्बुदे र्वोम सविद्य स्तनधिरम्भि ।

रूपपटयोतिराभ्यर्णं ब्रह्मो व समुर्ध्वं बभौ ॥ भागवत १०।२०।४

कुने कमल सोह तर जैसे । निर्गुन ब्रह्म समुन मए जैसे ॥४।१७

(१२) पाद्प्रयमहण—ये पादों के अतिरिक्त तुमसी ने कहीं-कहीं श्लोकों

के तीन पादों तक का ग्रहण कर लिया है —

(१) मुनिमार्यस्य मध्येतु बिरेके नगरं महत् ।

नतयोजन विस्तारमवूर्ध्वं मुपनोद्धरम् ॥ विष्णुपुराण । ४४ । ३।३

बिरेकेह मगमहं नगर ठेहि सत योजन विस्तार ।

धीनिवास पुर तें अधिक रचना विविध प्रकार ॥ १।२२६

(२) बाहीपालरथो प्वमी नृरथय सर्वे समम्प्राणता

कम्पाया कलपोतकोमलरुचे कीर्तिवच काय पटः ।

नाहृष्टं न च टंठितं न नमितं नीरवापितं स्वानत

केनारीदमशो महद्वन्दुरिदं निर्बीरमुखीतसम् ॥ हनु० १।१०

। बाहू न संकर चाप चढ़ाया ।

रथ चढ़ाउच तोरव भाई । तिलधर भूमि न सकेउ छुड़ाई ॥

बब जनि कोउ भाग्ये बट मानी । बीर बिहीन मही में मानी ॥ १।२४२

(१३) मृत प्रहण—एद विशेषन से बोधो यह कहा जा चुका है कि मोरबामीशो ने अपनी शौराहणों में संश्रुत तथा द्विरी के अनेक एदों का उपस्यव

कर लिया है। अतः वहाँ उन्होंने वस्तु के साथ-साथ उसके स्वरूप का भी ग्रहण कर लिया है वहाँ उसका अकार और अधिक बढ़ गया है। निम्न उदाहरणों में 'सायताम्ब' का बीपार्ई में समावेश दर्शनीय है —

(१) साययन्तमरविन्धवनाणि साययन्तममितो भुवनानि ।

साययन्तमय कोकटुनाणि ज्योतिषा पठिमहं मह्यामि ॥ प्रसन्न० १।३

सयत अथन अवनकोकटु ताता । पंजन कोक लोक मुख पाता ॥ १।२३८

(२) सायनेन द्विभुजापि किञ्चार्थं लीसर्षैव ममितो ह्यथाप ॥

दूरमुह्यसति यस्य समन्तारम्भरेऽपि पयितौ भुमभोष ॥ प्रसन्न० १।४।

ठहिल्ल मध्य राम जनु तोरा । भरे भुवन बुनि चोर कठोर ॥ १।२६१

(१४) सिष्कप्य—पोस्वामीजी का अध्ययन बड़ा विद्यामय था अतः उन्होंने

अपने 'मानस' को 'अतिमंजुल' बनाने के लिए संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों से अनेक पदों, पारों, अर्थशब्दों तथा छन्दों का केवल उपयुक्त स्वरूपों में ही ग्रहण करके उनका अनुपयोग किया। इस ग्रहण में उन्होंने अभिव्यक्ति की पूर्णता और सुन्दरता के साथ साथ जीवित मर्यादा और सौन्दर्यता का भी सखिलेप ध्यान रखा है। इसके अलावा बहुलता, मर्मज्ञता और पावनकृति का भी समर्थ परिचय प्राप्त हो जाता है।

अर्थ-योजना

अभी पिछले अध्याय में तुमही के 'सम्यग्रहण' का विशेषण किया था चुका है। अब यहाँ उनके 'अर्थ-ग्रहण' पर विचार अपेक्षित है। महाकवि कालिदास शब्द और अर्थ को 'संपृक्त' बतलाते हैं, किन्तु गोस्वामीजी उन्हें 'अस और बीबिके समान' विप्राभिन्न मानते हैं। अर्थबोध में व्यवहार पर अस देते हुए प्रवाद भी कहते हैं कि शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतन्त्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति होती है। समीप के शब्द भी उस शब्द विशेष के मधीन अर्थ का द्योतन करने में सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण में शब्दों के व्यवहार का बहुत हाथ होता है। अर्थबोध व्यवहार पर निर्भर करता है। 'वस्तुतः' शब्द और अर्थ का यह सम्बन्ध अनिवार्य है। अतः वे अर्थ के स्वरूप की प्रशिक्षा भी बड़ी विधिमान है। शब्द एक ओर जहाँ अर्थ का जनक है वहाँ दूसरी ओर वह मातृ का अंग भी है क्योंकि सर्वप्रथम हमारे मन में किसी एक शब्द का उदय होता है और जब वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए हमें पूर्ण विवक्षित कर देता है तब हम उपयुक्त शब्द का चुनाव करते हैं और उसकी समस्त शक्तियों से, अविश्रित अर्थ के व्यतीकरण की अपेक्षा रखते हैं। फिर भी कुछ कमी रह जाने पर हम अपने पारिस्थितिक अनुभावों से उसकी पूर्ति करते हैं। इस प्रक्रिया में बड़ी शक्ति व्ययबन्धित उपयुक्त माना जाता है जिसका अर्थ 'मूल भाव' के अधिक समीप पहुँच सके। भाषा-वैज्ञानिक नियमों के अनुसार शब्दों के अर्थों में अनेक कारणों से उत्कर्ष, अपकर्ष, परिवर्तन एवं परिवर्धन आदि भी हुआ करते हैं। शेरशास्त्री ने अपने अर्थ-ग्रहण में इन सभी स्थितियों का विशेष ध्यान रखा है। अपने वाक्य के महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए वहाँ कहीं-कहीं संशुद्ध शब्दों से उपयुक्त शब्दों का निस्संकोच ग्रहण किया है, वहाँ अनुपयुक्त शब्दों को विशेष अर्थ द्योतन में असमर्थ देखकर उद्देश्य के अनुसार मूल भाव का ही ग्रहण किया है और अपनी उपयुक्त शब्द योजना से उसकी सम्पूर्ण अर्थों में व्यक्त करने का प्रयास प्रयत्न भी किया है। इनके अतिरिक्त उद्देश्य के अनेक पूर्व अर्थों का अनुकूल संस्कार भी किया

है। अनेक स्थलों पर उन्होंने अग्याय्य श्रुतियों के विभिन्न अर्थों का केवल छाया-ग्रहण भी किया है और अग्याय्य उनके विस्तारों में भी चमत्कारपूर्वक वैशिष्ट्य प्रस्तुत कर दिया है।

आचार्य राजशेखर ने अपने ग्रन्थ 'आम्यमीमांसा' में इस अर्थ-ग्रहण पर बड़ी पम्थीरता से विचार किया है। आचार्य कामन और आनन्द-वर्धन भी इस विद्या में विशेष प्रयत्नशील रहे हैं। कामन अर्थ के 'अयोनि' तथा 'अग्यच्छायायोनि' को भेद मानते हैं^१ और आनन्दवर्धन 'अग्यच्छायायोनि' के प्रतिबिम्बरत्वात् मानेस्वप्रत्ययत् तथा तुल्यवेदित्वात् आदि तीन भेद भी करते हैं।^२ राजशेखर अर्थ के अग्ययोनि, निह नृत्त योनि और अयोनि—ये तीन प्रकार बतलाते हैं। इनमें से 'अयोनि' अथवा 'मौलिक' अर्थ यहाँ विवेचनीय नहीं है। 'अग्य-योनि' के प्रतिबिम्बरत्वात् तथा 'मानेस्वप्रत्यय' को भेद किए जाते हैं और निह नृत्तयोनि के भी 'तुल्यवेदितुस्य' तथा 'परपुत्रप्रवेश सद्रुत' को भेद बतलाये गये हैं। इन चारों भेदों में से प्रत्येक के पुनः ८ प्रकार होने से यह अर्थग्रहण^३ के सब मिला कर ३२ प्रकार माने गये हैं।^४ प्रस्तुत अग्याय्य में इन्हीं भेदों-भेदों के परिबेध में मानस के अर्थग्रहण का विवेचन किया जा रहा है।

(१) प्रतिबिम्बरत्वरूप—अभी वाक्य-विग्यास में भेद होने पर भी अर्थ में पूर्वतया अन्वेष होता है वही 'प्रतिबिम्बरत्वरूप' अर्थ ग्रहण माना जाता है। राजशेखर के मत से यह 'ग्रहण सकलित्वायी और परिहरणीय होता है। इसके प्यरत्क अण्ड ऐक्यित्तु, मटनेपम्य अयोनिनिमय हेतुस्वरयम संक्रमणक सम्भुट आदि आठ भेद किए जाते हैं। विस्तार तब से यहाँ प्रत्येक भेद के अधिक उदाहरण प्रस्तुत नहीं किए जा रहे हैं।

(२) व्यस्तक—इसमें पूर्व 'अर्थ' को पर और पर 'अर्थ' को पुनः कर दिया जाता है —

(१) इक्ष्वाक्यो नेव वरतयत्तरयं प्राभेवु तस्यास्त्वपि पाविशैग्रा ॥ उदार० ४१४१

रघुकुल रीति सदा बलि आई। प्राण जाहि पर बचन न आई ॥ २।२८
'मानस' में 'अक्षयवाच' को पूर्व से पर और 'प्राणवाच' को पर से पूर्व दिया गया है दोन अर्थ समान हैं।

(२) राम दपारर्ष विडि नां विडि जनकःतमबाम् ॥ हनु० ३।१८

ठाठ गुम्हारि पातु बँदेही। पिता राम सब भाँति समेही ॥ २।७४
यहाँ भी पिता को पूर्व से पर और 'माता' को पर से पुनः कर दिया गया है।

१ काम्यालंकार सूत्र ३।२।७

२ अम्यासोक ४।१२

३ काम्यमीमांसा—सं० कैदारनाथ वर्मा—पृष्ठ १२४ १६०, १६६ १७४, १८३

(३) प्रतिबन्धे महावीरो नियतं सवरससाम ॥ रामबीम ७७३

निष्ठिचर हीन करी महि मुञ्च उठाय पन कीगह ॥ ३।६

इसमें भी 'प्रतिष्ठा' को पूर्व से पर और राक्षसवपु को पर से पूर्व कर दिया गया है। देव वर्ण में पूर्व समानता है।

(३) स्वयच्छ—इसमें विस्तृत वर्णन को संक्षिप्त कर दिया जाता है।

तां स्पन्दुमिच्छति कर्षं यो ह्यान्मया त्यक्तजीवित ।

ब्रह्मामिषवज्जाराते जन्ममानस्य अम्बुक् ॥

रामस्य विप्रिये कस्त्रं मतेमत्येव गर्भेभ ।

बाहु मरुतेषु सघट गुणर्णस्येव बापध ॥

रा० मञ्जरी । अरण्य ८१४, ८१७

मिथि हरि बभूहि छुट्ट सस बाहा । मयेसि काल बस निष्ठिचर नाहा ॥ ३।२८
यहाँ चार उपमाओं के विस्तार के स्थान पर केवल एक उपमा को संक्षेप में प्रयुक्त किया गया है। इसी प्रकार 'जलम्बर-वर्षन' में जो 'पद्मपुराण' में २६ अध्यायों में है, किन्तु 'मानस' में केवल ७ पंक्तियों में है 'अम्बुतापस वर्षन' में जो 'उदार राक्षस' में १० श्लोकों में है, किन्तु 'मानस' में आधी पंक्ति में है और विठप वर्षन' में जो 'रामायण मञ्जरी' में २४ श्लोकों में है, किन्तु 'मानस' में केवल २ पंक्तियों में है अण्ड का ही प्रभाव समझना चाहिए।

(४) तस्य विम्बु—यह पूर्वोक्त 'अण्ड' के विपरीत है। इसमें संक्षिप्त वर्ण को विस्तार दिया जाता है। 'मानस' में इसके भी अनेक उदाहरण हैं। मनुष्यतरुणा' कथा 'पद्मपुराण' में केवल २ पंक्तियों में है, किन्तु 'मानस' में बहू मगमय १०० पंक्तियों में है। 'रामविवाह-वर्षन' अनेक पंक्तियों में केवल एक या दो पंक्तियों में है, जबकि 'मानस' में उसे मगमय १०० पंक्तियों मिली है। इसी प्रकार 'राक्षस अन्ध संवाद' भी 'मानस' में अति विस्तृत है जबकि कुछ अर्थों में उसका संकेत भी नहीं है।

(५) नटनेपथ्य—भाषा-परिवर्तन इय वर्णसहस्र' को एक मात्र विशेषता है। इस दृष्टि से नृसङ्ग के पंक्तियों से प्रभावित 'मानस' के सभी अर्थ इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। प्रस्तुत अध्याय में उदाहृत सप्तत्र उदाहरणों में उसकी छाया देखी जा सकती है।

१	वद्म । उत्तर । ३ ११ ११ १०० अध्याय	२	मानस १।१२३ १२४
३	उदारराक्षस १।१९ १०२	४	' २।१२३
५	रा० मञ्जरी । अरण्य । ३६० ३८३	६	' ३।७
७	वद्म । उत्तर । २४२।१।५	८	" ३।१४२ १२२
९	मानस १।२८२ ३९१	१०	" मानस ६।१०-१३

(३) छन्दोविनिमय—इस 'छन्दपरिवर्तन' का महत्व है। संस्कृत-स. में जहाँ अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है, वहाँ 'मानस' में अधिकतर दोहों चौपाइयों को ही प्रमुखता मिली है अतः 'वृत्तग्रहण' के कृष्ण उदाहरणों को छोड़ प्रस्तुत छन्दस्य उदाहरणों में उलझना भी प्रभाव छद्म सुखम है।

(१) हेतुभ्यत्यय—इसमें 'हेतुपरिवर्तन' पर बल दिया जाता है —

(१) अथ विष्णुमहाप सा वपुः शतशायाना निजमासवत् परम् ॥ शयनीय ३।

दीन आनि तेहि निज पर वीणा ॥ १।२०९

सोक में निज-पर प्राप्ति' के लिये शाय-शान्ति' का उल्लेख है, पर 'मानस' उसके स्वान पर शीतता का संकेत किया गया है।

(२) तात । एवं निज ऐकसैव समितः स्वर्ग इव स्वस्ति ते ॥ इनु० ३।१६

तात कर्म निज ते यति पाई ॥ ३।३१

यहाँ भी 'ऐक' के स्वान पर 'कर्म' के वर्धन से हेतुपरिवर्तन स्पष्ट है।

(३) सर्वशक्तिप्रसन्नानि सन्नितानि तथा भवन् ।

आते सर्ववते विष्णो मनीषीव मुनेषसाम् ॥ विष्णुपुराण ३।१०।११

सरिता सर निर्मल जल सोहा । सत हृदय बस यत मर मोहा ॥ ४।१६

यहाँ पर हृदय की निर्मलता के लिए 'विष्णुदान' के स्वान पर 'यदमोह' के नाश का वर्धन किया गया है।

(७) संक्रान्तक—कहीं देखी गई बात का कहीं वर्धन करना संकीर्णक होता है —

(१) वागस्य बाहुलिबद्धैः परिपीड्यमानं तैर्धनुषवज्रानि किञ्चिदपीड्यमाने ।

कामातुरस्य वनसामिभ्य संविभानीरम्यवितं प्रकृतिचारु मनः सतीताम् ॥

प्रसन्नराज्य १।३६

भूप सहस्र बस एकहि बार । लखे उठावन टरै न टारा ॥

बिणी न संभु सरासन बैसे । कामी बचन सती मन बैसे ॥ १।२५१

सोक में शोक के प्रसंग में प्राप्त वपुष की बचसता का उल्लेख 'मानस' में 'भूप सहस्रबस' के प्रसंग में कर दिया गया है।

(२) मां हि वार्यं स्वपाधिरव मेप्रिय सपुः पापबोलाय ॥

स्त्रियो वीरयास्तया दूहा स्तेप्रिय शान्ति परां कथिम् ॥ श्रीता १।३२

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव बराबर को३ ।

सर्व भाव अत्र कपट तत्रि मोहि परम प्रिय सोह ॥ मानस ७।८७

'श्रीता' में जिस मोक्ष लाभ का वर्धन श्री वीर्य और दूहों के प्रसंग में किया गया है, 'मानस' में वही पुरुष आदि के प्रसंग में विभवा है।

(३) निरवताम्बुरमृतुर्ध्वी समुद्र शरवामये ॥ भागवत १०।२०।४०

स्रिता बल जसनिधि महं धारि । होइ बचस त्रिभि जिय हरि पारि ॥

४।१४

'भागवत' में समुद्र की निरवसता का उल्लेख 'शरत्' के प्रसंग में है, किन्तु 'मानस' में यह 'वर्षा' के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है।

(४) मजेन्द्रो भनवरस्पर्शान् विमृत्तो क्षामव्यमतात् ।

प्राप्तो मयवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुज ॥ भागवत १०।४१

पीप देह तत्रि परि हरि रूपा । भूयस बहु पट पीत अनूपा ॥

स्याम पात विद्याल भूजचारी । ॥ ३।१२

'भागवत' में जो 'हरि रूप' का धारण मजेन्द्र के प्रसंग में है वह 'मानस' में ब्रह्मा के सम्बन्ध से बणित हुआ है।

(५) सम्पुट—जो मित्र शनोको के भावों का एकीकरण सम्पुट कहलाता है—

(१) मार्गाम्बुसगिन्ध्यास्तुभैरवमा ह्यसंस्तुता ।

नाम्यस्वमाना पृतयो द्विर्व कासहृता इव ॥ भागवत १०।२०।१६

ब्रह्मोर्वनिरभिद्यस्त सेतवो वर्पतीश्वरे ।

पापशुद्धिनामसद्गार्थैर्बेदमार्या कतो यथा ॥ भागवत १०।२०।२३

हरित भूमि तुम संकृम समुक्ति परहि नहि पम्प ।

त्रिभि पाषण्ड बाद ते गुप्त होहि तद्गुण्य ॥ ४।१४

यहाँ प्रथम श्लोक में 'तुमों से मार्गशीर्ष और द्वितीय में 'पाषण्डबाद' का ग्रहण करके उनको एक ही श्लोके में निबद्ध कर दिया गया है।

(२) लमणोमठ निर्मयं शरद्विमलतारकम् ।

शरद्वपुर्त्तं यथा चित्तं तस्य ब्रह्मार्थं वर्धनम् ॥ भागवत १०।२०।४३

सर्वैश्वं जमदा हित्वा विदेजुःशुभ्रवर्षेण ।

यथा त्वद्वेपथा पाठता मूनयोमृत्तद्विस्त्रिया ॥ भागवत १०।२०।३२

विनु जन निर्मल सोह ब्रह्मणा । हरिजन इव परिहरि सब बाणा ॥ ४।१६

(३) शमिद्रमुनिनृपस्नाता निर्मम्याश्चिन् प्रीतिरे ।

वर्षेण्डा यथासिद्धा स्वपिण्डान् काल जायते । भागवत १०।२०।४६

श्वोप्लोम्रं भूतपावस्यं मुहं ब्रह्मवर्षामलम् ।

शरद्वहापयमनिगां हृत्पे मत्तिर्यदागुणम् ॥ भागवत १०।२०।३४

जते हरपि तत्रि नगर नृप तापस बनिक जितारि ।

त्रिभि हरि जयति वाइ धम तत्रहि जायसी चारि ॥ ४।१६

इन दोनों उदाहरणों में भगवत के प्रथम श्लोक के पूर्वार्ध और द्वितीय श्लोक के उत्तरार्ध का प्रभाव मानस' की पंक्तियों पर स्पष्ट है ।

(६) आत्मोन्मत्तप्रसव—जहाँ समान वर्ण होते हुए भी कुछ ऐसा संस्कार कर दिया जाता है कि वह वस्तु एकवचन मिथ्य ज्ञान पड़ने लगती है वहाँ आत्मोन्मत्त प्रसव होता है । उसके समक्रम, विभूषण-भोग्य स्मृत्कर्म विशेषोक्ति उत्सव, लटने पम्प, एकपरिकार्य और प्रत्यापत्ति नाम से बाठ भेद किए जाते हैं ।

(१०) समक्रम—समान क्रम से वर्ण का संक्रमण 'समक्रम' कहलाता है । यह पूर्वोक्त 'संक्रामक' से भिन्नता है किन्तु इसमें 'क्रमपाठन' की विशेषता होती है—

(१) हृषिकं नयनमुद्यता नैवपुग्मानि देवा
स्त्रीभ्यलीलि त्रिपुर विजयी पद्मसम्भाष्टपुट्टी ।
बभ्रु-पदकं द्विपुत्रमुचितं शक्तिरिहिकं सखसम् ।
नीत्वोत्कारं स च सुरपति वृष्टमान बालिपुत्रम् ॥ बाल० ८५६

--- --

संकर राम रूप अनुरागे । नयन पंचदस अति प्रिय भाये ॥
विरति राम छवि बिबि इरपामे । बाठइ नयन ज्ञानि पछठाने ॥
सुरसेनप पर बहूत छछाह । बिबिते डेबड़ लोचन लाहू ॥
रामहि चितव सुरेश मुबाना । नीतमभापु परम हित माना ॥

यहाँ पर बिबि बहूत काठिकेय और इन्द्र के वर्णन का समान क्रम से वर्णन है । श्लोक में वहाँ केवल उत्साह का संकेत है, वहाँ 'मानस' में मिथ्य भावनाओं के वर्णन से एक विशेष चमत्कार प्रस्तुत किया गया है ।

(२) अघोतमार्कंडेयकर्मवन्तरं तदन्तरं ते रघुनम्बरस्य ॥ महाकाण्ड ३।४७

--- --

तुम्हींहि रघुपतिहि अन्तर कैंसा । जसु अघोत दिनकरहि कैंसा ॥६१६
यहाँ अघोत और सूर्य का क्रम-निर्वाह भी है और 'अतु' शब्द से एक निरवयव श्लोक करके उस क्रम पर बल दे दिया गया है ।

(११) विभूषण-भोग्य—इसमें अलंकृत उक्ति को अलंकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है ।

(१) मायारवं समधिदह्य नमस्वतस्वो पद्मीरकास जलदम्बनिरवजयर्ष ।
बानेरपाठयबहो फलिपाचबहेस्ती मेव मन्धरविरी पदिनेव अत्र ॥

हनु० १२।४

--- --

मेवनाव भाया रचित रच बढ़ि पयठ अकास ।
पर्वेऊ प्रलय पबीद त्रिनि मय वरि कटकहि भास ॥
पुनि रघुपति मे जूसइ लाबा । सर छीउइ ह्रीहि लानइ नाबा ॥
ध्यातपास बस बये सरारी । --- -- ॥ १।७२-७३

श्लोक के असंस्कृत भाग को 'मानस' में अनसंस्कृत रूप में स्थान दिया गया है ।

(९) अयमसावुहीगकराकरवात काकभूर्जग । तदिबानीमपि दधकठमुजासमेप
मेपअमनुजाभीहि ॥ प्रसन्नराचन ६।२१ के बाद

धीता से ममकृत अयमाना । कटिहृते तब तिर कठिन वृपाना ।

गाहि त सपदिमानु मम बानी । मुमुखि होति न तु जीवग हानी ॥१।१०

यहाँ श्लोक के रूपक अक्षरों के स्थान पर 'मानस' में सारी उक्ति से काम लिया गया है ।

(१०) व्युत्क्रम—विपरीत क्रम से 'अथपद्य' को व्युत्क्रम कहते हैं ।

(१) पृथ्वि स्थिरा मव भूर्जगम धारेमना एव कूर्मराज ठद्विर् द्रितयं दधीपा ।
दिवकुरा कुरुत तत्रितये दिधीर्वा राम करोति हरकामकमाततययम् ॥

हनु० १।२१

विषिकुंजरहु कमठ अहि कोला । परहु परिनि वरि धीर न कोला ।

राज वहहि संकर मनु तोरा । होहु सजम मुनि आयगु मोरा ॥ १।२६०

श्लोक में भूर्जगम कूर्मराज और दिवकुरा का क्रम है और 'मानस' में दिवकुरा, कूर्मराज और भूर्जगम का क्रम यहाँ व्युत्क्रम स्पष्ट है । जोपाई के 'अनुसंधान' पाठ से अर्थ का उत्कर्ष भी बढ़ गया है ।

(२) कर्णो विषाय निरियापदवहन ईशे मर्षावितर्षसुखिमिन् धिरसमाने ।
द्वेषाप्रसङ्ग दशोमसती प्रमुग्धेगिज्जहामगुनपि ततो विसृजेत धर्म ॥
भाष्यवत् ४।४।१०

यस्य सम्भु धीरति अथवाचा । मुनिय यहाँ तर्ह अमि नरजादा ॥

वाटिय ठामु जीम जो बसाई । सवप मु वि न तु अतिय कराई ॥ १६४

भाष्यवत् में 'वान भूवना' पहले और 'जीम वाटना बाद में है किन्तु 'मानस' में यह क्रम विपरीत है । साथ ही श्लोक में केवल 'संकर' से अभिप्राय है, जबकि 'मानस' में सज और धीरति भी समन्वित हैं ।

(११) विशीपोक्ति—यामास्य वात जो विशेष रूप से बहना ही विशेषी पोक्ति है ।

(१) सर्वत्र मुह्ये सन्नि सन्नि सम्बन्धवाग्धवा ।

अभिप्रत्यग्पदेह्यय दुर्लभं त तहोदर ॥ रा० मंत्ररी । वृत् १।२।१५

मुन विज नारि अचन बरिवारा । होहि जाहि जम बारदिवारा ॥

अत विचारि त्रिप जायहु ताता । मितद न जयत तहोदर भाता ॥६।६१

यहाँ सामान्य बलि को सकल से सम्बन्धित करके विशेष प्रकार से कहने के कारण 'विशेषोक्ति' स्पष्ट है।

(२) बासांसि बीर्वाणि यथा विहाय नवानि मूह पाति गाठेअराणि ।

तथा करीराणि विहाय बीर्वाण्यस्यानि संयाति नवानि ॥

गीता २।२२

--

बोह तनु बरतं तजठ पुनि अनावास हरिजात ।

त्रिमि मूतन पट पहरिह, तर परिहरिह पुरात ॥ ७।१०६

यहाँ 'गीता का सामान्य सिद्धांत 'मानस' में काकनुसुप्ति से सम्बन्ध होने के फलस्वरूप विशेष' हो गया है।

(२४) अतः स—गोध अर्थ को मुख्यता प्रदान करना ही 'अंतः' कहलाता है—

(१) परिमितमहिमानं क्षुद्रमेतं समुद्रं, क्षितिचरवटनाभि कोऽप्रमृदीर्यं पर्यं ।

अकसितमहिमानं सन्ति बुध्मापपारा बभ्रवदतमुवास्ते विशति-

सिबुताया ॥ हनु० ८।११

मम भुव सागर बल अत पूत । अहं बुई बहु सुर तर मूत ॥

बीस पयोधि अवाच बपारा । को अत बीर को पाइहि पारा ॥ १।३८

'बलोक' में 'सिन्धु' अर्थ बीज है 'मानस' में वह मुख्यतया प्रयुक्त है।

(२) मीर्षां वनुस्तनुरियं च विमति मीर्षां बाना-कुषारश्च बिलसन्ति करे सिताया ।

पारोज्ज्वलस-परशुरेण कमण्डलुश्च तर्हीरिछाम्तरसमो किमप्यं विहारः ॥

प्रसन्नराजव ४।१३

--

कटि मुनि बसन तुम बुइ बाये । पनु सरकर कृठार कल काये ।

सन्ति वेपु करणी कटिन बरनि न बाइ सरुप ।

बरि मुनि तनु अनु बीर रतु जायतु अहं सब मूप ॥ १।२१५

'बलोक' में 'बीर रत' अर्थ बीज है किन्तु 'मानस' में वह मुख्य है।

(१३) मट-नेपथ्य—एक ही अर्थ को लक्ष्य 'अपमया' कर देने से 'मट

नेपथ्य' हो जाता है।

(१) संवाचितस्य चाकीर्तिर्मेरवावतिरिच्यते ॥ गीता २।३४

--

संवाचित कहं अपवस लाह । मरल कोटि सम बाधन बाहू ॥ २।१३३

यहाँ 'वर्णातिरेक' को 'मरल कोटि सम' कह देने से 'मटनेपथ्य' है।

(२) अपि मूढमूपयास्तो वाचिमासि स्वकीर्यं ।

परिमज्जित्बु धीर्यं माम्नि सन्तः क्रियन्त ॥ प्रसन्न० १।१६

--

विन कबित केहि माय न नीका । सरस होत जयबा बति फीका ॥

बे परमनिधि सुनत हरपाही । त बर पुष्य बहुत जय नाहीं ॥११८

'श्लोक' के अतिशय को 'मानस' में अभ्यसा व्यक्त कर दिया गया है । -

(१) एकोगाएक शत्रूक राजमहिषीस्वयवरा वा यम्बोदरी ।

सेवार्थ विनिमृगयते च सकलं लंकाधिपत्याय ते ॥ महाभारत ३।४२

कह रावन मुनु मुमुक्षि सयानी । मंदोदरी जादि सब रानी ।

तब अनुचरी करत पन भोच । एक बार बिलोकु मम बोच ॥११९

यही 'सेवा-विनिमोय' के लिए ही 'अनुचरी-करव' का अभ्यसा प्रयोग किया गया है ।

(१४) एक परिकार्य—अलंकार के समान रहने पर भी यदि अलंकार में भेद हो चाय तो एक परिकार्य कहलाता है ।

(१) कनेव चाली नवनीरधाना चकोरवग्ना मुदितं करोति ॥ प्रसन्न० २।१३

सिय मुक्त सति भए नयन चकोरा ॥११२३०

यही अलंकार का संज्ञेय है श्लोक में अलंकार 'राम' है किन्तु मानस में 'नयन', अतः उसका भेद स्पष्ट है ।

(२) अस्ति मरस्मस्तिविनाम शत्रयोऽन विस्तरः ।

तिमिगितमिमोऽप्यस्ति तद्विमोऽप्यस्ति राघव ॥ हनु० ८।४७

देसन कह प्रभु कस्ता कंत । प्रपट भए सब जसवर बगदा ॥

मकर नरु नाता राव भ्यामा । सत घोत्रन तन परम बिसाला ॥

अहसेव एक तिगूहिये गौही । एकह के हर ठेवि बराही ॥११४

यही अलंकार समान होने पर भी श्लोक में अलंकार 'राम' है किन्तु मानस में कोई महामास्य है ।

(१५) प्रत्यापत्ति—विकृत अर्थ को प्रकृत करना 'प्रत्यापत्ति' कहलाता है ।

(१) आनालेखं शयचर मुदि प्रेयतए मने मे

बाधैवेतश्चरमनुपतं तपिये दिकरोमि ॥ प्रसन्न० ९।४४

तए प्रेम कर मय अक दोरा । जानय प्रिया एक मनु मोरा ।

ओ मनु सरा रहत छोहि बाही । जानु प्रीति रस एतनेहि मोही ॥११९५

यही 'श्लोक' की अतिशय शक्ति में 'निर्वनता' की भावना है किन्तु 'मानस' में सबलता का संकेत है ।

(१६) तुम्यदेहिस्तुस्य-अभ्ययोनि के दोनों प्रेरों—अतिदिव्यवस्त्र और 'आलेख्यवस्त्र' के अंगोहरण निरुपम के परवान् अब निरुपम योनि के 'तुम्यदेहिस्तुस्य

तथा परपुरज्वेत-सदृश' को भेदों में से सभ्रप्रथम 'तुल्यवेहितुल्य' का विवेचन किया जा रहा है उसके बी निम्नलिखित आठ भेद होते हैं—यथा विषयपरिवर्त, इन्द्र विच्छिति, रत्नमासा संक्षोप्तेषु चूलिका विधानापहार, माणिक्यपुण्ड्र और कन्द ।

(१७) विषय-परिवर्त—एक ही वस्तु को विषयान्तर से अन्य रूप प्राप्त करा देना इसकी विशेषता है ।

(१) यथा यदाहि वर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अम्बुत्थानमवर्मस्य तवारमानं सुजाम्यहम् ॥

परिधानाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

वर्मसंस्थापनायै संभवानि मुने युगे ॥ गीता १४।७-८

—

—

जब जब होइ परम क हानी । बाढ़इ असुर अथम अमियानी ॥

करहि जनीति जाइ महि बरनी । सीरहि विप्र भेगु सुर बरनी ॥

तब तब प्रभु बरि मनुज सरीर । हरहि कृपा निधि सज्जन पीरा ॥

असुर भारि पापहि सुरगृह राखहि निज सुति धनु ।

जब बिस्तारीहि बिसय जस राम जन्म कर हेतु ॥१।१२१

यहाँ 'अवतार वर्मन' तो समान है, किन्तु 'कल्याणतार' में 'साधु-परिषाज' तथा 'पुष्टविनाश' का उल्लेख है, जब कि 'मानस' में 'असुरवध' और 'सुरस्थापन' का वर्मन है जिससे 'वस्तुभेद' हो गया है ।

(१८) इन्द्रविच्छिति—दो रूपों में बणित वस्तु को एक निश्चित रूप देना ही 'इन्द्रविच्छिति' कहा जाता है—

(१) यथास्पृष्टं न वास्पृष्टं कामुकं पुरवीरिय ।

मगवप्रामतेवैवमयगम्यत करोमि किम् ॥ प्रसन्नराजस ४।११

—

—

सुबतहि टूट पिनाक पुराना । मैं कहि हेतु करहुं अविमाना ॥१।१२३

यहाँ श्लोक के दोनों उद्देश्यों को एक निश्चय में पणित किया गया है ।

(१९) रत्नमासा—किसी कवि के पूर्व बणित वर्म को प्रकारान्तर से कहना 'रत्नमासा' कहा जाता है ।

(१) आसतां मस्तकहोम बिभ्रमकृपा पीसररम बिस्तारिणी ।

देहं कि न निपाठयमि बहुते वैवम्यवीता- स्त्रिय ॥ हनु० ८।३९

—

—

मुनु मतिमग्न देहि अब पूरा । काटे छीस कि होइहि मूरा ॥

इन्द्रजानि कहुं कहिब न बीर । काटेर निज कर सकल सरीरा ॥

जरीहि परीय विजोइ बस, --- --- ॥१।१२६

यहाँ 'विषया के देहनाश' के स्थान पर 'इन्द्रजानी' के शीर्ष (१) और पतय के

विशोद का वर्धन कर दिया गया है ।

(२०) संक्षयोस्तेष्व-संख्या में अल्पता वर्धन करना ही संक्षयोस्तेष्व है ।

(१) श्रीम्यधीनि त्रिपुरविजयी पद्मसद्भाष्टवृष्टी ॥ बाभरामायण ८।१

अकर राम रूप अनुरागे । नयन पञ्च दस अति प्रिय सागे ॥

निरलि राम छवि विविहरणाने । भाठह नयन जानि पछिताने ॥१।११७

यहाँ श्लोक में शंकर के ३ नेत्र वर्णित हैं, किन्तु 'मानस' में १५, अतः यहाँ 'संक्षयोस्तेष्व' है ।

(२१) शूलिका—समान बन्ध-योजना के पर्याप्त कुछ विशेष बन्ध की योजना ही 'शूलिका' कहलाती है—

(१) राम । स्वस्वरूपप्रतापदहन ज्वालावली घोषिता ।

सर्वे कारिभयस्ततो रिपुबन्धुनेषाम्बुधि पुरिता ॥ हनु० १४।८३

प्रभु प्रताप बहवानस भारी । लोकेन प्रथम पयोनिधि भारी ॥

तब रिपु नारि बदन जलधारा । अरेठ बहोरि प्रमथ तेहि धारा ॥१।१

यहाँ सब समान होने पर भी 'समुद्र की धारणा' के उल्लेख से एक विशेषता है ।

(२२) विधानापहार—नियेब का विधान रूप से उल्लेख करना इसकी वृत्तता है—

(१) विप्रं कृतायसमवि नैव दुष्टत मामका ।

अमर्षं बहुपमर्षं वा नमस्कुरुत निरपराः ॥ भाववत १०।६४।४१

सापत्र तादृश परप कहन्ता । विप्र बुज्य बस माबहि सन्ता ॥१।१४

यहाँ श्लोक के 'नियेब' का 'मानस' में नियेबरूप स्पष्ट है ।

(२३) माणिक्यपुञ्ज—अनेक बन्धों के एक समाहार को 'माणिक्यपुञ्ज' कहते हैं ।

१) मन्दोदरीमपि विमुञ्चतिराग्यमेतदप्युग्रहं तव पराश्रयतले करोति ।

किं जलितेन बहुना मुमुक्षि त्वदर्शे स्वामुञ्चिदन्तरपि विराति पुनर्दशाय ॥

प्रनमराचर १।२८

एकोकारक घटैकराजमहिषीरपवरा वा मन्दोदरी

सेवार्थविनिमुग्यते च तदमं लंकाविराजयते ॥ बहानाटक १।४२

मन्वरी दस्य नयनेचरययवापदम्यासनाचरवरोपनमरवरीमव ।

सर्वैरवदेव तव मुन्दरिदासकरय नानम्वते यदि तवार्तिवर्षि प्रसार ॥

वा० श्रीमानपि १।२१

कह रामन सुनु सुमुक्ति स्यामी । मन्दोदरी जादि सब रागी ॥

तब अनुचरी करत पग मोरा । एक बार बिबोकु मम मोरा ॥११॥

यहाँ प्रथम श्लोक से रामच के अनुगत और सीता के प्रति सम्बोधन, द्वितीय से मन्दोदरी के राम और तृतीय से धर्मस्त जगत्-पुर के अनुचरणीकरण एवं सीता की कृपा की आकांक्षा जादि का मानस की एक ही चोपाई में समाहार कर रिया गया है ।

(२४) कम्बु—इसमें एक मूससूत बर्ष का बनेक प्रकार से विस्तार किया जाता है ।

(१) मञ्जुविभुरविधा सृष्टयो हा विभातु । प्रसन्न० २।२८

बुझ बुझ पाप पुस्य दिनराती । सानु असाबु सुबाति कुबाती ॥

दानव बैन ऊच अइ भीषु । अभिय सजीवन पाहुर यीषु ॥

अइ बैतन पुन होपमय बिदव कीन्ह करठार ॥ १।६

(२५) परपुरप्रवेशसदृश—यहाँ विषयभेद होने पर भी सादृश्य की अधिकता से भेद जान पड़ता हो, यहाँ 'परपुरप्रवेशसदृश' नामक 'अर्थग्रहण' माना जाता है । इसके भी हृदयुद्ध, प्रतिद्वन्द्व्युद्ध, वस्तुसन्धार बाहुबाध, सत्कार और्ध्वजीवक, धान मुद्रा और तद्विरोधी जादि बाठ भेद माने जाते हैं ।

(२६) हृदयुद्ध—किसी ब्रह्मि को मुक्तिपूर्वक विपरीत कर देना 'हृदयुद्ध' कहलाता है—

(१) हाजातोऽसि पुमस्त्वसंततिवधधीतद्युतेर्साङ्गम् ॥ प्रसन्न० ७।१

रिति पुनस्त्व अद्यु विमलमयंका । तेहि सति मह बनि होहु कसांका ॥१।२१
इसमें श्लोक के 'निरक्षय' को मानस में 'सम्भावना' में परिवर्तित किया गया है ।

(२७) प्रतिकंपुक—किसी वस्तु को प्रकारान्तर से बरत देना ही 'प्रतिकंपुक' है—

(१) पथिपथिकवचुनि सावरं पृच्छममाता ।

कृतमयबल नील को ममार्गेतवेति ॥

रिगतविकसितवण्डं वीरविभ्रान्तगैत्रम् ।

मुकवदनवपन्ती स्पष्टमाचष्टसीता ॥ हनु० ३।१५

सीय समीप प्रामथिव जाहीं । पूँछत अति सगैहं सकृचाहीं ॥

कोटि मनोज सजाबनि हारै । सुमुधि नइहू को जाहि तुम्हारै ॥

तहन सुमाय मुखय तन गीरे । नामु लयन् [सपु] देवर जोरे ॥

बहुरि बहनु बिबु अंशस डाकी । पियतन बितइ भीह करि बाकी ॥

पंवनमंजु ठिरीछे नयननि । निब पठि कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ॥

२।११६-११७

वहाँ पर श्लोक में बर्णित स्मिन्न शीटादि को 'मानस' में दूसरे प्रकार से बर्णित किया गया है और वहाँ सप्तम के सस्तेज से एक विशेषता भी है ।

(२८) वस्तुसंस्कार—इसमें केवल 'उपमान' का परिवर्तन कर दिया जाता है ।

(१) काम श्रीहामदनवसपीदीपिकेवाविरस्ति ॥ प्रसप्त० २।७

 छवि नूह दीप सिला जनु बरई ॥ १।२३०

यहाँ शान्ति स्वस्ति में सीता 'उपमेय' है, किन्तु उनके उपमान बदल गए हैं ।

(२) इयार्थकेन व्यपदेश्यौरवान्महीध्रमुद्धारयितु किमीहते ॥ रामबीज १४।२२

 बासमराज कि मन्दर लेंही ॥ १।२३६

यहाँ 'राम उपमेय' है किन्तु श्लोक में उनके लिए 'बासमज' की उपमा है जबकि 'मानस' में 'बासमराज' की । अतः परिवर्तन स्पष्ट है ।

(२९) घातुपाद्—घग्वालाकार को अर्थात्कार में बदलना 'घातुपाद्' कहलाता है—

(१) अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन न प्रभ्यवितं मनो मे ।

तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेण पयस्त्रिवाच ॥ नीता १।१४५

 जो नहि देखा नहि मुना, जा ममहू न समाइ ।

यो सब अदृष्ट देखेअं बरनि कवन विधि जाइ ॥ ७।८०

इसमें नीता के 'अदृष्ट' को मानस में अतिघयोक्ति का रूप दे दिया गया है ।

(३०) सरकार—बर्णित वस्तु को उत्कर्ष के साथ वर्णन करने से 'सरकार' होता है—

(१) हा ज्ञातं स जटामुरेय जराता विनष्टो बर्षं वापति ॥ हनु० ५।६

 जाना जराठ जटामू एहा । मज करतीरय छीइहि देहा ॥ १।२८

हाँ 'बर्ष की ह्रस्व' को 'करतीर्य' में देहापाम कह कर उसका उत्कर्ष बढ़ा दिया गया है ।

(२) यन्मात्र कार्या मगिकपिकायां भुमुपंठी योजयुते महेय ।

वराति मुशये करपांभुराबि तं रामचर्यं नरणं त्राय ॥ विभवधनु २।२६

 महापान तोइ जपठ महेम् । काठी मुकुति हेनु उपदेम् ॥ १।१९

यहाँ 'राम नाम' के बिन्ने 'महामन्त्र' का अक्षुण्ण प्रयोग किया गया है।

(११) श्रीगौरीवचक—इसमें आरम्भ में समान, किन्तु अन्त में निम्न वर्ण योजना की जाती है—

(१) मृगुत वमककस्या अत्रिया शुष्कमेते दक्षवदनमुजानां कृष्टिया वम शक्ति ।
ममयति अनुरीं यस्तदारोपणेन विभुवनजयसदमीर्जानकी तस्य दाया ॥

हुन० १११५

बोसे बग्दी बचन बर सुनहु सकल महिपाल ।

पन बिदेह कर कहहि हम मुखा अठार बिसाल ॥

मृप जुबजनु विभु सिवबनु राहु । पस्व कठोर बिदित सब काहु ॥

राचनु बानु महामठ मारे । बेखि सरासन गंवाहि सिबारे ॥

छोइ पुरारि कोदणहु कठोर । राव समान भानु बोइ तोरा ॥

विभुवन जय समेत बीदेही । बिनहि बिचार बरइ हठ ठेही ॥११५६-६०

यहाँ जादि में समानता होने पर भी अन्त में मृगुप के आरोपण के स्थान पर उसके र्णम और बिना बिचार हठधरन के अस्वैक से विभ्रता स्पष्ट है।

(२) वा विमूर्तिदग्दीवे शिरज्जेवेवि संकरात ।

दर्शनाग्रामदेवस्मसाविमूर्तिविभीषणे ॥ हुनु० ७११४

बो संपत सिव राबनहि बीग्हु बिए पस भाप ।

छोइ संपदा विधीवनहि, सकुचि दीग्हु रुपुनाग ॥११५६

महाँ बोहे के अतुर्न चरन में 'संकुचि' अर्थ से भ्रमता के वर्णन होते हैं।

(१२) भावमुद्रा—प्राचीन कवि के अभिप्राय को निबद्ध करना 'भावमुद्रा' है।

(१) साऽऽबीरस्यसम्बस्य कृतत्रस्य महीपते ।

तववत्तापहरणं पूज्यतामवसविचरम ॥ रा० मंजरी । अयोप्या १०४६

। सत्यसंन तुम रुपुकस माही ॥

बेन कहेइ अब जगि बधेदेहु । तजहु सत्य जग अपपस सिहु ॥११६०

यहाँ पर प्राचीन कवि के अभिप्राय का विवरण है।

(२) हा राम हा रजस हा अयोकेवीर ।

हा नाप हा रुपुते किजुपेससे नाम ॥ प्रथम० ३१४३

हा अनरेक बीर रुपुनाया । कैहि अपराध बिठारेहु दाया । ११६६

यहाँ 'अपेक्षा' के स्थान पर 'व्या-विरचरण' के अर्थ से भावग्रहण स्पष्ट है।

(३) राम स्त्रीविरहेण हारितकपुस्तपिचमठया सहस्र

मुषीर्षोपभक्ष्यमेवकतया निर्मूलकूलदुमः ।

यस्य कस्य विनीयस स च रिपो कादम्बईस्यातिवि-
संकातं क्विठं क्वावकपदुर्बेभ्यो मयैक कपि ॥ हनु० ८१६

--- ---

तुम्हारे कटक माझ सुनु अंयद । मो घन विरिहि कवन जोबा नद ॥
तव प्रभु मारि बिरह बसहीना । अनुज ठानु दुख दुखी मसीना ॥
तुम्ह सुप्रीव कूलकूम दोळ । अनुज हमार पीव अति सोळ ॥
धिस्यि कर्म जातहि मल मीसा । हे कपि एक महा बससीसा ॥
बाबा प्रथम नगद जेहि वारा । --- --- --- ॥ ११२३

परि पर भी प्राचीन कवि के अमिप्राय का स्पष्ट रूप से ग्रहण किया गया है ।

(३३) तद्विरोधी—यह 'भावमुदा' का विरोधी है । इसमें पूर्व कवि के
वचन के विरुद्ध भाव का निरूपण किया जाता है —

(१) मत्सुमोक्षपतेविराड्विदुषी तत्संपरं योगिनाम् ॥ मामवत १०१४३।१७

--- ---

विदपन प्रभु विराटमय बीसा । --- --- ॥ मानस १।२४२

मानस के भगवान् अविद्वानों के लिए विराट् हैं, तिस्रु 'मानस' के भगवान् विद्वानों
लिए विराट् हैं, अतः विरोध स्पष्ट है ।

(२) सा तद्वपनममामाय सर्वाभरणभूषिता ।
दधी बिलगनमप्येव विभ्रतीरूपमुत्तमम् ॥
विचित्रै पतिमासाद्य हसन्तीव शुचिस्मिता ।
प्रणयं प्यंजयतीव मपुरं वावपमप्रवीत् ॥ महाभारत । वन ।

२७७।१६-२०

--- ---

बहुविधि चेरहि भावद देई । कोप भवन गवनी कैंदेई ॥

कोप समानु साज गव तोई । --- --- ॥ २।२३

भूमि गयन पटु मोट पुराना । निणु दारि तन गुणन भावर ॥ २।२५

कपट सनेहु बड़ा बहोरी । बोली यवन नवन ऊहू बोरी ॥ २।२७

'महाभारत' की बँसेदी दरपाचना के लिए सर्वाभरणभूषिता होती है, जबकि
'मानस' की ककयी निरामरण होकर वाप भवन की शरण लेती है अतः पूर्वकवि
के भाव का विरोध स्पष्ट है ।

(३) यीशुपुत्रोत्तमाय रामचन्द्रस्य प्रमाणद्वय विरिपरिहितं प्राणवस्तवतय
गुणोत्तमय वच पीठे सटिप्यामीति मग्दकाना तारा विरिपरिपरमादस्य राम
वीरम्बरितवमाकीतती विग्रवावाय । हनु० ३।२० के बाद

सुनस बाति कोबातुर पाबा । बह्नि कर चरन गारि समुधाबा ॥४१७

माना बिधि बिसाप कर तारा । छूटे कैस न बेह संमारा ॥

तारा विकस बेबि रचुराया । बीन्हु जान हरिभीम्हीं मामा ॥ ४१११

‘हनुमन्नाटक’ की तारा सुप्रीव-परती है अतः यह बातवचन के लिए उत्सुक है, किन्तु ‘मानस’ की तारा बाकि-पत्नी है इसीलिए उसकी मृत्यु पर विविध बिसाप करती है। इस प्रकार यहाँ विराभी भाव का ग्रहण स्पष्ट है।

यहाँ विस्तारधम से बहुत कम उदाहरण दिए गए हैं। इनका समस्त विस्तार तो एक स्वतन्त्र ग्रंथ की अपेक्षा रखता है।

‘अर्धग्रहण’ के इन उपयुक्त ३२ प्रकारों में उनके त्याग अथवा संग्रह का विचार राजशेखर के मत से सिद्ध कवि के विवेक पर ही निर्भर होता है क्योंकि अन्ततोक्तत्वा यह एक प्रकार की चोरी ही है।^१ अश्वत्थि-सुन्दरी के विचार से अप्रसिद्ध अप्रसिद्ध अप्रशंसित अमचुर जनाबतभाषाभुक्त मृतप्रसंसक विवेची कविकृत और अशातमूल काव्य से अर्धग्रहण कर लेना चोरी नहीं है।^२ वस्तुतः सभी कवि दूसरे कवियों की असौकरिक कल्पनाओं से प्रभावित होते हैं और उनका विभिन्न अर्थों में सफल एवं सरस प्रयोग भी करते हैं। उनकी मौलिकता केवल इसी बात में होती है कि उनके उस ग्रहण के मूलस्रोत को कोई पहचान न सके। राजशेखर ने ऐसे कवियों के परिवर्तक आच्छादक और संवर्गक आदि प्रकार भी निश्चित किए हैं।^३ इनके अतिरिक्त ‘अर्धग्रहण’ के उपयुक्त चारों भवों के आधार भी उन्होंने जमरा भ्रामक चुम्बक कर्पक और हावक आदि नामों से कवियों का वर्गीकरण किया है।^४ इनमें से उन्होंने ‘भ्रामक’ कवि की प्रशंसा नहीं की है क्योंकि उनके अनुसार ऐसा कवि अन्य कवि की रचना को अपनी रचना कह कर पाठकों को भ्रम में डाल देता है। उसके अतिरिक्त उन्होंने ‘चुम्बक’ आदि कवियों की प्रतिभा के प्रति बहुत सम्मान भी प्रकट किया है।

इस पृष्ठभूमि के संदर्भ में यह ज्ञातव्य है कि तुलसी ने ‘माना पुराण निपमा नम’ ‘राजायण’ एवं ‘वचनियतोऽर्थि के रूप में अपने मानस के स्रोतों को सर्व प्रथम सुस्पष्ट व्यक्त कर दिया है अतः उनके सम्पन्न में इन स्रोतों का खोजन उनके बिसाल अध्ययन और मनन का ही परिचायक है। इन प्रभावित स्वतों में तथा अन्य भी उन्होंने अपने विवेक एवं प्रातिम ज्ञान का जो मौलिक प्रयाग प्रस्तुत किया है वह उन्हें वस्तुतः ‘विद्यामनि’ कवि की कोटि में प्रतिष्ठित करता है। राजशेखर के अनुसार विद्यामनि कवि की परिभाषा इस प्रकार है —

१ काव्यमीमांसा—सं० केशरनाथ चर्पा पृष्ठ १०९

२ वही, पृष्ठ १४०

३ वही, पृष्ठ १२१

४ वही पृष्ठ १२७-१२८

‘विष्ठासर्पं पश्य रसैकसूतिरुदेति विद्याकृतिरर्षसार्थं ।

अदृष्टपूर्वा निपुणै पुराणे कविः स विष्ठासभिरद्वितीयः ॥’

निरुक्त्यर्थ—इस विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि योशामी जी का व्यवहन सुविस्तृत था। उन्होंने विभिन्न प्रश्नों से मनु संक्षेप करके अपने ‘मानस’ को सुपुष्ट बनाने में अत्युत्तम सफलता प्राप्त की है। वास्तुतः उनके सामने एक ही दृष्टिकोण था मानस को सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित करना। इसी की सिद्धि के लिए उन्होंने अपने आचार्यों से ‘मानस’ के विविध स्थलों में अनेक पदादिकों का निस्संकोच ग्रहण किया और जहाँ उन्होंने भर्ष की व्यक्तता में उनको अत्यन्त अथवा अदायक पाया वहाँ उन्होंने उसी शब्द भाव से अथवा अर्थ करके अपनी समर्थ और परवृष्ट माया में उसको सम्राज्य अभिव्यक्ति प्रदान की। इस प्रकार संस्तुत के अनेक शब्दों की तुलना में उनका ‘मानस’ का अर्थगौरव वास्तुतः सर्वोपेक्ष्य है।

सिद्धान्त-विवेचन

मानव-जीवन के सर्वाङ्गीण सफल निर्वाह के लिए कुछ विशेष सिद्धान्तों का पासन करना अनिवार्य हो जाता है। उसके लिये साधारण मनुष्य को अनुकरण-शील होना है, बहुत कुछ तो महापुरुषों के सिद्धान्तों को अपनाने की चेष्टा करता है और कुछ पुरक सिद्धान्तों को वह स्वयं बना लेता है। किन्तु असाधारण मनुष्य अपनी विशेष प्रतिभा के बस पर जीवन की गई सुन्दरी दिशाओं को स्वतः खोज लेते हैं और महापुरुष पर प्राप्त करते हैं। इस सम्बन्ध में प्रत्येक महाकवि का उत्तरदायित्व बुरा होता है, एक तो वह उन महापुरुषों के सिद्धान्तों को स्वीकार करके अन्त-साधारण तक पहुँचाता है और दूसरे स्वयं महापुरुष होने के नाते वह अपने नवीन सिद्धान्त का भी प्रतिपादन करता है। श्रीस्वामी तुलसीदास ने गाना पुरान जादि की बर्बा के साथ क्वचिदम्यतोऽपि की जो बर्बा की है, यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अपने और पराये सिद्धान्तों को मिला कर ही अपने काव्य का कवच रखा है। दर्शन, समाज जादि के संघर्ष से ही नहीं बरन् काव्य जादि के सम्बन्ध में भी उनकी यही नीति रही है। यहाँ पहले उनके काव्य सिद्धान्तों की विवेचना प्रस्तुत की जाती है।

(१) काव्य-सिद्धान्त—श्रीस्वामी जी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी नम्रोक्ति है। इसीलिए प्रत्येक सिद्धान्त के प्रतिपादन के पूर्व वे अपनी स्वस्पष्टता ही नहीं सिद्धान्त जगता का उल्लेख करने लगते हैं। 'मानस जैसे विरल महारव के काव्य के निर्माण में समर्थ होने पर भी वे यही कहते हैं —

'कवि न होइ नहि कवन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू ॥

कवि न विवेक एक नहि मोरे। सत्य कही सिद्धि कायब कोरे ॥'

किन्तु उन्होंने 'कोरे कायब' पर बस्तुतः जो सत्य लिखा है वह सर्व-विदित है। उनकी यह मन्नता जो उनकी भक्ति-भावना के कारण बुझी निधर उठी है, यह भी स्पष्ट करती है कि मानस के निर्माण में उनका प्रयत्न काव्यवत् विशेषताओं का प्रदर्शन नहीं है बरन् 'स्वान्त-मुपाय' 'अपवा' स्वान्तस्तम-दान्तये' ही है। उनका

यह 'स्वातन्त्र्य' भी व्यक्तिनिष्ठ अथवा दर्पणीय नहीं है, अपितु यह समस्तजगत को ही 'विचारामय' मान कर उसके चरमों में नतमस्तक होने वाला है।^१

एक ओर तो तुलसी का यह मन्त्ररूप है और दूसरी ओर संस्कृत के अपिकाम महाकवियों का सर्वपूर्ण आत्मविज्ञापन दृष्टिगोचर होता है, जिसमें वे अपनी व्यक्तिगत एवं स्वकाम्यगत सभी विशेषताओं का दिन मिन कर विस्तार से उल्लेख करते हैं। इससे आलोचक को उनके विषय में हरमिस्वयं का शीघ्र बोध हो जाता है और वह केवल उनको 'रक्ति' और 'वृत्ति' के सामंजस्य के विवेचन-मात्र से अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है किन्तु मन्त्रतासीय कवियों के विज्ञानों का स्पष्ट रूप या तेजा सर्व के साम-साध लयन की भी अपेक्षा रखता है।

पोल्सामीजी के द्वारा निरूपित काम्य सिद्धांतों में काम्य के लक्षण हेतु, प्रयोजन और प्रतिपाद्य वस्तु आदि की दृष्टि से विचार करने पर उनकी भक्ति-भावना का एक विशेष आङ्ग निस जाता है। इसकी पृष्ठभूमि में ही उनकी साम्य-ताओं का विवेचन अधिक ग्यामसंबन्ध हुआ।

(२) काम्य के लक्षण—पोल्सामीजी के अनुसार 'मुरसरि' की तरह सबका हित करने वाला काम्य ही वास्तुतः काम्य कहलाने का अधिकारी होता है —

'कीरति मनिठि मूठि मन छोई । मुरसरि सम सब बहूँ हित होई ॥'^२

उनके मत से ऐसे सरस काम्य का सभी विद्वान सम्मान करते हैं और धनु भी सहज रीर मात्र भूल कर उसकी प्रशंसा करने लगते हैं।^३ रामभक्ति के परिवेष्ट में काम्य की परिभाषा करते हुए वे यहाँ तक कह देते हैं कि कुकविष्ठ सर्वगुणहीन काम्य भी रामभक्ति की योजना में विद्वानों के द्वारा समाप्त हो जाता है जबकि उसके अभाव में मुकविष्ठ अस्वाम्य भी विपुलता पूर्व-अलङ्कृत, किन्तु निर्बंधता चारों के समान अद्योवन ही समता है। अपनी वृत्ति के सम्बन्ध में भी वे यही विरवाच प्रगट करते हैं कि वह रहस्यहीन होने पर भी 'रामप्रदाय से 'सर्वरसमय हो जायगी। इस प्रकार मम्मट की काम्य परिभाषा उदासीनी धारणा से समुदायनलङ्करी पुनः क्वापि^४ उनके आग्रह से 'तत्तदोपासपि धग्दापी त्रिमुखावनलङ्करी वरं राम-भक्ति परी' हो सकती है और विरवताम की परिभाषा की 'बाक्यं रसात्मक काम्यम्'^५ के स्थान पर 'वानर्य रामभक्ति रसात्मक काम्यम्' होना चाहिये।

संस्कृत के साहित्यकारों ने भी काम्य के सम्बन्ध में अनेक विचार व्यक्त किये हैं। 'अभिनुराग' के अनुसार काम्य का लक्षण इस प्रकार है —

काम्यं स्फुटवर्णकं गुणवद् शोपकथितम् ।

बोनिबेदय लोचय सिद्धमम्यदबोनिजम् ॥^६

१ मानस १।८

२ ३ मानस १।१५

४ ' १।१०

५ काम्यप्रदाय १।१

६ साहित्यदर्पण १।१

७ अमि । ३३७।७

‘अधुनैवर्षणकार’ के मठ में काव्य आरामानन्देकसाक्षी और प्रतिभ्यक्ति ‘अम्बावृष’ जमरकार प्रदर्शन करने वाला होता है।’ वे कविता को सुधारसपूर्व चन्द्रप्रभा के समान कह कर सोक के ताप और तम के हूरम में भी समर्थ मानते हैं।^१ ‘बास रामायण’ नाटक के आरम्भ में ही घरस्वती बगदना के बजसहर पर कवि राजसेखर ‘बाणीगुम्फ के लक्षण बतसाते हुए उसे प्रसाद-गुन का पात्र’ ‘सूक्ति’ से विलकित भुतिपेय आद्य स्वाधुरस’ ‘विद्यानिधान अर्धहररीरधारी और कबिदुससेवित’ कहते हैं।^२ उनके अनुसार यह सत् काव्य केवल सुरवियों की रचना में ही निवास करता है। सुरारि कवि के अनुसार किसी मुकवि के द्वारा अनेक छात्रों के मनन के पश्चात् जो सारभूत अक्षरकार ‘सकामुम्फ’ प्रस्तुत किया जाता है वही काव्य है।^३

काव्य के इन समस्त सक्षकों में उसके काव्यरूप का ही अधिकतर विशेषण किया गया है। ‘मानस के समान उसकी सर्वज्ञानयोगिता एवं प्रभविष्णुता का संकेत नहीं है। मों तो तुलसी ने भी काव्य की विशेषताओं का निरूपण करते हुए अम्ब, अर्ध अक्षकार अम्ब भाव रस और शेष आदि की विशेषताओं का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त काव्य में अहाँ तक शब्दार्थ की स्थिति का प्रश्न है, उम्हूनि उसके लिये महाकवि काकियास की संवृक्त भावना’ को स्मोकार करते हुए भी उसको भिन्नाभिन्न’ अठ अविशेष्य ही बतसाया है। इस प्रकार काव्य लक्षण के निरूपण में गोस्वामीजी अपना एक विशेष दृष्टिकोण रखते हुए उसके दिग्ग पद्य पर अधिक बल देते हैं।

(३) काव्य के हेतु-गोस्वामीजी ने अपने ‘मानस’ में काव्य के उत्सव का बड़ा सरस और अलंकारिक निरूपण किया है —

हूरय सिम्बु मति सोप समाना । स्वाति चारदा कहहि सुजागा ॥

जो बरनह बर नारि विचार । होहि कविठ मुत्तमनि पार ॥ ११११

इसमें वे कवि की सुहृदपता बुद्धि की पहल मक्ति धारदा की कृपा और विचारों की अरिष्टता का प्रतिपादन करते हैं। इसके अतिरिक्त काव्य-निर्माण के लिए वे ‘विद्यलमति को सबसे बड़ा कारण मानते हैं’ और उसे भी केवल हरिकृपा से ही प्राप्य बतसाते हैं। वे रामप्रताप,^४ शिवकृपा और हूरमोरी प्रसाद^५ को भी काव्य रचना का हेतु मानते हैं। अन्तिम माध्यता में वे ‘बासपुराण’ से प्रभावित मान पड़ते हैं जिसके अनुसार शिव को अर्ध और पार्वती को अम्ब का निवासक माना

१ अधुनैवर्षण ११२

२ बास रामायण १११

३ अनर्षण ११२

४ मानस ११२८

५ मानस ११२०

२ अधुनैवर्षण १०११

४ बास रामायण ११०

६ रपुर्षण १११

८ मानस १११४

१० मानस १११५

११ रपुर्षण १११ (वस्तुनाय टीका)

जाता है। इससे अनिश्चित के संपारम्भ में शान्त बर्ण, रस और छन्द की विधायिका के रूप में सरस्वती की स्तुति भी करते हैं किन्तु उद्योग भी वे अन्तर्धामी राम के हाथों की सम्पुनर्मा बतला कर राम को उसका सूनघार मानते हैं। वे पुनः कहते हैं कि राम जिस बलि पर मत्त समझ कर हुआ करते हैं उसके हृदय प्रवेष्ट को सरस्वती के तासमूर्य का रंगमंच बना देते हैं।^१ इस प्रकार तुलसी इस दोष में भी राममति की ही सर्वोपरि स्थिति प्रमाणित करते हैं।

काम्यप्रभावहार के अनुसार सक्ति लोकात्मक काव्यादि के मन्त्र के प्राप्त निपुणता और काम्यत्र विद्वानों की विद्या पर आधारित अभ्यास आदि तीनों कारणों के सम्मिलित बंधन सम्मिलित प्रवास से ही वाक्य का सद्भव होता है।^२ यही सक्ति से तारदर्भ 'प्रातिम ज्ञान' से है जो सम्भवात् होता है। ऐसे कवि के लिए अलौकिक तस्मार या ईश्वरीय बरदान बहु सञ्चते हैं। यही वाक्य निर्माण में मुख्य हेतु है। इसीलिये कहा जाता है कि बलि उत्पन्न होते हैं बनाये गहा जाते। कविसंज्ञीपी परिसू स्वयंभू म बलि के स्वयंभूय' का यही तात्पर्य है। अभिपूराण के अनुसार भी कविरत्न के लिये गति स्तुति तथा विवेक अनिवार्य है किन्तु यहाँ उनका उशीलत दुर्लभ बतलाया गया है और समस्त तारकों से पश्चिमत के अभाव में उद्य बलित को भी धमिद माना गया है।^३ भागवत के मठ में अर्धग्रहण में बलि को अग्रतत्ता और व्यासतापयुद्धिना ही सराभ्य के निर्माण में समय होती है। 'अवायक के विचार से बलि की उत्पत्ता का रहस्य उसकी 'अधिवापिहारपूर्व' अहिनीय दृष्टि है जो वाक्य-तरण के रसन में गृहसक्ति के निष्प सहाय-नेत्र एत से भी अधिक सञ्चते हैं। 'कुत्तवादन के अनुसार वाक्य रचना की एवमात्र विरपता उसकी नवीनता हानी है जो अन्त तानी से मनुष्यत्व की अगता रतती है।^४ अविनाद के दृष्टिकोण से सरस्वती के प्रवर्तन का मुक्त वारण केवल कवि-हृदय की विद्यता है।

एत एव कारणों के सम्पर्क में 'मानसहार' के कारण में उसकी सक्तिपूर्व छोड़ देता लाय है। रामरात्र के निर्माण में वे दुर्भ-बलियों की बरदा को भी एक सञ्च बदा कारण मानते हैं और एनीनिय के अगम तथा वास्तवीक आदि सभी बलियों की बगना भी करते हैं। महाकवि वाजिपात,^५ मरारि^६ और जयदेव^७ आदि भी एनी दृष्टिकोण से जाने पूर्व बलियों का उद्धार मानते हैं एवं उनका प्रवृत्ता करते

- | | |
|-----------------------|--------------------|
| १ मानक १।१०२ | २ वाक्यप्रवाच १।३ |
| ३ अभिपूराण ३।३।३ | ४ मानस २।२।३ |
| ५ पृथ्वीराज विजय १।१३ | ६ कुत्तवादन १।२ |
| ७ रामचरित २।५।६ | ८ मानस १।१३ १४ |
| ९ रघुवंश १।४ | १० अन्तर्धाराच १।२ |
| ११ प्रथमरायण १।१२ | |

है। अपदेव के मत से तो ब्रह्मलोक से मर्त्यलोक तक जाने में, सरस्वती को भी भ्रम हुआ है उसका अपहार केवल रामायण-वर्णन से ही हो सकता है "तुमसी भी उसका समर्पण करते हुए कहते हैं -

‘भगति हेतु विधि भवम बिहाई । सुमिरत सारव भावति भाई ॥

राम चरित सर विनु बगह्वाए । सो भ्रम बाइ न कोटि उपाए ॥ १।११

(४) काव्य के प्रयोजन—यम्मट ने काव्य के प्रयोजनों का इस प्रकार विस्तार से निरूपण किया है —

काव्यं यद्यनेऽर्जुने व्यवहारयोगे सिधैतरस्तथे ।

सद्य परमिब तथे कान्तासन्मिठतयोपदेवमुजे ॥ १।२

इससे स्पष्ट है कि वे काव्य का सर्वप्रथम प्रयोजन ‘यद्य’ मानते हैं। योस्वामीजी स्वयं तो यद्य नहीं चाहते हैं किन्तु वे साधु-समाज में अपनी कृति का सम्मान बखश चाहते हैं और उससे लिये वे रामकथा के पूर्व कवियों से बरवान वाचना भी करते हैं क्योंकि उनके अनुसार विद्वान् लोग जिस ग्रंथ का आबर नहीं करते हैं उसके निर्माण में कवि का परिश्रम व्यर्थ ही रहता है।^१ वे मन्त्रतावश अपने काव्य को ‘बालबचन’ कह कर सज्जनों से अपनी डिट्टाई के लिये समा भी माँवते हैं और यह विश्वास भी व्यक्त करते हैं कि उनके काव्य से विद्वान् लोग उसी प्रकार प्रसन्न होयें जैसे धिमु की तुतनी भापा से माता पिता प्रसन्न होते हैं।^२ इनकी यह भी मान्यता है कि प्रत्येक कवि को अपना काव्य—सरस बखशा नीरस—बहुत प्रिय लगता है, किन्तु दूसरे की कृति से प्रसन्न होने वाले महापुरुष बिरसे ही होते हैं।^३ महाकवि अपदेव की भी यही धारणा है।^४ योस्वामीजी यह भी समझते हैं कि कूर कुटिल कविचारी और ‘परदूषण भूषण चारी’ लक्ष सोम उनके काव्य का परिहास बखश करके किन्तु वे उसकी चिन्ता तक नहीं करते हैं प्रसन्न वे उस आलोचना को हितकर ही बतलाते हैं।^५ संस्कृत के कवि ऐसे काव्यरूपक आलोचकों से बरयदिक चिन्न जान पड़ते हैं। जयानक के अनुसार ‘कवित्व और पण्डितत्व सरस्वती नदी के दो तट हैं जिनमें एक मोर समूह है और दूसरी मोर विप —

कवित्वपांडित्यतटद्वयेन सरस्वती त्रिपुरिष प्रवृत्त्या ।

एकत्र पेयूपमयो रसोऽयमव्यय मास्त्वर्देविपारमबोऽप्या ॥

‘राजदवाण्डमीयकार आलोचकों को काव्य रूप के भवदिक शास्त्रावमाहृत में आलसी शरद्वल्लि से अनभिन्न परगुणों में मूक और दिव्यबोली से अपरिचित बतलाकर

१ प्रसन्न रायब १।११

२ मानस १।१४

३ मानस १।८

४ " १।८

५ प्रसन्नरायब १।१६

६ " १।८

७ भृष्मीराज विजय १।११

वर उनको काव्य-गरीबा में निराला बसमर्थ मानते हैं। 'अपदेव' और राजमोहरी भी ऐसे काव्य-निम्बकों को उपेक्षणीय मानते हैं। इन सभी उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक कवि अपने काव्ययुग के प्रति एक उत्सुक और उत्कर्षी रहता है। इस दिशा में सर्वोत्तम कवि जहाँ अपने आलोचकों से अधिक दुःख हो जाते हैं वहाँ नग्न कवि अपने मयूर आचरण से उनको अनुकूल भी बना लेते हैं।

'मानस' के अतिरिक्त दूसरा प्रयोजन अर्थप्राप्ति है जिसका उक्त तुलसी से कोई भी सम्बन्ध नहीं है, जबकि संस्कृत के अनेक साहित्यकारों का वही प्रमुख लक्ष्य रहा है। जहाँ तक 'अपदेव-ज्ञान' का सम्बन्ध है वह अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण प्रयोजन माना गया है। 'मानस' में बर्णित नीति और राजनीति आदिके सिद्धान्तों का इस दृष्टिकोण से जो विशिष्ट रूपान्तर है उसका विवेचन आगे किया जाएगा।

काव्य के अन्य प्रयोजन 'निषेधरक्षति' का अभिप्राय कवि के निजी 'स्वाभ्यास' से है। मने ही सूर्यारि की स्तुति से एकप कवि शापमुक्त हुआ हो " किन्तु कोई भी उदारबेता महाकवि ऐसी स्वायत्तज्ञि से काव्य का निर्माण नहीं करता है। उसका स्वामी विद्याल एवं असीम हाता है। यह समस्त भाव-अवस्था का एकमात्र प्रजापति होता है और उसमें प्रभु के विराट् स्वरूप की तरह वह सर्वव्यापी और सर्वव्याप्य होता है। उसी महान् आत्मा का यह अद्भुत प्रसार ही उसके काव्य को संप्रसोषणीय और सर्वसोपप्रिय बना देता है। साहित्य के मूल में 'सहित के भाव के विद्यमान होने का वही सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है।

'मानस' के निर्माण में तुलसी का ध्यान 'विमलहरम' की ओर अवश्य है। यही उनकी अमिथेय निषेधरक्षति है। तुलसी के मत से 'कलि' समस्त अर्थमर्षों का मूल है। अपने कनिष्ठा अर्थमर्ष में उन्होंने इसका विस्तार से निरूपण किया है। भागवत, पद्म 'विष्णु' आदि समस्त पुराणों में उसका मूल-रूप देखा जा सकता है। इन पुराणों में कनिष्ठा की सर्वत्र निष्ठा की गई है जबकि तुलसी ने राम-नाम के अद्भुत प्रभाव का वर्णन करते हुए उसकी प्रशंसा ही की है और इस प्रकार उन्होंने अपने अर्थ के मूल प्रयोजन 'अर्थम विधान' को भी स्पष्टतया व्यक्त कर दिया है। 'मानस' की पुष्प, पाण्डुर और निवहर कहने में उनका यही उद्देश्य है।

सत्-परमिर्णित भी काव्य का एक विशिष्ट प्रयोजन है जिसका प्रत्येक काव्य के साथ प्रायः संबंध बना है। इसी के अभाव में इतिहास आदि को काव्य

१ राघवनाम्नरीय (कविशाल) १।४०

२ आगरामायन १।१२

३ मानस १।१०

४ मानस ७।६७-१०३

५ पद्म १ पाण्ड ६१ अध्याय

६ मानस ६।१३० श्लोक २

७ प्रसन्नरायण १।२०

८ काव्यप्रवाच-गं० नामनाचार्य
पंचम संस्करण-पृष्ठ ८

९ भागवत १।२।२ ३ अध्याय

१० विष्णु ६।१ अध्याय

नहीं माना जाता है। उसकी व्याख्या करते समय मम्मट ने उसको 'सुकम प्रयोजन मीलितवृत्त, रसास्वादन-समुद्भूत विवर्णितवेद्यानन्तर आनन्द' माना है।^१ यह वस्तुतः काव्य का सर्वोत्कृष्ट प्रयोजन है क्योंकि इसी के अन्तर्गत रसास्वादन होता है और उस समय सहृदय रसिक क्षण-मात्र के लिए अपने पतुर्बिक भावावरण को मूल कर प्रह्लादमन्त्र सहोदर काव्यात्मत्व में निमग्न हो जाता है। डॉ० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'रसदशा में अपनी पूयक सत्ता की भावना का परिहार होता है अर्थात् काव्य में प्रस्तुत विषय को हम अपने व्यक्तित्व से सम्बद्ध रूप में नहीं देखते अपनी योग क्षेम-वासना की अपाधि से प्रसन्न हृदय के द्वारा ग्रहण नहीं करते बल्कि निर्विशेष, मुक्त और मुक्त हृदय द्वारा ग्रहण करते हैं। यही रस का सोकोत्तरत्व अथवा ब्रह्मात्म-सहोदरत्व कहा जाता है।' मानस^२ में भक्तिभाव की प्रधानता होने से समय-सर्वत्र ही ऐसे सरस प्रसंगों का आशोन्नत किया गया है जिनमें पूर्वनिमग्न और आत्मविमोह होने का पर्याप्त अवकाश है।

मम्मट के द्वारा वर्णित अन्तिम काव्य प्रयोजन 'कान्तासंमित-तयोपदेश' का तात्पर्य है सरस और निर्बन्ध भावप्रहृ। मन्विकारी-वर्ष मुक्कन और निममच्छन के उपदेशों में वह विशेषता नहीं होती है क्योंकि उनमें क्रमशः कुछ समय नीरसता और अक्षरसंकारिता स्पष्टतया रहती ही है जो कान्ता के उपदेशों में नहीं होती। काव्य में भी कोई विषयता नहीं होती है क्योंकि वहाँ कवि अनेकानेक स्थितियों और परिस्थितियों का ऐसा मार्मिक चित्रण करता है जिससे कर्तव्याकर्तव्य भावना भी स्वयं निर्भीत हो आया करती है। उसके पाठकों को सम्प्रह्वन और अक्षरभाव की प्रेरणा अवश्य मिलती है और उसके पीछे कवि का भावपूर्ण आग्रह भी स्पष्ट होता है किन्तु वहाँ कोई बल-प्रयोग नहीं रहता है। इसी दृष्टिकोण से 'काण्ठोपदेश' और 'कम्पुपदेश' की तुलना की जाती है। मानस^३ में इन सम्बन्ध में अपूर्व क्षमता है। व्यक्त-संस्कृत-ग्रन्थ भी उस उद्देश्य से महत्त्वपूर्ण है।

इन प्रयोजनों के अतिरिक्त 'मानसचार' ने वाणी की सुपुष्पता^४ और पवित्रता की प्राप्ति का भी उद्देश्य किया है तथा विभिन्न प्रसंगों में कथामाहात्म्य का वर्णन करते हुए। सगुणित अर्थ प्रयोजनों का भी यथास्थान उद्देश्य कर दिया है। संस्कृत के ग्रन्थों में भी उसी प्रकार काव्य के नहीं, किन्तु राम-काव्य के अनेक प्रयोजनों का विस्तार से वर्णन मिलता है।

(५) काव्य का प्रतिपाद्य—वर्तमान युग में शूद्रकीट से लेकर आकाश वृक्षम तक सब कुछ काव्य का अर्थ विषय बन गया है। क्यों न हो कवि परिभू होता है और स्वयंभू भी। हिन्दी-कविता के आदिताम में कन्याश्रिय अथवा कन्याश्रिय राजा

१ काव्यप्रकाश—डॉ० बामनाचार्य—पौषर्वा संस्करण—पृष्ठ ८६

२ डॉ० रामचन्द्र शुक्ल—विन्दापत्रि—द्वितीय भाग—पृष्ठ ३१६

३ मानस १।१३

४ मानस १।३६१

के स्मर अपवादा समर का ही अधिकतर वर्चन, उनके कृतिमयी चारणों के द्वारा किया जाता था। उस समय काव्य के प्रतिपाद्य की सोचा यही थी। सत्प्रियास में, जब वे राजा और उनके चारण अतीत कर्षणाबन्ध रह गये, तब निरपठ जनता का वैतुस्व सन्त महारामाओं के द्वारा से स्वतः भाषया था, किं उद्योगे बहु उत्तर दायित्व के साथ निवाहा। चारण युव तक राजाओं में ईश्वरसंग की प्रार्थना की जाती थी। तुलसी भी राजाओं की इस विनायता का उन्मील करते हैं किन्तु राम को सर्वेश्वरामणि और पुत्रसह के समुष्ट कह कर, वे राजाओं की म्युगता का भी निरूपण करते हैं।^१ वस्तुतः मनुष्य मनुष्य ही है अतः उसम प्राकृतिक सरोपता भीर अपूर्णता रहती ही है, अतः स्वार्थवत्त या मयवत्त एव 'शकत-जन' का मुणपान करना काम्यकता का अयमान करना है और अपनी बबिबसक्ति को कर्षित करना है। इस विद्या में तुलसी का स्पष्ट मत है कि इस कर्षित कार्य के स्वयं उरस्वती का भी महान् पत्रवाताप हो जाता है —

कीमू प्राहुत जन गुनवाना । तिरभुनि निरप अकत पट्टिताला ॥११११

और इतीतिमे उनके मत में अकेक बबिरोबिर केवल अपवाम् का ही कतिबसहारी पयोमान करते हैं। इसी हरिपद के प्रतिपादन के कारण ही म्यास आदि कवियों के प्रति 'मानसकार अपनी अडाभाकना म्यक्त करते हैं।' हरिकथा की विरोधता बलकारे हुए व अपने प्रतिपाद्य का भी स्पष्ट करते हैं —

जैहि महुं आदि मध्य बबसजना । म्मु प्रतिपाद्य राम मयवाना ॥१११२

तुलसी इस सम्बन्ध में सादरकार से प्रभावित प्रतीत होते हैं जो कवियों के द्वारा 'अनदुर्दशाप म्यक्तियों को सेवित दल कर अयमत्त म्युप होते हैं और उनसे आभिप्राय यह पुण्डते भी है —

बीरामि कि पवि न सन्ति दिगमि प्रिया,

बैबाप्रिया परमूत परिताज्युप्यन् ।

म्या पुहा किमविरोमति भीपसमान्

कस्ताद् अरन्ति कवना जनदुर्मदाप्यान् ॥१११३

इसके साथ ही वे उन कवियों से हरिपुण्यार के लिये आग्रह भी करते हैं, किपठ उनको भोगनाम भी हो सके।^२

हरिपरित अथवा राजपरित को अपने अपने नाम का प्रतिपाद्य बना लेने में परदेव के अनुहार कवियों का कोई र्वं नही है। उनके मत से यह दाप राम क पुन-मकी का है किन्तु उनमें (राम में) एवत्र निरपठ होने का अ-राय किया है।^३ वे कहते हैं कि राम-मय-वर्चन क अभाव न कवियों की सारा कविता ही बाप्या है अपवादा यही पारोत्तर आजाता को समन्वित पुत्री के अमान इतना अधिक हर्ष भी है

१ मानस ११२८

२ सादरकार २१२६

३ मानस १११६

४ अदरपयव १११२

सकती है जितना न तो ब्रह्म-विद्या से मिल सकता है और न राजकर्मों से ही।' मुरारि के विचार से रामचरित-वर्णन में कवियों के सामने एक विषयता भी है कि यदि शुष्क और सूखे मानकर 'रामचरित' को छोड़ भी दिया जाय तो फिर दूसरा कोई महापुरुष ऐसा है ही नहीं जिसके यथोपाय से वे उपश्रुत हो सकें।' हनुमत्प्रार्थना के अनुसार भी रामचरित कल्याण-निदान कर्मसमयन पावनातिपावन, मुमुक्षु पापेय और धर्मब्रह्म-बीज होने के साथ साथ कवियों की भागी का एकमात्र विधाम स्वयं है।' रामसेसर के मत से रामचरित का वर्णन कवियों के लिए अनिर्वचनीय कामधेनु के समान है। संस्कृत के अनेक कर्मों में रामचरित के महत्त्व से सम्बद्ध ऐसी विविध सुक्तियाँ सहज सुलभ हैं।

(१) निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने काव्य सिद्धान्तों के निरूपण में तुमसी ने समन्वयवादिता का चमत्कार दिखाया है, उसमें एक नवीनता एवं मौलिकता के सम्पादन का सफल प्रयास किया है। इसके साथ ही उन्होंने रामचरित को भी मूल कारण के रूप में सर्वत्र प्रस्तुत किया है। उनकी माम्यताएं उनके गम्भीर काव्यज्ञान का प्रमाण होती हैं जिसका परिणम उन्होंने 'मानस के अतिरिक्त अन्य कृतियों में भी दिया है।

(७) दर्शन सिद्धान्त—यह तो अत्यन्त कहा ही जा चुका है कि गोस्वामी की मूलतः मूल्य है जब उनके दार्शनिक सिद्धान्तों में भी उनकी भक्ति-भावना का ही प्रभाव प्रमुख है। अनेक सिद्धान्तों में 'मानस' में उनके इस तत्त्व-चिन्तन पर बड़ा उबाव या बिचिष्टवादी-तत्वाद आदि की छाया के दर्शन किये हैं। उन्होंने अपनी माम्यता और विचार-सरणि के अनुरोध से ही उन्हें किसी न किसी दार्शनिक पद्धति का समर्थक ठहराया है। यह सम्भव है कि 'मानस की कुछ छलियों से उनको ऐसी भावना हो गई हो किन्तु समस्त धर्म के आधोपाद्य मनन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुमसी पर किसी बाद मत बचवा सम्प्रदाय का प्रभाव नहीं है। ईश्वर, बीज, अक्षर और माया के स्वरूपों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों के विवेचन में तुमसी के विचार स्पष्ट सरल और अर्थविग्न हैं। उनमें दार्शनिकों की ही बुद्धिमत्ता दृक्छटा एवं दुराग्रहीता नहीं है। यह महत्त्व है कि उनका सिद्धान्त में विभिन्न दृष्टियों से सम्बन्धित विविध तत्त्व-तन्त्र मिल जाते हैं किन्तु उनके सुनिश्चित सम्बन्ध एवं मौलिक प्रतिपादन में तुमसी की विशेषता है। इसके अतिरिक्त वे सुबोधता, व्याख्यारिक्ता तथा मौलोपयोगिता का भी सर्वत्र बराबर ध्यान रखते हैं ताकि वे कुछ सिद्धान्त केवल सिद्धान्त ही न रहें किन्तु सर्व-सामान्य व्यक्ति भी उनसे सामान्य हो सकें। दर्शन और अतिरिक्त के ज्ञान एवं क्रिया दोनों पक्षों के परस्पर सरल

१ प्रसन्नपत्र १।११२३

२ अनर्परायण १।६

३ हनुमत्प्रार्थना १।१

४ बालरामायण १।६

५ शं० राजपति दीक्षित—तुलसीदास और उनका युग—पृष्ठ ५७४

सामंजस्य के लिये उनका उपयुक्त दृष्टिकोण बरतुं। अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यहाँ शारीरिक शक्तों के मूल के साथ तुलसी के मूल की तुलना करना अपना विषय नहीं है। किन्तु अपने आसौख्य र्णों के परिच्छेद में ही उसका अभ्ययन समीप्य है।

(८) ईश्वर का स्वरूप—पोरबामो जो के अनुसार ईश्वर ब्रह्मा ब्रह्म के समुप और समुप दो स्वरूप हैं जो अक्षय, अथाय अनादि और अनूप हैं। उनमें समुप ब्रह्म एक, स्यापक अदितापी और सच्चिदानन्द है। पुनश्च यही समुप ब्रह्म भक्तों के हित के लिए देहधारण करके समुप हो जाता है। अपनी इस माम्यता को बारम्बार बृहराषि हुए तुलसी समुप और समुप का अर्थ प्रतिपादित करते हैं और उसे वेदों से समन्वित भी बतलाते हैं —

समुपहि समुपहि नहि वच् नरा । पार्श्वि मुनि पुरान् ब्रह्म वेदा ॥

समुप अक्षय अतद्य अक्ष ओई । मयत् प्रेम ब्रह्म समुप सो होई ॥११११११

समुप और समुप की एकता की तुलना के लिए वे काष्ठ में पहले छिपी हुई और फिर प्रकट होने वाली अग्नि की समावृत्ता का उदाहरण देते हैं। 'भायवतकार' भी उनके इस दृष्टांत का समर्थन करते हैं। 'तुलसी 'जस हिमोपम म्याय से भी अपने पद का बोध करते हैं' तथा निगुब की अपेक्षा समुप के घोमाधियय की प्रशंसा भी करते हैं —

कृते कमल सोह सर कसा । नियुत् ब्रह्म समुप मये जैसा ॥ ४११७

'भायवत' में 'सर' के स्थान पर आकाश और 'कमल' के स्थान पर सच्चिदानन्द शब्द का उल्लेख है। दोष वर्जन समान है —

सागुनीनाम्पुदेम्भोय सच्चिदानन्दनदिरमुनि ।

अपत्यम्भोविराषण्णं ब्रह्मैव समुपं बभौ ॥१०१२०१४

इन दोनों दृष्टान्तों में तोन्दर्व की दृष्टि से 'मानस' का पद प्रबल है। यहाँ उपयुक्त कमल और कहीं परजते कमलते कासे बारन। औपिय भी दृष्टि से भी 'मानस' की उपमा ग्यादसंगत है क्योंकि कमल तो तरोवर का विहास है, जबकि बारन आकाश के आवरण है।

(९) निर्गुण मद्र और राम—तुलसी ने राम को निर्गुण ब्रह्म का समुप का मानकर विभिन्न प्रसंगों में उनके अर्थ का निरूपण किया है। पार्श्वी को उपदेश देते हुए शिव "युह को समजाते हुए सत्यम" शत्रु को शांत करते हुए कहलति, 'अन्ध को उरसाहित करने हुए आम्बवान्," रावण को समार्ण कर साधे का प्रबलन

१ मानस ११११

२ भायवत ११०११६

३ मानस ११११६

४ मानस ११६

५ मानस २१११

६ मानस २१११६

७ मानस ४१२६

करते हुए विनीतन^१ और मरु के सम्बन्ध को दूर करते हुए काकमुपुषि^१ आदि सभी इसी का समवन करते हैं। उपर्युक्त प्रसंगों में निर्गुण ब्रह्म की विविध विशेषताओं को बतलाते हुए राम को भी परमानन्द प्रसिद्ध पुरुष अविषय असंख अनादि अनूप, अक्षय एकरस, अम महाकाश मयवाग सच्चिदानन्द अमोघशक्ति, विरा तीव्र सर्वदर्शी, निर्भय, निराकार निरय निरंजन, सर्वात्म्यामी और अविनाशी माना गया है।

(१०) निर्गुण की सगुणता के कारण इस निर्गुण ब्रह्म के समुन्न होने के कारणों में अर्थों के हित का उल्लेख किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त बर्म-रसा असुर-विनाश विप्र, धनु पृष्ठी सुर आदि के बाण सज्जन-मीमा-हरण, धृति रक्षा एवं स्वयं विस्तार आदि का भी वर्णन मिलता है।^१ इस बिन्दु में तुलसी जी^१ और भागवत^१ से बहुत प्रभावित हैं।

(११) सगुणब्रह्म की विशेषतायें—निर्गुण ब्रह्म के समुन्न होते ही उसमें पुनश्च समस्त विशेषतायें प्रादुर्भूत हो जाती हैं, जिनके कारण वह अनाम, अरूप, अकर्ता और विरह-व्यापक ब्रह्म सनाम शक्य कर्ता और एकदेशनिष्ठ हो जाता है। उसका यह नाम रूपमूलधाम आदि भी असाधारण और परम महत्त्वशाली होता है। राम-नाम के साहाय्य का विस्तृत वर्णन करते हुए तुलसी उसको निर्गुण तथा समुन्न ब्रह्म से भी अधिक उत्कृष्ट बतलाते हैं और उसके पुनगात्र में स्वयं राम को भी अक्षय कहते हैं —

जहाँ कहीं जगि नाम बढ़ाई । रामु न सकहि नाम गुनपारि ॥१२२६

उनके अनुसार घोषी, सायक आर्त और शानी सभी प्रकार के मत्त राम-नाम के रूप से ही कृतकार्य होते हैं।^१ भागवतोक्त नवधाभक्ति में भजन कीर्तन, स्मरण और अर्चन का ईश्वर के नाम से विशेष सम्बन्ध है। मानस^१ में भी राम के द्वारा सबरी के प्रति अर्चित नवधाभक्ति^१ में अतुल्य और पंचम भक्ति का मुख्य आधार यही है। जहाँ तक ईश्वर के रूप का सम्बन्ध है उसके निरूपण में कविजगत् अपनी समस्त प्रतिभा का प्रयोग करते रहे हैं। राम के लिये रामु काम सत कोटि सुभय तन^१ तक कह देना उनके लिये एक साधारण बात है। भागवत^१ की नवधाभक्ति^१ के पादसेवन, अर्पण, वास्य, सक्य और आरमतिवेदन^१ आदि भक्ति के दोष प्रकार ईश्वर के रूप ध्यान से ही सम्भव हैं।

१ मानस २।३६

२ मानस ७।७२

३ मानस १।१२१

४ गीता ४७-८

५ भागवत ७।२३ २, ६।२४।२६ १०।३३।२७ १०।२०।६ १०

६ मानस १।२२

७ मानस ४।३२ ३६

८ मानस ७।६१

९ भागवत ७।३।२३

ईश्वर के गुण समवाचरित बाल्मुक्य परे भाववर्द्धनक होते हैं जिसके तात्त्विक परिचय के अभाव में बड़े-बड़े गुरु और मुनि आदि भी धात हो जाते हैं क्योंकि बड़े ईश्वर उदा स्वतन्त्र होते हुए भी गठ की तरह बपटाचरण करता है —

नट इव बपट चरित कर गता । उदा स्वतन्त्र एक मयवाना ॥

चरित राम के उगुन भवामी । ठकि न बाहि बुडि बळ बानी ॥६७१-७४
इसीलिये निर्गुण रूप को तुलसी उगुण से भी अधिक सुगम बतलाते हैं —

निर्गुण रूप सुगम अति उगुन आन नहि कोर ।

सुगम अयम नामा चरित सुनि मुनि मय अम होइ ॥७१७३

मानस' में लती पार्वती भरद्वाज कीसत्या मरुद और बाळमुगुण्डि आदि अनेक पात्रों के अम तुलसी के उचम छ बिचार की वृष्टि करते हैं । इनमें से लती कीसत्या और बाळमुगुण्डि को निज म करने के लिए मानस में विराट-अंग की योजना मिलती है जबकि पार्वती भरद्वाज और मरुद अमस.. विष यात्रवर्धि और बाळ-मुगुण्डि के उदुपदेश से स्वयमेव स्वल्प-विल हो जाते हैं । 'मानस' की कथा इन्हीं तीन संवाहों की देन है, जिनका एतमात्र उचम यही है कि राम के दरचरित को देरावर उमक ईश्वरराज में किसी को भी कोई सप्रेह न होना चाहिए । इन प्रकार तुलसी के मत से ब्रह्म के उगुण चरित में निज म होने के लिये निगुण ज्ञान की वृष्-भूमि अवापार्यक है जिसके फलरूप बिद्वानों को उतमें सुख प्राप्त होता है, जब कि अविद्वान मोहदस्त हो जाते हैं —

राम देवि सुनि चरित तुम्हारे । जड़ मोहहि बम होहि सुगारे ॥११२७

'माणवतनार भी इस सम्बन्ध में अविद्वानों को रगा वा गकेत करने हैं —

तमय मयने तोही सुसंगमनि सुविनम ।

आरयोवम्येन ननुं न्यागुणधाम यतोऽनुप ॥ ११११३७

मोता में भी इस सिद्धान्त का समयेन वृत्त्य है —

अबजानन्ति मां मूडा मानुषी तनमाश्रितम् ।

परं भावमज्ञानतो मय भूतमहेश्वरम् ॥ गीता । १।११

इस मोह का एतमान कारण 'रामचरित' ही है क्योंकि निगुण ब्रह्म की जिन शक्तियों की हम बरना करते हैं अथवा कर उचम हैं उन सबको हम उगुण ब्रह्म में प्रमत्तया प्रमारोपित भी करते हैं और उनको प्रतिफलित भी देना चाहते हैं निगुण उगुण रूप अपनी सीमाबद्धता के कारण जो आपरण करता है वह हमारी उक्त भाग के अनुकूल निज नहीं होता है । इसीलिये राम के बिरही कर में भरद्वाज, लती और पार्वती को 'नादगाय में उचमो कलक देगकर मरुद को' और उनको प्राहुन सिमुनाया में बाळमुगुण्डि' को माह दूजा वा ।

इसी भ्रम के निराकरण के लिये मानस' में अनेक स्थलों पर विद्वानों के मुख से राम के 'निर्गुण-सगुण-विशिष्ट' रूप की ही बख्शना प्रस्तुत की गई है। बतक राम की स्तुति करते हुए उन्हें निर्गुण और गुण राशि' सुतीक्ष्ण उनको 'निर्गुण सगुण विषय सम रूप' बटायु उनको निर्गुण सगुण गुण प्रेरक' दिव उनकी 'अगुण सगुण गुण मन्दिर और वेद उनको अथ सगुण निर्गुण रूप' कहते हैं। मायवत' के प्रह्ला' तथा प्रह्लाव' भी भगवान की ऐसी ही स्तुति करते हैं। स्वयं भगवान भी इसमें अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं —

प्रीतोऽहमस्तु भवति सोकानां विप्रयेऽप्यदा ।

यदस्तोपीयु जगत्तं निर्गुणं चानुवर्त्तयन् ॥ ३।१।३३

'मानस' के राम भी यज्ञ को परामर्श देते हुए अपनी इस विशिष्टता का निरूपण करते हैं —

जानेगु प्रह्ला भगारि अत्र अपुन पुनाऊर मोहि ॥ ७।८२

जहाँ तक राम की विशिष्टता का प्रश्न है, सगुण ब्रह्म की एक देव-निष्ठा का उल्लेख किया जा चुका है। सामोक्ष्यमुक्ति का यही अभिप्राय है कि जीव ईश्वर के लोके में पहुँच जाय मानस' के राम अपने द्वारा मारे गये विराव 'बालि' 'कुम्भकर्ण' और 'रावण को 'निजबाम' देते हैं। टाटका और मारीचि को निज पद देने में भी उनका यही तात्पर्य है। इसके अतिरिक्त उनके कृपापात्रों में बटायु और रावरी भी हरिधाम' प्राप्त करते हैं। केवल चरमय को 'बकूठ साभ' होता है। मानस' के राम बकूठ की प्रसंता करते हुए भी बबबपुरी को उससे अधिक प्रिय बतलाते हैं। 'वे उसको विविध ताप और मखरोम के नाश में समर्थ बतसा कर प्रणाम भी करते हैं।' बबब के प्रति इतना आकर्षण दिखाने के बाद भी वे उसको 'मम बामबापुरी कह कर बन्वव संकेत करते हैं —

अतिप्रिय मोहि यहाँ के बासी । ममबामबा पुरी गुण रागी ॥ ७।४

बस्तुतः लक्ष्मीदास राम को 'विश्वम्पायी ही निरूपित करना चाहते हैं। अतएव वे उन्हें कहीं भी सीमाबद्ध नहीं करते हैं। इसीलिए 'रामावतार' की प्रार्थना के समय देवयप अब बकूठ अथवा छीरछामर जाना चाहते हैं। तब मानस के शिव हरि श्यावरु सर्वत्र समाना, प्रेम से प्रबल होहि मैं जाना" कह कर उनको वही ईश्वर की स्तुति करने का परामर्श देते हैं। इतना ही नहीं वहाँ स्तुति करने पर ईश्वर को

१ मानस १३४१

३ मानस ६।३२

५ मानस ७।१३

७ भाववत ६।१।४८

८ मानस ७।४

२ मानस ३।११

४ मानस ६।१।३

६ भाववत २।६।३०

८ मानस ७।४

१० मानस १८३

वही पर प्रकट होने और देवताओं को सात्त्विका देते हुए भी दिग्गताया गया है। 'मायवत्' में भी देवानुर-संधाम' में देवताओं की प्रार्थना पर उनको रंगा के लिए मयवान् के प्रकट होने का बर्णन मिलता है।^१ मानस के राम भी गुणोवादि को बिना करते हुए स्वयं को मरमन बतला कर अपनी विश्वव्यापकता का संकेत करते हैं। राम-धाम के सम्बन्ध में तवरी प्रयोग में केवल इतना संकेत मिलता है कि वही पहुँच कर जीव आवायमन में सबका मुक्त हो जाता है—

'तत्रि जीव पावन हैह हरिय' लीन भइ जहँ नहि छिरे ॥ ३१३

गीता में भी मयवान् इत्य बचने धाम की इनी विशयना का आशय उल्लेख करते हैं—

न तद्भासयते सुषो न शर्चाको न पावक ।

यदागता न निर्बन्धो तदाधाम परमं मम ॥ १२।६

यमुन ब्रह्म की इनी विशयनापकता को ध्यान में रख कर उसके बिराट स्वरूप को कल्पना की जाती है। मानस में रायण को समझाती हुई मंदोबरी राम के उच क्त का अति विस्तृत विषय करती है।^२ इस बिराट वर्णन में भी गुणगी भागवत से प्रभावित मान पड़ने हैं। गीता के बिराट वर्णन में निमुषरब और बिष्णुन का सापेक्षत्व दिया गया है—'जबकि मानस के बिराट वर्णनों में विष्णु साधारण देवता के रूप में ही विविय मिलने हैं क्योंकि यहाँ गुण राम का साधारण बिष्णु के साथ नहीं बरत निगब ब्रह्म के साथ ही दिया गया है। वही तो यहाँ बिष्णु को राम की सजा और बरना में लीन देखती हैं।^३ काकमुगुगि भी राम के उतर में 'विराट का वर्णन करते हुए प्रायेक सोन में बिष्णु वादि को पवक पुमक हैयते हैं। वे देखनी के साथ राम के मद्गोमगीवान रूप की गुणता करते हुए उनको उनगे 'पानो'ट गुणित में भी अपिष्ट ममय बनाने हैं।^४ इस प्रकार निर्यन ब्रह्म के चित्रय में ममान हाते हुए भी गोरबामोकी समुच-निग्न में राम की निगुन यज्ञ का ही प्रतिग्न मानो हैं। वे उन दोनों के बीच में बिष्णु के माध्यम से ही शीशारन में करते हैं जबकि ममान मरुत साक्षित में निगुन ब्रह्म से बिष्णु कीर फिर बिष्णु से राम का विदुरा क्रम प्रतिग्नित किया गया है किगटे कपाररूप वही राम का अन्तिम विष्णुन क मार में दब सा गया है बिष्णु मानय में राम करने प्रभाव में तबब अविष्णु रूप में ही प्रतिग्नित दिन पर हैं जो निगन का ही पगीय है।

(१२) जीव काीयरूप—दुप सभी 'जीव' हैं आ उनके लग्न अवशा पर को ममत लेने के लिए हमारे मन में शशामाविद तीब उराल्ता गीती है। जीव की

- १ भागवत का १०।१७-२१
- २ मानस ७।१६
- ३ भागवत १।१४-१५
- ४ भागवत २।१।३० १०।६।३।३२-३६
- ५ गीता १।१।१६-३०
- ६ मानस ७।१६
- ७ मानस ७।५।१२

विवेचना इतन-सास्त्र का मुख्य आधार है क्योंकि उसी के सर्व्व में परमात्मा माया एवं जगत् की प्रमत्तित्व का अध्ययन किया जाता है। इस मार्ग में इष्टित्व कल्पना सरल है किन्तु 'इदमित्यमेव' कहने का साहस न तो कोई कर सता है और न उसकी सम्भावना ही है।

योस्वामी भी ने राम के मुख से ही जीव की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है -

(१३) जीव की परिभाषा—'माया ईश न जापु कर्हं जान कहिय सो जीव ॥३॥१३॥
उसके मत से माया ईश्वर और स्वयं को न जान सकने वाला ही जीव कहलाता है। उसके स्वरूप पर विचार करते हुए गोस्वामी भी उसको नित्य अविनाशी चेतन अमल और सहज सुखराशि बतलाते हैं।^१ उनके अनुसार हर्ष विषाद आम विज्ञान अभिमान आदि जीव के गर्भ हैं।^२ पीठा के अनुसार भी जीवार्त्मा नित्य अविनाशी अजर अमर अज अछेद महाज्ञ य सर्व्वगत और सनातन है।^३ वह देह में स्थित होने पर भी अमिष्ट और अकर्ता रहता है।^४ वह आत्मा सब सब तम आदि प्रकृति के गुणों से देह में आवृत्त हो जाता है और उन गुणों का अधिकरण करने पर ही वह जन्म मृत्यु, अज आदि के दुखों से विमुक्त हो जाता है।^५

मायवत् के अनुसार भी वह आत्मा अनादि त्रिगुण, प्रकृति पर और स्वयं प्रोत्ति है।^६ वह प्रकृति के गुणों से अमिष्ट अधिकारी और अकर्ता है। देह के माध्यम से एक लोक से दूसरे लोक में जाकर वह कर्म भोग करता है उसका निरोध मरण है और आविर्भाव ही जन्म है।

(१४) जगत् का स्वरूप—गोस्वामी भी के अनुसार यह चराचर जगत् कुलवोपमय दुःखदायी अचम अनादि आर तस्वर है।^७ मायवत् के अनुसार भी यहाँ ससार अगार वृत्तमय विमोहक क्षय भंग्युर स्वप्नवत् बहुकपित आद्यन्तहीन अविद्यमान होने पर भी भावमान और ईश्वरिक है।^८ पीठा में गुहन और कल्प भेद से इस संसार की दो आद्यवत् वतियों का उल्लेख मिलता है जिनमें एकसे उसकी अनापूर्ति और दूसरे से आवृत्ति होती है।^९ बहो पंचभूत मय बुद्धि और अहंकार के रूप में स्थित ईश्वर की अरत अष्टपा प्रकृति से विश्व की सृष्टि मानी गई है।^{१०} पद्म पुराण के अनुसार भी यह जगत् प्रायं अक्षय महापोर ताना-दुःख-समन्वित असार

१ मानस ४।११ ७।४४ ११७

२ गीता २।१८-२३

३ पीठा १।४३, २०

४ मायवत् ३।२७।१

५ मानस १।६, १।८ २।२८२ १।७७ ८०

६ गीता ७।२९

७ मानस १।११६

४ पीठा १।३।१-३२

९ मायवत् ३।२६।३

८ मायवत् ३।३।४३-४४

१० मायवत् १।२।८।१७ ११-१२

१२ गीता ७।४-३

और दुःखमोहप्रद है । 'अविहङ्गम्' में भी संसार को दुःखदायक कहा गया है । 'रामचरित' के मत में भी यह संसार व्यामोहजनक, स्वप्न विषयका और वंशतक निमित्त है और उसको सम्पूर्ण मयूर' के समान 'बहुविधमद्भुत' माना गया है । 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' तो संसार को और संसार की समस्त वस्तुओं को कविम अन्वित स्वप्नकाल और 'जम्बूद्वीप' के समान व्यर्थमग्न बतलाता है ।

(१५) माया का स्वरूप—मोक्षामयी के अनुसार मैं एक मोर तोर तैं की भावना तो माया है । उसका प्रसार बड़ा ठक है, जहाँ ठक मन की पति है । इसके बिना और बिना दी भेद होते हैं जिनमें से प्रथम से मूर्ख का निर्माण होता है और द्वितीय से जीव का बन्धन होता है । यहाँ माया को बड़ा प्रबल और दुस्तर माना गया है । उसी की शक्त से रज्जु में सर्प के समान अज्ञान भी शय के रूप में आविष्ट होता है । उसके बय में ब्रह्मा और शिव आदि शरी देवता हैं । उसका परिहार बहुत बड़ा और प्रबल है । उसमें मोह काम लूणा पाप मोम, मद, प्रमत्ता, मान मोहन-अर, ममता आदि शोक और शिंता आदि की प्रमुचता है ।

'गीता' में माया का देवो मूकमयी दुःखदायक और मानसाधिनी बतलाया है । 'भावना' के अनुसार माया की मोहकता बड़ी प्रबल है । वहाँ भी उसको दुस्तर मयमयी और अनेकरूप पारिणी कहा गया है । उसके कारण ही असत्यका स्वप्नाभ और 'पुद्गल-पद्म-संसार को अन्वित बतलाया गया है ।' ब्रह्मसूत्र के अनुसार भी माया मोह-निषि तथा स्वप्नकाल अथवा अज्ञानकाल दुःखदायक है । 'पद्मपुराण' में माया को 'सर्वमोहिनी' बतलाया है । 'अटिठकाम्य' में माया की शक्ति बतलाते हुए उसको पशुओं की उच्छता मयूह की अज्ञानता वाङ्मय का रम पाहकता एवं सुषुप्तिवर्तों की उच्छता का भी मूल कारण माना गया है । 'रामचरित' में संसार के समस्त सम्बन्धों को मायाकृत कह कर उनके प्रति जागृक रहने का परामर्श दिया गया है ।

इसलिये, जोश, जम्बू और माया के स्वप्नों का यह विस्तृत लक्ष्य मूल मूल्य है । जब तक उनके कारणात्मक सम्बन्धों पर विचाररूपक विचार न किया जाय । जन्तुन में सब बरसद सोचते हैं और उनके मद्दत का पालनिक निरूपण उनके अज्ञानात्मक मूल में ही है । संसार के विचारों में ईश्वरान्ति के इन अज्ञानसम्बन्धों का मूल

- | | |
|---|-------------------------|
| १ जम्बूद्वीप । उत्तर । ११६१७९, ११६१३५ | २ मूर्खमयी ३।१९ |
| ३ रामचरित ३।१।१०२-११६ | |
| ४ ब्रह्मवैवर्त । ब्रह्म । ७।१६ मयमयी । ३।१।१७ | ५ मानस ३।१५ |
| ६ मानस ४।२१ ७।११८ | ७ मानस ६।३१ ७।६०, ६२ ७६ |
| ८ मानस ७।३६ | ८ गीता ७।१४-१५ |
| ९ पापकृत ३।१।१४, ३।१।३६-४० १०।१।३।२ | ११ ब्रह्म १।२२।३० |
| १२ मूल । उत्तर । २४।३।४६ | १३ अटिठकाम्य १।३।६ |
| १४ रामचरित ३।१।४४ | |

ही सूक्ष्म और गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। उस विद्या में योस्वामीजी गीता और भागवत आदि के बड़े आभारी हैं किन्तु उनका बिचिष्ट दृष्टिकोण मुख्यतया भक्ति-प्रतिपादन की ओर रहा है। इसीलिए उन्होंने इन सम्ग्रहों के विवेचन में सर्वत्र भावपूर्ण सम्बन्ध का भी प्रदर्शन किया है।

(१६) ईश्वर और जीव-योस्वामी जी ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। उनके अनुसार ईश्वर एक सर्वज्ञानवान् और स्ववश है, जब कि जीव ज्ञानरहित-ज्ञानवान् और परवश है।^१ ईश्वर और जीव दोनों को अविनाशी कहेते हुए वे जीव को ईश्वर का अंश और उनके आश्रीत भी बतलाते हैं।^२ गीता से भी इस सिद्धान्त का समर्थन हो जाता है।^३ भागवत के अनुसार मृत्यु के पश्चात् जीव फिर ईश्वर में मिल जाता है। इसके लिए वे 'बटाकाव का ठरुं भी प्रस्तुत करते हैं—

घटे मिल्मे मयाऽऽकाव आकाव स्वाद् मया पुरा ।

एवं देहे मृते जीवो बह्वा सम्रथते पुन ॥ १२।१।१६

वहाँ बह्वा और जीव के 'असीमत्' सम्बन्ध का भी प्रतिपादन करते हुए एक प्रसंग में कृष्ण को भी 'ईश्वरान्त' कहा गया है जब कि अग्यम उनको ईश्वर तथा अन्य अवतारों को उनका अंश बतलाया गया है।^४ इसके अतिरिक्त वहाँ जीव को ईश्वर का बशीभूत मानकर, उसकी तुलना किलोने के साब की ययी है।^५ नृसिंह चम्पू के अनुसार कृहरे में अदृष्ट वस्तु के समान ईश्वर को जीव छय रूप में नहीं देख पाता है।^६

(१७) ईश्वर और सगत्-तुलसी के अनुसार यह संसार भी ईश्वराश्रीत है।^७ ईश्वर को जान लेने पर यह संसार-सम्बन्धी भ्रम स्थल की तरह सघाप्त हो जाता है।^८ उनके मत में इस संसार का निर्माता ईश्वर है इसीलिए वह सब पर समान भाव से बसा करता है—

अधिभ विरव यह मोर उपाया । सब पर मोहि बरबबर बावा ॥ ७।८७

गीता से भी इस सिद्धान्त का समर्थन होता है—

मया सृष्टमिदं सर्वं जगद्व्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सम्भूतानि न चाहं स्थवस्थित ॥ १।४

संसार-समूह के रूप के द्वारा तुलसी ईश्वर और जगत् के सम्बन्ध की सरस विवेचना करते हैं। वे कहते हैं कि इस संसार-समूह में मानव शरीर बेड़ा है ईश्वर

१ मानस ७।४

२ गीता १५।७

३ भागवत १।१।२८

४ नृसिंहचम्पू ५।१८

५ मानस १।१।१२

६ मानस ७।१।७ २।२।६३

७ भागवत १२।४।३२, १०।१।३७

८ भागवत १०।८।२।१

९ मानस २।२।४ १।१।८

१० मानस ७।८७

हारा अनुकूल भाव है और अनुकूल कर्मकार है।' इस उक्ति में वे मायवत् में ही अतिरिक्त प्रभावित हैं। 'मायवत् के मत से यह संसार ईश्वर में उसी प्रकार प्रयोजित है जिस प्रकार कर्मों में पत्र समाया रहता है।' संसार निर्माक में ईश्वर विमोह माय ही कारण है। वही ईश्वर इस संसार का सृजन रक्षक एवं नाश करता है। वस्तुतः यह संसार ईश्वर के हाथों में बटपुत्रता के समान ही है। मायोत्री के मत में इस संसार और ईश्वर में प्रवाणप्रकाशक और दुःख का सम्बन्ध है। जब कि मायवत्कार के अनुसार उन दोनों में पतल भेदक नहीं है।

(१८) ईश्वर और माया — तुमही के अनुसार त्रिगुण ईश्वर माया का प्रेरक कर्म दृष्ट उक्तों ऐसा व्याख्यायित कर लेती है कि यह विद्वान् नहीं पढ़ता है। माया ईश्वर से डरती है और उसके मूकटि-विनाश पर काबली भी है। त्रिगुण ईश्वर के अतिरिक्त अन्य ईश्वर राम के साथ ही माया के उद्गी सम्बन्धों की रक्षा करते हुये कायबाना भी बद्ध है कि राम मायाधीन है। माया उनकी बाधों और प्राण होने पर उद्यत स्थिति नहीं रहता है इसके साथ ही राम को हृषा विना उद्यत स्थिति नहीं मिलती है। उद्गी को रक्षा में अविद्या माया और के परिवार से भी उद्यतता मिल सकती है। राम और ईश्वर के तादात्म्य अथवा लुप्तता उद्गी के सम्बन्ध में होता और माया की भी अनेकता प्रतिपादित है। 'ब्रह्मसूत्र के अनुसार यह माया याग्यात् 'हरिपत्नी है मत हरि के अतिरिक्त कोई दूसरा उद्यत जान नहीं सकता है। ब्रह्मसूत्र में सीता को 'विद्यया अथवा माया, लक्ष्मी कांबली ब्रह्मणी तथा समस्त स्त्रीतिग का प्रतिस्वर बतलाया गया है और उनके इस माया-रूप से संसार के मोहप्रलय होने का भी उल्लेख मिलता है।' मानस में जिस प्रकार राम को विदेह-सूय्य बतलाया गया है उसी प्रकार वही सीता को भी लक्ष्मी कादि से बलिष्ठ और पुत्रिष्ठ अथवा महात्मा के रूप में ही प्रान्वित किया गया है। सीता के मयवान् रूप 'माया के अथवा माया का प्रवाण करते हैं।' मायवत् के अनुसार भी माया, मयवान् एक अपनी विद्यता है और यह मायाविधियों को भी माह सिनी है। वही ब्रह्मा

मानस ७१४४	२	भागवा १११०११०
मायवत् १०११११३	४	१ १११११ ४११११० २२
११११३	६	मानस ११११० ११११६
१११११	८	" ११११ १६
मानस १११००	१०	११११०
" ७१३१	१२	११११
" १ ११११, ११११, ११११६	१४	ब्रह्म १११११०
ब्रह्म । उद्यत ११११११११	१६	मानस ७१११ १११११
सीता ७११४		

तब मादि को भी माया से मोहित बतझाया गया है।^१ मानस^२ में भी, माया के कारण ब्रह्मादि की निबधता का इसी प्रकार उल्लेख मिलता है।^३

(१६) ईश्वर जीव जगत् और माया के सम्बन्ध — तुलसी के अनुसार ईश्वर प्रेरित माया संसार की रचना करती है और उसी से बलीभूत होकर जीव 'भव' रूप में पड़ा रहता है।^४ वे पुनः कहते हैं कि सचराचर जगत् और जीव सब माया के बल में हैं और वह माया ईश्वर के बल में है। इसी माना के कारण ही जीव संसार में ८४ लाख योनियों में घटकता फिरता है। इस प्रकार ईश्वरसंघ होने पर ही वह जीव माया के बलीभूत होकर संसारी बन जाता है।^५ वह माया क्या ईश्वर और जीव के बीच में ही स्थिति रहती है।^६ उससे ही इस पंचभूत जगत् का उद्भव पालन और विनाश होता है और उससे प्रेरित होकर ही जीव संसार में इतना भ्रमण हो जाता है कि वह ईश्वर को भी नहीं पहचान पाता है।^७ गीता के मत में भी ईश्वर सब जीवों के हृदय में प्रतिष्ठित है और वह अपनी माया से उनको परमात्मा के अकारण के समान भ्रमण करता रहता है। माया के प्रभाव से ही जीव अज्ञान होकर अनुरागियों की ओर आकृष्ट हो जाता है।^८ ईश्वर की परा और अपनी प्रकृतियों का उल्लेख करके वही उनको जगत् के सबभवादि में समर्पण बतझाया गया है।^९ वहाँ भयवान् कृष्ण स्वयं को जगत् का माता जाता पितामह आदि बोधित करते हुए अपने शरीर में ही सचराचर जगत् की स्थिति बिल्लभाते हैं।^{१०} 'मायवत' में भी ईश्वर की माया को सचराचर विश्व की मोहिनी बतझाया गया है।^{११} जिसके बलीभूत होकर जीव ईश्वर को नहीं देख पाता है।^{१२} वहाँ ईश्वर को एक एवं अद्वितीय कह कर उसको अपनी माया से त्रिगुणरमक जगत् का निर्माता और उसके बाद मध्य तथा अन्त में भी अनुप्रविष्ट एवं पुनः स्थिति और नानाशय से माणधान बतझाया गया है —

'एकस्त्वमेव जयदेवदमुष्य मत् स्वमाद्यन्तयो. पुनश्चस्त्वसि मध्यतश्च ।

सुन्दरा पुनश्चरतिकर निब्रमायमेवं नानेव तैरवतितस्तनुप्रवृष्टिः ॥ ७।१।३०

वहाँ यह भी प्रतिपादित किया गया है कि जब जीव और ईश्वर की आराधना करते समय है तब उसकी दृष्टि में माया का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है और तब

१ मायवत १।६।३६	२ मायवत २।६।३६
३ मानस ७।६२	४ मानस २।१३
५ मानस १।१ इलोक ६ ७।७८	६ मानस ७।११७
७ मानस २।१२६	८ मानस २।२६
९ मानस ५।५९, ७।१०८, ४।२	१० गीता ७।१४ १५, १८।६१
११ गीता ७।१६	१२ गीता ९।१७ ११।१३ १०।४३
१३ मायवत १०।१।२५	१४ मायवत १०।२।२८
१५ मायवत ७।१।३०	

स्वप्न के समान गूढ हो जाती है । वहीं पर ईश्वर को अपनी माया से एकरस जीवों के निर्माण में ही नहीं अपितु स्वप्न और मोक्ष में भी समर्थ बतलाया गया है । इसके अतिरिक्त उसको उन जीवों से इतना निरपेक्ष भी बिसमाया गया है कि उसका अस्त में कोई भी मिन दग्यु जाति, स्व, भववा जन्म नहीं है । 'ब्रह्मपुराण' में भी ईश्वर की माया से जीव के जगन में भटकते फिरने और उसी की कृपा से मुक्त होने का अनेक प्रयोगों में बखन किया गया है । 'ब्रह्मसंहितापुराण' में माया का महत्व वर्णन करते हुए बड़ा एक कहा गया कि मायेश ईश्वर को उसकी महत्पटा के अभाव में यशस्व का निर्माण नहीं कर सकते हैं । वहाँ संसार की स्थितियों को प्रकृति (माया) का और पुण्यों को पुण्य (ब्रह्म) का अंत भी य माया गया है -

'योषिद प्रकृतेरप्या- बुभोत पुण्यम च ।

मायया सृष्टिर्जाते च तद्ब्रह्मा त यवेद्भव ॥

ममरतिरात्र ४०।६८

इस प्रकार ईश्वरपदि के सम्बन्ध में विभिन्न स्थलों में बड़ा विस्तृत विवेचन किया गया है । तबसे तब वर्णन से ज्ञात होता है कि योग्यामी को अपने सिद्धान्तों के प्रवचन में गीता एवं भाष्यन से अत्यधिक प्रभावित है । यद्यपि उनका विविधत्व सबका स्वयं ही नीतिज्ञ है । इस सम्बन्ध में अष्टमस्क रामायण का महत्व भी नहीं मलाबा का उचता है, किन्तु रामायण ग्रंथ होने के कारण वही उचके साथ 'मानस की सुसना नहीं की जा सकती है । डा० बलदेव प्रसाद विषय के अनुसार 'सुसनी ने कोई बर्णन करने का शक नहीं किया और जो कुछ कहा यति-सम्बन्ध ही कहा । उनकी शरीरगता - उपयुक्त विषय के संदर्भ और अनुपयुक्त विषय के शक में भी । उन्होंने जो सिद्धान्त 'रामचरितमानस' द्वारा लक्षणाधारण के सामने रख दिये उन पर उन्हीं की अतिरिक्त प्रायः पढ़े हुए हैं । इसलिए यदि हम उन सिद्धान्तों के समूह को सुसनीयत बत दें तो किसी प्रकार का अनीकार्य न होना । डा० माता प्रसाद मूल उचते य म ग बतद्वर्णन प्रकृत हुए बड़े हैं कि सुसनी को जो कुछ 'अष्टमस्क-रामायण' में सिद्धान्त कर के मिला, प्रायः उन्हीं का उचते से उचके संगत विचार किया है । बट्ट बट्टे ही कहा या बुबा है कि हम दार्शनिक सिद्धान्तों के विवेचन में सुसनी की दृष्टि सर्वैक स्वाच्छास्त्रिकता की और अतिरिक्त रही है क्योंकि उनके माध्यम से राम-भक्ति का तरत और वाय्यात्मक प्रतिपादन ही उनका मुख्य लक्ष्य रहा है । डा० सरलाशक्ति चर्मा के अनुसार 'सुसनी - के लिए तो दुइना बुद्धि यद बड़ा या उचता है कि वे दार्शनिक नहीं के बल में । अतः उनकी दार्शनिक

१ भाष्यन १।२।।७

२ भाष्यन १।१।२।२१

३ यम । उचर २।१।।००

४ ब्रह्मसंहिता । ममरति १४०।२८ २९

५ डा० बलदेव प्रसाद विषय - सुसनी-गर्भ - पंचम संस्करण पृष्ठ ३२६

६ डा० माता प्रसाद मूल - सुसनी-गर्भ - द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ३८२

उत्कर्षा भी शक्ति के रस से सरस बन गई है।^१ श्री० बाराण्णिकोब भी यही कहते हैं कि 'तुलसी किसी दार्शनिक तन्त्र के प्रवर्तक या आचार्य न होकर प्रयान्तया भक्त है।'^२ डा० सम्भूनाथ सिंह के विचार से मानव का तत्त्व-चिंतन धार्मिक ढंग का सुच्छ और रसहीन नहीं है।— तुलसी और कवि ही नहीं दार्शनिक भी हैं, किन्तु उन्होंने तत्त्वचिंतन को भी काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।^३ डा० मुन्शीराम शर्मा के मत में इस तत्व प्रतिपादन के फलस्वरूप मानस में तुलसी के कवि-रस को कुछ शक्ति भी पहुंची है। ये कहते हैं कि 'काव्य-क्षेत्र में मोस्वामी तुलसीदास पुष्प श्लोक राम की जीवन-भाषा को सर्वश्रेष्ठ स्थान देकर जागे बढ़ते हैं। काव्य उनके लिये साधन है, राम-भाषा साध्य। राम-भाषा में भी राम के ईश्वरत्व का प्रतिपादन प्रधान है काव्य सम्बन्धी अन्य बातें शीघ्र। यह तत्त्व उनके कवि-रस को कुछ हीन कर देता है।

(२८) जीव के बन्धन के कारण—ईश्वर जीव भादि के स्वरूप और परस्पर सम्बन्धों के विवेचन के अतिरिक्त मोस्वामी जी ने जीव के बन्धन के कारणों और उसके मोक्ष के सपानों का भी विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार संसार के विविध व्यवहारों में मयत्न का अनुभव करना ही जीव के लिए सबसे बड़ा बन्धन है। काम कर्म और स्वभाव के गुणों से घिरा वह माया प्रेरित जीव सदा अधात्म रहता है और उनको माया के परिवार वाले मोक्ष लोभ तुल्य भीमद भादि भी अच्छी तरह झकझोर डालते हैं।^४ माया का वह स्वरूप यद्यपि अदृश्य है तो भी जीव अज्ञानवश उसको समझ नहीं पाता है। यही तो उसका भीषण है। माया के प्रभाव से यह जीव तोना और बानर के समान स्वयंप्रकृत बन्धनों में बंध जाता है। गीता के अनुसार प्रकृतिवश सत्त्व रज और तम भादि तीनों गुण जीव के बन्धन के कारण हैं जिनमें से सत्य से ज्ञान, रज से कर्म और तम से प्रमाद तथा अज्ञान्य को निष्पत्ति होती है।^५ वस्तुतः जो सोप प्रकृति और निबुनि नहीं जानते हैं संसार की अक्षय्य मनीश्वर और कामवश मानकर मयत्न का बुरापह करते हैं और अपने बहूँ रस और बल भादि का प्रवर्तन करते हैं वे अनेक जन्मों तक आगुरी योनिमें से उत्पन्न होते हैं और द्रव प्रधार मंसारिक बन्धनों में बिरिकस तक बंधे रहते हैं।^६

^१मागधत में भगवान् श्रीकृष्ण महिला माया से बंधे हुए जीव को निरपबध

- १ डा० सम्भूनाथ सिंह शर्मा — हिन्दीसाहित्य पर संशुद्ध साहित्य का प्रभाव पृष्ठ १८२
- २ तुलसीदास चिन्तन और कला — सं० डा० इन्द्रनाथ मदान पृष्ठ १३०
- ३ डा० सम्भूनाथ सिंह — हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विभाग पृष्ठ २१४
- ४ डा० मुन्शीराम शर्मा — भारतीय साधना और सूर साहित्य पृष्ठ ४१४ ४१५
- ५ भागवत ७।७।१
- ६ भागवत ७।७।८
- ७ भागवत ७।११।७
- ८ गीता १।४।२८
- ९ गीता १।१७-२०

बतमाते हैं । उनके अनुसार भी देवाधीन शरीर में सुखों के प्रभाव से आश्चर्य करता हुआ जीव स्वयं को कर्ता मानने से ही निवृत्त हो जाता है । प्रकृति के लक्षणाधिनीय सुखों से संवृत्त होकर ही अधिज्ञान जीव संसार चक्र में संलग्न जाता है । वह सत्य के प्रभाव से ऋषियों तथा देवों राज के प्रभाव से ब्रह्मरों तथा मनुष्यों और तम के प्रभाव से भूर्त्तों एवं पत्नियों में अगम सैद्धर घटकता ठिरता है । जब तद्र जीव काम लोधादि से आविष्ट होकर व्यवहार करता है और ईश्वर से अपने को घृणक मान कर माया के द्वारा किये गये कार्यों में अग्रते हो बल का दर्शन करता है तब तक वह संसार का अतिशयन नहीं कर पाता है तथा उसके विध्या अनुभूयमान दर्शों के भी सत्य संवत्त और संसृष्ट रहता है । इसी पार्यव्ययान को जीव के वायन का मुख्य कारण मानते हुये मायव्य के मयवान् पुन करते हैं कि परमात्मा और जीवात्मा के अन्वेष के विश्वरूप से ही जीव संसार चक्र में अगम जाता है और आरम्भार अगम तथा मृत्यु को प्राप्त करता रहता है ।

(२१) जीव की मुक्ति के उपाय — तुलसी ने माया के द्वारा किए गये अज्ञान को जीव के वायन का उही मुख्य कारण स्थिर किया है वही उचित मुक्ति के लिए शक्ति को सर्वोपेक्ष्य साधन भी बतमाया है । इसी दृष्टिकोण से उन्होंने वही बड़ा माया और जीव के अन्वेषार्थों का उद्देश्य किया है वही-वही शक्ति के मयुर प्रभाव का भी विस्तार से वचन कर दिया है । राम के विराट-दर्शन में वही कोवस्या जीव को गन्धर्वे वाली माया को देखती है, वही साध में ही उसको मुक्ति करने वाली शक्ति के भी से दर्शन करती है । माया और शक्ति दोनों को एक ही गारो-वर्ग में समान भाव से बलिग्नित करके मोक्षामीची पहने तो वह अविपाक्षित करते हैं कि मायी कामो गारी के रूप पर मोहित नहीं होती है इस लिये शक्ति वर माया का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है । फिर के उनका भेद भी स्पष्ट करते हैं कि शक्ति, वही राम की शिवा है वही माया वैशारी केवल नर्सकी है इसीलिए राम की शक्ति के अनुकूल हैरा कर माया समने भयभीत रहती है । इसी के पक्षस्वरूप वह प्रवेक मल के दर्शन-ज्ञान से लज्जित और संकुचित हो जाती है क्योंकि उसके ऊपर उनका कोई भी बल नहीं बल पाता है । बीजा में भी वह प्रविशित किया गया है कि जो ईश्वर की शरण में आते हैं वे उच माया को उत्तीर्ण कर लेते हैं । इसके अनिश्चित बड़ा साक्षकी बुद्धि को जीव के वायन और मोक्ष के ज्ञान में समर्प माना गया है । साक्षत्र में वटा गया है कि जोर जब तक ईश्वर के करणों की शरण में नहीं जाता है तब तक उजहो भय मोह दुःख वराजय भोग मयगा दुराग्रह आवि से दूरबारा नहीं बिन सटना है । वही पर साक्षादि सुखों तथा आश्चर्य स्वप्न

१	मायवत्	१११११७	२	मायवत्	१११११०
३	मायवत्	११२२१२०	४	मायवत्	३१९१६
५	मायवत्	५११११७	६	मायवत्	११२०२
७	मायवत्	७१११६	८	बीजा	७११४
९	बीजा	९१११०	१०	मायवत्	११११६

बीर सुपुत्रि आदि वपामों को शैथिल्य वृत्तियाँ बतसाकर आत्मा को उनसे असंबद्ध एवं विसलज निरूपित किया गया है और यह माना गया है कि जब वह त्रिभुजात्मक सृष्टि से असिद्ध और तुरीय दशा में स्थिति होकर संसार की चिन्ता करना बंद कर देता है तभी वह मुक्त हो जाता है।^१ वहीं पर नित्य मुक्त बीब' की स्थितियों का विस्तेषण करते हुए 'विद्या भाषा का महत्त्व भी प्रतिपादित किया गया है —

'योऽविद्यया मुक्त स तु नित्यबद्धो, विद्यामयो य स तु नित्यमुक्तः ॥

१११११७

डा० सरनामसिंह वर्मा ने नित्य मुक्त और बद्ध के नाम से बीब के तीन भेद माने हैं। उनके अनुसार नित्य बीब वे हैं जो भववत् पारिवर्ष हैं। मुक्त बीब अनन्त ज्ञान, भाग्य एवं शक्ति से परिपूर्ण होकर भी ईश्वर से मिला रहते हैं। बद्ध बीब दो प्रकार के हैं—बुभुक्षु और मुमुक्षु। बभुक्षु बीब भी दो प्रकार के हैं—सर्व काम-पर और बर्म पर तथा मुमुक्षु बीब भी दो प्रकार के हैं—सर्वस्व पर और भववत्पर। सर्वस्व-पर वे हैं जो माया-बन्धन से छूट जाते हैं और भववत्पर जनों को भावना सदा नारायण में हो रही है।^२

'मानस में भी हरिमक्त को प्रभावित करने में अविद्या को असमर्थ किन्तु विद्या को समर्थ बतसाया गया है क्योंकि उसके प्रभाव से मक्त की भेद-बुद्धि बढ़ती रहती है और उसका नाश नहीं हो पाता है।^३ 'योऽसौ' में भववान् कृष्ण कहते हैं कि जो मुने सर्वत्र देखता है तथा मुझमें सब कृष्ण देखता है उनके लिए म तो नष्ट होता है और न वह मेरे लिए नष्ट होता है। बीब के सर्वनाश के लिए विषया शक्ति, काम, श्रेय संभोग स्मृतिनाश और मुक्तिनाश को उत्तरोत्तर उत्तरदायी भी बतसाते हैं।^४ बुद्धि अथवा ज्ञान का इस प्रकार महत्त्व प्रतिपादित करने के पश्चात् वे चारों प्रकार के भक्तों में ज्ञानी को ही सर्वप्रिय बतसाते हैं।^५ तुलसी भी ज्ञानी को प्रभु का विशेष प्रिय कह कर उसके साथ नाम-जप' का महत्त्व भी प्रतिष्ठित कर देते हैं। यीशु में भववान् कृष्ण अनन्य बितक (ज्ञानी) बक्त के योग्यता बहन के लिए स्वयं उत्तरदायित्व ग्रहण करते हैं और साथ ही सर्वत्र भववत्पर्यय करने वाले बीब के भी मोक्ष का विधान बतसाते हैं।^६

(२२) मुक्ति के साधन—कर्म ज्ञान और भक्ति, ये मुक्ति के तीन साधन माने जाते हैं। डा० मु भीराम वर्मा कहते हैं कि 'बीब ज्ञान कर्म और भक्ति के उभय द्वारा अपने को जडत्व से असंपृक्त तथा शैथिल्य से मोक्षप्रोक्त कर लेता है, वह

१ मानस ११११११ १८-२९

२ डा० सरनामसिंह वर्मा—भक्ति दर्शन—पृष्ठ १२६-१३३

३ मानस ७७९

४ गीता ६।३०

५ गीता २।६२-६३

६ गीता ७।१७

७ मानस १।२२

८ गीता ९।२७ २८

उस परम ज्योति के बंधन करता है और जन्म-मरण के चक्रों से मुक्त हो जाता है।^१ डा० राधाकृष्णन के अनुसार "मूर्ति की उच्चतम स्थिति के सम्बन्ध में चाहे कितना उपभेद क्यों न हो किन्तु इतना निर्विवाद है कि वह जीव की सचिय स्वतन्त्र, और पूर्णविक्षा है। वास्तव में इसका बर्चन भी नहीं किया जा सकता। यदि इसका बर्चन अपेक्षित है तो उसे विषय जीवन की स्थिति कह सकते हैं। आत्मा का प्रकृत से सही प्रकार तादात्म्य समझना चाहिए जैसे सूर्य की किरणों का सूर्य से अद्वि-संगीत का बिन्दु-संगीत से होता है। यही तादात्म्य ही सूचित है।"^२ मोस्वामी जो ने उपयुक्त तीनों साधनों को उचित विस्तार देते हुये भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ उद्घाराण है। डा० रामकृष्ण पुत्रन के अनुसार— 'हमारे जीवन की पूर्णता कर्म (धर्म) ज्ञान और भक्ति-तीनों के समन्वय में है। सामान्य कियो प्रकार की भी हो साधक की पूरी सत्ता के साथ होनी चाहिए—उसके किसी अंग का सर्वथा छोड़ कर नहीं।'^३

भक्ति की विधेयता बतलाते हुए मोस्वामी भी कहते हैं कि जो 'परम-समाप्ते' है वे संसार को दुःखरूप मानकर भयवान् का भजन करते हैं और सुभाषुन सभी प्रकार के कर्मों का परिचय कर देते हैं। पीता में भी ऐसे ही 'सुभाषुन परिखायी' भक्त को भयवान् का प्रिय कहा गया है।^४ वहाँ तो उन कर्मों को कर्म-स्वरूप बतलाकर उनके त्याग करने वाले जीव को निष्कल भी माना गया है।^५ 'मानस' के अनुसार भी उन कर्मों को आत्मिक सुख से भ्रमण कहा गया है तथा उनके साध्य रूप में केवल भक्ति को ही निरूपण किया गया है। इस प्रकार मोस्वामी भी मोक्ष-साधन के लिये वहाँ कर्मों की निस्तारता स्थापित करते हैं वहाँ सांसारिक प्रयत्नों को इन कर्मों का परिचय मानते हैं।^६ उनके मत में वे प्रत्यक्ष स्वयं स्वयं-वत् निस्तार हैं और उनका त्याग करने वाले परमाधी जीव ही इस 'संसार-निष्ठा' में सर्वत्र व्यापक रहते हैं।^७ 'पीता में भी इस भाव की पुष्टि दृष्टिपूर्वक होती है।'^८ 'भाववत् के अनुसार भी जीव की सुख दुःख जीवन मरण आदि समस्त बतियों के लिये वे कर्म ही उत्तरदायी हैं।'^९ वही वर कर्म ज्ञान और भक्ति तीनों योगों का बड़े विस्तार से विवेचन करते हुए उनको उत्तरोत्तर बहुल्यरूप भी बतलाया गया है। कर्मों में अज्ञान के लिये ज्ञान साध के लिये कर्म और सज्जसज के लिये वहाँ भक्तियोग की प्रतिष्ठा भी की गई है। वहाँ कर्मों को बतलाया वही एक मात्र मार्ग है वही एक उचित निर्वेद कर्मणः सत्ता का साधिकांश होता है।^{१०} एक प्रकार से

-
- १ डा० मुन्दीराव कर्मा—प्रथमका—पृष्ठ ७१
 - २ डा० राधाकृष्णन—भारतीय दशन प्रथम भाग—पृष्ठ ३४१
 - ३ डा० रामकृष्ण पुत्रन—मोस्वामी सुभाषुन—पृष्ठ १०८-१०९
 - ४ मानस ७।४१
 - ५ पीता १२।१७
 - ६ पीता २।१७ १।२८
 - ७ मानस ७।४२
 - ८ मानस ९।९२
 - ९ मानस २।११
 - १० पीता २।१६
 - ११ भाववत् ११।१।२३

र्म को ज्ञान और भक्ति का साधन—मात्र कहा गया है।^१ इसके साथ ही वहाँ यह स्पष्ट बतलाया गया है कि कर्म ज्ञान, तप ज्ञान, योग और वैराग्य आदि से भी अप्राप्त्य पर्याय भक्ति—योग से उत्पन्न हो प्राप्त किए जा सकते हैं। भक्तों के लिए तो स्वयं मोक्ष विचारीय नाम आदि सभी कृष्ण सुखम हैं, किन्तु वे भक्त्यात्मक वेदों पर भी इनकी खोज आकृष्ट नहीं होते हैं।^२ भक्तिमयों के भी सात्त्विक, राजस और तामस आदि भेदों के लक्षणों का उल्लिखित वर्णन करके वहाँ सात्त्विक नाम की प्रशंसा की गई है और अतुल्य मोक्षों को भी उसके सामने हीन बतलाया गया है।^३

वहाँ एक ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग का सम्बन्ध है तुलसी ने उनका विस्तार से विवेकन किया है किन्तु वहाँ भी उनका आपस भक्ति की सर्वभेद्यता की सिद्धि के लिए ही है। उनके अनुसार ज्ञान और भक्ति में सांसारिक वेद के रूप में समान सामर्थ्य होने पर भी एक मौखिक वेद है कि ज्ञान पुष्टिम है और भक्ति सिद्धिम। अतः ज्ञान पर यामा का जो स्वाभाविक प्रधान पड़ सकता है और पड़ता है वह भक्ति पर नहीं पड़ता है क्योंकि वे दोनों तो एक ही (नारी) धर्म की हैं। वे कहते हैं कि ज्ञान का मार्ग वस्तुतः कृपाण की चार के समान तीक्ष्ण है वहाँ चूकते ही सर्वनाश है और यदि वह भिन्न सिद्ध भी हो ज्ञान तो बसना बड़े से बड़ा धाम्य मोक्ष है जो भक्त को बसनाहै और बसपूर्वक में ही सुखम हो जाता है, किन्तु वह सखी बूढ़ उपेक्षा करके अपनी भक्ति में ही पूर्ण निमग्न रहता है।^४ इसके अतिरिक्त गोस्वामीजी यह स्पष्ट करते हैं कि भक्ति तो स्वभाव और निरवसम्भ है और ज्ञान, विज्ञान आदि सब उसके (भक्ति के) आधीन हैं।^५ इसके साथ ही वह ज्ञान अपम अविघ्न, दुःसाध्य निराधार, कष्टग्रह और दुर्लभ होने पर भी भक्ति के अभाव में भक्त्यात्मक को प्रिय नहीं है क्योंकि भक्ति के बिना ज्ञान, कर्मचार के बिना अक्षयन के समान है। इतना ही नहीं भक्ति के अभाव में वह ज्ञान अज्ञान ही है —

छोड़ न राम प्रेम बिन म्यानु । करनपार बिनु विधि असजानु ॥ २।२७७

योग कृयोग म्यानु । जहूँ वहि राम प्रेम परपानु ॥ २।२६१

गोस्वामीजी ज्ञानी को प्रीड़ पुत्र और भक्त को घिड़ पुत्र की तरह उपमा देकर कहते हैं कि भिक्षु के प्रति माता का स्वभावतः अधिक प्रेम होता है क्योंकि वह माता पर पूर्णतया आश्रित रहता है जब कि प्रीड़ पुत्र स्वयं इतना समर्थ होता है कि उसे माता की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसी प्रकार ज्ञानी

१ भाववत् ११।२०।१-११

२ भाववत् ११।२०।१२-१४

३ भाववत् १।२१।१२-१४

४ मानस ७।१११-११६

५ मानस ७।११६

६ मानस १।१६

७ मानस ७।४५

की अपेक्षा बहुत कम प्रति भयवान् का स्वाभाविक अथवा आकर्षण समाना चाहिए ।'

(२३) भक्ति का स्वरूप—भक्ति की इस प्रकार सर्वोपरि प्रतिष्ठा करने के उपरान्त गोस्वामीजी उसके स्वरूप, साधन और अन्य विशेषताओं का भी महत्त्वपूर्ण विवरण करते हैं । उनके मत से भक्ति बहु तार है जिससे भयवान् जीव ही प्रविष्ट हो पाते हैं । मानस के राम स्वयं कहते हैं—

जाते मेवि हवत मैं भाई । सो मम भक्ति मगत सुखदाई ॥ १।१६

बहु भक्ति बरामत दुर्लभ भी है, क्योंकि बहु बिरसे साधक को ही प्राप्त होती है । 'पीठा मैं भी इसी का उर्मपन किया गया है ।'

(२४) भक्ति के साधन—सहामन को अस्तिभोग का उपदेय देते हुए मानस के राम भक्ति के साधनों में ब्रह्म-सेवा, वेदोक्त कर्मपालन, विषयवैराग्य आदि पर विशेष बल देते हैं ।' अवधवातियों को समझाते हुए वे इन सम्बन्ध में सबप्रथम 'गरदेह' का उल्लेख करते हैं । फिर उसके साध हरिकृपा, मुकृपा, और सत्संगि का भी महत्त्व ब्रह्मयोग बतलाते हैं । अन्त में अपने 'सूक्त मत' में वे 'सब-कृपा' की अनिवादीता का भी संकेत करते हैं—

'भीरत एक सुपत मत सबहि कह्य कर कोरि ।

संकर मजन बिना नर भक्ति न पावइ मोरि ॥ ७।४३

काक-मृगुण्डि को अपना विद्यान्त बतलाते हुए राम, भक्त ही ही लक्ष्मिपता का प्रतिपादन करते हैं । वे तो अमस्त ब्रह्मा की तुलना में 'मऊनीस' तक को अपना प्राणप्रिय बतलाते हैं । 'भाववत' में भी जीवों की उत्तरोत्तर संवृष्टता का एक नाम बतलाते हुए भक्त को ही सर्वसंवेष्ट टहराया गया है ।'

'मानस' में प्रतिपादित अपने भक्ति-विद्यान्त को गोस्वामी जी धृति-विद्यान्त से समन्वित बतलाते हैं ।' वे 'हरिभक्ति' को ही समस्त वैदिक साधनों का एक मात्र फल भी मानते हैं । 'भाववत' में भी भक्ति की विशिष्टता का ऐसा ही उल्लेख प्राप्त होता है ।'

भक्ति को इन विशेषताओं के अतिरिक्त योगवानी को वे भक्ति के प्रकारों का भी मौलिक निरूपण किया है । 'मानस' के राम 'उपरी' से जिस 'नरनामक्ति' का बचन करते हैं वह पूर्ण प्रतिष्ठ प्रकारों से सर्वथा विशिष्ट है । तुमसी की अमर-पारमक प्रतिभा ने इसमें अन्य तारों का भी निरूपण से समन्वित कर दिया है—

१ मानस—३।४३

२ मानस ७।३४

३ मनुष्यात्मा ब्रह्म नु करिष्यति सिद्धये ।

पतञ्जलि विद्यानी करिष्यतां वति तारत । । ७।३

४ मानस ३।१६

३ मानस ७।८६

६ भाववत ३।२१।२८-३३

७ मानस ७।१२३

८ मानस ७।१२६

६ भाववत १।१।७।२४

'नवधा भयति कर्तुं छोहि पाही । छात्रबाग सुनु बह मन पाही ॥
प्रथम भयति संतनु कर संना । हूसरि रति मम कथा प्रसंना ॥
मुह पर पंचज सेवा तीसरि भयति अमान ।

श्रीनि समति मम पुनवन करइ कपट तजि याम ॥ २।१२
मंथ जाप मम बुद्ध विस्वासा । पंचम भजन सो भेद प्रकासा ॥
छठम सीस निरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन बरमा ॥
सातवं धम मोहि मय जय बेसा । मोरें संत बधिक कर सेवा ॥
आठवं ज्वालामय संतोबा । सपनैहुं गहि देखाइ परयोपा ॥
नवम सरन सब जन सख हीना । मम भरोस हिय हरव न सीना ॥
मन महुं एकउ बिनु के होई । गारि पुख्य सबउपर कोई ॥
सोइ अठिसव प्रिय भागिनि मोरे । — —

भावगत में 'नवधामल्लि' का वर्णन इस प्रकार है —

अवर्ष कीर्तनं विष्णो स्मरणं पावसेवाम् ।

वर्षनं बन्दनं दास्यं सख्यमारमनिवेदनम् ॥ ७।५।२१

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' का वर्णन इससे कुछ भिन्न है—

स्मरणं कीर्तनं नामनुषयो अवर्षं जप ।

त्वभ्याच्छ्रुयमानं स्वरगावसेवाधिबन्धनम् ॥

धर्मपथं चारमनश्च निरर्थं गैबेद्यभोजनम् ब्रह्म । १।१२-१६

'नवधूपुराण' के परिपक्व में कुछ और नवीनता है —

सुवर्षनोर्ध्वंशुष्कादि तन्निष्कर्षं शुभम् ।

सर्वशुभोर्ध्वंशुष्कनमर्षनं विधिना हरे ॥

स्मरणं कीर्तनं विष्णो सेवाच परमारमनः ॥

प्रथमस्तस्य पुरतस्तबीबानां च पूजनम् ॥

प्रसापतीर्थसेवा च भक्तिर्नवविधा स्मृता ॥ पद्म । उत्तर । २२१

१११-११४

'नवधा भक्तिर्षो' के इस तुलनात्मक निरूपण में यह कहना संभवतः अप्राप्त
विक नहीं होता कि 'मानस' की प्रथम सात भक्तिर्षो 'अध्यात्म रामायण' से अव्यक्त
प्रभावित हैं^१ किन्तु उसही अष्टम और नवम् भक्ति का विस्तार सर्वथा मौलिक है ।
पुराणों के वर्णनों में जहाँ मूर्ति पूजा से सम्बन्ध सांप्रदायिकता पर बल दिया गया
है वहाँ योश्वामी की सर्वत्र सामाजिकता व्यावहारिकता तथा उपयोक्तता को ही
विशेष महत्त्व देते हैं । इसके अतिरिक्त उनकी नवधा भक्ति के वे सभी भेद स्वतन्त्र
निरपेक्ष और समान समर्थ हैं । सभी तो उनमें से किसी एक को भी वे भयव्यथापि
के लिए उत्तम बतलाते हैं जबकि भावव्यथादि के वर्णनों में एक क्रमानुशा तथा अग्यो
ग्याधय स्पष्ट है । नवधा भक्ति के अतिरिक्त 'मानस' में वास्वीकि के द्वारा राम की

ब्रह्मसूत्रों में 'वस्तुसंज्ञाभक्ति' के भी उल्लेख हो जाते हैं। वस्तुतः बहो
 मतों के विभिन्न सतत १४ प्रकार से निरूपित किए गए हैं जिन पर वीजा का
 पंचेष्ट प्रभाव है।^१ दत्त सन्मरण में 'अन्तारम रामायण' का विस्तरण नहीं किया
 जा सकता है।^२

मक्ति में भावधारक विवेचन का जहाँ तक सम्बन्ध है वहाँ वास्तव, सत्य और
 आत्म विवेचन अभी सम्पन्न किया जा चुका है इनमें आत्म-विवेचन का सम्बन्ध
 माधुर्य-भाव से है क्योंकि उद्योग में तार्किकता समर्थन के उद्देश्य लिए जा सकते हैं।
 इन भावों के अतिरिक्त वास्तव्य भाव ही भी अपनी विरोधता है। मानव के उत्तरण
 की प्रकृति और अन्तः कारण भाव से उद्योग माधुर्य भाव से गुणीय और विभीषण
 सत्य भाव से तथा भरत मत्स्य और हनुमान् आदि वास्तव्य-भाव से ही राम की
 उपासना करते हैं। तुलसी इन सब में वास्तव्य भाव को ही महत्त्वपूर्ण बनाना कर उद्योग
 प्राथमिकता देते हैं—

'शेषक तेष्य भाव विनु अत्र न तस्य उरवारि । । ७।११११

(२५) मुक्ति के प्रकार—इस प्रश्न में मुक्ति के प्रकारों का निरूपण भी अनेकभाव
 है। पराशरों के शास्त्रों में सामान्य और साव्य आदि मुक्ति के चार प्रकार
 माने गए हैं। गोरक्षजी ने मानव में जटायु के हरिकण्ठ-पारण और हरियाम
 यमन में साहस्य एवं सामान्य रामेश्वर स्थापना के अवसर पर साव्य^३ तथा
 अन्तर्मुखी प्रकृति के प्रश्न में समीप्य^४ मुक्ति का संकेत कर दिया है। भागवत में
 सामान्य साष्टि सामान्य और साहस्य के नाम से पशुपति मुनियों का वर्णन विद्यता
 है। ब्रह्मसूत्रपुराण में इनके अतिरिक्त 'साम्य और सीमता को अर्थ भेद भी
 माने गये हैं। गोरक्षजी ने मुक्तियों को इस गणना के अन्तर्गत में न पड़ कर उद्योगों
 पाठक मतों को महत्ता एवं विविधता का ही संकेत करते हैं क्योंकि उनके अनुसार
 वे अपने महान् मुक्ति का भी निरावर कर देते हैं।^५ पुराणों में भी भावों के द्वारा
 मुक्ति की अवहेलना करने का बयान प्राण होता है। बहो ब्रह्मसूत्रपुराण में मुक्ति
 के स्वरूप तथा मक्ति से उत्पत्ती हीनता के कारण का भी उल्लेख किया गया है कि
 'सो मुक्ति प्रभु-योगीनो होने के कारण मक्ति के मध्य मक्ति निरूप है।'^६

(२६) निष्कण्ठ—इस शार्ङ्गिक विद्वानों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि
 राम के ईश्वरत्व और उनके प्रति दास्यभक्ति की सर्वगच्छा का प्रतिपादन ही
 गोरक्षजी का मुख्य सन्देश है। इसके लिए वे अष्टावक्राचार्य वीजा भाष्य तथा

- | | |
|-----------------------------------|-----------------------------------|
| १ मानस ३।१२८-१३१ | २ भोग १२।१३-२० |
| ३ अष्टावक्राचार्य । अनेक १।१२४-६३ | ४ मानस ३।१३२ |
| ४ मानस ६।१ | ५ मानस ७।४ |
| ५ भाष्य ३।२६।१३ | ६ ब्रह्मसूत्र । अर्थ १।६।७ |
| ६ मानस ७।१११ | ७ ब्रह्मसूत्र । प्रकृति १।३।७६-७८ |

अन्य पुराणों से अनुकूल तार्यों का स्वीकरण करके, उनको अपनी विधिष्ट मौलिक प्रतिभा से एक सरस, सरस, सुबोध, नवीन व्यावहारिक और सर्वसोकोपयोगी रूप देकर प्रतिष्ठित करते हैं। उन्हीं को 'तुलसी मते' कह कर डा० बलदेव प्रसाद मिश्र उसी महत्ता के तीन कारण बतलाते हैं—'एक छसमें बुद्धिवाद और तृप्यवाद का सुन्दर सामंजस्य है, दूसरे वह समातन हिन्दू धर्म का विद्युत्स्वरूप है और तीसरे वह नकर धर्म है।' डा० मधोरथ मिश्र के अनुसार भी हम यह कह सकते हैं कि तुलसी के दार्शनिक विचार व साम्प्रदायिक हैं और न संकीर्ण। वे व्यापक और सरस हैं। जो बातें अनेक सम्प्रदायों में समीको मान्य हैं तुलसी ने उन्हीं को ग्रहण किया है।'

सब बात तो यही है कि मोस्वामीजी के ये सिद्धान्त कहीं भी बूढ़ अथवा कमसे हुए नहीं हैं उनमें एक तारतम्य एवं कार्यकारण-सम्बन्ध के सर्वत्र सुस्पष्ट दर्शन होते हैं जिनसे कोई सामान्य व्यक्ति भी साधारणतः होकर वास्तव्यमात्र से राम चरित की ओर अतिशीघ्र सम्मुख हो जाता है। मेरे विचार से 'मानस' की मोक्षप्रियता का यही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण है।

(२७) धर्मशास्त्र सिद्धान्त—जीव और जपत् के व्यापारिक सम्बन्धों के विवेचन के अतिरिक्त मोस्वामीजी ने उनके सामाजिक अर्थों का भी प्रस्तुत दर्शन किया है। समाज में कुछ धर्म ऐसे होते हैं जिनका मानव-मान से सम्बन्ध बाह्यीय माना जाता है। 'मानवता' के नाम से हमारे देशों के सामने मानव की सर्वोच्च उपलब्धियों का एक विश्व अंकित हो जाता है। वस्तुतः 'मानवता' मानव की पूर्णता और उसका स्वभाव मात्र ही है। इसीलिये सर्वोत्तम मानव को देवता मान लेने की परिपाटी प्रतिपादित की गई है। ईश्वर के विभिन्न मानवीय व्यवहारों में एही दृष्टिकोण से मानवता की अद्वितीय प्रतिष्ठा दृष्टिकोण होती है। ये इसीलिये आदर्श तथा अनुकरणीय माने जाते हैं।

प्राचीन कवियों और मुनियों ने आनुवंशिक के साधारण पर समाज का वर्णन करने हुए अर्थिक के विभिन्न धर्मों का विविष्ट निरूपण किया था। इसके अतिरिक्त 'आधम चतुष्टय' की दृष्टि से भी उन्होंने विभिन्न आधमों में मानव के आचार-व्यवहार के कुछ मानववृत्त स्थिर किए थे। वर्णधर्म-धर्म के अतिरिक्त व्यक्ति के अनेक पद-धर्म भी होते हैं—पितृ-धर्म, मातृ-धर्म, धातृ-धर्म, पुत्र-धर्म, धर्मिणी धर्म और मित्र-धर्म आदि। मानस के पाठों के अतिरिक्त-विशेष के साध-साध इन धर्मों का दर्शन किया जा चुका है अतः यहाँ पर मानवधर्म एवं वर्णधर्म-धर्म का विवेचन अपेक्षित है। संस्कृत-साहित्य, विशेषकर पुराणों में इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रतिपादन होने पर भी एक बुद्धिवाद के दर्शन होते हैं जबकि मोस्वामी जी ने इस विद्या में उपपुत्रता एवं उपपोषिता का ही विशेष ध्यान रखा है।

१ डा० बलदेव प्रसाद मिश्र-तुलसीदर्शन-नवम संस्करण, पृष्ठ ३२० ३२८ ३३५,

२ डा० मधोरथ मिश्र-तुलसीरसावन-पृष्ठ १२२

(२८) मानव धर्म—'मानसकार ने संतों तथा धर्मियों के सदस्यों के माध्यम से बादर्से मानव-धर्म का बड़े विस्तार से निरूपण किया है। उन्होंने इनमें मानव के सम्मुख एवं निःसंशय से सम्बन्धित समस्त आवश्यकताओं का अद्वितीय वटाठा के साथ सामग्र्यस्य प्रस्तुत कर दिया है। भारत के प्रश्न पर स्वयं राम संतों के सदाचर्य इस प्रकार बतलाते हैं—

'मुमु मुनि संतगृह के गुण कहूँ । जिगृहे ते मी उगृहे के बस रहूँ ॥
 पट विकार जिन अनप प्रकामा । अपन अदिकत गुनि गुण पाया ॥
 अमित बोध जातीह पितमोषी । उत्पसार कवि कोविद जोगी ॥
 सावधान मानव मदहीना । धीर धर्मपति परम प्रवीना ॥
 गुनावार संसार दुख रहित बिगत संदेह ।
 तजि मम चरन सरोज प्रिय तिगृह कहुँ कहूँ न गेह ॥

मुनि गुनु साधुन के गुन जेते । कहि न सकहि छारद घुनि तेते ॥ ३।४३ ४६
 इन सदस्यों में ईश्वराराधना के साथ-साथ मोक्ष साधना के बोधक तारों का प्रचुरता से समग्र्य दृष्टिकोण होता है। 'धर्मस्य के रूपक में भी तुमसो मे मानव के सर्वोच्च धर्मों का बड़ा धरत और आत्मकारिक बर्धन प्रस्तुत किया है।'

राम मल्ल को ही सर्वत्र गुणों तथा धर्मपरायण आदि मान करके पोस्वामीजी मारा के सदाचर्य में भी मानवधर्म पर ही अविचलित रहते हैं। आत्मोक्ति के द्वारा राम को बड़ाए गए मार्गों के १४ निरुक्तों में पहलक स्थान मुक्तमन, प्रसाद-युक्त प्रेम परपोकार समस्त तत्त्वबोधन परस्त्री में मातृ बोध परपन में विपबोध सदानुभूति, भीतिनपुण्य सज्जन-जोवा शैराय गंतोय और निस्वार्थ स्नेह आदि का विविध बर्धन करते हैं।' तबरी के प्रति निरूपित नवधामलिक के सदाचर्य में भी के दर्शों धर्मों का विस्तार से बर्धन करते हैं। इस दिशा में के 'गीता' से बहुत प्रभावित जान सकते हैं। वहाँ मार्गों के इन सगणों को 'पर्यायित के रूप में माना गया है—

अद्वेष्य सर्वभूतानां मैत्र करण एव च ।
 निर्ममो निरद्वेषः सततः समुदायि ॥
 गन्तव्यं चतुर्णो यथात्मा दुःखनिवहय ।
 मत्पवित्रमनोबुद्धिर्वा मद्ममत्र समे प्रिय ॥
 तुल्यनिष्कामस्तुतिर्वा नीतिर्गुणो देव कैतवित् ॥
 अत्रिरेव त्विदं अतिर्भक्तिमायमे प्रियो नरः ॥
 ये तु बर्ध्यान्तुमिदं यथोचनं पद पातये ।
 मत्पाना मारत्या ब्रह्मास्ते तीव मे प्रिया ॥ १२।१३-१४

‘भागवत पुराण’ के अन्तर्गत ‘सार्वात्मिक’ और ‘सर्वाधम प्रयुक्त’ धर्मों के समन्वय में इसी ‘मानव-धर्म’ का एक सार्वभौमिक और सार्वकालिक रूप दृष्टिपोषक होता है —

अहिंसा सत्यमस्तेयमक्रामश्चेधसोमता ।
 मृतप्रियहिंसेहा च धर्मोऽयं सार्वत्रिकः ॥
 टीक्ष्णमाशमनं स्नानं सार्वभ्योपासनमार्चनम् ।
 तीर्थसेवा जपोऽभ्युत्थानमर्यासंभाव्य बर्चनम् ॥
 सर्वाधमप्रयुक्ते मं दिवस- कुण्डनन्दन ॥ भागवत ॥११॥७॥२१,
 मद्भाष सर्वभूतेषु मनोवाक्काय संयमः ॥ ३४—३५

यही पर ३० मन्त्रों का एक अन्य विस्तृत ‘मानवधर्म’ बतलाया गया है^१ जिसमें भी भागवतकार सर्वभूतेषु मद्भाषः पर विद्येय बल है^२ और उसके अनुयायी व्यक्ति के लिए वे बुद्धयुक्त ज्ञान विज्ञान-सम्पन्न तथा भागवतोत्तम ज्ञापि विशेषणों का प्रयोग करते हैं। वस्तुतः विश्व के समस्त प्राणियों में सम-बुद्धि रखना महामानव, का सर्वप्रथम लक्षण है। समस्त संसार को सिंघाराम मय^३ जान कर प्रणाम करने वाले हमारे पोस्वामीजी स्वयं तो महामानव हैं ही, साथ में मानस^४ के सभी अध्येताओं के समक्ष वे सर्वोच्च मानवधर्म का एक अनुकरणीय आदर्श भी इसी प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

(२६) पशुधर्म—मानव-धर्म के विवेचन के साथ ही तुमसी ने ‘सर्वाधम’ धर्म का भी सविस्तार बर्चन किया है। उन्होंने ‘मानस’ में ब्रह्मण्य धर्मिय वैश्य एवं ब्रह्म ज्ञापि सभी वर्णों के विभिन्न धर्मों के विविध पक्षों का धरस उच्चाटन प्रस्तुत किया है। इसमें वे संसृष्ट-साहित्य से भी बहुत प्रभावित ज्ञान पढ़ते हैं।

(२७) ब्राह्मण धर्म—‘मानस’ में ब्राह्मणों के महत्त्व का आध्यात्मिक प्रतिपादन किया गया है। उसमें आरम्भ में ही नहीं अपितु अनेक प्रसंगों में भी ब्राह्मणों की पर-श्रवण की गई है।^५ उनको महान् तपस्वी अतिशय ही उर्ध्व पुरुष सर्वधर्म मंगलमूल और कुण्ड होने पर कोटिकुल-नासक भी कहा गया है। उनका वर्तन शुभ यजुः है उनकी पूजा अत्रितीय पुण्य है और उनकी सेवा ‘हरितोपल प्रत’ है। ब्राह्मणों को यह महत्त्व उनके धर्माचरण की दृढ़ता के कारण ही प्राप्त होता है। इसी दृष्टिकोण से वेद विहीन धर्मत्यागी और विपरीत ब्राह्मण को वहीं शोचनीय भी माना गया है।^६ भीष्म में ब्राह्मण-धर्म का निरूपण इस प्रकार है—

धर्मो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्चनमेव च ।

ज्ञानं विद्वान्मास्तिर्क्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ १८॥४२

१ भागवत ७।११।५-१२

२ मानस १।७-८

३ मानस १।२ १४, २१३ ३०५ ३३२, २।१ ६।९०, ११६ ७।१२

४ मानस १।१६३, २८३, २५४ २।१२६ ५ मानस १।३०३ ७।४४, १०९

६ मानस ७।१२७, २।१७२

'माघवत् में भी इन्हीं धर्मों को ब्राह्मणोचित बतलाया गया है।' 'बद्ध पुराण' में अतिविपुला सुकमलित विदुषजादि कर्म और ईश्वरपूजा आदि का भी उल्लेख मिलता है। 'अग्निपुराण के अनुसार केवल यजन यज्ञम यज्ञम यज्ञम प्रतिष्ठतु, अम्पयन और वैशाम्पायन आदि ही ब्राह्मणों के कर्म हैं।' सभी पुराणों में अम्पयन इन्हीं धर्मों को ब्राह्मण से सम्बन्ध निरूपित किया गया है। जहाँ तक ब्राह्मणों के महत्त्व का सम्बन्ध है उसका भी बड़ी विस्तार से प्रतिपादन प्राप्त होता है। 'माघवत् में ब्राह्मण को सम्मता सेठ सर्व-वेद-मय ईश्वरान्त आदि युद्ध विदेव पूजित और सर्व-मात्र से मुक्तिप्रद बतलाया गया है। 'बद्धपुराण में ब्राह्मण को अनात्म्य अथर्ववेद धर्ममूल, समस्त-संपत्ति-प्राप्ति-देतु, समस्त-आपत्ति-सूचकेतु, और संसार-नाश-देतु माना गया है। 'गोस्वामीजी भी ब्राह्मणों को जाति से ही पुण्य मानकर माघवत् के अतुल्य पर' उनके साथ दाहन और वस्त्रधन के प्रति भी यथाभाव रस्ते का परामर्श देते हैं।' इसके अतिरिक्त 'ब्राह्मणवत्' के निरूपण में वे केवल विद्यालय-रूपन तक ही अपने को सीमित नहीं करते हैं प्रत्युत उसके व्यावहारिक प्रतिपादन के महत्त्व को भी प्रतिष्ठा करते हैं।

[३१] अत्रिय धर्म — गोस्वामीजी 'माघवत् के अथर्ववेद प्रथम में राम के मुत्त के अत्रिय-धर्म की प्रस्तावना इस प्रकार करते हैं —

ह्वन तमी मृगया वन करही । तुम्ह से राख बन छोड़त फिरतो ॥

रितु बसतव देखि कहि करही । एक बार कालु सन मरही ॥

जो न होत बल पर फिरि जाहू । समर विमृग में हतत न काहू ॥ ३।१६

बही पर 'धर्म-परम्परा-सम्बाध' में कहा गया है कि अत्रिय होकर जो युद्ध में अक्रिय हो जाये वह पापमय और कुलकर्तक है। अत्रिय को तो समस्त अथर्व अथर्व देव अथर्व अथर्व की भी कोई विन्ता नहीं होती है बल्कि वह तो मातृ धान पाकर काम से भी मुक्त करने के लिए सग प्रस्तुत रहता है। शरीर में गरिब रहते हुए कोई भी अत्रिय कभी भी अत्रिय बात को सहन नहीं कर सकता है क्योंकि अत्रिय 'रोय' बड़ा कठिन होता है। इसके अतिरिक्त अत्रिय और राजा का सम्बन्ध बान कर प्रजा का पालन न करने वाले को बड़ी खोजनीय भा बतलाया गया है।

'माघवत्' के अनुसार ठीक वन धर्म शीघ्र अत्रिय शीघ्र अथर्व अथर्व

१ माघवत् १।१।१०।१६

३ अग्नि १।२।१।१०

२ माघवत् १।१।१।१०

७ माघवत् १।२।१।१०

९ माघवत् १।१।१।१०

११ बीता १।१।१।१०

२ बद्ध १।१।१।१०

४ माघवत् १।१।१।१०-२४, १।२।१।१०

२०-२२

६ माघवत् १।१।१।१०

८ माघवत् १।१।१।१०

१० माघवत् १।१।१।१०

ब्रह्मभयता और ऐश्वर्य आदि क्षत्रिय के स्वाभाविक धर्म बतसाए गए हैं। 'गीता' में भी इसी मत की प्रतिष्ठा है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में क्षत्रियों के लिए विप्रपूजा, ईश्वरपूजा, राज्यपालन, रत्न में निर्भयता, शरणागत-रक्षा अस्त्रास्त्र-निपुणता अथवा तुष्टपालन, दान तथा आदि आचर्यक धर्म माने गए हैं। 'अग्निपुराण' में उनके लिए ब्राह्मणधर्म के अतिरिक्त प्रजापालन और बुष्ट-निग्रह का विशेष विधान है। 'रघुवंश' के मत में अतः ही मान करमा ही 'क्षत्रिय राज्य का मुख्य धर्म है। संस्कृत के ग्रन्थों में रघुवंशियों के जो धर्म लिखे हैं उनमें उनके क्षत्रियत्व की ही प्रमाणता है। 'महामाटक' के अनुसार रघुवंशी मिथ्या नहीं मानते और शरणागत शत्रु की भी रक्षा करते हैं। तुलसी ने 'मानस' में रघुवंशियों के अनेक धर्मों का भी विस्तृत वर्णन किया है। ब्रह्मण्यो के प्रति क्षत्रियों के यज्ञापूर्व आचरण का उल्लेख भी अनेक ग्रन्थों में मिलता है। रघुवंश 'रामायणमंजरी' आदि के राम परशुराम के प्रति इसीलिए अन्त तक नतमस्तक रहते हैं। 'मानस' में भी उनकी इस यज्ञा का अनेक प्रसंगों में वर्णन मिलता है। 'कृष्णयामा' के राम कृष्णज को ब्राह्मण मानकर उनके प्रणाम करने पर मर्यादाखनन से दुःखी होते हैं। 'मानस' में राजन के उत्तम कृष्ण का संकेत तो मिलता है, किन्तु उसके ब्राह्मण का उल्लेख नहीं भी नहीं है, जबकि 'पद्मपुराण' के राम राजनवध से प्राप्त 'ब्रह्महत्या' के पाप का प्रावणित्त भी करना चाहते हैं। वहाँ अयस्य उनको ईश्वरत्व के माते पापपुण्य से परे बतलाते हैं किन्तु उनके अत्यधिक आग्रह पर अन्त में वे अस्वमेव यज्ञ की व्यवस्था भी दे देते हैं।

'मानस' में न तो यह अतिबाध है और न अनेक नाटकों के समान धर्म का ऐसा अतिक्रमण ही है कि राम अपने अहित को विनाशित देकर परशुराम से युद्ध के लिए कटिबद्ध भी हो जायें। वहाँ तो अहित के वास्तविक कर्म-सीर्य का ही युद्ध विधान है, जिसमें आदि से अन्त तक निष्ठ बुद्धता और उत्परता की ही प्रमाणता है।

(३२) वैश्यधर्म—'मानस' में वैश्यधर्म के वर्णन में उसी वैश्य को लोचनीय धाना गया है जो पतनान होने पर भी कृपण हो और अतिवि-भुजा एवं अिभुजा में उत्तर न हो। 'गीता' में भी कर्ण-मोक्षय-आधिग्य' को वैश्य के लिए स्वाभाविक कर्म कहा गया है। 'अग्निपुराण' में वैश्य के लिए ब्राह्मणधर्म के साथ-साथ उपयुक्त

१ भागवत ११।१७।७

२ ब्रह्मवैवर्त । श्री कल्पवृक्ष । ७३।

३ रघुवंश २।३३ ६८।७३

७ मानस २।२०४, ३।४३

८ रा० मंजरी । बाल ६१४

११ मानस ६।२०

१३ मानस २।१०२

२ गीता १८।४३

४ अग्नि । ११।३।८

६ महामाटक १।३४, ७३

८ रघुवंश ११।८४

१० कृष्णयामा ३।११

१२ पद्म । पाताल । ८।१०-१९, ३३

१३ गीता १।१००

कवि आदि की व्यवस्था है। 'मायवत में वेदों को 'वार्तावृत्ति ब्रह्मकुमानुष देवमस्त, गुरुमस्त, आस्तिक उद्यमपौत्र त्रिभुवणोपक आदि कहा गया है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण में वैश्वों के लिए वाणिज्य, वृषिपारान, विप्रदेवाधेन, दाम उपस्था और वृत्त-सेवन आदि अनिवार्य धर्म बतलाये गये हैं।'

(३३) शूद्र धर्म—'मानस में विप्र-अधमानी मुख्य मानप्रिय और ज्ञानगर्हित शूद्र को खोजनीय माना गया है। 'पीठा के अनुसार शूद्र का स्वाभाविक धर्म परिष्कारिक है। 'अग्निपुराण' में उसके अतिरिक्त 'सर्वविस्वाम्पात' का भी संकेत है। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में केवल 'विप्रपूजा' को ही शूद्र का धर्म माना गया है। 'भामवत' में उनधि, पीब, निरक्षण सेवा अमन्यपन्न अस्तेय सत्य, गोविप्ररक्षा आदि की व्यवस्था भी वृष्टिमोक्षर होती है।'

'मानस' में गृह आदि के आचरणों के वर्णन में शूद्र के धर्म के संपूर्ण व्यापक हारिक वर्णन हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त बहूँ गृह के साथ राम भरत और बसिष्ठ आदि के प्रेमासिक्त का वर्णन करते होस्वामीजी जाति-प्राप्ति की कट्टरता के पीब और छुआ छत आदि भाषों की विस्तारता को प्रतिपादित करते ही हैं साथ ही शूद्रों के प्रति भी अग्र्य वर्णों की कोमल व्यवहारपद्धति का निर्देश करके वे अग्र्य आदर्श मानव-धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं, जिनके फलस्वरूप ही धारों संसार को 'विद्या रामय' जानकर 'विरवप्रेम की उदात्त भावना प्राप्त हो सकती है।

(३४) आभम धर्म—प्राचीन आचार्यों ने मनुष्य की १०० आय की जाय मानकर उच्चतम समान चार भागों में विभाजन करते हुए ब्रह्मधर्म, गृहस्थ धर्म, वानप्रस्थ और सत्यास आदि चार आधर्मों की व्यवस्था निर्धारित की थी। उक्तका बहुतायुक्त निर्वाह करने में ही जीवन का गौरव समझा जाता था। 'मानस' के सभी पात्र इस विभा में आदर्श हैं।

(३५) मद्राज्ये आभम—इस आधर्म की मुख्य विशेषताएँ विद्याध्ययन, गुरु-आज्ञा पालन, ब्रह्मधर्म-नाशन आदि हैं। इसके विपरीत आचरण करने वाले बटु को खोजनीय माना गया है। 'अग्निपुराण' में इसके अतिरिक्त तत्र सग्न्योपासन तथा द्विधा परानवार और मन्त्रीलता क त्याग आदि का भी उल्लेख मिलता है। 'वन्दमपुराण' और 'मायवत पुराण' आदि सभी पारिक ग्रन्थों में इन्हीं वर्णों को अत्यधिक विस्तार प्राप्त हुआ है। इन विद्या में मोक्षार्थी जी की सारवाहिकी प्रतिभा वस्तुतः प्रगोचनीय है।

१ अग्नि । १२१।८-९	२ मायवत ७।१।१२, २३
३ ब्रह्मवैवर्त । श्री कल्पवृक्ष । २।१७४	४ मानस २।१७२
५ पीठा । १२।४४	५ अग्नि । १२।१६
६ ब्रह्मवैवर्त श्री कल्पवृक्ष ८।१७५	६ मायवत ७।१।२४
७ मानस २।१७५	७ अग्नि । १२।१।२२-२६
८ वन्दम । वृष्टि । ११।२८६, २९६	८ मायवत १।१।७।२२-१८

(३६) गृहस्थ-आश्रम—सती प्रणयों में इस आश्रम को सर्वश्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि इसके आश्रम में सभी आश्रमों का सङ्कुलन निर्वाह होता है। इसमें कर्म-योग के साथे गृहस्थ के वर्तन किए जा सकते हैं। ब्रह्मचारियों का निष्ठा दाग देने और वानप्रस्थियों के योग-श्रम के निर्वाह का ध्यान करने में ही इस आश्रम की महत्ता है। बोस्वामीजी कर्म-पद-स्वाव करने वाले गृहस्थों की निष्ठा भी करते हैं।^१ ब्रह्म-वैवर्तपुराण में गृहस्थों के लिए विप्र-युवा देव युवा और अतिवि युवा का विधेय विधान है।^२ 'मावध' में गृहस्थों को अपने-अपने बच्चों के समों का पालन करते हुए गृह में भी अतिवि के समान जगत्सक्त रहने का परामर्श दिया गया है।^३ 'अग्निपुराण' में भी ऐसी ही व्यवस्था मिलती है।^४ 'पद्मपुराण' में गृहस्थों के लिए 'कुसुमशाय्या', 'कुम्भीशाय्या', 'अवस्तनी और आपीती' आदि चार युतिर्वातभार्गवई हैं और जन्में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता का संकेत करते हुए 'अपरिग्रह' की ही महत्ता स्थापित की गई है।^५ 'अपोत-युति' की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन महाकवि विहारी ने भी किया है।^६

(३७) वानप्रस्थाश्रम—'मानस' में अनेक ऋषियों मुनियों और उनके शिष्यों के वर्तन में इस 'आश्रम' के विविध आचारों का विस्तार से व्यावहारिक निरूपण मिलता है। बोस्वामीजी उष वैद्यासों (वानप्रस्थियों) को शोचनीय मानते हैं जो तप का स्वाव करके सदा जीवों में ही शिष्य रहते हैं। 'पद्मपुराण' में गृहस्थाश्रम की शिष्यता का निवारण करने के लिए ही तपुपराम्य वानप्रस्थाश्रम को सर्वोत्तम माना गया है। उसमें सत्य शोक समा तप निवृत्ताहार, ईश्वरार्थि, ब्रह्म-कार्य और अतिवि-युवा आदि का बड़ा महत्त्व बतलाया गया है।^१ मावध, अग्निपुराण आदि में वानप्रस्थी के जीवन वस्त्र विवास तप, व्रत आदि की व्यवस्थाओं का भी बड़ा सूक्ष्म विवेचन मिलता है।^२ बोस्वामीजी ब्राह्मणचार्यों को आठ म्बर मान कर वास्तविक ऋद्धाचार्यों को ही प्रमुखाते हैं, जिनके प्रभाव से ऋषियों के आश्रमों में एक छात्र एवं शिष्य वातावरण की स्वतः सृष्टि हो जाती है। 'मानस' की पुष्कारणकता के निर्वाह में इन आश्रमों का महत्त्वपूर्ण योग स्पष्टीकृत है।

(३८) सम्न्यासाश्रम—इस आश्रम की मूल विशेषता 'संन्यास' में ही है। वानप्रस्था तक जो तीव्रारिकता का बंधन कुछ योग रहता ही है किन्तु इस आश्रम में संन्यासी सर्वस्वाभाव का एक श्रेष्ठ आदर्श अनुभव करता है। इसीलिए 'मावध' में उसके समों में निःसंन्यास, संन्यासिण्यता आत्मरति आदि का विशेष वर्तन किया

१ मानस २।१७१

२ ब्रह्मवैवर्त । श्रीकृष्णजन्म । ८।११-१८

३ मावध १।१।१०।३१-३६

४ अग्नि । १३।७।

५ पद्म । सृष्टि । १२।१००-१०१

६ विद्यापी-सप्तमर्द । ६१३

७ मानस २।१७३

८ पद्म । सृष्टि । १२।१००-१०६

पदा है। वही उसको भोजन, वास-वस्त्रादि से भी उदासीन बतसाया गया है।^१ गोस्वामीजी उस सम्बन्धी की निन्दा करते हैं, जो 'विरतिविवेक' छोड़ कर सांसारिक प्रयत्नों में डीन हो जाता है।^२ अग्निपुराण में यति को उपेक्षा बसंजयी, सारी समझी और पाणिपानी आदि कहा गया है।^३ पद्मपुराण में उसकी 'उदासीनवृत्ति का भी उल्लेख है।

(३६) आभयमापनम् भागवत में इन चारों आशयों की विशेषताओं का एकत्र समाहार करते हुए विपरीत आचरण करने वालों को 'आभयमापन की संज्ञा दी गई है और उनही दुःखानुर्बन्ध उपेक्षा करने का संकेत भी वही किया गया है।^४ गोस्वामीजी से 'कलियुग-वर्जन' में 'बरन घरम नहि आशय चारी कह कर इन आभयमापनों को दुःख स्थितियों का बड़ा कष्ट निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त 'रामराज्य-वर्जन' में वे प्रजा के वर्णान्ध-धर्म के पातन और उससे गुण प्राप्ति का भी उत्साह वर्जन करते हैं -

बरनाशय नित्र नित्र धरम निरत वेद पय सोम ।

पसहि सदा पासहि मुछाहि नहि मय सोच न रोग ॥ ७।२०

इस प्रकार उन्होंने दोनों स्थितियों का एक तुलनात्मक रूप प्रस्तुत कर दिया है।

निष्कर्ष —गोस्वामीजी का धर्म-सिद्धान्त निरूपण पौराणिक वर्णनों से आरम्भिक महत्वपूर्ण है। उसमें 'मातृकार की निम्न प्रतिभा और अनुकूलि की सपक सार्ज दृष्टिगोचर होती है। पुराणों में उपदेशात्मकता एवं निवामकता की प्रवृत्ति स्पष्ट ज्ञान पड़ती है, जबकि 'मानस में व्यावहारिकता प्रयोगाहना एवं अनुभूयमानता की सखत अभिव्यक्ति है।

(४-) नीति-सिद्धान्त —धर्म सिद्धान्तों से पूर्व नीति-सिद्धान्तों का निरूपण महत्वपूर्ण करता है कि इन दोनों में एक नीतिक विभेद है। भूमवृत्ति से देखने पर धर्म और नीति में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है किन्तु स्पष्ट दृष्टि से दोनों में भेद की प्रतीति होती है। भेद-दृष्टि से नीति का क्षेत्र स्थिति विस्तृत है और धर्म का मोक्षहित-निश्चयना। नीति के समस्त व्यक्ति का ऐहिक सुख रहना है जो अपनी परिधि में आचरण के बंधन व्यावहारिकता को रगता है परन्तु धर्म की दृष्टि आचरण के पारमाधिक्य पर सरो रहनी है। ही उल्लेख प्रसार वैयक्तिक आचरण में होकर हो रहता है। 'वस्तुतः उन दोनों धर्मों के अर्थ ही बनने अन्तर को व्यक्त करने हैं। धर्म का अर्थ है 'त्रिमये ह्यस्ये को चारण करे और नीति का अर्थ है जो ह्ये

१ भागवत १।१।२०-३२

२ भागवत २।१०२

३ अग्नि। १६।११-१०

४ पद्म। मृत्ति। १२।३४६-३६२

५ भागवत। ७।१२।३०-३६

६ भागवत ७।१६-१०२

७ डा० गरुडामणिहृ चर्मा—द्वितीय साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रकाश-

से जावे । इससे धर्म की उगाठनवा और नीति की सामयिक उपबोधिता स्पष्ट हो जाती है । यही कारण है कि अनेक अवसरों पर मनुष्य नीति से बाह्य होने पर भी धर्मदृष्टि के कारण वीर्य आपरय नहीं कर पाता है । धनु को नीति के अनुसार वासन-योग्य मानते हुए भी महारमाओं का व्यापम इसीलिए तथा को ही प्राप्त करता दिया करता है । नीति-धार्मिकों की तुलना में धर्मशास्त्रों की महत्ता भी बड़ी प्रतिपादित करती है कि धर्म-धर्म है और नीति नीति है तथा मानव के लिए अपने अपने अवसर पर दोनों की समान उपबोधिता है ।

गोस्वामीजी के धर्म सिद्धांतों के निरूपण पर जिस प्रकार पुराण आदि अनेक धर्म ग्रंथों का प्रभाव परिछादित होता है, उसी प्रकार उसके नीति सिद्धांतों पर भी नीतिदत्त विदुरनीति पुरुष्नीति और चाकवप-नीति आदि ग्रंथों की भी कहीं-कहीं स्वामाधिक छाया दृष्टिगोचर होती है । इन नीति ग्रंथों के अतिरिक्त संस्कृत के अनेक काव्य-ग्रंथों में भी उनके लेखकों के द्वारा विभिन्न प्रसंगों में बहुत सरल और आकर्षक नीति-वचनों का प्रयोग मिल जाता है । यहाँ पर केवल उनके साथ ही 'मानव' के सिद्धांतों की तुलना करना अपेक्षित है, क्योंकि उपर्युक्त सिद्धांतों की अपेक्षा अपेक्षा की परिधि में नहीं आते हैं ।

(४१) नीतियों का वर्गीकरण - नीति का सम्बन्ध धर्म के सामाजिक आचरण से होता है । समाज में अनी तक प्राप्त और साधित दो धर्म तथा से रहे हैं और उनके व्यवहारों में अतिरिक्त के साथ-साथ लोक का भी एक बहुत बड़ा अंतर रहता है । अतः नीति के सामान्य नीति एवं राजनीति के रूप में दो भेद किए जा सकते हैं । समाज में रहते-रहते धर्म के धनु मिय और उपासीन तीन सम्बन्ध स्वतन्त्र हो जाते हैं । इनमें उपासीनों की बहु शिखा नहीं करता है किन्तु धनु और मिय के साथ बहु निरपेक्ष भी नहीं रह सकता है । ये सम्बन्ध धर्मोपासीनी और मिय के साथ बहु निरपेक्ष अवस्था आदर्श की भाँति करते हैं की मन् धर्म के निरपेक्षित्व के कारण सम्बन्ध नहीं हो पाता है । अतएव बहु आचरण नहीं है कि हम अग्रे ही अपना मिय या धनु समझें कि भी हमें बराबर वीर्य ही समझते रहें अपना भी हमें अपना मिय या धनु मानें हम उनको भी उतनी मात्रा में वीर्य ही उदैव मानते रहें । फिर भी इतना अवश्य है कि कुछ धर्मिक बहूतों के सर्वैव मिय या धनु बने रहते हैं या हो जाते हैं । ऐसे धर्मिकों के स्वभाव की प्रवृत्ता अथवा निम्ना नीति की चर्चा बन जाती है ।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे धर्मिक भी होते हैं जिनको समाज के लोप तथा चीन समझते रहते हैं और वस्तुतः उनसे किसी का कोई धर्मिकत समान या अन्त-मात्र भी नहीं पाया जाता है किन्तु इसका यही कारण होता है कि वे सबके होते हैं अने ही वे द्विचक्र ही अथवा अद्विचक्र ही । ऐसे सज्जन अथवा असज्जन भी नीति के द्वारा वेच अपना हम माने जाते हैं । फिर इन सम्बन्धों में मियता के

कारणों पर विचार करने से मित्र एवं सख्तन की परोपकार-भूति के दर्शन होते हैं जिसका विशेषण भी नीति का एक अंग समझा जाता है। सख्तता के कारणों में सम्पत्ति और काम-भूति के कारण होने वाला ईमानदारी ही प्रमुख होता है, जब उसकी निन्दा भी नीति शास्त्र में की जाती है। उनके अतिरिक्त कभी कभी साधनसम्पन्नता, होने पर भी व्यक्ति की परवशता ईश, अनिष्ट कथना भाष्य के प्रति आश्रय भी व्यक्त करती है। इस प्रकार सम्मिश्र प्रशंसा कमिष-निन्दा, सख्तन-प्रशंसा असख्तन-निन्दा परोपकार-प्रशंसा सम्पत्ति-निन्दा काम-निन्दा (बाटी-निन्दा भी) और भाष्यवाच आदि अनेक विषय नीति विशेषण के अंतर्गत आ जाते हैं। मोस्वामीजी ने इन सम्बन्ध में 'मानस' में अपने विचारों में मौलिकता और अनुकारिता का यथावसर समर्थन किया है। संस्कृत साहित्य के साथ उसकी तुलना बस्तुतः बड़ी लाभकर एवं आकर्षक है।

(४२) सन्मित्र प्रशंसा - मोस्वामीजी सन्मित्र की विशेषतायें इस प्रकार निर्धारित करते हैं-

'कृपय निवारि सुदंभ बलाभा । तुल्य प्रच्छेद अक्षयुतगिह दुखाभा ॥

देव भेन मय तं क न परई । वस अनुमान सदा हित करई ॥

विपत्ति काम कर सख्तगुण नेहा । घृति कृष्ट संत मित्र गुण एहा ॥४७७

इस पर 'नीतिचन्द्र' का प्रभाव स्पष्ट है।^१ 'मद्विद्वान्य' में मित्र की तर्क 'गोवृत्ति' बाह्ये बाने को ही लक्षणा मित्र कहा गया है।^२ 'रामायण मञ्जरी' में दुःख में विदेशवासी सुख में विनयवासी बिना कहे प्रायः प्रथम से भी उपकारी और मित्र की विपत्ति में सदा आश्रय देने वाले मित्र को हृद्य प्रिय और पुण्य प्राप्य माना गया है।^३ उत्तर रामचरित काव्य में विपत्ति में रहकर व्यक्ति को ही लक्षणा बिना बननाया गया है। मोस्वामीजी उस मित्र के दर्शन को पाठ समझते हैं जो मित्र के दान से दूरी न होगा हो।^४ रामायणमञ्जरी में ऐसे व्यक्तियों के जन्म को ही ध्येय माना गया है।^५ अनेक पदादि में दुःख को रक्षक समझने वाले और मित्र के रक्षक से दुःख को पहाड़ समझने वाले को ही मोस्वामीजी मित्रता के मोक्ष मानते हैं।

'रामायणमञ्जरीकार' दान के स्थान पर उपकार या प्रसीध करते हुए कहते हैं कि मित्र के स्वयं उपकार को भी मेरा सा उपकारने वाला और उपकार को सर्वथा भूल जाने वाला ही लक्षणा विनयकारी मित्र है। 'महाबीर चरित' में 'मंथी-महाव्रत' के लक्षण बनाने हुए मित्र का प्राणों से भी उपकार करने उनके साथ झोड़ और धन न करने तथा उसको अपने समान ही मानने पर बन दिया गया है।^६ अदुःख दर्शन के

१ नीतिचन्द्र ७३

२ मद्विद्वान्य ११२४

३ रा० मञ्जरी । विद्विग्धा । ४४, ९६

४ उत्तररामचरित काव्य ११३७

५ मानस ४७७

६ रा० मञ्जरी । विद्विग्धा । ९८

७ मानस ४७७

८ रा० मञ्जरी । विद्विग्धा ११

९ महाबीर चरित ११३६

अनुष्ठान हितवादी और हृदयानुरोधी व्यक्ति को ही सम्झा मिय मानना चाहिए ।^१
 'अथायनमन्वरी के अनुसार पित्रता का पाकब बड़ा कठिन है और यह एक बार
 टूट जाने पर फिर वही नहीं जुड़ती है ।'

(४३) कुमित्र निन्दा—'मावस के अनुसार' कुमित्र की यह परिभाषा है—

भाये कह मुदु बचन सुनाई । पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥

भाकर चित्त अहि बति तन पाई । अस कुमित्र परिछोईह पकाई ॥ ४३॥

यह नीति 'आत्मक्य नीति' से प्रभावित है ।^२ 'ब्रह्मावतार चरित' में कुमित्र

को स्वार्थ के समय विनत और 'पर्याप्त तात्पर्यवान्' देखकर आत्मार्थ स्वयत्
 किया गया है । वहाँ ऐसे कुमित्र के प्रेम को विरहित कण्ठ्य मत्स्य एवं संघ्ना
 पलायन करिषी-कर्ष विद्यत्, नृप-स्वभाव स्वीकृत मत्त-बुद्धि, अनीतिक
 हतति और आरत-स्तुति के समान अंधक और अस्थिर भी माना गया है । इसके
 अतिरिक्त उसके साथ किहू पर उपकार को वहाँ 'शत्रुओं में घेरी के समान' व्यर्थ
 बतलाया गया है क्योंकि ऐसा कुमित्र 'स्वर्थाप्रणवी तथा मित्र के दुःख में
 विरक्तप्रयत्न होता है ।' रामायणमन्वरी के अनुसार स्वार्थी और परार्थ में
 पराङ्मुख कुमित्र का अंग ही निम्न है, उसके एक को पसु भी नहीं पाले है ।
 वहाँ एवं के साथ उसकी तुलना करते हुए श्लोक से उसको अनेक-विध भी और
 अर्थक कहा गया है । उसको 'अवस्थिताम्य भी कहनाते हुए महापापियों से बढ़
 कर माना गया है क्योंकि उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है ।'

(४४) सबजन प्रशंसा—'मानस' में सबजनों की श्रद्धा करते हुए सबको अनुमो
 और निम्न—सब के प्रति समान चित्त बासा कहा गया है और इस सम्बन्ध में अपनी
 तुलना 'सुमनी' के साथ की गई है:

बन्धु संत समान चित्त हित अनहित नहि कोह ।

अंसि नत धुम सुवन विनि धन सुवंश कर दोह ॥१३॥

गीता' में भी समान ही च मित्रे च तथा मानापमानयो^३ कहकर ऐसे महा
 पुरुषों की प्रशंसा की गई है । 'मानस' में राम के मुख से संतों के लक्षण अनेक बार
 उचित किये गये हैं । 'भाव-वर्म' के अर्थ में उनका बहुत कुछ उल्लेख किया जा
 चुका है । मानस में संतों को अनपेक्ष प्रयत्न उपदेशों, निर्मल विरहकार,
 निरुद्ध और निरपरिग्रह कहा गया है । मानस में संतों एवं भक्तों में अन्तर भी
 प्रतिपादित किया गया है और वहाँ अन्तर्गत को ही 'प्रयमायति' माना गया है ।^४

१ अनुमत्त वर्णन १।२

२ प. ० अन्वरी । कृष्णिका १।०६-१०७

३ आत्मवर्णनीति २।३

४ ब्रह्मावतार चरित ७ । १७२ १७६

५ रा०मन्वरी । कृष्णिका ६३ ६० ७२ १३२-१३३

१००, १४७

६ गीता १।१।८

७ भाववर्म १।१२१।२०

८ मानस २।१२० १३६ १।७२ ४६ ७।३५

९ भाववर्म ६।१६, १५

गिता' में ब्रह्मों और 'दिव्यप्रसादों के मध्य' 'मानस' के संतों के ब्रह्मों से पुनः मया रखते हैं। 'मायस' में मत्स्य को मये सोमाग्य से प्राप्य और मोक्ष का द्वार बनाया गया है। 'भागवत' में सत्यं की तुलना में स्वर्ग तथा मोक्ष को भी त्रि द्वा द्वार कहा गया है। 'मनधरापथ' के अनुसार सज्जन स्व और पर' में कोई वि नहीं मानते हैं और यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वे तो स्वभाव से ही आधिक उदार, महात्मा और परोपकारी होते हैं। 'दयावतार चरित' में ब्रह्म विद्या, विवेक में विमति, छाव में संका विषय में विकार मुक्तों में अवमान, स्थल में निषेध और चर्म में विरोध न करने वाले को ही संत माना गया है। 'रायबीय' में सज्जनों को धनु के भी मुक्तों से बाह्य कर्तृ कर उनकी हान को गुरु सिद्धिप्रद बतलाया गया है। 'बालकीहरण' में भी सज्जन को धनु पर भी प्राणीक कहा गया है। 'बालरामायण' में सज्जनों की कृपा को सेकड़ों प्रकार से 'सुभवा' कह कर उनकी प्रसंता की गई है। 'उमत्तरापथ' के अनुसार परोपकार सदानुभूति बया आदि सज्जनों के स्वाभाविक गुण होते हैं। 'महाकाठक' में सज्जनों की 'प्रवृत्ति-विवृत्ति' को उर्ध्वा अधमभ कहा गया है क्योंकि वे स्वर्ग, इन्द्रिय और परम के समान अस्त तक चरों के रवों रहते हैं। 'मा-चर्म चूडामनि' के अनुसार भी सज्जन लोग अस्त तक 'पप्य बात ही कहते हैं।' 'रामायणमंजरी' में सज्जनों के मुक्तों में विवेक, सज् संतोष दया, परोपकार विरचनी स्नेहमयी दृष्टि आठरिफ प्रेम और अप्रतयों बापी आदि का उल्लेख किया गया है। 'भागवत' में सज्जनों को बर्षन-मान से ही पवित्र करने वाला कह कर उनको तीर्थो एवं देवताओं से भी महान बतलाया गया है। 'रायबीय' में उनके सम्बन्ध को मोक्ष का हेतु कहा गया है। 'अथ कि 'मानस' में उन संतों के बर्षन को चापतापक भी बतलाया गया है।'

(४५) असज्जन-निन्द्या सज्जन प्रशंसा' के साय-साय 'मानस' में असज्जन-निन्द्या का भी विस्तार से बर्षन किया गया है। असज्जनों की सभी विधियों में उमर्ष मान कर 'मानसकार' उनकी आदि में ही बर्षना भी करते हैं —

- | | | | |
|----|------------------------------|----|----------------------|
| १ | बीडा १२।११।१०, १२।१ १८।२१ २४ | २ | मानस ७।११ |
| ३ | भागवत ४।१०।१४ | ४ | मनधरापथ २।१२, १।१ |
| ५ | दयावतारचरित ७।११ | ६ | रायबीय १।१।१६, १।८।१ |
| ७ | बालकीहरण १।२२ | ८ | बालरामायण ४।२८, ७।४० |
| ९ | उमत्तरापथ १।४१ | ९ | महाकाठक २।१८ |
| १० | आरचर्मचूडामनि २।२१ | १० | रायबीय १।१।१७-१२१ |
| ११ | भागवत १०।८७।११, ४।१११ | ११ | रायबीय १०।१७ |
| १२ | मानस ४।१७ | | |

बहुरि बंदि छल मन छविभाएँ । जे बिनु काज दाहिनेहु भाएँ ॥
 पर हिय हानि मान जिहू केरें । जउरे हरप बिपाव बघेरें ॥
 हरि हर अप राकेस राहु से । पर अकाज मठ छहसबाहु से ॥
 जे पर सोप सधाहि छहसाधी । पर हिय नृत जिहू के मन माधी ॥
 तेज छुवातु रोप महियेसा । अप बचयन मन बनी मनैसा ॥
 हरप केत सम हिय समही के ।

॥ ११४

इसके साथ ही वे सनकी विविष्ट पक्षि की प्रसथा भी करते हैं कि वे अलग-अलग
 जेय के समान हजारमुसों से पृथुराज के समान हजार कानों से और इन्द्र के समान
 हजार कानों से दूसरों के दोषों को कहते, सुनते और देखते हैं।^१ 'पद्मपुराण'
 के अनुसार भी जलजोय 'परकसंकयवच में पञ्चानन पर-भुज जयप में विपण्य और
 परबोप-मनस में 'सतस्व' हो जाते हैं।^२ भरत के प्रत्य पर 'मानस' के राम
 बसनों के स्वभाव का अति विस्तृत वर्णन करते हुए उन्हें राखणों के समान बत
 साते हैं।^३ 'भागवत में अश्वत्थों को 'शिलोदर-पर' कह कर उनकी संपत्ति को
 निन्दित माना गया है।^४ 'जानकीहरण' में ऐसे असज्जनों को 'पद्मुरस्य' अथवा 'पद्मजों
 से भी 'नयाशोता' कहा गया है।^५ परमपुराण की 'अलगनी' कहती है कि जहाँ ऐने
 दुष्ट रहते हैं, वहाँ मेरा दुष्ट तिवास है।^६ जनकराजप के अनुसार दुष्टों के पाप
 यदि पुन और बिचा भी हो तो वह उनकी दुष्टता ही बढ़ाती है। पोस्वामीजी
 भी उचका समर्पन करते हैं।^७ रामायण-मंजरी में अलगजनों को कानकूट के समान
 पापक नुबंध पाप-संकल्प परिपन्थी प्राणापपाती मादि वह कर उसकी निम्ना
 की गई है। वहाँ दुर्जन कुपे की प्रथ, शान और उट को सर्वम को उवा कुटिख
 कह कर संशोपनि जावि से भी सनकी सिबाई को असम्भव बतलाया गया है।^८ ऐसे
 लनों की प्रीति को पोस्वामी जी विद्युत के समान अस्तिर मानते हैं।^९ 'बिष्णुपुराण
 कार' भी इसमें जनसे सहमत हैं।^{१०} हनुमाष्टक में अप जल-मैथो को नवी सवमी,
 अनुनिपति शुक्रमार स्त्री के समान अस्तिर मोहन माना गया है।^{११}

(४६) सज्जन-असज्जन-सुसना — 'मान' में सज्जनों और असज्जनों की
 बिलेपताओं की तुलना भी बिस्तार से की गई है और उनके गुणों को अलग-अलग
 बतलाया गया है —

१ मानस ११४

२ मानस ७११६-४०

३ जानकीहरण ७११६-३९

४ जनपरंरापव ७११२

५ रा०मंजरी। शान। ६६२ ७२१ लंका ३६३

६ मानस ७११४

७ हनुममाष्टक २।१९

८ पद्य। श्रियाशोपसापर ९।१०३-१०४

९ भाष्यव १।१२६।३

१० पद्म। उचर। १।१९।१४

११ मानस ७१।०९

१२ लंका ३६३

१३ बिष्णुपुराण २।६।४२

बंद संत असंजन बना । दुखद उभय बीच कछु बना ॥
 निष्ठुर एक प्राण हरि चेही । मिमठ एक दुख दाहन बेही ॥
 मुषा सुरा सम सामु असापू । जनक एक अय जलधि अगापू ॥
 मन मनमन निज निज करतूती । लहुत मुनस अपलोह बिभूती ॥ ११२

जानकीहरण में सज्जन को जहाँ निष्कारण रूप-सीमा रहा गया है, वही पर सज्जन को निष्कारण बरखीन भी माना गया है। वहाँ सज्जन को स्वभावतः परोक्षकारी और असज्जन को 'निष्ठुरव्यसम्पत्' तर्क बतलाया गया है। गोस्वामी जी की भाष्यता है कि असज्जन भी सज्जनसंसर्ग से सुख सकता है, किन्तु उसका दुःस्वभाव वही मिट पाता है। 'अपानक के मत से सज्जन और असज्जन के मत में, सज्जन तो असज्जन हो सकता है, किन्तु असज्जन कभी भी सज्जन नहीं बन सकता है जैसे सहस्रानु और अन्ध के योग में अन्धन भले ही निर्गम्य हो जाने, किन्तु सहस्रानु सुनिश्चित नहीं हो सकता है।' इसके अतिरिक्त ये कहते हैं कि सज्जन तो स्वयं स्वयं के समान होते हैं, जिसमें असज्जन सोम अपने दुर्गुणों का प्रतिबिम्ब देखकर ही उनकी निम्ना किया करते हैं। रामजीधर का भी यही विश्वास है कि बड़े से बड़ा सज्जन असज्जन के सम्पर्क से कमजोर हो जाता है। इसके लिए वे कर्लक के द्वारा अश्रमा के रूपित होने का उदाहरण देते हैं। 'आश्रम्य बुद्धाम्नि' में कहा गया है कि बुद्धों का स्वभाव परिवर्तन अस्वाभाव्य ही होता है। अश्रमपुराण का मत है कि नीच के संग से महान् व्यक्तिको कष्ट ही मिलता है। इस सम्बन्ध में वहाँ प्रती के संग से विष के दुख का संकेत किया गया है। इसी प्रथम में हनुमन्नाटक में रावण के वारण ही समुद्र के अवन का उदाहरण मिलता है।

महाराजा का सबसे बड़ा लक्षण बतलाते हुए 'अश्रमपुराण' में कहा गया है कि सबसे मन बचन और कर्म में एकता होती है जब कि बुराई में अनेकता होती है। वहाँ सज्जनों और असज्जनों की एक समान विनयना भी बतलाई गई है कि वे अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ते हैं। इसका अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि दुष्ट सोप अकारण ही सज्जनों को कष्ट देते हैं जैसे व्याध और घोबर, मज्जत मुषों एवं मत्स्यों का निरपराध ही जब किया करते हैं, जब कि सज्जन सोप दूसरों के उद्वेग से प्रसन्न होते हैं जैसे मार बादन के बहन से माचने मपता है और वे अपने उद्वेग से दूसरों को प्रसन्न भी करते हैं जैसे अश्रमा कमुनों का विकलित कर देता है।

- | | |
|--------------------------|---|
| १ जानकीहरण ११८२ | २ जानकीहरण १११२ |
| ३ मानस ११७ | ४ बुद्धीराज विजय ११२१ |
| ५ बुद्धीराज विजय ११२२ | ६ रावणाय १२१८० |
| ७ आश्रम्य बुद्धाम्नि ११४ | ८ वदय । विद्यापीठसापर १६।१०२ |
| ९ हनुमन्नाटक ११११ | १० अश्रम । विद्यापीठसापर १२०० अक्षर ११४।१२ ४६ |

(४०) परोपकार-प्रशंसा —गोस्वामी जी परोपकार को सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं और उसको वैद-मुक्तन भावि का निर्धम कहते हैं। वे इसीलिए परोपकारी की प्रशंसा भी करते हैं। 'भाववत्' में परोपकार का बहो महत्व बतसाते हुए बुद्धों की ओर संकेत किया गया है जो अपने पत्र पुष्प फल आदि सर्वस्व से बनठा का हित-साधन करते हैं। 'आनकीहरण' के अनुसार परोपकारी व्यक्ति के पास सम्पत्तियाँ स्वयमेव जाती जाती हैं। 'रामायणमंजरी' में परिहितोत्तम को बह्म-त्याओं का अनिर्धार्य धर्म कहा गया है। 'समावरायक' की भी बड़ी मान्यता है। 'अनर्परायक' में परोपकारियों को एक विशिष्ट परिपाटी बतवाई गई है कि वे दूसरों के माध्यम से ही भोज-सेवा करते हैं क्योंकि वे स्वयं बच भी नहीं चाहते, बल्कि समूह बाबलों के माध्यम से संकल्पित करता है और धूर्त बच के माध्यम से प्रकाश करता है।

(४१) सम्पत्ति-निष्ठा—गोस्वामी जी मुख्य परिवार और बच के साथ सम्पत्ति को भी रामचरित का बायक मानकर निरन्तर बतसाते हैं। कश्चिन्मुप बर्चक में वे सम्पत्ति की पर्युक्त निष्ठा करते हैं। भाववत् में भी धन को इस ढोक में सावकारी और परलोक में भरकवापी कहा गया है। वहाँ उसके साथ बरकमें रराच और जन्म आदि को बड़ा कष्टकर माना गया है। धन के सम्बन्ध में बड़ी बात बिना भ्रम स्तन द्विधा अस्तम हस्त काम कोर हरं दक मेव बैर कश्चिन्साव और स्वर्ण आदि इर अनर्प बतसाकर 'भाववत्कार' उसके दूर से ही त्याग को सर्व-वेवस्कर करते हैं। उनके अनुसार बच एक सुद कोड़ी के कोर से ही माता पिता भाई स्त्री और मित्र आदि सभी लोक सब ह्ये जाते हैं तो फिर इत अनर्पमुन बर्च में कोई आश्रित नहीं करनी चाहिए। 'आनरायण' के अनुसार सधमी कुराराय्य होने के साथ-साथ पत्रप्रप्ट करने वाली भी होती है। 'राय बीर' में लरनी को बृद्ध पुरुष में पशिका के प्रेम के समान उपचार, सुरता आदि से भी असाध्य कहा गया है। "रामायणमंजरी" में भी सम्पत्ति और बैरवा की समानता बर्णित की गई है। "इसावतार चरित" में भी लरनी को बैरवा के समान उपला बतसाया गया है। वहाँ उसकी तुलना विद्युत के साथ भी की गई है। "रायबीयकार" की भी बड़ी मान्यता है। 'अनर्परायक' के अनुसार सधमी

- | | |
|-----------------------------------|-----------------------|
| १ मानस ७।४१ १।५४ | २ भाववत् १०।२२।११ १५ |
| ३ आनकीहरण ७।३२ | ४ रा०मंजरी। बाल। ३६५ |
| ५ सम्पत्तपत्र १।४१ | ६ अनर्परायक १।३७ |
| ७ मानस ४।७ ७।६५-१०१ | ७ भाववत् १।१२।१।६२-२३ |
| ८ आनरायण १।२४ | ८ रायबीय २।१२ |
| ९ रा०मंजरी।बलोप्या।१२१।मुन्दर १६० | १० इसावचरित ७।१६० २६३ |
| ११ रायबीय १।३।३३ | |

सबमूख बत (बड़) से उत्पन्न हुई है, इसीलिए वह सदा नीचातिनीच के पास ही जाती है। वही सदाही को घनियों और निर्घनों के बीच की 'साई' कह कर उसकी निम्ना की गई है।^१

(४६) सम्पत्ति प्रशंसा-रामायण-मंजरी रामचरित मादि कूम ग्रंथों में सम्पत्ति का महत्व भी बतलाया गया है। 'रामचरित' के अनुसार संसार में धन का ही महत्व है। भक्त निर्धन को निष्प्राण ही समझना चाहिए।^२ 'रामायणमंजरी' के मउ में भी संसार में धन ही सब कुछ है क्योंकि संसार की सारी क्रियाएँ बेध्या की तरह घताभीन हैं। हरिद का कोई काम नहीं बनता है जबकि बनी के सप मनोरथ सीम सफल हो जाते हैं। धनवान को ही वहाँ पीलबाम् कुलवान और महस्वी कहा गया है और यद्यपि धन, वैश्व ज्ञान, रूप आयु, प्रसा कूस आदि को धन के आधीन किन्तु धन को स्वाधीन बतलाया गया है।^३ धन को प्राणों का प्राण कह कर वही यद् भी सिद्ध किया गया है कि निर्धन व्यक्तियों को मूठक समझ कर ही उनके मित्र और बन्धु-आप्यक त्याग देते हैं। उदाररायन में राज्य से अर्थ अर्थ से धर्म तथा काम और उनसे मुक्ति को साध्य बतला कर, निर्धन व्यक्ति को सर्वथा अपोष्य ठहराया गया है।^४

इन सभी उक्तियों से यह स्मरणीय है कि वे सब महत्त्व से सम्बद्ध हैं जो राम के राज्य त्याग से विग्रह हैं और अक्षर मिलने पर इनसे अपना दोष व्यक्त करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त इन ग्रंथों के कवि राज्यापयी और धनसेमबधाली हैं जो धन के महत्व को मूल नहीं पाते हैं। दूसरी ओर मानस के सरमग तथा कवि दामो राम-मच्छ, बत बिरल्ल हैं और इनी दृष्टिकोण से वे धन-सम्पत्ति के प्रति अपनी अपेक्षा ही व्यक्त करते हैं।

(२०) काम निन्दा - इस ओर संत कवियों की विचार्य अतिरिच रही है और वे उसे अपने काम्य का अविच्छेद अंग मानकर उरुका तथा वर्पन करते रहे हैं। मोत्वाभीत्री ने 'गिब तात्वा' के अंत में काम के आशय और प्रसाद का बड़ा रोषक चित्रण किया है -

कोरेय जबदि कारिचर केरु । एत मरु विडे एदल धुति सेरु ॥

ब्रह्मचर्य इन मंसम नाभा । पीरज परम ग्यान विगना ॥

सगाबार अन जोन विराया । मजय विरेक बरु सु भाना ॥ १।८४

इनके परचात् अत्र जगन की काम परबलता का अन्वेष करते हैं वे उन समू की दुर्दगा को अनुमेय ही रगते हैं।^५ वही काम के समस्त विरेक की पराजय का आतंकारिच एन प्रारण करते हुए वे उससे अग्रबाध व मानस को अन्वेष भी

१ अमर्षरायन ७।४१ ४१

२ रामचरित १७।१६

३ राममंजरी । संका ११०८४ १०८९ १०८७ ४ राममंजरी । संका । १०६०

५ उदाररायन ७। १२

६ मानस १।८२

करना चाहते हैं। राम-सेना की भीषणता का उल्लेख करते हुए मानस के राम उससे अप्रभावित व्यक्ति को ही महापुरुष बतलाते हैं।—

अक्षिपत देखहु काम अनेका । रहहि धीर तिन्ह के अय खीका ॥३१३८

‘भाववतकार का मत है कि कामोन्मोह से काम शान्त नहीं होता है किन्तु धी से अग्नि के समान वह पुष्टतर होता रहता है।’ रामायण मन्त्रों में काम को भयमासता का परसु मद्यश्चक्र का मेघ और मोहनिशा का अर्थकार कहा गया है।^१ वहाँ काम को इतना बख्शान माना गया है कि मृत्यु कास में भी लोगों को प्रभावित कर सेवा है।^२ उदारराज्य के मत में कामी ‘बस्तु-हाति को नहीं छोड़ता है। ‘राजकीय’ में भी कहा गया है कि काम के बाध बड़ों से बड़ों को भी नहीं छोड़ते हैं क्योंकि काम के सामने विवेक टिक ही नहीं सकता है।^३ ‘द्विसम्मान भी इसका समर्पण करता है।’ आत्मर्षभूझामणि में विवेक के स्थान पर ‘युव संग्रह का उल्लेख है। सेव बचन समान है। ‘महानाटक’ में मनुष्य को तभी तक विधिष्ट बतलाया गया है जब तक वह कामप्रसिद्ध नहीं होता है।^४ उग्रमत्तराज्य में काम और राजा के रूपक में बसन्त को उसका अमात्य, दक्षिण पवन को सगा पति और जगर की मनुष्यर के रूप में माना गया है।^५ ‘बालरामायण’ नाटक में काम अद्वितीय शक्ति की बंदना भी यही है—

कर्पूर इवज्जगोर्षि शक्तिमान यो जने जने ॥

नम भू वारबीजाय तस्मै कुमुद-धन्वने ॥ ३१३९

(३१) नारी-निन्दा-गुलामी ने नारी को काम का अद्वितीय परम बल कह कर इसी उद्देश्य में उसको बिस्तार से निन्दा की है —

एहि के एक परम बल नारी । तैहि ते उमर मुमट छोड़ भारी ॥३१३७

काम शोभ सोमादि मर प्रथम मोह के चारि ।

तिन्ह महं गति वाहन बुखव पायादपी चारि ॥ ३१४३

नारी और विभिन्न ऋणुओं के रूपक में धी उन्हीं नारी को सब दुष्टों की जान माना है।^६ नारी की गति को अज्ञेय और सर्वसमर्प बतलाते हुए वे उसकी भर्त्सना भी करते हैं —

निज प्रतिबिम्बु बरठ यहि आई । जानि न जाइ नारि गति भाई ॥

काह न पावक चारि सक, का न समुद्र समाइ ।

का न करै बबला प्रबल, केहि अय कामु न चाह । २१४७

१ भागवत १।११।१४

२ रा० मन्त्रोः । बाल १।०४

३ रा० मन्त्रोः । अरण्य १।१६०

४ उदारराज्य ३।१०

५ राजकीय ३।७१ ८।२६

५ द्विसम्मान ३।१३

६ आत्मर्षभूझामणि ४।१३

८ महानाटक ३।४६

७ उग्रमत्तराज्य १३

१० मानस ३।४४

वे नारी में 'साहस, अमृत अपसृत, माया मय अविशेष अशोक और प्रयास' आदि आठ अवयुओं की निरन्तर स्थिति भी मानते हैं ।^१ 'आश्वमेधबुद्धामणि कर' के मत में अविशेष, अदूरदर्शिता असाक्षिण और अस्थिरता आदि नैसर्गिक वार ही अवयुक्त होते हैं ।^२ 'पोस्वामीजी कहीं तो डोल, बहार घुद और नयु के साथ-साथ नारी को भी ठाढ़ना-योग्य बतसाते हैं और कहीं छासन अथवा छाया के इमान उसकी बल के अयोग्य भी मानते हैं ।^३ 'धूर्ववृक्षा प्रसंग' में तो वे इस विद्या में पराक्रान्त ही प्रस्तुत कर देते हैं ।^४

नारी के प्रति 'मानसकार' का इतना रोयनूर्ण दृष्टिकोण 'यागस' जैसे संघ के संदर्भ में स्पष्टतः अर्पितकर है । यद्यपि इस 'नारी-विद्या अविद्या' में वे अनेके नहीं हैं, क्योंकि अनेक पुराणों में तो इससे भी अधिक 'श्रीवराहता' का प्रदत्तन किया गया है, संभवतः 'यागस' के 'आना पुराण निमामम संघ' होने के कारण ही वे ऐसे भाष्य प्रवर्तन से स्वयं को रोक नहीं सके हैं ।

'भाववत् के अनुसार भारिमां बुद्ध-दूरया, बहुरूप, मूर दुर्मय एवं प्रिय घाह्य होती हैं । वे मोड़े के घन के लिए पति तथा माई की भी हुरया कर सकती हैं ।^५ 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' के अनुसार वे अविश्ववर्णीय भ्रमवाया, मोदामार्ग की भर्त्सना और नाश की शीघ्ररूप हैं ।^६ 'राजमय मंत्ररी' में शिवियों को अशरवणन विमर्षिन विपत्ति में अविश्व बनाये और कठिनता से संभालने योग्य माना गया है । वही उनके केवम अंगों में ही-न कि हृदय में-राज की स्थिति बतलाई गई है और उनको शेषचारिणी, मूर नमिणी राज रावित्री तथा भीषानुराविनी भी माना गया है । उनके लिए वही यह भी कहा है कि वे अहता होने पर भी दुःख दुःखपट्ट नानी कोचन होने पर भी कुटिलायमा और बित्तों तथा भाइयों से शीघ्ररूप की भ्रन्ती होती हैं ।^७ 'बुधनशोच' में भी स्त्रियों को अशिवों के समान भीषणाविनी और शेषचारिणी बतलाया गया है ।^८ 'राजरीय के घन में ऐनी अचल स्त्रियों का बचावि विरथाण नहीं करना चाहिए ।^९

इस प्रसंग में यह उल्लेख है कि पोस्वामीजी ने काव के संदर्भ में ही नारी की वर्णना की है । इस विद्या में वे शौराविक भाग्यशाली एवं अतिरूप्य शौराण्य को निमित्त प्रतिक्रियाओं से विगत जान पहुँचे हैं । ईशे अर्होति नारी शक्ति की

- | | |
|---|--|
| १ यागस १।१६ | २ आश्वमेधबुद्धामणि १।३० |
| ३ मानस २।३६, ३।३७ | ४ मानस ३।१७ |
| ५ परम । मूटि । ३४ । १०, १८ २२ | अनन्तर १।११।१७ परम । भूमि । २।१।१७-२० अशरवर्ण । भी इन्द्रमंत्र । १७।३।३२ |
| ६ भाववत् १।१।३२ ३७ | |
| ७ ब्रह्मवैवर्त । पौ इन्द्रमंत्र । उत्तरार्ध । ७।२।२ ३ | |
| ८ राजमन्त्री । अरण्य । १।१६ १०३ ८६२ ७७७ | |
| ९ कपालशोच १।३ | १० राजरीय १।१।३६ |

पर्याप्त प्रशंसा भी की है और उसके बर्णों का विस्तार से वर्णन करते हुए उन्हें के अनेक आदर्श गायी-नाचों का महनीय चरित्र-विवरण भी किया है।

(३२) नारी धर्म—मोस्वामीजी ने सीता—अनसूया संसार में नारी-धर्म का इस प्रकार विस्तृत निरूपण किया है—

'कहू रिविबधू सरस मृदु बानी । नारि धर्म कसू ध्याज बखानी ॥
मातृ पिता भ्राता द्वितकारी । मित्रप्रद सब सुनु राबकमायी ॥
अबिध बानि अर्था बयबेही । अचम सो नारि को सेव न ठेही ॥
बुद्ध रोमबल कह धन हीमा । अन्ध बधिर ओषी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किए अपमाना । नारि बाब जमपुर बृष नाता ॥
एकह धर्म एक प्रथ गेया । कार्य बचन मन बति बप प्रेया ॥
इस वर्णन में वे 'ब्रह्मपुराण से अत्यधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं—

'मिथं दधाति जनको मिथं भ्राता मिथं सुत' ।

अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूजयेत् सदा ॥

बलोरं वा दुःखस्थं वा अशक्तं बृद्धमेव च ॥ पातासर्ग ६ । ३।३४

भाष्यत' में भी पति-सेवा' को स्त्री का परम धर्म बतलाया गया है—

'मर्तुं सुपूज्यं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यनामया ।

पुत्रीणो दुर्मनो बृद्धा अक्षो रोम्यबनोऽपि वा ॥

पति- स्त्रीभिर्न ह्यतस्यो लोकेऽनुभिरपातयी ॥ १०।१२।२४-२५

'ब्रह्मवैवर्त' और 'रामचरित' में भी उत्तम वर्णनों के वर्णन होते हैं।

'ब्रह्मपुराण में जैसे जैसे पति को भी स्त्री के लिए 'परमपूज्य' बतसाया गया है।

'ब्रह्मपुराण' के अनुसार स्त्री के लिए पति को आज्ञा के अतिरिक्त न तो कोई

पुण्य धर्म है, न शक्त है, और न उपवास है। वहाँ उपवास आदि करने वाली स्त्री

को पति की आज्ञाकारी और अन्त में तरक-मानिनी भी कहा गया है। रामायण

वर्णनी' में पति को ही बत्ती के कर, बज काष्ठि, सोभाग्य, सुख और जीवन का

सर्वस्व माना गया है। पति की स्त्री का देवता बतला कर यहाँ भी केवल 'पति

सेवा' को ही परमधन कहा गया है। 'राजबीज' और रामचरित' में भी

भी वही साम्यता है। मोस्वामीजी ने इसी प्रसंग में पतिव्रता स्त्रियों के चार प्रकारों

का उल्लेख भी किया है—

अप वतिव्रता चारि विधि अहूँ । वैद पुराण संत सब कहूँ ।

उत्तम के अत अत मन पाही । सपनेहु ध्यान बुद्धि जप नाही ॥

मध्यम पर पति वैचार कीते । भ्राता पिता पुत्र निज वीते ॥

१ ब्रह्मवैवर्त । ब्रह्म । १।१००-७१

२ ब्रह्म । १०।१७

३ रामवैवर्त । वात । ५७४

४ रामबीज । ३।१७

५ रामचरित । २।५७२

६ बद्ध । पृष्ठि । ३।५७६ ७७

७ रामवैवर्त । अरण्य । ३।१६-३।१८

८ रामचरित । ३।१८

धर्म विचारि इन्द्रुति ब्रुत रूरे । सो निदिष्ट निप मुनि ब्रुत बहरे ।
 विनु ब्रुवत नप से रू बहरे । बनेतु ब्रुवन नरि अप सोई ॥११३॥
 इस वर्णन में श्री श्री 'विष्णुपुराण' के समाधि हैं—

‘अभुविद्यायाः कदिना नागे देवि पन्दिता ।
 उल्लनादि विदेदेन स्वरतां पन्दिताः ॥
 स्वनेति पन्नो निर्यं पन्ति पन्ति प्रुबन् ॥
 नाप्य पन्ति मदे उल्लना सा प्रकीर्तिता ॥
 या विदुषांस्तु मुनयन् परं पन्ति सदिता ॥
 मप्यमा सा हि कदिता धनये वै पतिवता ॥
 बुद्ध्या स्वधर्मं मनसा क्तिनारं करोति न ॥
 निदुष्टा कदिता सा हि मुक्तिना च पार्थिवि ॥
 पत्तुः कुमस्य च मयाद् क्तिनारं करोति न ॥
 पतिवता चमा सा हि कदिता पूर्वपूर्तिभिः ॥ पातानखंड ३-७२ ॥०

इन्द्रवर्षपुराण में विषयों के—न कि प्रतिवृत्तियों के—इतना मध्यम और
 कथम हीन नेत्र किए गए हैं । उनमें से उत्तम को उपरुक्त निदुष्ट तथा मध्यम
 को मध्यम के समान कहा जा सकता है । मध्यम स्त्री को वही परमदुष्टा मध्यमगीता
 बुद्धीला दुष्टा कलहात्मिका पतिनिन्दिका और माररता ब्रुताया गया है ।
 ‘पद्मपुराण’ में पतिवता स्त्री के लक्षण विस्तार से बर्णित हुए हैं, किन्तु उनका कर्ण
 कल्प नहीं किया गया है ।^१

‘यागल’ के बीठा राम संवाद में दाम्पत्य-सम्बन्ध की विवेचनाओं का मयूर
 चित्रण किया गया है —

‘अहं नपि नाप मेह ब्रुव माते । विप विनु विपहिं तरनिहू ठे ठाने ।
 तनु यनु बामु बरनि पुर राम् । पति बिहोन सनु सोक समात्रु ॥
 निय विनु देह नरी विनु बारी । तसिय नाप बुरप विनु मारी ॥ २।१३

‘रामायणमंत्रिणी’ के अनुसार त्याग से हीन विभूति, त्याग से हीन मारती
 और प्रणय से हीन विद्या के समान ही पति से हीन पानी की बुईया होती है ।
 वही पर स्त्री के लिए पति को समस्त संरक्षणों का कस्तूरुषा बहुर उतके मयाच
 में निता बग्नु पुत्र और भ्राता आदि सभी का सर्वथा निष्कल ब्रुताया गया है ।^२
 इन्द्रवर्षपुराण के अंत में स्त्री के लिए पति ही श्रेष्ठ पति, प्रायः सम्पत्ति समारं
 काम-ओष-हेतु माराधन और बनावन करने है । यह उल्लना ही पुरुषों के भी बहुर
 श्रेष्ठ होता है । वही तीर्पत्मान, पद्मरक्षिता अनेक बुध्द बुनियम देवार्थन उर-
 बाह और तन आदि को पति-सेवा के सोनहरे माप के भी बराबर नहीं माना गया

१ इन्द्रवर्ष । श्रीहृत्पञ्चम । ८४।१६ ४० २ ब्रुव । मुष्टि । २२।२८-६३
 ३ प०मंत्रिणी । बाल । ८०६ विधिषा । १००

है।^१ 'बान्दीहरण' के अनुसार पति का अनुग्रह ही स्त्री का भवजन और सम्मुख है।^२

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मोस्वामीजी वस्तुतः 'नारी' निम्नक नहीं हैं किन्तु मूलतः काम प्रवृत्तियों की ही निम्ना करने के लिए वे विभिन्न प्रसंगों में 'नारी' को भी उही दृष्टिकोण से देखने के लिये विवक्षित हो गये हैं।

(१३) माग्यवाद—जब संसार में किन्हीं अज्ञात और अदृश्य कारणों से मनुष्य की अपेक्षित कार्रवाहियाँ नहीं होती हैं—भले ही उसके लिये कितना भी प्रयत्न किया हो—तब वह विवक्षित होकर भाग्यवादी बन जाता है। वह अपनी असफलता के लिए काम (समय) प्रकोप देव-मति विधि-विधान ललाट-लिपि और ईश्वरेच्छा को दूषित ठहराकर आत्मा को सात्वता से भेदा है। पुनर्जन्मवादी इसके लिए अपने पूर्वजन्म के कर्मों के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है। वह कम फिर वही तक नहीं करता है। वह मनुष्य की समस्त सौक्य स्थिति एवं अग्रति अथवा अवगति के प्रति भी उत्तरदायी हो जाता है और परजन्म में पुनः ऐश्वर्य भोग के लिए, वह मनुष्य को वर्तमान-जन्म में भी सत्कर्मों—केवल सत्कर्मों—के प्रति प्रेरित तथा उत्साहित करता रहता है। 'भाग्यवाद' या 'कर्मवाद' का एक तो यह बाह्यीय पक्ष है। इस का एक दूसरा अन्तर्द्वयीय पक्ष भी है कि मनुष्य अपने पूर्वजन्म के कर्मों से अपरिचित होने के फलस्वरूप सुख या संकट के अवसर पर उन्हीं की बर्बादी या दुहाई देने लगता है और निष्प्रयत्न भी हो जाता है।

मोस्वामीजी ने इस सम्बन्ध में मनुष्य की समस्त उपयुक्त भावनाओं का बड़े सम्मान के साथ विवेचन प्रस्तुत किया है। 'कर्मफल' के सम्बन्ध में 'माग्य' के राम स्वयं कहते हैं। —

'काम रूप तिन्ह कहैं मैं भ्राता । सुम जब असुम करम फल जाता ॥ ७४१
दरप' और कोउस्या भी काम, कर्म और ईश्वर के प्रभाव का समर्थन करते हैं। वहाँ सीता और राम तक को कर्मों से प्रभावित दिखलाया गया है—

सिय रघुबीर कि कामन योगू । करम प्रमान सत्य कहू लोबू ॥ २।११
इसके साथ ही संसार के सुखदुःखारि सभी इन्द्रों की कर्मकृत मान कर वहाँ कर्मकर्मों की अवश्यभोग्यता का भी उल्लेख किया गया है —

करम प्रमान विश्वरथि राधा । जो अरु करह सो तब फल जाता ॥

कर्म के अतिरिक्त विधिविधि की विचित्रता का भी वहाँ उल्लेख मिलता है।^३ उही अर्थ में 'नारी' की प्रवृत्तता का भी अनेक स्थलों पर निरूपण किया गया है।^४ वहाँ ललाट-लिपि के भी प्रत्यय दर्शन तक का उल्लेख रामच-अय्य-संवाद में मिलता है। —

१ बह्मवैवर्त । बह्म । १।१३ १८

२ मानस २।७७

३ मानस २।२८३

२ बान्दीहरण ८।४२

४ मानस २।२८३

५ मानस १।१७१ १७४

अथ विसोकैः सर्वाङ्गि कपासा । विधि के अंक लिखे निम्न भासा ॥ ६।२६

ये सब 'भाष्यवाद' के विभिन्न रूप हैं । संस्कृत के ग्रन्थों में भी इनका विस्तार से वर्णन किया गया है । 'भाष्यवाद' में कास, कर्म ईश, दिष्ट और ईश्वरेन्द्र्य की ब्रह्मपटा तथा सर्वसम्बन्धता का विभिन्न प्रसंगों में वर्णन किया गया है ।^१ विस्तार और पुनरुक्ति के भय से यहाँ अल्प पुराणों का संकेत न करके संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों में भी प्राप्त उस प्रकृति का विशेषन किया जा रहा है । 'रामायणमञ्जरी' में कर्म को ही मनुष्य के अर्थ, विकास और विनाश का कारण माना गया है । वहाँ कर्म को मोह का जनक भी कहा गया है ।^२ महाभाटक में कर्म गति और विधाता-वृत्ति को बड़ा क्रूर बतलाया गया है ।^३ 'रामचरित' में कर्मों के सामने पौरुष कुशीलता, चरित्र और नीति आदि को भी निताण्ट दुर्बल कहा गया है ।^४ वहीं पर लमाट सिद्धि के शेष में ईश्वर तक को अन्तर्भवे माना गया है -

म स्रुपति लमाटस्यामीश्वरोऽप्यदायवतिम् ॥ ३१।२७

'रघुवीर चरित' में सीता-हरण और अटायु-मरण आदि में नियति की प्रीडा के ही वर्णन किये गये हैं ।^५ 'रामचरित' में 'काम-अस' का उल्लेख करते हुए उसको संसार के भी अर्थ, विकास और संसार में समर्थ बतलाया गया है तथा उसके सामने बड़े से बड़े देवताओं को भी विषय ठहराया गया है । उसके अनुकूल होने पर विषय की अनुकूलता और प्रतिकूल होने पर उसकी प्रतिकूलता का भी वहाँ उल्लेख मिलता है ।^६ 'रामायणमञ्जरी' के अनुसार विधि प्रतिकूलता में अमृत से भी मृत्यु, मित्र से भी शत्रु और प्रेम से भी क्रोध की सृष्टि बतलाई गई है -

'उदेति मृत्युः पीयूषात् किमप्यग्निभूरे विपौ ।

मुहुः सभुतां यान्ति सचितारणाधिभेयताम् ॥

आरापिताश्व कुप्यन्ति दीवोऽप्यमितसम्पदाम् ॥ वास । ३७७-३८८

गोरवामीत्री इत सम्बन्ध में ईश्वर की अनुकूलता के प्रभाव का वर्णन करते हैं -

'परत मुखा रिपु कराई मिताई । गोपद विपु अनन सिउताई ॥

पदङ्ग मुपेक रेनु सन ताही । राम कृपा करि चितवा जाही ॥ ३।३

'राघवीय' में ईश्वर की प्रतिकूलता में व्यक्ति को कर्म में भी अन्तर्भवे कहा गया है । वहीं पर भविष्यता की अन्तर्व्यवस्था का भी संकेत मिलता है । 'दगा-वतारचरित' में इसी अर्थ में देव-वृत्ति की विशेषताओं का विस्तृत उल्लेख किया गया है और उसके अन्तर्भवे में व्यक्ति की अन्तर्भवे का निरूपण किया गया है ।

१ भाष्यवाद १।११-४४, ४।८।३३ ७।२।३६ ४०, १०।४।१८ ३।४।३८

२ रामचरित । वाका।१७३ अरण्य ७३३ ३ महाभाटक ४।६ ३।२६

४ रामचरित ३।१।२३-१२६ ५ रघुवीर चरित ६।३०, ६४

६ रामचरित ३।१।३३, १।४।१-१४३ ७ राघवीय १।१०, १।६४

८ दगावतारचरित ७।१३३

'रामबीच' के अनुसार देव के प्रतिकूल होने पर फिर आपत्तियाँ बहसे नहीं आती
नाम ईशे ह्यापद सानुवन्ना ॥ १०॥१३

मुसातिबुसानि च जीव लोके न सानुवन्थानि हि नापठन्ति ॥ १०॥१३
'मानस' में 'ईश ईश पुकारमे वासो की आसची कह कर इस अकर्मण्य प्रवृत्ति की
पारसना की की गई है -

'गात्र ईश कर कवन घोषा । सोपिम सिधु करिज मव रोषा ॥

कावर मन कहुं एक अपारा । ईश ईश भासची पुकारा ॥ १०॥१३
'वृतांबर' में भी इसी भावना का समर्थन प्राप्त होता है ।^१

(१४) अन्ध नीतियों— उपर्युक्त विभिन्न नीतियों के अतिरिक्त 'मानस' में
विभिन्न स्तकों पर अन्ध अनेक आकर्यक नीति-बचनों के भी वर्णन हो जाते हैं।
'मानस' के इन बचनों ने जन-जीवन पर इतना अधिकार जमा रखा है कि समाज में
अनुकूल व्यवहारों पर उनका बड़े आदर के साथ प्रमाण रूप में स्वरूप एवं उपयोग
किया जाता है। कृष्ण बोधे से ही तुलनात्मक उदाहरण यहाँ बस्तुतः किये जा रहे हैं।

गोस्वामीजी संभावित (संभावित) व्यक्ति के अपयत्न को उसके लिए कोटि
परम-सुख्य मानते हैं -

संभावित बहु अपयत्न साहू । मरन कोटि सम दास्य साहू ॥ १०॥१४
संस्कृत के अन्ध बचनों में भी इसका समर्थन मिलता है। 'नीता' के अनुसार अपयत्न
को मृत्यु से भी बड़ कर कहा गया है -

संभावितस्य वा कीर्तिर्धरमावतिरिष्यते ॥ १०॥१४

'अपमृत सर्वक' में ऐसे जीवन को सज्जाजनक बतसाया गया है^२ और ब्रह्म-
वतारधरित में उसको हेय कहकर 'बनवसम' का परामर्श दिया गया है।^३

'पुण्य-परीक्षा' की तुलना 'मानस' में स्वर्णपरीक्षा से की गई है -

कसे कनकपनि पारखि पाए । पुण्य परिखयहि समय जुनाए ॥ १०॥१५

रामायण मंत्रों में इसके लिए कृत नीत, गुणबीर कर्म के मानदण्ड हैं -

'बना चतुर्नि कनकं पटीवपते निवर्षणाद्धेदनापदाङ्गे ।^४

तथा चतुर्नि पुनश्चरतीवपते कृतेन शीतेन कुमेन कर्मणा ॥ वास । १२७

'मानस' में आशुतिकाल में जेई पर्य, मित्र और स्त्री की परीक्षा का विधान है -
आपठ काम परखिए चारी । भीरज बरम मित्र जब नापी ॥ ११३

'रामायण मंत्रों में इसके स्वाम पर मुहुरत, विवेक, स्वर्ण और सज्जन
आदि का उल्लेख मिलता है -

'मुहुरतस्य विवेकरय हेमनः सापुनस्यस्य ।

उपयोपो विदोर्वैज ह्यङ्गुलाते शरीरिचाम् ॥ अंका । ११७

'मानस' में काम, क्रोध और लोभ को बड़ा प्रयत्न और क्षम में दोषकारी कह कर उनके त्याग का परामर्श दिया गया है —

‘छाठ तीर्थे अति प्रवृत्त क्लृप्त, काम, क्रोधे च लोभ ।
मुनि विम्वान धाम मन करहि विमिषि महु लोभ ॥ १।१८

— — —
काम क्रोध मद लोभ छत्र नाथ नरक के पथ ।
सब परिहरि रघुबीरहु मत्रहु मर्हि जेहि संत ॥ १।१८

श्रीठा में उनको नरकहार और आत्मघाती कहा गया है —

त्रिविधं नरकस्येह द्वारं नाशनमात्मन ।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ १।१२१

श्रीस्वामीजी ने कल्याणार्थी के लिए ‘परस्त्री-कामना’ को सर्वथा निषिद्ध बताया है —

जो आपन चाहे कल्याण । सुखस सुमति सुमति सुख जाना ॥
सी परनारि तिसारि गोसाईं । तबहु बहनि के बन्ध के नार्द ॥ १।१८
इस व्यवस्था में वे प्रसन्नरायण से प्रभावित हैं —

उपकर्मभूतिभिश्चक्षिभ सक्षिभ यमु न दुर्मते ।
चतुर्बीजग्रसेर्षेव परस्त्रीमानसद्विदका ॥ ७।१

इसी प्रकार ‘साधु-अवस्था’ को भी ‘मानस’ में हानिकर बताया गया है —

साधु भयना तुरत भवाभी । कर कल्याण अविन क हानी ॥ १।४२
‘साधुत्व’ में उसका समर्थन दृष्टिगोचर होता है —

अयु धियो यतोर्ध्वसोकात्मनि एव च ।
हृत्ति धेयांसि सर्वाणि पुण्यो महत्कतिनम ॥

सामान्य जन प्रवृत्ति को लेकर ‘मानस’ में कहा गया है कि परोपदेश में तो बहुत से लोग कृपण होते हैं, किन्तु उन पर आचरण करने वाले बिरते ही हैं —

‘वर उपदेश युगात् बहूधरे । जे आचरिह ते नर न पनैरे ॥ १।७८

‘रायण पाण्डवीय’ भी उसका अनुशोचन करता है —

भवन्ति युग्मकृतनामयेति परोपदेशेषु बिलपराश्रिता ॥ ७।२१

‘मानस’ के अंतिम कोड़े में श्रीस्वामीजी राज की बन्धना करने हुए उनके प्रति अपने उक्त प्रवाद प्रथ की कामना करते हैं, या नारी के प्रति कामी के मन में अथवा धन के प्रति लोभी के मन में दृष्टा करता है —

कामिदि नारि विपारि त्रिभि, लोभिदि त्रिभि त्रिभि राम ।

त्रिभि रघुनाथ निरन्तर त्रिभि लान्ठु भौदि राम ॥ ७।११०

इस अविमर्शित में वैदिक एवं अद्वैतिक तत्त्वों के समन्वय के लिए वे कृष्ण पुराणों से प्रभावित मान पड़ते हैं । ‘विष्णुपुराण’ में इस सम्बन्ध में अविदेही की विष्णु-श्रीति का उपाहरण — बताया है —

वा प्रीतिरबिबेकानां विपयेस्वतपायिनी ।
 स्वामनुस्मरतः सा मे हृदयाम्पापपवु ॥ १।२०।१८
 'ब्रह्मसंहिता पुराण' में इस विद्या में अनेक आकर्षक उपमान जुटाए गए हैं -
 'युने ययेकपुष्पाणां कल्पवर्णा यथा हरी ।
 तेने ययेकनेत्राणां वृषितानां यथा जसे ॥
 दुषितानां ययाम्ने च कामुकाणां यथा स्त्रियाम् ॥
 यथा परस्वै चीराणां यथा जारे कुयोपिताम् ॥
 विदुषां च यथा शास्त्रे वाजिन्मे वणिजां यथा ।
 तथा जवरगमन-काम्ने साध्यवीनां योपितां प्रभो ॥

प्रकृतिर्वच । ४६।२२-२३

इस प्रकार 'मानस' में तुमही के नीति-संघर्ष को लेकर अनेक तुलनात्मक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। वस्तुतः उनके स्वतन्त्र शोध की आवश्यकता प्रतीत होती है।

(५५) राजनीति सिद्धांत — इन सिद्धांतों में गोस्वामीजी ने राजनीति के सूत्रम तर्कों का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके 'मानस' में राजा और प्रजा के मध्य सम्बन्ध का विवेचन बड़े ही विस्तृत और आकर्षक रूप में प्राप्त होता है। संस्कृत ग्रन्थों में राजनीति का एक शास्त्र के रूप में ही अधिकतर निरूपण किया गया है वहाँ उसकी व्यावहारिकता और सोकोपयोगिता को उठना महत्व नहीं मिला है जो 'मानस' में सरलता से ही दृष्टिगोचर हो जाता है।

(५६) राजा के कर्तव्य — प्राकृत महिषास' के स्वभाव का वर्णन करते र गोस्वामीजी कहते हैं कि बहु विनय और प्रीति को पहचानने वाला प्रजा के भी बर्णों से प्रसंसित ईश्वरीय सामु गुजान गुणिस और परब्रह्मणाम् होता है। इ प्रजा की मर्जित भक्ति, वति और मति को समझ कर सब का यथावीर्य म्मान भी करता है। 'सामायक-अंजरी' में आरमरसक, सुमग्रीपुत्र, कोशराष्ट्र, जर्बंक दुर्गपोषक श्रुत सेना-सम्पन्न और समिन्न भूयित राजा को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसके अतिरिक्त वहाँ आक्राहारी मन्त्री, गुडवर्ग और विद्वदुपदेश वि से संयुक्त तथा बृहज्जन, काम सोम उपरुष्ट पनभ्यस्तन आदि से विमुक्त राजा को ही वस्तुतः प्रशंसनीय कहा गया है। 'हनुमन्नाटक' में राजा और मामाकार की रस गुमना करते हुए राजा के कर्षणों में विस्थापितों की स्थापना, मरु सेवकों के 'बध, घोड़ों के उपयन बुष्टों के बहिष्करण मेदिनों के दयन और ब्रह्मवृष्टों के जतन का विषेय परिबन्धन किया गया है। अष्टिकाव्य के अनुसार क्रिया-समा प, नृद्व्यर्षपवु, देवकाक, विरायतीकार और जगसिद्धि आदि पंचानमग्र से उदपन्न

राजा ही अपने उद्देश्य में सफल होता है, वहीं पर विविधीयु राजा के लिए उग्वि, विषह याग, आसन, संभव और इ भीमाव आदि पङ्क्तियों का प्रयोग को अनिवाय भी बतसाया गया है। 'मानस' के राम राजाओं के कर्तव्यों का सूत्र-रूप में इस प्रकार निरूपण करते हैं —

सेवक कर पर नयन से मुख सो साहिबु होइ ।

तुमसी प्रीति ऋ रीति मुनि सुकवि सराहहि सोइ ॥२॥१०६

यहाँ के राम में राजा और सेवकों की ठीक बड़ी स्थिति मानते हैं जो पृथीर में मुख और कर पर-नयन आदि कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों की होती है। इससे वे राजा को आज्ञा-प्रधानता का भी प्रतिपादन करते हैं। इसके अनिश्चित वे बड़ी यह भी कहना चाहते हैं कि राजा का कर पर और नयन से प्रजा का सेवक और मुख-मान स ही उत्तम साधक होना चाहिए। इसी प्रसंग में राजधर्म सर्वेश्वर का वर्णन करते हुए वे इसी बात को और स्पष्ट करते हैं :-

मुलिया मुख सो चाहिये खान पान बहुं एउ ।

पासइ पोपइ सकस अंग तुमसी सहिउ बियेक ॥ २॥११३

गजधरम सरबनु एतनोई । जिय मन माहु मनोरप बोई ॥ २ ॥११५

उनके मत में राजा का एक मात्र यही धर्म है कि वह अपने राज्य के समस्त अर्थों का ठीक उसी प्रकार उचित रूप से पालन पोषण करता रहे जिस प्रकार मृग अन्न आदि करम व घासीरिह अर्थों को पुष्ट बनाता है। यहाँ के राजा के द्वारा कर-पहुन और अपने देश समग्र शासन का भी संकेत करने हैं।

पद्मपुराण में राजा और प्रजा में विना-गुण सम्बन्ध की प्रतिष्ठा करके प्रजा के पुत्रपत्न पालन को ही सर्वोत्तम राजधर्म माना गया है।^१ मादपन में भी प्रजापालन के धर्म को राजाओं के लिए मायु यी बल और कीर्ति का विषयक माना गया। वहीं दुष्ट जाम्बामों तथा जोरों से प्रजा की रक्षा करने के लिए राजाओं से प्रार्थना भी की गई है। वहीं पर प्रजा का धर्म से वाचन करने वाले और धीम से रक्षण करने वाले राजा की प्रार्थना तथा मायवावरण करने वाले राजा की निम्ना भी प्राप्त होती है। ह्येक दु धीम और अश्रितेग्य राजा को बड़ी प्रजा मागक भी कहा गया है। इन प्रकार बर्ग जातों के अतिनिष्ठ चाबिकों के पालन, दुष्टों के शासन आदि को राजा का परमधर्म स्थिर किया गया है।^२ 'मानस' में भी उन राजाओं को नरक का घ घराही माना गया है जिनके राज्य में प्रजा दुमी रहती है। राजाओं को इन दुर्गति के लिए 'राजधर्म को ही उत्तरदायी बन्दर तुमसी उमदी बड़ी निम्ना करते हैं।^३ रामायणमन्वरी के अनुसार यदि राजा ही धर्म-धर्मज्ञ का

१ अट्टिकाय १२।२५ १२-१६ २ पद्म विनायोदगार।२१।६८
३ मादपन १।१०।११ १६ ४।१।१५-१७ १०।४६।१८-१९ १०।८०।२३
४ मानस २।७१ ५ मानस २।२२८ ***

उत्सर्जन कर दे तो प्रजा का समूह नाश अवश्यवाही होता है। ऐसे राजाओं को नहीं सुधार' ही माना गया है। 'महाभारत' के अनुसार उनसे प्रजा ही नहीं, अपितु ममर और देश तक नष्ट हो जाते हैं।^१

दुष्ट राजाओं की विवेकशक्तियों का भी अनेक ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन मिलता है कि वे पहली बार तो बात सुनते ही नहीं दूसरी बार वे मुँह टेढ़ा कर देते हैं और तीसरी बार बगली भीड़ बढ़ जाती है।^२ उनके लिए तो पुत्र का वध और पितृ-भ्रातृ बन्ध का निर्वासन एक कुल-परम्परा है।^३ 'ब्रह्मावतार चरित' में राजाओं को सचन संठाक, बंधकों से घिरा हुआ अत्यन्त क्रोधी तीक्ष्णभावी साधुदेवी और अससुहृद् कहा गया है।^४

(५७) मन्त्रियों के कर्तव्य — मन्त्रियों के सम्बन्ध में भोस्वामीजी कहते हैं कि यदि वे घबराए राजा से केवल प्रिय वचन बोलते हैं, तो उस राजा का भीषण ही नाश हो जाता है —

‘सन्धिद्वयैव गुरु तीक्ष्णो प्रियं बोधहि मयं जातः ।

राजं कर्म तत्र तीक्ष्णं करं ह्येव ही नाशः ॥ १२।३७

‘रामायण मंजरी’ के अनुसार पापी स्वेच्छाचारी और अनीति के समर्कक मन्त्री राजा के शत्रु ही होते हैं।^५ ‘कृष्णमासा’ में अत्याचारी राजा को ठीक उसी तरह रोकना मन्त्रियों का प्रथम कर्तव्य बताया गया है जैसे बादल तापकारी सूर्य को ढक देते हैं।^६ कृष्णमय में राजा का साथ छोड़ कर भाग जाने वाले मन्त्रियों को ‘रामचरित’ में तुलबत् त्याग्य माना गया है।^७ ‘बासुरामायण’ में मन्त्रियों का जीवन बहुत ही कष्टपूर्ण चिन्तित किया गया है क्योंकि अपने राजाओं के स्वेच्छाचारों के अपराधों का उनको बराबर प्रतिफल करना पड़ता है।^८ वहीं पर कवि के साथ मन्त्री की तुलना करते हुए उसको पर-सुख से सुखी और पर-दुःख से दुःखी भी बताया गया है —

सुखिनः परसोऽप्येत परदुःखेन दुःखिताः ।

जायन्ते कवयः काम्ये नयतग्ने च मन्त्रिणः ॥ ५।३

‘अद्भुत दर्शन’ में मन्त्री के दुःखमय जीवन की अनेक दुर्स्थितियों का विस्तृत विवरण किया गया है।^९ ‘भट्टिकाव्य’ के अनुसार राज्य में मन्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है और उन्हीं के मग्न से समस्त राज्यकार्य सिद्ध होते हैं।^{१०} ‘हनुमत्प्राठक’ में

१ राममंजरी । अध्याय १२७६ ४०६

२ अद्भुतदर्शन । ५।१२

३ ब्रह्मावतार १।२०३

४ कृष्णमासा ५।७

५ बासुरामायण १।२५

६ भट्टिकाव्य १।१४

७ महाभारत । वन । २८३।११

८ अद्भुतदर्शन १।१२

९ राममंजरी । लंका । ७६२

१० रामचरित २।५।११

११ अद्भुतदर्शन २।४

मन्त्रियों के ऐहिक, धार्मिक और ऐहिकार्थिक तीन भेद करके उनके वर्तियों का पारस्वीय ढंग पर बड़ा बिस्तार से वर्णन किया गया है ।

(५८) पद्मगुण-यज्ञ - संसृष्ट के धर्मक प्रथो विरोधकर भट्टिहाम्य ' रामा यममन्त्री, ' रामचरित' आदि में प्रसिद्ध पद्मगुणों' का भी बड़ा बिस्तृत पारस्वीय विवेचन मिलता है जो मानस में प्राप्त नहीं होता है । सम्भव है कि उन कवियों को राज्यायधी एवं कूटनीति बिद्यारव होने के कारण अपने काम्यों में बसा परिचय प्रदान करना पड़ गया हो अथवा उनमें महाकाम्यत्व की प्रतिष्ठानता के लिए उनकी कौनो रीति की प्रधानता भी हो सकती है । वात्स्यायनी के समस्त एक तो ऐसी कोई बिद्यता नहीं है और दूसरे उनका ध्यान इन दिशा में सिद्धान्तिकता से अधिक प्रयोपारमकता की ओर है । इसके अतिरिक्त उनका राम केवल राजा ही नहीं है अपितु साक्षात् ममबान् ही हैं जिनके पास पहुँचने में कोई बिद्यत माहम्बर नहीं करना पड़ता है प्रत्युत उनकी उपायना ही मानसकार का प्रयास उदय है । राजा को ईश्वरार्थ कहने में भी उनका यही अभिप्राय है इसीलिए उनके राम अपने प्रया सम्मेलन में अपनी स्पष्टहृत्पता का बड़ा सरस परिषय देत है -

मुनहु सकस पुरजन मम बाधो । कहत न कछु ममता उर यानी ॥
 गहि अनीति गहि कछु प्रमुजार्ई । मुनहु करहु जो तुमहि छाहाई ॥
 सोइ सेवक प्रियतम मम सोई । मम अनुसासन मारै जोई ॥
 यो अनीति कछु भाषो भाई । तो मोहि वरजहु भय बिहराई ॥ ७४३

प्रया के साथ इतनी सहृदयता और आत्मीयता का निरूपण उन निष्ठुर सिद्धांतों के संदर्भ में कभी नहीं किया जा सकता है ।

(५९) निष्कण्य - योत्सामीत्री के नीति-पारस्वीय सिद्धांतों के सम्बन्ध में यह निरिवाद रूप में कहा जा सकता है कि उनमें 'माहप्रकाशन की अद्भुत यमता है और उसी उद्देश्य से मानस में उनका प्रसंगानुकूल प्रयोग भी किया गया है । अन्य सिद्धांतों के समान नीति-पारस्वीय के सिद्धांतों में भी योत्सामीत्री राज के प्रथम पदापाती है । इसी दृष्टिकोण से उन्होंने अनेक प्रथो ग नीति सम्बन्धी भाषों का रचोकरण करके उनका अपने वाचन उद्देश्य के सम्बन्ध से एक छत्रया मधीन और मोनिक राज दे दिया है । इनके अतिरिक्त उन्होंने अक्षर के अन्वय सोर योचन से भी रीचक भाषों को लहर बिभिन्न मोनिक अनुभावनाओं भी प्रस्तुत की है । अपने सिद्धांत-विवेचन में के पारस्वीय बिबादों में बहो भी बहो उतारो है प्रत्युत उन्होंने उच्चर स्पष्टता गुणोचता एवं व्यावहारिकता को ही प्रधानता दी है ।

१ अनुसमाप्त १११-११ २ भट्टिहाम्य १२।२६-४०
 ३ य०मन्त्री । लंका । ११२०-११९ ४ रामचरित २१।१७-११, २७।६०-६२

उपसंहार

रामायणकेतर संस्कृत काव्यों के साथ रामचरित मानस' के इस तुलनात्मक अध्ययन से योस्वामी तुलसीदास के विहास अध्ययन प्रकाश पाण्डित्य तथा अद्वितीय काव्य-कौशल का सिद्धिष्ट परिचय प्राप्त होता है। शास्त्रीकि मास काव्यविद्या, कुमारदास, भट्टि भवभूति मुरारि राजशेखर क्षेमेन्द्र एवं बयवेव आदि अनेकानेक महाकवियों की परम्परा में रामकथा पर ससक्त भेजनी उठाकर योस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रतिभाज्ञान का जो समर्थ प्रकाशन किया है वह उनको उन सभी पूर्व कवियों में सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादित करता है।

'मानापुराणादि' विभिन्न स्रोतों से वस्तु-ग्रहण करके उन्होंने अपनी अनुपम कारयित्री प्रतिभा के बल पर जिस महान् काव्य का निर्माण किया है वह भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में भी अपनी सर्वोच्च स्थान रखता है।

राम कथा में, यथास्थान शोधेय परिवर्तन करने में उन्होंने कविस्वातन्त्र्य और काव्य-सौंदर्य दोनों का अनुद्य सम्यग्गण किया है। पात्रों के चरित्र चित्रण में उन्होंने उनके आकर्षक छीस ठेक वादय, याम्नीयं बीवार्यं माधुय तथा कामिजात्य से समन्वित व्यक्तित्व का दिग्ग्य विकास किया है। रस-सृष्टि में आनन्दक संयम और मर्यादा से पूर्ण शृंगार के निरूपण के अतिरिक्त उन्होंने हास्य कथन रोज अद्भुत, घात आदि रसों का भी सफ़क निदर्शन किया है। 'बीर रस' की प्रधानता तो आदि से अन्त तक प्रसारित है ही।

काव्य-कला की दृष्टि से भी यदि देखा जाय तो अंतकारों में, केवल उन्होंने को 'मानस' में स्वान मिल पाया है जो मास के प्रवाह प्रभाव एवं उत्कर्ष की दृष्टि से उसमें स्वतः समा गए हैं। 'मानस की लक्ष्मी में अनेक पूर्व परम्परायें अपने पूर्ण विरहित नीरव की सबसे शक्तक देख सकती हैं। उसका महाकाव्यत्व भी स्वतः सिद्ध है। उसके अर्थ तो स्वयं योस्वामी जी की माग्गता के अनुसार ही बहुरंग कथनों के समान प्रतिपाद्य लक्ष्मी सौंदर्य की सृष्टि करते हैं। 'मानस की भाषा भी वस्तु, वाक्य और रस आदि की दृष्टि से बड़ी समर्थ एवं सुव्यव है। अनेक अर्थों से' उसमें जो पर-पर अर्थ और अर्थ आदि का शोधेय ग्रहण किया गया है वह 'मानसकार' की संपूर्णबली और समन्वयकारी प्रतिभा का परिचायक तो है ही साथ ही अनुपुष्टि की प्रधानता देने वाली उनकी उस प्रकृति का भी चोटक है जिसके अन्तर्गत वे अनुक्रम रसों का सामार और निरसकोच स्वीकरण कर लेते हैं।

यही बात उनके विभिन्न सिद्धांतों के निरूपण में भी पाई जाती है। 'मानस के विरचनद्वारा के महाकाव्य का निर्माण करते हुए भी वे काव्यतत्त्वों के प्रति अपनी

विश्व-प्रधानता का पुनः पुनः उल्लेख करते हैं, यह उनके मूल हृदय की मजबूती एवं विश्वासता का परिचय देती है। दर्शन-सिद्धान्तों के विवेचन में उनका मुख्य प्रतिपाद्य हमका ईश्वरत्व और उनके प्रति दास्यभाव का सर्वोपेक्ष्यत्व है। इसी सम्बन्ध में, वे दार्शनिकों की प्रसिद्ध बुद्धिवादी से बचकर, अपनी सरल ललित और सुबोध ब्रह्मवाणी में यह बड़ी से बड़ी बात कह जाते हैं 'जिसे पशुओं का बहुलपक्ष पशुसम्बन्ध नाम तक व्यक्त नहीं कर सका है। इसी प्रकार धर्मसिद्धान्तों के विवेचन में भी उन्होंने उनके धर्म-सौन्दर्य एवं व्यावहारिक निरूपण को ही महत्व प्रदान किया है, जिसके फलस्वरूप वे सिद्धान्त उपदेशात्मक बनने की अपेक्षा अपने वाच्यता की क्रिया प्रतिक्रिया के साथ मानव-मन को आकर्षित प्रकृतिकृत एवं सामाजिक भी करते हैं। उनके 'नीति-दर्शन' में भी उनके जीवन के विस्तृत ज्ञान और विशाल अनुभव का सुस्पष्ट प्रतिबिम्ब है। वहाँ वे व्यक्ति एवं परिवार व्यक्ति एवं समाज तथा राजा एवं प्रजा के मध्य सम्बन्धों की आकषक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए 'मानव' के पाठकों को सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग की ओर भी बड़ी निष्पक्षता से प्रेरित करते हैं। उनका 'दार्शनिक-दर्शन' यहाँ वर्तमान अर्थात्तन्वीय परिस्थितियों का विवेक है, वही उनका राम राज्य दर्शन एक वाच्य और अर्थात्तन्वीय आदर्श भी है। दोनों ही सौन्दर्य हैं। उनमें यदि प्रथम पक्ष से अर्थ उल्लेख करके हमें आदर्श की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित और उत्साहित करता रहता है, तो द्वितीय यह भी बतलाता है कि विश्व में मानवता का पुनः विकास किस स्तर तक किया जा सकता है। इन सभी बतलों में मोरबामीजी यद्यपि व्यापारधर्मों से बने हुए स्वयं में मूल प्रेरणा प्राप्त करने में उपर्युक्त एवं अनुपयुक्त हुए हैं, तो भी उनके चरित्र एवं सुदर्शपूर्ण प्रतिपादन में उनकी मौलिक प्रतिभा सर्वत्र सचक और जायरूक रही है।

बहुत-उन धर्मों में और मानव में बड़ी अंतर है जो कभी सामग्री और उद्यम निष्पन्न बालु में हुआ करता है।

'मानव' और 'मानवकार मोरबामीजी की सर्वोपेक्ष्यता के सम्बन्ध में विवेक भी बड़ा वाच्य उक्तता योद्धा है। मरे विचार से 'मानव का सम्पूर्ण महत्व मोरबामीजी के प्रतिरिक्त केवल बड़ी जान सकता है जिसे वे बतला दें किन्तु यह फिर स्वयं बड़ी हो जायगा —

तोह जानद वेहि देह पनाई ।
 जानत नुग्रहि नुग्रहि द न जाई ॥



सद्वर्भ-ग्रन्थ

सस्कृत के ग्रन्थ

- | | |
|-----------------------|--------------------------|
| १ अग्निसुराभ | २६ अमित रामायण |
| २ अद्भुतदर्पण | ३० आनकी परिणय नाटक |
| ३ अम्भारथरामायण | ३१ आनकी परिणय राञ्जकाम्य |
| ४ अन्नधरायण | ३२ आनकी हरण |
| ५ अग्निवरायण | ३३ अगावतार अरिठ |
| ६ अग्निमान् शाकुन्तल | ३४ दुर्गायण |
| ७ अग्निपेक | ३५ अग्न्यालोठ |
| ८ आर्यभट्टभूङ्गामणि | ३६ आर्य पुराण |
| ९ उत्तररामचरित | ३७ आरावणीय |
| १० उत्तररामचरित काव्य | ३८ मीडिगतक |
| ११ उत्तररामचरित अम्बु | ३९ पन्नकूठ |
| १२ उवातारायण | ४० पुष्पोराज विजय |
| १३ उदाररायण | ४१ प्रतिमा |
| १४ उग्नतरायण | ४२ प्रगप्ररायण |
| १५ कपाठरिस्तावर | ४३ पद्मपुराण |
| १६ काव्यप्रकाश | ४४ पंचमय |
| १७ काव्य मीमांसा | ४५ आलरामायण |
| १८ काव्यालंकार सूत्र | ४६ अदरया अदरी |
| १९ कुरुयामा | ४७ अदरया |
| २० कालबोदय | ४८ अदरयावरायण |
| २१ कूर्मपुराण | ४९ अज्ञानपुराण |
| २२ कौटिल्य | ५० अविध्यपुराण |
| २३ काव्यरायण | ५१ अदिकवाध |
| २४ कदपुराण | ५२ अदरमीडा |
| २५ कदपुराणायण | ५३ अदर दूत |
| २६ काव्यवनीति | ५४ अदरय पुराण |
| ७ विजय अम्बु | ५५ आरठ अम्बु |
| ८ विजय अम्बु रामायण | ५६ अदरया |

- ३७ महाभाटक
 ३८ महावीर चरित
 ३९ मत्स्य पुराण
 ४० मार्कण्डेय पुराण
 ४१ माया पुण्यक
 ४२ मीबिडी कम्पाण
 ४३ पादक रायबीय
 ४४ रज्जुवीर चरित
 ४५ रघुवंश
 ४६ रघुबिम्बाण
 ४७ रघुनाथाभ्युदय
 ४८ रघुनाथविजय चम्पू
 ४९ रामकथा
 ५० रामनारुणीय
 ५१ रामनौसामृत
 ५२ रायवमावबीय
 ५३ रामकण्ठ बिलोम काव्य
 ५४ रामचरित
 ५५ रामचरित
 ५६ राम विजय
 ५७ रामचरित (सुम्प्याकर मग्दी)
 ५८ रामतापनीषोपनिषद
 ५९ रायबीय
 ६० रामाभ्युदय
 ६१ रायशाम्भुदय
 ६२ रायव पाण्डवीय (पर्वत्रय)
 ६३ रायवनीयबीय
 ६४ रायवपाण्डवीय (कविराज)
 ६५ रायवपाण्डवीय
 ६६ रायायनमंजरी
 ६७ निगपुराण
 ६८ बरदाभिका परिचय चम्पू
 ६९ वराहपुराण
 ७० वामनपुराण
 ७१ वासवूठ
 ७२ वास्मीक रायायन
 ७३ विष्णुपुराण
 ७४ विदुरनीति
 ७५ विदुपुराण
 ७६ मुकु-संदेश
 ७७ मुकुनीति
 ७८ धीरामचरित
 ७९ धीरामाभ्युदय
 ८० कण्ठपुराण
 ८१ स्वप्नप्रधानम
 ८२ साहित्य संदेश
 ८३ सीता स्वयंवर
 ८४ हनुमसाटक
 ८५ द्वितीपत्रैण
 ८६ हंसकृत (वेदान्त रीतिक)
 ८७ हंसकृत (कामोत्सामी)
 ८८ हंस संदेश

अन्य ग्रन्थ

- १ अथर्वण्य साहित्य
 २ अथर्वण्य कार्य परम्परा बीर विद्यापति
 ३ अष्टाक्षर
 ४ डा० केराचराम
 ५ आधुनिक हिन्दी काव्य में एण्ड धोत्रना
 ६ कविराजसी
 डा० हरिवंश कोझर
 डा० अम्बाबत पन्थ
 डा० बीनदयामु मुष्य
 डा० हीरासात रीषिठ
 डा० पुनूनाम दुवल
 बोस्वायी तुमसीबाठ

- ७ कबीर की बिचारभारा
 ८ बाम्य और कसा तथा बाम्य निबन्ध
 ९ पो० तुमसीदास
 १० गो० तुमसीदास
 ११ गो० तुमसीदास
 १२ पो० तुमसी की समन्वय सामग्री
 १३ चन्द्रबरदायी और उनका काव्य
 १४ बिम्बामणि
 १५ बायसी चम्बानसी
 १६ बायसी के परिवर्ती हिन्दी सुफ़ी कवि और काव्य
 १७ तुमसीदास
 १८ तुमसी रसामन
 १९ तुमसीदास और उनका युग
 २० तुमसी दर्शन
 २१ तुमसी साहित्य की भूमिका
 २२ तुमसीदास की भाषा
 २३ तुमसी और उनका काव्य
 २४ तुमसीदास-बिम्बान और कसा
 २५ तुमसी के चार रूप
 २६ तुमसीदास
 २७ तुमसी साहित्य रत्नाकर
 २८ तुमसीदास-जीवन और बिचार भारा
 २९ तुमसी दर्शन
 ३० परलक्ष
 ३१ प्रथमवा
 ३२ बिचारे कृत
 ३३ भक्ति दर्शन
 ३४ भारतीय साधका और गुरु साहित्य
 ३५ भक्ति का विकास
 ३६ भारतीय दर्शन
 ३७ भारतीय दर्शन
 ३८ मानस में राजकथा
 ३९ मानस दर्शन
 डा० योनिन्द बिगुणायात
 श्री जयशंकर प्रसाद
 भा० रामचन्द्र पुस्त
 श्री शिवमंदन सहाय
 डा० इषामसुन्दर दास और डा० बहुरवान
 श्री ध्योहार राधेन्द्र सिंह
 डा० किपिन बिहारी बिबेशी
 भा० रामचन्द्र पुस्त
 डॉ० भाषार्य रामचन्द्र पुस्त
 डा० सरमा पुस्त
 डा० माताप्रसाद पुस्त
 डा० मंगीरय मिश्र
 डा० राजपति दीक्षित
 डा० बसदेव प्रसाद मिश्र
 डा० रामरतन भटनागर
 डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव
 डॉ० रामनरेण बिपाठी
 डॉ० डा० इन्द्रनाथ मवान
 श्री सत्यगुरुचरण बबरी
 श्री चन्द्रबनो पाण्डेय
 श्री रामचन्द्र डिबेशी
 डा० राजाराम रस्तोगी
 डा० रामदत्त मारहाण
 श्री मुमिता मदन पन्थ
 डा० मृगशीराम शर्मा
 डा० सरनामसिद्ध शर्मा
 डा० मृगशीराम शर्मा
 श्री बनदेव उपाध्याय
 डा० राधाचन्द्र
 डा० बनदेव प्रसाद मिश्र
 डा० श्री कल्याण

- ४० मानस की कृती भूमिका ए० पी० बराम्निकोव
धनु० डा० केसरी नारायण दुग्ग
पी बिजयामन्द त्रिपाठी
- ४१ मानस व्याकरण
- ४२ मानस प्रबंध
- ४३ मानस दर्शन
- ४४ मानस पीयूष
- ४५ मानस मीमांसा
- ४६ मानस मयंक
- ४७ मानस की रामकथा
- ४८ मोहनदास बब (हिन्दी अनुवाद
भूमिका)
- ४९ रामचरित मानस का पाठ
- ५० रामकथा (उत्पत्ति और विकास)
- ५१ रामचरित मानस के स्रोत और
रचनाक्रम
- ५२ रामचरित मानस के साहित्यिक
स्रोत (अप्रकाशित)
- ५३ रामचरित मानस की भूमिका
- ५४ रामानन्द संप्रदाय तथा हिन्दी
साहित्य पर उसका प्रभाव
(अप्रकाशित)
- ५५ रामकाव्य परम्परा में रामचन्द्रिका
का विविष्ट अध्ययन
- ५६ रामचरित मानस में लोकवार्ता
- ५७ विनय पत्रिका
- ५८ विश्वसाहित्य में रामचरितमानस
- ५९ संस्कृत साहित्य का इतिहास
- ६० संस्कृत कवि दर्शन
- ६१ सिद्धांत और अध्ययन
- ६२ सूफी महाकवि और जायसी
- ६३ सूफीमत और हिन्दी साहित्य
- ६४ हिन्दी साहित्य का इतिहास
- ६५ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक
इतिहास ।
- ६६ हिन्दी प्रभाष्यात्मक काव्य
- ए० पी० बराम्निकोव
धनु० डा० केसरी नारायण दुग्ग
पी बिजयामन्द त्रिपाठी
- श्री चन्द्रमौलि सुकल
श्री अंबरी मन्दन शरण
श्री रजनीकान्त शास्त्री
श्री पिबकाल पाठक
श्री परसुराम चतुर्वेदी
श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर
- डा० माठाप्रसाद गुप्त
डा० कामिस बुल्के
डा० मिस मोदवीस
डा० सीताराम ज्यूर
श्री रामशास गोड़
डा० बदरोनारायण श्रीवास्तव
- डा० नार्पी गुप्ता
- श्री चन्द्रमान
मोस्वामी तुमसीबास
श्री राजबहादुर समगोड़ा
श्री बसदेव उपाध्याय
डा० भोलाचंदकर व्यास
डा० मुताबराय
डा० जयदेव
डा० विमल कुमार खेत
बापार्वी रामचन्द्र मुकर्म
डा० राम कुमार वर्मा
- डा० कमल कुमरोष्ठ

१७	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास	डा० घम्भू माय सिंह
१८	हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव ।	डा० सरलामसिंह शर्मा
१९	बकबर बी पेट मुगुल	पी बी० ए० स्मिथ
२०	इंडेक्स बर्बोरम आफ बी रामायण आफ तुलसीदास	डा० सूर्यकांत
२१	श्रेष्ठमैमण्डिप आफ तुलसीदास इन रामचरितमानस (अप्रकाशित)	डा० हरिहरनाथ हुषकू
२२	बी एपिक	पी एबर वाम्बो
२३	पी हिस्टो आफ इंडियन लिटरेचर	पी बिटरनितस
२४	बियोग्राफी आफ तुलसीदास	रेब० दे० एन० कार्लेष्टर
२५	मोदन आन बी घामर आफ रामायण आफ तुलसीदास	डा० सरवार्थ प्रियर्सन
२६	रामचरित (अंग्रेजी भूमिका)	पी के०एस० राम स्वामी घास्वी विरोमणि
२७	रैटोरिक एण्ड प्रोसोडी	पी एल० बार० डेरे

रामचरितमानस के विभिन्न संस्करण

१	रामचरितमानस	सं० डा० माताप्रसाद गुप्त
२	"	सं० आचार्य रामचन्द्र गुप्त
३	"	पं० रामनरेश बिपाठी
४	"	पं० बिजयानन्द बिपाठी
५	"	डा० रणबहादुर सिंह
६	"	गीताप्रेम गोरखपुर

पत्र-पत्रिकाएँ

जातोचना कल्याण नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती हिन्दी अनुशीलन
विद्यालय, बिबिभारती, बीमा बापुरी भारतीय साहित्य ।

४०	मानस की कृषी भूमिका	ए० पी० बराम्लिकोव बनू० डा० केसरी नारायण सुन्दर की विद्यमानम् विपाठी
४१	मानस व्याकरण	
४२	मानस प्रसंग	”
४३	मानस बर्षण	श्री चन्द्रमौळि सुकुल
४४	मानस पीयूष	श्री ब्रह्मनी लम्हन सरय
४५	मानस मीमांसा	श्री रत्ननीकान्त घास्त्री
४६	मानस मयंक	श्री विजयलाल पाठक
४७	मानस की रामकथा	श्री परशुराम चतुर्वेदी
४८	मेघनाथ वध (हिन्दी भगूबाह भूमिका)	श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर
४९	रामचरित मानस का पाठ	डा० माठाप्रसाद मूण्ड
१०	रामकथा (उत्पत्ति और विकास)	डा० कामिस बुन्के
११	रामचरित मानस के स्रोत और रचनाक्रम	डा० दिग्विजय शर्मा
१२	रामचरित मानस के साहित्यिक स्रोत (अप्रकाशित)	डा० धीतराम कपूर
१३	रामचरित मानस की भूमिका	श्री रामदास गौड़
१४	रामायण संश्लेष तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव (अप्रकाशित)	डा० बरधरीनारायण श्रीवास्तव
१५	रामदास्य परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन	डा० बापी कुप्ता
१६	रामचरित मानस में लोकवार्ता	श्री चन्द्रमाल
१७	विनय पत्रिका	गोस्वामी तुलसीदास
१८	विश्वसाहित्य में रामचरितमानस	श्री रामबहादुर समबोड़ा
१९	संस्कृत साहित्य का इतिहास	श्री ब्रह्मदेव उपाध्याय
२०	संस्कृत कवि वर्णन	डा० भोलाशंकर व्यास
२१	विदांत और अध्ययन	डा० नृसिंहदास
२२	सूफी महाकवि और आयसी	डा० जयदेव
२३	सूफीमत और हिन्दी साहित्य	डा० विमल कुमार शैल
२४	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२५	हिन्दी साहित्य का मासोपन्यास इतिहास :	डा० राम कुमार वर्मा
२६	हिन्दी प्रेमात्मिका काव्य	डा० कमल कुमरोष्ठ

६७	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप बिकास	डा० राम्भू नाथ सिंह
६८	हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव ।	डा० धरनाथसिंह धर्मौ
६९	बकचर की प्रेट मूयुल	श्री बी० ए० सिमथ
७०	इंडियन बर्बरम आण्ट की रोमांसक आण्ट तुमसीदास	डा० सुब्रह्मण्य
७१	कैम्पनैतछिय आण्ट तुमसीदास इन रामचरितमानस (सप्रकाशित)	डा० हरिहरनाथ हुबडू
७२	बी एपिक	श्री एचर क्लम्बी
७३	बी हिस्ट्री आण्ट इंडियन लिटरेचर	श्री मिटरनिरत
७४	बिबोलाबी आण्ट तुमसीदास	रेव० वि० एन० कारपेण्टर
७५	गोदुन बान की घामर आण्ट रामायण आण्ट तुमसीदास	डा० धरनाथ सिवर्सन
७६	रामचरित (अंग्रेजी मुद्रिका)	श्री कै०एस० राम हबाभी घास्त्री घिठौमनि
७७	रैटोरिक एण्ड प्रोसोडी	श्री एस० बार० ब्रैडेर

रामचरितमानस के विभिन्न संस्करण

१	रामचरितमानस	सं० डा० माताप्रसाद मुख
२	"	सं० बाबासं रामचन्द्र मुख
३	"	पं० रामनरेश त्रिपाठी
४	"	बं बिजयानन्द त्रिपाठी
५	"	डा० रामबहादुर सिंह
६	"	गीताप्रेस गोरखपुर

पत्र-पत्रिकायें

आलोचना कल्याण भारतीयशास्त्री ब्रिजदा, उत्तरवर्ती हिन्दी अनुशीलन विद्यालयभारत, विश्वभारती, बीमा, मापूरी भारतीय साहित्य ।

